ISSN : 3049-334X

भारतीय सामाजिक सशक्तिकरण शोध पत्रिका

(Indian Social Empowerment Research Journal)

Volume : 02 Issue : 02 - May - August 2025 E - Journal

* प्रधान संपादक * श्री. प्रेमकुमार नाईक

https://samajiksashakteekaran.org.in

 ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

भारतीय सामाजिक सशक्तिकरण शोध पत्रिका

(Indian Social Empowerment Research Journal)

वर्ष 02, अंक 2 मई - अगस्त 2025

विषय: सामाजिक विज्ञान ई – पत्रिका

प्रधान संपादक : (Chief Editor)

श्री प्रेमकुमार नाईक

अध्यक्ष : सामाजिक सशक्तिकरण बहुउद्देशीय संस्था वर्धा, महाराष्ट्र

सहायक संपादक (Executive editor)

डॉ. नरेश कुमार गौतम

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग

श्री रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़

संपादक मंडल (Editorial Board)

डॉ. अमित राय

एसोसिएट प्रोफेसर, क्षेत्रीय केंद्र कोलकाता,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी
विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र

डॉ. आमोद गूजर

असिस्टेंट प्रोफेसर, मातृ सेवा संघ
सामाज कार्य संस्थान, नागपुर, महाराष्ट्र

डॉ. मिलिंद सवाई

प्राचार्य, डॉ. आंबेडकर कॉलेज
ऑफ सोशल वर्क वर्धा, महाराष्ट्र

डॉ . शम्भू जोशी

एसोसिएट प्रोफ़ेसर, दूर शिक्षा निदेशालय,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी
विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र

डॉ. विनोद जी. गजघाटे

प्राचार्य, डॉ. आम्बेडकर इंस्टीट्यूट
ऑफ सोशल वर्क नागपूर, महाराष्ट्र

डॉ. चित्रा माली

असिस्टेंट प्रोफेसर, कोलकाता केंद्र
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा, महाराष्ट्र

सहकर्मी समीक्षा समिति और सलाहकार बोर्ड/ समिति
(Peer Review Committee And Advisory Board)

प्रो. बंशीधर पाण्डेय
समाज कार्य विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

प्रो. विवेक कुमार सिंह
सेंटर फॉर सोशल वर्क, प्रो. राजेंद्र सिंह
(रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज उत्तर प्रदेश

प्रो. रमेशकुमार एच. मकवाना
समाजशास्त्र विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय,
वल्लभ विद्यानगर, गुजरात (भारत)

प्रो. दीपा मिलिंद बलखंडे
मनोविज्ञान विभागाध्यक्ष,, श्रीमती बिंजानी महिला
महाविद्यालय, नागपुर (राष्ट्रसन्त तुकडोजी महाराज
नागपुर विश्वविद्यालय) महाराष्ट्र

डॉ. सुप्रिया पाठक
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, स्त्री अध्ययन विभाग, प्रयागराज केंद्र
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार तिवारी
सहायक प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग, प्रयागराज केंद्र
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

डॉ. सरोज कुमार ढल
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

डॉ. गजानन निलामें
असिस्टेंट प्रोफेसर, वर्धा समाज कर्या संस्थान
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा

डॉ. माधुरी हरिभाऊ झाडे
असिस्टेंट प्रोफेसर, डॉ. आंबेडकर कॉलेज ऑफ
सोशल वर्क वर्धा, महाराष्ट्र

डॉ.जोंगदंड शिवाजी रघुनाथराव
असिस्टेंट प्रोफेसर, वर्धा समाज कर्या संस्थान
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

डॉ. हिना एच. खान
असिस्टेंट प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष, PGTD
मनोविज्ञान, (राष्ट्रसन्त तुकडोजी महाराज नागपुर
विश्वविद्यालय) महाराष्ट्र

डॉ. शिरिष मा. सुतार
असिस्टेंट प्रोफेसर, श्री कृष्णदास जाजू ग्रामीण सेवा
महाविद्यालय पिपरी वर्धा (राष्ट्रसन्त तुकडोजी
महाराज नागपुर विश्वविद्यालय) महाराष्ट्र

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

व्यक्तिगर और संस्थागत सदस्यता

- **वार्षिक सदस्यता**
  (Annual Subscription) Rs. 600
- **द्विवार्षिक सदस्यता**
  (Biennial Subscription) Rs. 1200
- **त्रिवर्षीय सदस्यता**
  (Three Year Subscription) Rs.1800
- **पंचवर्षीय सदस्यता**
  (five year Subscription) Rs. 3000

बैंक खाता विवरण

State Bank of India Wardha (Maharashtra)

Account Name :

samajik sashakteekaran sasthan(ngo)

- **Account No. 41851337167**

IFSC No. SBIN0000500

प्रकाशन

सामाजिक सशक्तिकरण बहुउद्देशीय संस्था वर्धा, महाराष्ट्र
(कपिल वस्ती, सुतगिरणी ले आउट वरूड वर्धा, महाराष्ट्र)
Social Empowerment Multipurpose Organization Wardha, Maharashtr
(Kapil Vasti, Sutgirni Layout Warud Post Sevagram, Wardha, Maharashtra Pin-442102)

Home Page : http://samajiksashakteekaran.org.in

E-mail : ise.researchjournal@gmail.com

Mobile number : 9130331541, 9960331541

About the Journal:-
https://samajiksashakteekaran.org.in/abouttheJournal

Editorial Board :-
https://samajiksashakteekaran.org.in/editorialboar

Published issues:-
https://samajiksashakteekaran.org.in/publishedissues

Hyperlink:-
https://samajiksashakteekaran.org.in/hyperlink

भारतीय सामाजिक सशक्तिकरण शोध पत्रिका

(Indian Social Empowerment Research Journal)

परिचय

‘भारतीय सामाजिक सशक्तिकरण शोध पत्रिका’ ऑनलाइन, पीयर-रिव्यूड (सहकर्मी-समीक्षित) एवं रेफर्ड (संदर्भित) बहुभाषिक शोध पत्रिका है, जिसका प्रकाशन हिंदी, अंग्रेज़ी और मराठी भाषा में किया जाता है। यह सामाजिक सशक्तिकरण बहुउद्देशीय संस्था, वर्धा, महाराष्ट्र द्वारा वर्ष 2024 से नियमित रूप से प्रकाशित की जा रही है।

पत्रिका का उद्देश्य सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में उत्कृष्ट, नवाचारपरक और समाजोपयोगी शोध को प्रोत्साहित करना है। यह मंच सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक तथा सामुदायिक स्वास्थ्य से जुड़े विभिन्न आयामों पर केंद्रित शोध कार्यों, आलेखों एवं समीक्षाओं के माध्यम से ज्ञान के प्रचार-प्रसार, विचारों के आदान-प्रदान और सामाजिक जागरूकता को प्रोत्साहित करता है।

हमारी दृष्टि

पत्रिका का मूल उद्देश्य समाज के विविध पक्षों को समझने, विश्लेषित करने और सकारात्मक बदलाव हेतु संवाद की संस्कृति को विकसित करना है। यह प्रयास न्यायसंगत, समावेशी और संवेदनशील समाज की दिशा में एक वैचारिक पहल है, जो ज्ञान के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन और जनजागृति को बढ़ावा देती है।

उद्देश्य

- नवीन शोध कार्यों और वैचारिक लेखन को प्रोत्साहन देना।
- शैक्षणिक, सामाजिक, राजनीतिक और प्रशासनिक विषयों पर संवाद स्थापित करना।
- सामाजिक वैज्ञानिकों, शोधार्थियों, शिक्षकों, नीति-निर्माताओं एवं पाठकों को एक साझा मंच उपलब्ध कराना।
- सिद्धांत और व्यवहार के मध्य सेतु निर्माण कर, समाज में ज्ञान आधारित हस्तक्षेप को संभव बनाना।

पत्रिका में निम्न प्रकार की विषयवस्तु आमंत्रित की जाती है:

- सामाजिक विज्ञान विषयों पर मौलिक शोध-पत्र
- अवधारणात्मक या विश्लेषणात्मक आलेख
- पुस्तक समीक्षाएँ

- नीति एवं कार्यक्रम आधारित समीक्षा लेख
- क्षेत्रीय अध्ययन व केस स्टडी

प्रकाशन नीति

प्राप्त सभी लेखों की पूर्ण रूप से समीक्षा की जाती है। पत्रिका गुणवत्तापूर्ण, प्रासंगिक और शोध की दृष्टि से समृद्ध सामग्री के प्रकाशन हेतु प्रतिबद्ध है।

‘भारतीय सामाजिक सशक्तिकरण’ पत्रिका का प्रयास है कि समाज के विभिन्न वर्गों, विद्यार्थियों, शोधार्थियों, शिक्षकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा आम नागरिकों को एक साथ जोड़ते हुए विचार-विमर्श की एक सकारात्मक, ज्ञान-संपन्न और संवेदनशील संस्कृति को विकसित किया जाए, जिससे समाज को नई सोच, नया दृष्टिकोण और नई दिशा प्राप्त हो सके।

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

संपादकीय

भारतीय समाज एक जटिल और बहुरंगी संरचना है, जो सदियों से अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं से गुजरता हुआ बना है। इस समाज के निर्माण में स्त्रियों की चुप्पी और उनके छोटे-छोटे प्रतिरोध, जनजातीय समुदायों की सांस्कृतिक दृढ़ता, वृद्धों के अनुभवों का भंडार, दलितों की बराबरी की आकांक्षा और लोकसंस्कृति के माध्यम से अभिव्यक्त जनचेतना ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इतिहास की मुख्यधारा ने इन सभी आवाज़ों की भूमिका को या तो सीमित किया है या पूरी तरह नज़रअंदाज़ किया है। उपनिवेशकाल में सत्ता के औजारों ने इन स्वरों को दबाया और स्वतंत्रता के बाद भी लोकतांत्रिक संस्थाएं इन समूहों को समाज की मुख्यधारा में बराबरी के साथ शामिल नहीं कर सकीं। इसका परिणाम यह हुआ कि असमानता की खाई और गहरी होती गई, और समाज का नैतिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक संतुलन भी डगमगाने लगा।

आज यह ज़रूरी हो गया है कि समाज के विमर्शों में, चाहे वह नीति-निर्माण हो, समाज कार्य हो, साहित्य हो, शिक्षा हो या मीडिया। इन सभी उपेक्षित आवाज़ों को केंद्र में लाया जाए। स्त्रियों के संघर्षों को महज करुणा के रूप में नहीं, बल्कि परिवर्तन की ताकत के रूप में समझा जाए। जनजातीय जीवन को 'पिछड़ेपन' की निगाह से नहीं, बल्कि उनके पारंपरिक ज्ञान, जीवनशैली और पर्यावरण संतुलन की दृष्टि से देखा जाए। वृद्धजनों को समाज का बोझ नहीं, बल्कि अनुभव और मार्गदर्शन का स्रोत माना जाए। दलित और आदिवासी चेतना को केवल आरक्षण के संदर्भ तक सीमित न रखकर, उनके विचार और जीवन-दृष्टि को समाजिक संवाद का हिस्सा बनाया जाए। लोकसंस्कृति को केवल प्रदर्शन और उत्सव की वस्तु नहीं, बल्कि जनसंघर्ष और सामाजिक चेतना के माध्यम के रूप में स्थापित किया जाए।

समकालीन समय में जब समाज वैश्वीकरण, तकनीकी विकास और उपभोक्तावाद की दौड़ से गुजर रहा है, तो यह और भी ज़रूरी हो गया है कि हम करुणा, मानवीयता और सामाजिक न्याय को पुनः केंद्र में रखें। समाज कार्य को केवल सेवा या कल्याण के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में विकसित किया जाए। साहित्य को केवल सौंदर्यबोध तक सीमित न रखते हुए, समाज की वास्तविकताओं का आईना बनाया जाए। शिक्षा को केवल जानकारी का माध्यम न मानकर, मूल्य आधारित समाज निर्माण का उपकरण समझा जाए।

समाज, संघर्ष और संवेदना: ये तीनों केवल विचार नहीं, बल्कि वे ताकतें हैं जो किसी भी समाज को जीवंत, बराबरी पर आधारित और न्यायपूर्ण बनाती हैं। वर्तमान समय की सबसे बड़ी मांग यह है कि हम

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

इतिहास की उन धाराओं को मुख्यधारा में स्थान दें जिन्हें अब तक हाशिए पर रखा गया है। यह सिर्फ उपेक्षित अनुभवों को दर्ज करने की बात नहीं है, बल्कि उन्हें दिशा, सम्मान और दायित्व देने की प्रक्रिया है। यही वह आधार है जिस पर एक नया, समावेशी और न्यायपूर्ण भारत खड़ा हो सकता है। जहाँ नीति, विचार, संघर्ष और संवेदना मिलकर एक मानवीय समाज की संरचना करें। मगर यह विडंबना है कि आज राजनीति और कुछ सामाजिक शक्तियां समाज को जोड़ने के बजाय अपने स्वार्थों के लिए उसे बांटने में लगी हैं। इस प्रवृत्ति को बदलना होगा और एक ऐसे समाज की ओर बढ़ना होगा जहाँ हर आवाज़ सुनी जाए, हर अनुभव का सम्मान हो और हर व्यक्ति को बराबरी का हक़ मिले।भारतीय सामाजिक सशक्तिकरण शोध पत्रिका

डॉ. नरेश कुमार गौतम
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग
श्री रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़

भारतीय सामाजिक सशक्तिकरण शोध पत्रिका

(Indian Social Empowerment Research Journal)

ISSN: 3049-334X वर्ष 02, - अंक 2 मई – अगस्त 2025

अनुक्रमणिका

अ.क्र. पृष्ठ.क्र.

1. **Impact of Digital Literacy on Women's Access to Online Education and Skill Development** 1
Dr Abha Gupta

2. **A Qualitative Study on Personal Identity Shifts in Women after Divorce** 13
Abhilasha, Dr. Sasmita Patel

3. **A Study on the Political Participation and Representation of Women in India: Barriers and Opportunities** 24
Dr Buttli Appala Raju, Dr Raja Talluri

4. **"Rural Resilience: The Multifaceted Challenges Faced by Gram Pradhans During Covid-19"** 39
Manjari Kushwaha

5. **Social Empowerment Through Intercorrelation Between Digitalization Of Banking Services & Commercial Development In M.P.** 50
Deepak Kumar Athya, Dr. Prabha Agrawal

6. **Judicial Remedies for Socioeconomic Inequality: Legal Strategies in Unequal Societies** 59

Dr. Parijat Pradhan,

7. **Prioritizing Determinants of Women Empowerment in Gaya District: An Analysis Using Garrett Ranking Method** 70

Pooja Bharti

8. **Conceptual Reflections on Vocational Education in Fostering Self- Reliance and Gender Parity** 84

Sourabh Sharma, Rashu Sharma

9. **A Comparative study of Flipkart and Amazon in Chhattisgarh state** 96

Dr. Prachi Bang

10. **Systematic Review on Life Skills: Dimensions, Impacts, and Interventions** 108

Saurabh Kumar, Prof. Prem Shanker Ram

11. **Impact of counseling and guidance facilities on academic performance and career choice of secondary level school students of Varanasi district.** 125

Nand Lal Maurya, Prof. Prem Shanker Ram

12. **उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन में महिलाओं का प्रतिनिधित्व** 139

डॉ. चित्रा माली

13. **भारतीय परिप्रेक्ष्य में व्यावसायिक समाज कार्य की स्थिति** 145

डॉ. के. बालराजु , अंकित कुमार पाण्डेय

14. **चंद्रपुर में स्वास्थ्य समस्या और सीएसआर की पहल का अध्ययन** 154

डॉ. मिथिलेश कुमार तिवारी, सुश्री. माधुरी श्रीवास्तव

15. **धार्मिक साहित्यों में वर्ण व्यवस्था और समकालिक महत्त्व : एक संक्षिप्त विश्लेषण** 167

सत्यार्थ सिंह

16. **जनजातिय महिलाओं के आर्थिक विकास में एन आर एल एम योजना के स्व- सहायता समूह का समाजशास्त्रीय अध्ययन (रायगढ़ जिले के ग्राम पंचायत जुर्डा एवं पंडरीपानी के विशेष संदर्भ में)** 174

डॉ. चेतानंद जांगडे

17. **पर्यावरणीय संकट और समाज: एक नैतिक व भौगोलिक दृष्टिकोण** 183

महेंद्र कुमार मिठारवाल

18. **पर्वतीय परिवेश में निम्नवर्ग के जीवन में निहित आर्थिक चुनौतियों का अनुशीलन (शैलेश मटियानी के उपन्यास 'गोपुली गफ़ूरन' के विशेष संदर्भ में)** 190

आनंद सिंह कप्रवान

19. **मानव अधिकार उल्लंघन से संबंधित सामाजिक मुद्दे : चुनौतियां और सम्भावनाएँ** 198

सपना स्वामी

20. **राजनीतिक नेतृत्व और महिलाओं की स्थिति: समस्याएं एवं समाधान** 209

राधा प्रिया

21. **वृद्ध महिला श्रमिको की स्थिति का अध्ययन इंदौर शहर के विशेष सन्दर्भ में** 219

प्रजापति, सुरेश कुमार, डॉ.जैन सुधा

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

22. **डिजिटल युग में महिलाओं की भूमिका और लिंग समानता की नई संभावना** 227

खुशबू सिंह

23. **मूंज उत्पाद से उद्यमिता कि ओर बढ़ती महिलाएँ : विशेष सन्दर्भ प्रयागराज** 234

ज्योति कुमारी आदिवासी

24. **ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं की आर्थिक, धार्मिक और निर्णय लेने में भागीदारी का अध्ययन, कुल्लू तहसील, कुल्लू जिला, हिमाचल प्रदेश** 241

डॉ. निरुपोमा करदोंग, साहिल महंत

25. **अवलुप्त लोकनाट्य: भाँड यात्रा** 251

मौसुमि दोलइ

26. **"सार्वजनिक सेवाओं की प्रदायगी के तीसरे माध्यम डोर स्टेप डिलीवरी योजना का राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्लीवासियों पर सामाजिक प्रभाव का अध्ययन"** 258

रामलाल कूड़ी

27. **दरभंगा जिला के बहेड़ी एवं सदर प्रखंडों में महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण की स्थिति: चुनौतियां एवं संभावनाएं।** 265

स्वाती कुमारी

28. **माधव कौशिक की कहानियों में संवेदना के विविध पक्ष** 276

सौरभ सिंह

29. **रवांई के लोक गीतों में परिलक्षित भारतीय ज्ञान परंपरा** 286

प्रमोद प्रसाद

30. **इंस्टाग्राम इंफ्लुएंसर्स का विश्लेषण: कोटा के शीर्ष पेजों की सामाजिक-आर्थिक भूमिका** 298

रीना दाधीच, डॉ.मीनाक्षी दाधीच

31. **A Study on the Procedural Method of the Criminal Justice System: Special Emphasis on Bail Provision** 307
Kumkum, Dr. Phool Chand Saini

32. **Beyond Boundaries: Human Rights as the Compass for Global Migration Governance** 321
Afzal Ahamad, Shahanshah Khan

33. **A Study on the Usage of Cashless Transactions and Digital Payment Systems among MSMEs in Nagpur City** 334
Shivesh Hargode, Dr. Medha Kanetkar

34. **Smart Phone Agriculture Apps: The Future of Indian Farming** 341
Prof Shirish M. Sutar

35. **“स्त्री के बिना अधूरा समाज और शौषण की विडंबना”** 350
श्रुतिकीर्ति शुक्ला

36. **हिमालय की गोद में: भारतीय ज्ञान परंपरा और यात्रा साहित्य का समन्वय** 357
सोनिया बहुगुणा

37. **द्वितीय भाषा शिक्षण में समाजभाषाविज्ञान का महत्व** 365
डॉ. शावेज़ ख़ान

38. **उत्तराखण्ड गढ़वाल में केदारघाटी कौथिग परंपरा का अनुशीलन** 372
प्रियंका

39. **भारत सरकार की राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के सामाजिक विश्लेषण का अध्ययन** 379
लक्ष्मी गोयल, डॉ अंजू चौधरी

40.	**राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उत्सवों में संचार और वैचारिक प्रसार का विश्लेषणात्मक अध्ययन** पंकज गजानन कलाने	387
41.	**उपनिषदों में वर्णित शिक्षा पद्धति और नई तालीम (आनंद निकेतन) की शिक्षा पद्धति के तुलनात्मक अध्यय** देवेश कुमार दूबे	397
42.	**भारत के समावेशी विकास में अनुवाद का योगदान** डॉ. अनवर अहमद सिद्दीक़ी	406
43.	**गांधीजी की बुनियादी शिक्षा: समकालीन प्रासंगिकता** उत्तम आनंदराव केते	413
44.	**शांति प्रयोगशाला की अवधारणा और उसका आरंभिक विकास** डॉ. प्रिंस कुमार सिंह, डॉ. राकेश कुमार मिश्र	422
45.	**बदलते दौर में भूमंडलीकरण: समाजशाश्त्रीय परिप्रेक्ष्य में** राजपाल सिंह	431
46.	**भूराजनैतिक संघर्षों के दौरान निवेशक मनोविज्ञान का शेयर बाज़ार की अस्थिरता पर प्रभाव: भारतीय संदर्भ में एक अध्ययन** प्रा. श्रीराम बालेकर	440
47.	**छत्तीसगढ़ के हिन्दी नाट्य लेखन की परम्परा** डॉ.शिशु कुमार सिंह	446
48.	**Technological Innovations in Film Lighting: Their Role in Shaping Indian Cinematic Aesthetics** Suhas U. Nagrale	452

49. **डिजिटल युग में जनजातीय समाज: छत्तीसगढ़ के संदर्भ में एक अध्ययन** 461

डॉ. पायल पोद्दार

50. **भौगोलिक विशेषताओं, जलवायु एवं पर्यटन विकास की संभावनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन (मैनपाट: छत्तीसगढ़ का प्रमुख हिल स्टेशन)** 469

डॉ. गणेश कुमार कोशले

Impact of Digital Literacy on Women’s Access to Online Education and Skill Development

Dr Abha Gupta
Assistant Professor
Mangalmay Institute of Management and Technology, Greater Noida
abhapraveen99@gmail.com

Abstract
In the 21st century, digital literacy has emerged as a crucial enabler of education and socio-economic mobility, especially for women in developing countries like India. Despite significant strides in technology penetration through initiatives like *Digital India*, the gendered digital divide continues to restrict women’s access to online education and skill development. This paper examines how digital literacy affects women’s participation in online learning platforms and vocational skill programs, with a focus on rural and marginalized communities. The study explores barriers such as socio-cultural norms, infrastructural gaps, and lack of digital skills while highlighting success stories of women leveraging digital tools for empowerment. Using secondary data, policy analysis, and case illustrations, the paper proposes actionable strategies to strengthen digital literacy as a pathway for women’s educational and economic advancement.

Keywords: Digital Literacy, Women Empowerment, Online Education, Skill Development, Digital Gender Divide, E-Learning, India.

Introduction

The expansion of digital technologies has transformed the way education and skill development reach diverse populations. For women, especially those from marginalized or rural communities, digital platforms can break traditional barriers of mobility, time, and access. However, a stark digital gender divide persists in India: according to GSMA's Mobile Gender Gap Report (2023), women are 23% less likely than men to own a smartphone and 41% less likely to use mobile internet.

While programs like *Digital India*, *Pradhan Mantri Gramin Digital Saksharta Abhiyan (PMGDISHA)*, and various state-level digital literacy missions have made progress, the connection between basic digital skills and meaningful access to online education and employable skills remains underexplored. This paper investigates this linkage, aiming to highlight how digital literacy can empower women educationally and economically in the digital age.

Conceptual Framework

Digital Literacy

Digital literacy goes beyond the ability to use a device; it includes the skills to search for information, critically assess online content, use digital platforms safely, and engage in online learning effectively.

Women's Access to Online Education

Online education includes formal and informal learning through platforms such as MOOCs (Massive Open Online Courses), skill development portals, mobile learning apps, and virtual classrooms.

Skill Development

Skill development for women often focuses on employable skills like computer applications, digital marketing, entrepreneurship, financial literacy, and domain-specific vocational skills.

Significance of Digital Literacy for Women

Digital literacy plays a transformative role in bridging the gender gap in education and skills development. For women, especially those from rural, marginalized, or traditionally disadvantaged communities, acquiring digital skills opens new pathways for learning, earning, and participation in society. Below is a detailed explanation of how digital literacy impacts women's lives:

Flexibility: Learning Anytime, Anywhere

In many parts of India, socio-cultural norms and domestic responsibilities restrict women's physical mobility. Many girls and women are unable to attend schools, colleges, or training centers due to household duties, childcare responsibilities, early marriage, or safety concerns while commuting. Digital literacy empowers women to overcome these barriers by enabling access to online education from the comfort of their homes. Women can participate in virtual classrooms, webinars, and online skill training courses according to their own schedule. This flexibility is crucial for married women, young mothers, or women in remote areas where quality educational institutions are scarce.

For instance, a homemaker in a rural village can join a tailoring course on YouTube, attend a live class via Zoom, or watch recorded sessions at night after finishing household chores — something that would be impossible in a conventional classroom setup.

Affordability: Reducing Financial Barriers

Higher education and skill development programs can be costly — tuition fees, travel expenses, hostel accommodation, and study materials often place them out of reach for many women, particularly in low-income households. Sons' education is frequently given precedence over daughters in low-income families.

Digital literacy helps women tap into free or low-cost educational resources available online. Numerous government portals, NGOs, and EdTech platforms offer free MOOCs (Massive Open Online Courses), skill development modules, or

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

open access study materials. For example, platforms like *SWAYAM*, *DIKSHA*, and *NPTEL* provide thousands of courses without any fee.

This affordability means that women who might otherwise drop out after school can continue learning advanced skills or complete vocational certifications at little or no cost — increasing their employability without burdening family finances.

Information Access: Pathway to Opportunities

Being digitally literate means more than just operating a smartphone — it means knowing *how* to search for reliable information, fill out online applications, register for courses, and connect with networks and opportunities.

With digital literacy, women can:

- Search for scholarships and fellowships that specifically support girls and women.
- Apply for government welfare schemes related to education, health, or financial aid.
- Discover online or blended training programs suited to their interests.
- Stay updated about local job openings, entrance exams, or new skill certification opportunities.

In addition, digitally literate mothers are better able to support their children's education — for example, checking school portals for updates, paying fees online, attending virtual parent-teacher meetings, or helping their children find online learning resources.

Entrepreneurship: Empowering Women to Build Businesses

Women entrepreneurs, especially those running small home-based or micro-enterprises, benefit significantly from digital literacy. Learning to use smartphones, social media, and online payment systems helps them reach wider markets and customers.

Examples include:

- Using WhatsApp or Facebook to advertise homemade products like pickles, handicrafts, or clothes.

- Selling through e-commerce platforms like Amazon Saheli or Meesho, which specifically promote women entrepreneurs.
- Learning new business skills like digital marketing, basic accounting, or customer management through online tutorials.
- Making and receiving payments securely via UPI, mobile wallets, or online banking.

Digital tools make it possible for women to run sustainable businesses without needing a physical store or heavy capital investment. This boosts household incomes, enhances self-confidence, and encourages other women in the community to become economically active.

Opportunities and Success Stories

National Programs

- Six crore rural households are to become digitally literate, according to **PMGDISHA.**
- **DIKSHA Portal** Provides digital content for school education and teacher training.
- **Skill India Mission** Increasing use of blended learning for vocational skills.

Community Initiatives

- NGOs like *SEWA* and *Pratham* run community digital centers for women.
- Self-help groups (SHGs) use digital tools for micro-entrepreneurship training.

Real-life Illustrations

Many rural women have learned to run small businesses using WhatsApp marketing, YouTube tutorials, or online payment apps. For example, in states like Kerala, SHGs under Kudumbashree have trained thousands of women in digital skills for livelihood generation.

Barriers to Women's Digital Literacy

While digital literacy offers tremendous opportunities for women's education and empowerment, many social, economic, and infrastructural barriers continue to

limit its reach and impact, particularly in India’s rural and marginalized communities. Designing successful interventions requires an understanding of these obstacles. Below are the major barriers: -

Infrastructural Constraints

The dearth of the physical infrastructure required to access digital technology is a significant obstacle:

- **Connectivity:** Many rural areas still lack stable, affordable internet connections. Even when mobile data is available, network speed and reliability are often poor, making it difficult to stream online classes or download learning materials.
- **Devices:** Smartphones, tablets, or computers are often considered luxury items in low-income households. When devices are shared within families, male members typically get priority use, while women and girls may get access only for limited time or not at all.
- **Electricity:** Irregular power supply in remote areas also limits consistent use of digital devices.

Socio-cultural Norms and Gender Bias

Girls' and women's access to digital tools is frequently limited by ingrained gender norms:

- In conservative families, women’s phone use may be viewed with suspicion, associated with misuse or moral policing.
- Girls may be denied phones to “protect” them from social media distractions or online harassment.
- Early marriage, household responsibilities, and care work leave little time for women to learn digital skills.
- Women may be deterred from attending internet cafés or digital training centres, which are frequently male-dominated venues, due to social stigma.

Such attitudes reinforce the digital gender divide, where even if devices and internet are available, women may not have the agency or confidence to use them freely.

Economic Barriers

Cost is a critical barrier:

- Buying a smartphone, paying for mobile data packs, or repairing devices can be unaffordable for women from economically weaker sections.
- Families often prioritize spending on male members' education or devices over female members.
- Women with no personal income or savings have less financial freedom to invest in digital learning tools.

Without addressing affordability, digital literacy initiatives may not reach the poorest women.

Low Basic Literacy and Language Barriers

For many women in rural India, especially older women, low levels of basic literacy make it hard to navigate digital devices:

- Many apps and online content are in English or Hindi, which may not be the primary language for millions of tribal or regional language speakers.
- Instructions, tutorials, and interfaces are rarely designed for first-generation learners.
- Women with limited reading skills may feel intimidated by screens filled with unfamiliar text.

This makes them dependent on male family members or children for help — limiting privacy, confidence, and independence.

Lack of Digital Safety and Cyber Awareness

Fear of online harassment, fraud, or misuse of personal data discourages many women from using digital tools:

- Women often face cyberbullying, trolling, fake profiles, or blackmail on social media.

- Many women lack knowledge of basic digital safety — setting strong passwords, using privacy controls, or identifying phishing scams.
- Negative past experiences or community horror stories about online exploitation deepen mistrust of digital spaces.

Without cyber safety training, digital literacy can be risky instead of empowering.

Inadequate Training and Support Structures

Even when digital literacy programs exist, they often fail to reach women effectively:

- Many training centers or government CSCs (Common Service Centres) are located far from villages.
- Trainers may not use gender-sensitive teaching methods — sessions might be rushed, male-dominated, or conducted at times inconvenient for women.
- There is often little follow-up support — once basic training is over, women may not have mentors to guide them in applying their new skills for education or work.

This results in poor retention and limited real-world use of skills learned.

Limited Integration with Education and Skill Ecosystems

Digital literacy for women is often treated as a standalone short course instead of being embedded in schools, adult education, or livelihood programs.

- Many schools in rural areas lack proper ICT labs or digital resources for girls.
- Adult literacy or women’s SHG training rarely combines digital and livelihood skills meaningfully.
- As a result, digital skills are not sustained or connected to real opportunities for further learning, certification, or jobs.

Recommendations

To fully harness the transformative power of digital literacy for women’s education and skill development, India must adopt multi-layered, practical strategies that address social, economic, and infrastructural barriers while creating

safe, supportive learning ecosystems. The following recommendations outline actionable ways forward:

Integrate Digital Literacy in Education

Digital skills should not be taught as a one-time add-on, but as an essential, ongoing part of school and adult education:

- **Curriculum Integration:** Embed basic and advanced digital skills in school syllabi from upper primary level onwards. Include practical training in operating devices, using the internet for research, online learning tools, and safe digital practices.
- **Adult Education:** Combine digital literacy with adult literacy and continuing education programs for women who missed formal schooling. Adult learning centers should include practical sessions on how to access e-learning portals, fill out online forms, and use digital tools for livelihoods.
- **Community Digital Literacy Centers:** Establish dedicated local centers in villages and urban slums, run at times convenient for women, with female trainers to build comfort and trust. Such centers can serve as safe spaces for women to practice skills freely and access online education resources.

Women-focused Digital Skill Programs

Training modules should be designed with women’s needs and contexts in mind:

- **Gender-sensitive Content:** Develop user-friendly, women-oriented online courses that use simple language, regional dialects, and culturally relevant examples. Content should promote self-assurance and agency while honouring regional traditions.
- **Cyber Safety Modules:** Teach women about digital rights, privacy settings, safe browsing, spotting fake information, and reporting online abuse. This builds confidence and reduces fear of digital harassment.
- **Digital Financial Literacy:** Include practical training on using digital banking, mobile wallets, UPI payments, and online transactions to help women manage finances independently and support small businesses.

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

Improve Infrastructure

Without reliable access to affordable digital tools and connectivity, literacy efforts will not translate into real empowerment:

- **Affordable Internet:** Expand high-speed broadband networks and mobile data coverage in rural and underserved areas. Local governments should negotiate low-cost data plans targeted at women learners.
- **Subsidized Devices:** Provide low-cost or subsidized smartphones or tablets to women learners through Self-Help Groups (SHGs), cooperatives, or local panchayats. This can be linked with digital literacy milestones or participation in online courses.

Leverage Community Networks

Community-based approaches can help reach the most marginalized women:

- **Local Peer Trainers (‘Digital Saathis’):** Identify and train local women as digital facilitators to teach others in their villages or slums. Peer-to-peer learning builds trust and overcomes language and cultural barriers.
- **Partnerships with NGOs:** Work closely with NGOs, women’s groups, and SHG federations who already have grassroots connections. These groups can mobilize women, run digital camps, and provide follow-up support.

Policy and Monitoring

Strong policies and robust monitoring are critical for sustained impact:

- **Gender-responsive Monitoring:** Regularly assess programs like *PMGDISHA* and *Digital India* to track how many women benefit, the quality of training, and actual usage after training. Publish gender-disaggregated data to identify gaps.
- **Support for EdTech Innovations:** Provide incentives, funding, or mentorship for EdTech startups and social enterprises to develop women-focused digital learning content in local languages and low-bandwidth formats. Public-private partnerships can help scale these innovations.

Conclusion

Digital literacy is one of the most powerful tools available today to bridge both educational and economic divides for women in India. When women gain digital skills, they gain access to the vast world of online education, skill development opportunities, government services, and entrepreneurial resources that were once out of reach due to social, cultural, or geographical constraints. For millions of women, especially in rural or marginalized communities, digital literacy can be the first step towards lifelong learning, better livelihoods, financial independence, and greater confidence in their ability to participate fully in a rapidly digitizing society. However, the transformative potential of digital literacy can only be fully realized when persistent barriers are addressed holistically and inclusively. It is not enough to provide devices or internet connections alone — there must be sustained efforts to tackle deep-rooted gender norms, affordability challenges, language barriers, and safety concerns that continue to restrict women’s free and confident use of digital tools.

Gender-responsive policies must ensure that digital literacy programs are designed with women’s unique needs in mind — from flexible timings and safe community centers to women trainers, localized content, and practical applications linked directly to education, skills, or livelihood outcomes. Infrastructure improvements must prioritize last-mile connectivity and affordable access for women in underserved regions. Equally important is the role of community networks, NGOs, self-help groups, and local peer trainers who can bridge the trust gap and help women use digital skills in real-life situations — whether it is supporting their children’s studies, applying for online courses, starting micro-enterprises, or managing their own digital finances.

In this way, digital literacy becomes not just a technical skill but a catalyst for empowerment, voice, and agency. By equipping women with the tools and confidence to learn, earn, and lead in the digital age, India can take a decisive step towards building an inclusive, equitable, and resilient society. Investing in

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

women's digital education today will shape a generation of learners, workers, and leaders who will drive India's growth story tomorrow — leaving no one behind.

References

1. *Government of India. (2020). National Education Policy 2020. New Delhi: Ministry of Education.*
2. *GSMA. (2023). The Mobile Gender Gap Report 2023.*
3. *Ministry of Electronics & Information Technology. (2017). Pradhan Mantri Gramin Digital Saksharta Abhiyan (PMGDISHA) Guidelines.*
4. *UNESCO. (2022). Closing the Gender Digital Divide in India: The Role of Digital Literacy.*
5. *Pratham. (2021). Annual Status of Education Report (ASER).*
6. *Agrawal, A. (2018). Women, Technology, and Empowerment: The Digital Literacy Link. Journal of Gender Studies, 27(3).*
7. *Mehrotra, S. (2021). Skill Development and Women's Employment in India: Challenges and Prospects. Economic & Political Weekly.*

A Qualitative Study on Personal Identity Shifts in Women after Divorce

Abhilasha
(Research Scholar)
Department of Social Work
Guru Ghasidas University,
Bilaspur, Chhattisgarh

Dr. Sasmita Patel
(Associate Professor)
Department of Social Work
Guru Ghasidas University,
Bilaspur,Chhattisgarh

Abstract

Divorce represents a significant turning point in a woman's life, often leading to profound shifts in personal identity. This qualitative study examines the ways in which... women reconstruct and redefine their sense of self after marital dissolution. Through in-depth interviews with a purposive sample of divorced women from diverse socio-economic backgrounds, the research examines the emotional, social, and psychological transitions that accompany the post-divorce period. The study focuses on role renegotiation, self-perception, independence, and social reintegration. Findings suggest that while the process of identity transformation is often challenging and marked by periods of uncertainty, it also opens pathways for personal growth, empowerment, and renewed self-awareness. The insights highlighted the importance of supportive networks and mental health interventions in facilitating healthy identity reconstruction. This study contributes to the broader understanding of post-divorce adjustment and offers "Significant contributions to social work practice", counseling, and policy development targeting divorced women.

Introduction

Divorce, the formal dissolution of a marital union, has existed throughout history in various forms, but its meaning, implications, and acceptance "Have evolved considerably throughout the years", particularly for women. In ancient societies, including those in India, Greece, and Rome, marriage was deeply institutionalized, often viewed more as a social contract between families than a union of individuals. Divorce, when permitted, was heavily gendered—men could usually initiate separation with fewer consequences, while women faced severe social and economic penalties.

Historically, divorced women were stigmatized, marginalized, and in many cases, ostracized. Their social worth was often seen as diminished due to their "failed" marital status. In India, for instance, cultural norms rooted in patriarchy reinforced the idea that a woman's primary identity stemmed from her roles as wife and mother. Consequently, women who divorced were not only perceived as deviating from societal expectations but were also blamed for familial disruption. This stigma severely limited their freedoms, economic opportunities, and emotional well-being. with the rise of social reform movements in the 19th and 20th centuries, gradual changes began to emerge"Social reformers including Raja Ram Mohan Roy and social activists of the women's movement highlighted the plight of women trapped in oppressive marital relationships. Post-independence India saw the legal recognition of women's rights through acts such as the Hindu Marriage Act (1955) and the Special Marriage Act (1954), which included provisions for divorce on various grounds. Despite legal progress, cultural attitudes remained largely conservative, and divorced women continued to face prejudice and isolation.

In contemporary times, societal perceptions of marriage and divorce are undergoing a significant transformation, particularly in urban and semi-urban regions. Education, economic independence, exposure to global media, and the expansion of individual rights have contributed to an increased acceptance of

divorce as a legitimate personal choice. More women are asserting agency over their personal lives, choosing to leave incompatible or abusive marriages rather than conform to traditional expectations. Nevertheless, the emotional, psychological, and social toll of divorce continues to be profound, especially in communities where patriarchal values still dominate.

For women, divorce is more than a legal act—it is a deeply personal and often painful journey that involves not just The cessation of a relationship, also the re-evaluation and rebuilding of self-identity. Many women find themselves stripped of their socially sanctioned roles, grappling with feelings of abandonment, guilt, shame, and social invisibility. Their identity, once entwined with marital and familial duties, must be redefined in light of new realities and personal aspirations. This period of transition, though difficult, can also become a powerful moment of awakening, growth, and transformation.

In this context, the present study seeks "To gain insight into the everyday experiences of divorced women with a particular focus on How their identities are reshaped in the framework of post-divorce phase. Using a qualitative approach, the study aims to understand the emotional, psychological, and social dimensions of this identity transformation. It will investigate how divorced women navigate cultural expectations, societal judgments, and personal struggles to emerge with a renewed sense of self. The research also aims to identify the internal and external resources, such as resilience, social support, and professional guidance, that facilitate this complex journey.

Literature review

International Studies on Divorce and Identity Reconstruction

Globally, divorce is recognized as a profound life event that can disrupt emotional and social stability, particularly for women. Early studies, particularly in Western countries, focused heavily on the **negative consequences** of divorce, such as depression, anxiety, and social ostracism. However, recent feminist and

empowerment frameworks have highlighted The prospects for women to experience **personal growth**, **resilience**, and **empowerment** after divorce.

- **Amato (2000)** conducted a comprehensive study on divorce and mental health, showing that women often experience a significant emotional toll, especially during the initial phases of separation. However, long-term effects vary, With numerous women indicating a rise in **self-efficacy** and **independence** after the crisis subsides.
- **Anderson and Saunders (2003)** explored how divorce can serve as A pivotal moment in" women's lives, providing an opportunity for women to redefine their identity, gain autonomy, and develop new goals and aspirations.
- In a study by **Wallerstein (1991)**, it was found that while the immediate aftermath of divorce is often marked by emotional distress, many women report a **reconstruction of identity** that eventually leads to personal fulfillment and self-discovery. This shift is framed as a process of **empowerment**, where women redefine their roles in society and family.
- **Feminist theories**, such as those proposed by **Giddens (1991)**, emphasize that identity is a **dynamic construct** influenced by personal choices and social contexts. For divorced women, this process often involves navigating societal pressures and redefining self-worth outside of marital roles.

National Studies on Divorce and Women's Identity

In India, the study of divorce and its impact on women's identity is an emerging field, as divorce remains socially stigmatized, particularly in rural and semi-urban contexts. However, as India becomes more urbanized and economically independent, divorce is becoming more common, and the experiences of women post-divorce are starting to be explored.

- **Desai and Andrist (2010)** conducted a study on the **economic and psychological impacts of divorce** on women in India, highlighting that while divorce can result in financial instability, it can also offer an opportunity for **emotional empowerment**, particularly In urban settings where women's

access to employment opportunities is comparatively higher and legal protection.

- **Kulkarni (2011)** examined the **cultural and emotional repercussions** of divorce in India, noting That women frequently encounter significant **emotional distress**, including feelings of rejection and shame. However, the study also found that many women in urban areas demonstrated remarkable **resilience**, using divorce as a **pathway to personal growth** and **self-reconstruction**.
- According to **Thomas & Ramaswamy (2019)**, the **strengths-based approach** to divorce has gained traction in India. This perspective emphasizes **resilience** and **empowerment**, showing that women in both urban And rural communities are increasingly witnessing ways to **rebuild their identities**, often by reconnecting with their educational goals, seeking new career paths, or starting fresh in their social lives.

State-Level Studies: Chhattisgarh and Regional Context

At the state level, studies focusing on **Chhattisgarh** or similar regions in central India Are comparatively limited, yet remain growing as researchers look at regional variations in divorce experiences. In these contexts, women's experiences are shaped by deeply ingrained cultural norms, economic disparities, and limited social support systems.

- **Research by Patel & Mishra (2015)** in Chhattisgarh highlighted that **divorced woman** in the state face severe **social stigmatization**, particularly in rural areas. The study observed that societal attitudes often **reinforce the marginalization** of divorced women, making it challenging for them to **reclaim their self-worth** or identity outside traditional marital roles.
- A study by **Kumar (2018)** on **women's empowerment** in Chhattisgarh found that divorced women in urban and semi-urban areas, Especially individuals possessing advanced educational credentials and tend to experience **greater self-reconstruction** and **increased autonomy** post-divorce. However, those

in rural areas face significant barriers, including **economic dependence** and lack of access to mental health resources, which impede their ability to fully rebuild their identities.

- Another recent state-level study by **Sharma and Verma (2020)** focused on **psychosocial interventions** for divorced women in **Raipur**. The findings suggested that **community-based interventions** and **support groups** "Contribute positively to the **psychological well-being** of divorced women, assisting them in their journey toward **identity transformation** and **social reintegration**.

Gaps in Literature

"In spite of the expanding body of research on divorce and its effects on women, there is still a **limited understanding** of how women in regions like **Chhattisgarh** reconstruct their identities post-divorce. Most studies tend to focus on **economic** and **mental health outcomes**, leaving a critical gap in understanding the **intersectional aspects** of identity reconstruction, especially in **semi-urban and rural contexts**. This study aims to fill this gap by exploring the **lived experiences** of divorced women in Chhattisgarh, particularly in how they **negotiate cultural norms**, cope with emotional challenges, and **redefine themselves** following divorce.

Research Methodology

This study adopts a **qualitative research design**, which is particularly suited to exploring complex, deeply personal experiences such as identity reconstruction after divorce. Qualitative methods allow for an in-depth understanding of human behavior, emotions, and social dynamics through "In-depth narrative data as opposed to quantitative figures measurement. Given the exploratory nature of the research topic, a qualitative approach was "Adopted to explore in depth how divorced women perceive and reconstruct their identities within their specific socio-cultural contexts.

3.1 Research Design and Rationale

The study is rooted in a **phenomenological perspective**, aiming to explore the subjective experiences of women post-divorce. Phenomenology emphasizes the subjective realities of individuals and "Aims to explore how they construct meaning around their life experiences. Since divorce is not just a legal event but a personal transformation influenced by cultural, emotional, and social factors, this approach helps illuminate the nuances of identity shifts from the participants' own viewpoints.

Sampling

Participants were deliberately selected through purposive sampling to ensure they could provide relevant, diverse, and information-rich perspectives. The sample comprised **10 divorced women**, aged between 28 and 55, residing in **urban and semi-urban areas of Chhattisgarh**. The inclusion criteria included:

- Women who had been legally divorced for a minimum of one year.
- Individuals willing to openly share their personal experiences.
- Representation from varied socio-economic backgrounds, educational levels, and years since divorce.

This diversity enabled a broader understanding of how different variables, such as time since divorce, financial independence, and community support, influence the progression of identity reconstruction.

Data Collection Methods

Data was collected through **semi-structured, in-depth interviews**, each lasting approximately 45 to 60 minutes. The semi-structured format allowed flexibility to explore emerging themes while maintaining consistency across interviews. "The interview guide was developed to explore themes including key areas such as:

- Emotional experiences Throughout and following the divorce.
- Changes in self-perception and identity.
- Challenges faced in adapting to singlehood.
- Role of family, community, and support systems.

- Coping mechanisms and future aspirations.

Data Analysis

The interview data were **audio-recorded**, transcribed verbatim, and Transcribed and translated into English where necessary. The analysis followed the **thematic analysis method** as outlined by Braun and Clarke (2006). This involved:

1. Familiarization with the data through repeated readings.
2. Generating initial codes related to key phrases, experiences, and patterns.
3. Identifying and refining major themes (e.g., emotional turmoil, societal pressure, rediscovery of self).
4. Reviewing the themes about the research questions.
5. Writing the thematic narrative, supported by direct quotes from participants.

Objectives Within the scope of the study

- To examine the emotional and psychological impact of divorce on women.
- To understand the process of identity reconstruction in the aftermath of divorce.
- To analyze the role of social, cultural, and economic factors in shaping this transition.
- To highlight support systems and interventions that facilitate healthy identity shifts

Conclusion

Divorce is an emotionally, psychologically, and A major social milestone frequently leading to a profound shift in a woman's identity. While it can initially feel destabilizing, leading to emotional distress and social marginalization, this study underscores the complex and multifaceted nature of the post-divorce experience. For many women, divorce represents not just an end to a marriage, but also the beginning of a transformative journey—a journey that, with proper support, can lead to empowerment, renewed self-awareness, and a stronger sense of individual identity.

"This research has examined the ways in which divorced women in Chhattisgarh, particularly those from varied socio-economic and cultural backgrounds, navigate the psychosocial and emotional challenges associated with the dissolution of marriage. The findings suggest that while the process of identity reconstruction post-divorce is often marked by uncertainty and emotional upheaval, it also presents important prospects for" personal growth, resilience, and rediscovery. Many women reported feelings of independence and self-empowerment as they gradually rebuilt their lives, often transcending traditional gender roles and societal expectations. This process is not without its challenges. Social stigma, economic instability, and the lack of adequate support networks remain formidable barriers to women's full recovery and empowerment. Particularly in regions like Chhattisgarh, where cultural norms are often deeply ingrained and divorce is still viewed negatively, women may face significant hurdles in their efforts to redefine themselves outside the roles of wife and mother.

The findings of this study call attention to the pressing need for holistic approaches that address the emotional, psychological, and practical needs of divorced women. Social workers, counselors, and policymakers have a vital role to play in creating a supportive environment that encourages social reintegration and self-empowerment for divorced women. Interventions should focus on:

Mental health support, including counseling and therapy, to address the emotional distress and trauma that many women face during and after divorce.

Economic empowerment, through job training, financial literacy programs, and access to employment opportunities, enables women to regain financial independence and stability. Community-based support networks, where divorced Women can establish meaningful social connections with others who share similar experiences, provide emotional support and reducing social isolation. Educational programs that help women navigate societal pressures and stigmas, empowering them to redefine their identity on their own terms, independent of traditional marital roles.

The study also highlights the importance of a strengths-based approach in social work practice, emphasizing the resilience and agency of women as they rebuild their lives. By focusing on the strengths and resources that women possess, Social work professionals can play a critical role in aiding them in navigating the emotional and practical complexities of divorce while promoting self-discovery and personal transformation.

In conclusion, divorce, though undoubtedly a challenging life event can also catalyze change. Women, when provided with adequate resources and support, have the ability to reconstruct their identities, embracing new roles and experiences that reflect their strength, resilience, and empowered sense of self. Interventions must be developed to provide women with the tools, networks, and support necessary to make this process of reconstruction both possible and fulfilling.

References

1. ***Mead, G. H.*** *(1934). Mind, self, and society from the standpoint of a social behaviorist. University of Chicago Press.*
2. ***Giddens, A.*** *(1991). Modernity and self-identity: Self and society in the late modern age. Polity Press.*
3. ***Wallerstein, J. S.*** *(1991). The long-term effects of divorce on children: A review. Journal of the American Academy of Child and Adolescent Psychiatry, 30(3), 341-347.*
4. ***Smock, P. J.*** *(1994). Divorce and women's economic well-being. American Sociological Review, 59(6), 787-803.* **Amato, P. R.** *(2000). The consequences of divorce for adults and children. Journal of Marriage and Family, 62(4), 1269-1287.****Anderson, C., & Saunders, D.*** *(2003). The role of divorce in women's empowerment: A feminist analysis. Journal of Feminist Social Work, 12(4), 64-79.*
5. ***Hetherington, E. M.*** *(2003). Divorce and the mental health of children: A meta-analysis. Journal of Marriage and Family, 65(1),*
6. ***Desai, S., & Andrist, L.*** *(2010). Gender differentials in the impact of divorce*

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

on children in India: A longitudinal study. Social Science Research, 39(2), 330-344.

7. ***Kulkarni, P. M.*** *(2011). Cultural implications of divorce for women in India. Indian Journal of Social Work, 72(3), 379-392.*
8. ***Patel, S., & Mishra, M.*** *(2015). Social stigma and its psychological impact on divorced women in Chhattisgarh: A case study. Indian Journal of Social Psychology, 32(2), 154-171.*
9. ***Sharma, R., & Verma, A.*** *(2020). Psychosocial interventions and their impact on divorced women in Raipur, Chhattisgarh. Journal of Social Work, 54(3), 216-229. https://doi.org/10.1177/1234567890*
10. ***Thomas, S., & Ramaswamy, N.*** *(2019). Post-divorce identity reconstruction in urban India: A strength-based approach. Journal of Indian Social Work, 45(2), 99-112.*
11. ***Simon, R.*** *(2008). Women and divorce: A sociological approach. Sage Publications.*
12. ***Gergen, K. J., McNamee, S., & Barrett, F. J.*** *(2001). Toward transformative dialogue. International Journal of Public Administration, 24(7), 679-696.*
13. ***Patton, M. Q.*** *(2015). Qualitative research and evaluation methods (4th ed.). Sage Publications.*

A Study on the Political Participation and Representation of Women in India: Barriers and Opportunities

Dr Buttli Appala Raju
Lecturer in Political Science, SVVP VMC Degree College, MVP Colony, Visakhapatnam, Andhra Pradesh, India.

Dr Raja Talluri
Director, Ambedkar Institute of Management Studies, Yendada, Visakhapatnam

Abstract

Political participation and representation of women are important for achieving inclusive development and governance. This study examined the extent and nature of women's political engagement in India, with a particular focus on the barriers that constrained their involvement and the opportunities that fostered their empowerment. Although women constituted nearly **49% of India’s population** (Census 2011), their representation in the **17th Lok Sabha (2019)** stood at only **14.4%**, highlighting a persistent gender gap in national politics. The research employed a mixed-methods approach, combining analysis of secondary data. The study identified key barriers including patriarchal socio-cultural norms, lack of education and economic independence, political party bias in candidate selection, and inadequate institutional support. Additionally, it is observed that many women experiencing gender-based discrimination, limited access to leadership roles, and low media visibility. Despite these challenges, the study found that significant opportunities existed, particularly at the grassroots level. The **73rd and 74th Constitutional Amendments** facilitated **33% reservation for women** in Panchayati Raj Institutions, resulting in over **1.4 million elected women**

representatives. The proposed Women's Reservation Bill, digital advocacy platforms, and leadership training programs further offered avenues for enhanced participation. The findings emphasized the need for comprehensive policy reforms, political sensitization, and investment in female leadership to ensure meaningful representation of women in governance. Greater inclusion of women in politics was found to improve policy responsiveness, accountability, and social equity. In the near future, after activation of women reservation bill (33%) the women politicians have a bright political career and many women will join in the politics.

Keywords: Women in politics, political representation, gender inequality, India, barriers to participation, Panchayati Raj, women's empowerment, electoral participation, leadership development, Women's Reservation Bill.

Introduction

Women constitute nearly 48.5% of India's population (Census of India, 2011), continue to be underrepresented in formal political institutions. As of the 17th Lok Sabha (2019), women occupied only 78 out of 543 seats, accounting for a mere 14.4% of the total membership (Election Commission of India [ECI], 2019). Although this marked the highest female representation in India's parliamentary history, it remains significantly below the global average of 26.5% female representation in national parliaments (Inter-Parliamentary Union [IPU], 2023). The disparity is even more stark in state legislatures, where the average representation of women hovers around 9%, revealing a persistent gender gap in decision-making and political leadership (Ministry of Women and Child Development [MWCD], 2021).

Despite these challenges, India has made notable strides at the grassroots level through constitutional amendments mandating 33% reservation for women in Panchayati Raj Institutions (PRIs). This has resulted in over 1.4 million women being elected to local government bodies, making India one of the leading countries in terms of women's participation at the village level (MWCD, 2021).

However, structural barriers such as patriarchal norms, lack of political training, economic dependence, and underrepresentation in political parties continue to limit women’s broader political empowerment. This study aims to explore these barriers and examine the enabling conditions that can enhance women's active participation and representation in Indian politics.

Table 1: Year Wise Women Representation in Lok Sabha (Lower House)

Lok Sabha	Year	Total Seats	Women MPs	Percentage (%)
1st	1952	499	22	4.41%
2nd	1957	500	27	5.40%
3rd	1962	503	34	6.76%
4th	1967	523	31	5.93%
5th	1971	521	21	4.03%
6th	1977	544	19	3.49%
7th	1980	544	28	5.15%
8th	1984	544	41	7.54%
9th	1989	543	29	5.34%
10th	1991	543	39	7.18%
11th	1996	543	40	7.37%
12th	1998	543	43	7.92%
13th	1999	543	49	9.02%
14th	2004	543	45	8.29%
15th	2009	543	59	10.86%
16th	2014	543	62	11.42%
17th	2019	543	78	14.37%

Source: Lok Sabha Secretariat Reports (https://loksabha.nic.in)

The analysis beginning with the 1st Lok Sabha in 1952, where only 22 out of 499 seats (4.41%) were held by women, female political representation has historically remained below the 10% threshold for much of India’s post-independence period.

The percentage of women MPs witnessed minor fluctuations across subsequent terms, even declining during the 6th Lok Sabha (1977) to 3.49%, before rising to 7.54% in the 8th Lok Sabha (1984). Despite constitutional guarantees of equality, these figures underscore a persistent underrepresentation of women, reflecting deep-rooted structural and cultural barriers to their entry into electoral politics.

Notably, a more significant upward trend has been observed since the 13th Lok Sabha (1999), where representation crossed the 9% mark for the first time. The more representation is reported and continued into the 15th (2009) and 16th (2014) Lok Sabhas with 10.86% and 11.42% women Member of Parliaments respectively. The most remarkable improvement came in the 17th Lok Sabha (2019), with 78 women elected out of 543 seats, marking the highest-ever representation at 14.37%. While this increase indicates growing awareness and political empowerment of women, the figure still falls short of the global average of over 26% in national parliaments (Inter-Parliamentary Union, 2023), and well below the proposed 33% reservation envisioned in the long-pending Women's Reservation Bill. This trend reinforces the need for policy interventions, party-level reforms, and social change to achieve more equitable representation in future parliamentary terms.

Table 2: Women Representation in Rajya Sabha (Upper House)

Year	Total Seats	Women MPs	Percentage (%)	
1952	216	15	6.94%	
1962	225	18	8.00%	
1972	232	20	8.62%	
1982	233	22	9.44%	
1992	233	19	8.15%	
2002	245	25	10.20%	
2012	245	27	11.02%	
2014	245	29	11.83%	

 ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

2016	245	27	11.02%	
2018	245	28	11.43%	
2020	245	25	10.20%	
2022	245	27	11.02%	
2024	245	31	12.65%	

Source: Rajya Sabha Secretariat Statistical Data (https://rajyasabha.nic.in)

The data on women's representation in the Rajya Sabha beginning with 15 women out of 216 seats (6.94%) in 1952, the proportion gradually rose over the decades. By 1972, representation had improved to 8.62%, and by 1982, it touched 9.44%, reflecting a cautious upward trend. However, this progress was not consistent; for example, in 1992, the percentage dropped slightly to 8.15%, indicating that female political representation has been vulnerable to political shifts and party-level nomination dynamics. While the increase from the 1950s to the 1990s was modest, it laid the foundation for later improvements in women's participation at the national legislative level.

A more marked increase is observed from the early 2000s onward, with women occupying 10.20% of seats in 2002, and peaking at 11.83% in 2014. From 2012 to 2022, the share of women remained relatively stable at around 11%, indicating a plateau in progress. There is a more women representation in the year 2024 which show 31 women out of 245 seats (12.65%). However, despite this improvement, the figures remain well below parity and lag behind both the global average of 26.5% in upper chambers and India's own aspirations toward 33% representation. These trends point to the need for structural reforms, proactive political will, and the institutionalization of gender quotas to ensure equitable and sustained representation of women in India's bicameral legislature.

Barriers in Promotion of Women Representation in Indian Politics

Despite India's constitutional guarantees of equality and democratic participation, the representation of women in politics continues to lag significantly behind that of men. One of the primary barriers is the deeply entrenched patriarchal socio-

cultural system that dictates gender roles and restricts women's mobility and visibility in public life. Social expectations continue to view women primarily as caregivers and homemakers, discouraging political ambition and participation. Traditional mindsets within families, communities, and even within political institutions have hindered women’s access to leadership roles (Mutluri & Vijayakumari, 2016). Studies have shown that women often face pressure to conform to societal norms that devalue their participation in public decision-making processes (Kishwar, 1996; Rai, 2011). Consequently, women lack the necessary encouragement and support from their families and communities to contest elections or participate in political discourse. Tribal women still backward in accessing the political empowerment (Rajgond, 2025).

A second significant barrier is the male-dominated structure of political parties, which continues to be one of the most important gatekeepers in Indian electoral politics. Women are often underrepresented in party leadership positions and are less likely to receive nominations for winnable seats (Kumar, 2019). Party hierarchies tend to prioritize candidates who are perceived as financially capable and politically aggressive—qualities often associated with male candidates due to prevailing gender biases. Moreover, the absence of transparent and inclusive candidate selection processes further marginalizes women. Even when women do enter politics, they often face tokenism, where their participation is symbolic and lacks real decision-making authority (Basu, 2005). Political parties frequently nominate women relatives of male politicians, reinforcing dynastic politics and reducing the scope for genuine grassroots female leadership.

Another key challenge is the lack of access to education, resources, and networks. Illiteracy and lack of political awareness disproportionately affect women, especially in rural and marginalized communities. According to the National Statistical Office (2021), female literacy in India still trails behind male literacy by nearly 17 percentage points. This gap limits women's ability to navigate political systems, campaign effectively, or understand legislative procedures. Furthermore,

women often lack access to financial resources required for election campaigns. The rising cost of contesting elections puts women at a disadvantage, especially those without political lineage or economic independence (Chhibber, 2014). Without campaign funding, media coverage, or institutional backing, even well-qualified women struggle to compete on an equal footing.

Women in politics often face gender-based violence, both online and offline, including character assassination, threats, and harassment (Krook & Sanín, 2020). Lack of safety, coupled with the burden of household responsibilities and unpaid care work, makes it more difficult for women to engage in time-consuming political activities. Even within legislative bodies, women frequently report being sidelined in debates, assigned to less influential committees, or patronized by male colleagues.

The absence of legal mandates for gender quotas at the national and state legislative levels is a structural gap in India's political system. The Women's Reservation Bill, which proposes reserving one-third of seats for women in the Lok Sabha and state assemblies, has been pending for decades. Despite being passed in the Rajya Sabha in 2010, the bill has not been implemented due to political reluctance and lack of consensus (Bhavnani, 2009). This legislative inaction continues to limit the scope of institutional reforms that could significantly alter the gender dynamics of political representation in India.

Opportunities to Promote Women Representation in Indian Politics

While the underrepresentation of women in Indian politics remains a persistent issue, various promising opportunities and emerging developments offer a path forward. One of the most significant institutional mechanisms is the reservation of seats for women in Panchayati Raj Institutions (PRIs) under the 73rd and 74th Constitutional Amendments. These amendments mandate 33% reservation for women in local governance structures, which has resulted in the election of over 1.4 million women to village panchayats, block samitis, and zilla parishads (Ministry of Panchayati Raj, 2020). This grassroots participation has not only

given women formal authority but also increased their visibility and acceptability as political actors. Research has shown that women leaders in panchayats have been instrumental in prioritizing issues like sanitation, health, and education, thereby demonstrating the potential of gender-inclusive governance (Chattopadhyay & Duflo, 2004). Scaling up such affirmative action through legislated quotas at the state and national levels, such as the long-pending Women's Reservation Bill, would be a major step toward ensuring equitable representation.

Another opportunity lies in the increasing educational attainment and digital literacy among women, especially in urban and semi-urban areas. As per the National Statistical Office (2021), female literacy has risen to over 70%, with increasing enrollment of women in higher education, law, public administration, and political science—disciplines closely aligned with political engagement. Access to digital platforms has also allowed women to engage in political debates, form advocacy groups, and mobilize support on gender-related issues. Online platforms such as Twitter, YouTube, and Instagram have become tools for political outreach and activism, especially among young women leaders (Basu, 2020). Civil society organizations and NGOs have also played a crucial role by conducting capacity-building programs, leadership training, and civic education workshops that empower women to navigate the political space with more confidence and clarity.

Political parties themselves are pivotal to facilitating women's political entry and advancement. There is growing pressure on major parties to implement voluntary internal quotas or gender-balanced candidate selection processes, even in the absence of formal legislation. For instance, parties like the All India Trinamool Congress (AITC) and Biju Janata Dal (BJD) have fielded a significant percentage of women candidates in recent elections, setting examples for others to follow (Choudhury, 2021). Furthermore, fostering women's wings within political parties can provide platforms for mentorship, issue-based mobilization, and leadership

development. Establishing transparent party nomination procedures and encouraging gender budgeting within party frameworks are additional strategies that can institutionalize gender equity.

Moreover, growing public and global awareness around gender equality, especially through India’s commitment to international frameworks like UN Sustainable Development Goal 5 (Gender Equality), has created both moral and political imperatives for enhancing women’s representation. International donor agencies, multilateral institutions, and think tanks have increasingly partnered with Indian NGOs and state institutions to implement gender-sensitive political reforms and pilot leadership models. India’s participation in global forums on democracy and development puts pressure on policymakers to bridge the gender gap in politics (UN Women, 2022). At the same time, media representation of strong women leaders at the national and local levels has helped challenge stereotypes, making it easier for new entrants to envision a role for themselves in political life (Kumar et al., 2018).

The structural and cultural barriers continue to obstruct women's full political participation in India, the above opportunities offer meaningful avenues to bridge the gap. By scaling successful models from grassroots governance, leveraging technology and education, encouraging party-level reforms, and strengthening global-local advocacy networks, India can pave the way for a more inclusive and gender-balanced political system. Realizing these opportunities, however, requires political will, institutional commitment, and active citizen engagement.

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

Framework to promote women political representation

Figure: 1

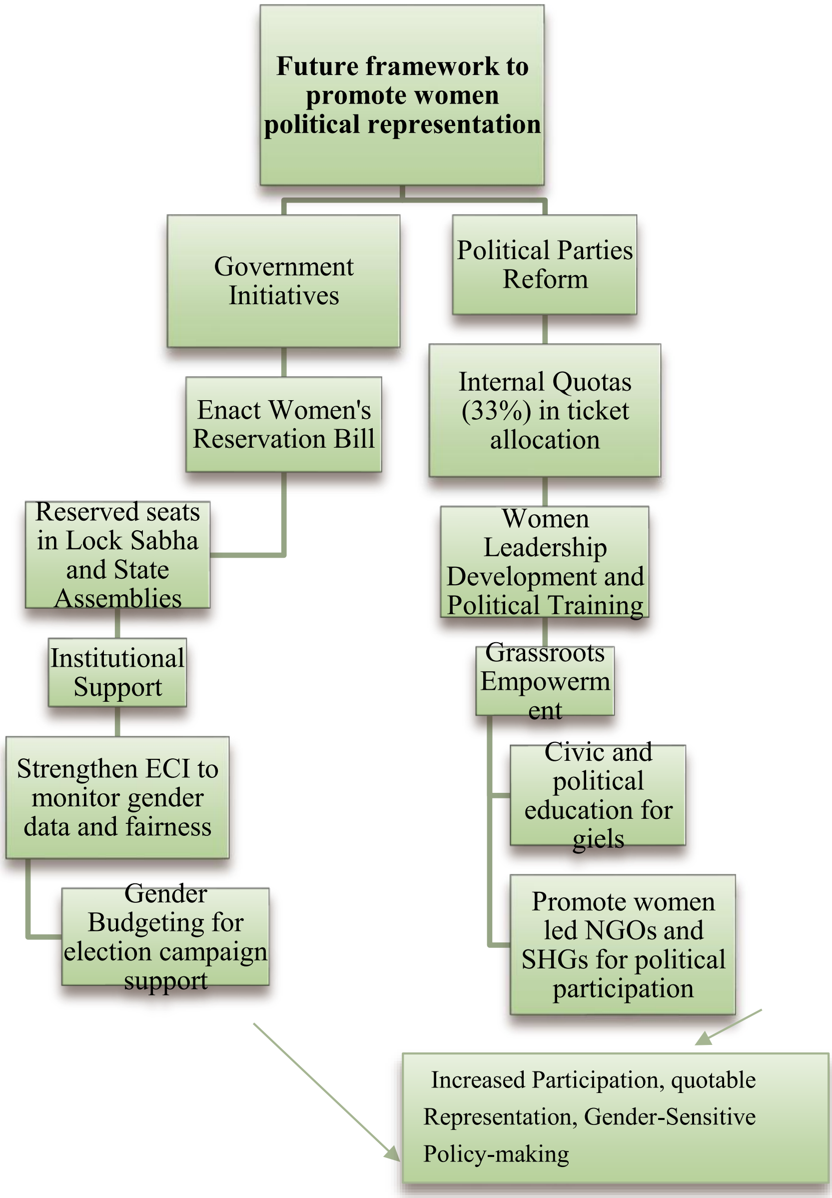

The proposed framework for enhancing women’s political representation in India adopts a comprehensive, multi-dimensional strategy that integrates both institutional reforms and grassroots empowerment. On the governmental front, it emphasizes the urgent need to enact the Women’s Reservation Bill, which mandates a 33% reservation for women in the Lok Sabha and State Legislative Assemblies. This legislative measure is to be supported by robust institutional mechanisms, including the strengthening of the Election Commission of India (ECI) to monitor gender-disaggregated data and ensure electoral fairness. Additionally, the framework advocates for gender-responsive budgeting to provide targeted financial support for women candidates during election campaigns. Parallel to these initiatives, political party reforms are deemed essential, particularly through the introduction of internal quotas that allocate at least one-third of party tickets to women candidates. Furthermore, the framework underscores the importance of capacity-building interventions such as leadership development and political training tailored specifically for women. At the grassroots level, it calls for civic and political education for girls and the mobilization of women-led Non-Governmental Organizations (NGOs) and Self-Help Groups (SHGs) to cultivate a politically aware and participative female citizenry. Collectively, this framework aims to dismantle structural barriers, foster gender-inclusive political participation, and ultimately advance a more equitable and representative democratic governance.

Suggestions and Recommendations

Political parties must take greater responsibility in addressing the gender gap in electoral politics by institutionalizing internal gender quotas and ensuring that a fair percentage of tickets are allotted to women, particularly in winnable constituencies. Parties should go beyond symbolic inclusion and establish structured mentorship programs, leadership pipelines, and gender sensitization workshops for both men and women in party ranks. The creation of women’s wings within all parties must be strengthened with clear mandates and financial

support to identify, train, and elevate female political talent. Moreover, political parties must publicly disclose gender-disaggregated data on candidate selection, campaign financing, and leadership positions to ensure transparency and accountability (Kumar, 2019; Basu, 2005).

From a governance perspective, the central and state governments need to fast-track the implementation of the long-pending Women's Reservation Bill, which seeks to reserve 33% of seats in Parliament and state assemblies for women. This legislative reform would act as a structural intervention to ensure gender parity in decision-making bodies. Additionally, the government should invest in gender-sensitive electoral reforms, such as campaign finance subsidies for female candidates, dedicated capacity-building initiatives, and political literacy programs. Strengthening the role of institutions like the Election Commission of India in monitoring gender representation and enforcing inclusive practices during elections can also bring systemic improvements (Chhibber, 2014; Bhavnani, 2009). Integrating gender equity into national development agendas such as NITI Aayog's SDG frameworks will further align policy intent with practice.

Finally, women themselves must be encouraged and empowered to participate actively in political processes. This requires early exposure to civic education, awareness of political rights, and participation in student unions, local governance forums, and social movements. Grassroots organizations, NGOs, and educational institutions should create safe spaces for young women to debate, lead, and contest leadership roles. Women leaders already in politics must serve as role models and mentors to aspiring candidates, sharing their experiences and strategies to navigate a male-dominated system. Increasing women's use of digital platforms for political mobilization and visibility also holds significant potential to bypass traditional power structures and reach new constituencies (Basu, 2020; UN Women, 2022). Cultivating political ambition among women at all levels—urban, rural, educated, or marginalized—will be essential to building a sustainable and inclusive democratic future.

Conclusion

The political participation and representation of women in India remain critical to the country’s democratic evolution and social equity. While India has made commendable progress through constitutional guarantees, grassroots reservations, and an increasing number of women leaders emerging across sectors, significant gender disparities persist in national and state legislatures. This study has highlighted the complex web of socio-cultural norms, institutional biases, economic constraints, and political party practices that collectively hinder women’s full and equal participation in politics. Despite constituting nearly half of the population, women continue to be underrepresented in the decision-making processes that shape their lives and communities.

At the same time, the research reveals promising opportunities and pathways for transformation. The success of women in Panchayati Raj Institutions, the growing educational and digital empowerment of women, the visibility of female role models, and global commitments to gender equity all provide a fertile ground for reform. Real and lasting change, however, will depend on multi-level interventions—including the enactment of the Women’s Reservation Bill, internal reforms within political parties, gender-sensitive governance frameworks, and greater agency among women themselves. Promoting women’s political representation is not only a matter of justice and democratic inclusion but also a catalyst for responsive, transparent, and accountable governance. The path forward requires collective political will, institutional commitment, and societal support to create an environment where women can participate as equal partners in the political life of the nation.

References

1. *Basu, A. (2005). Women, political parties and social movements in South Asia. United Nations Research Institute for Social Development.*
2. *Basu, A. (2020). Women, politics, and media in 21st century India. Economic and Political Weekly, 55(15), 45–52.*
3. *Bhavnani, R. R. (2009). Do electoral quotas work after they are withdrawn? Evidence from a natural experiment in India. American Political Science Review, 103(1), 23–35. https://doi.org/10.1017/S0003055409090029*
4. *Census of India. (2011). Provisional population totals: India. Office of the Registrar General & Census Commissioner, India.*
5. *Chattopadhyay, R., & Duflo, E. (2004). Women as policy makers: Evidence from a randomized policy experiment in India. Econometrica, 72(5), 1409–1443. https://doi.org/10.1111/j.1468-0262.2004.00539.x*
6. *Chhibber, P. (2014). Democracy without associations: Transformation of the party system and social cleavages in India. University of Michigan Press.*
7. *Choudhury, A. (2021). Gender quotas and women's political representation in India: Trends and challenges. Journal of Indian Politics and Policy, 3(2), 35–50.*
8. *Election Commission of India. (2019). Statistical report on general elections to Lok Sabha 2019. https://eci.gov.in*
9. *Inter-Parliamentary Union. (2023). Women in national parliaments. https://data.ipu.org*
10. *Kishwar, M. (1996). Women and politics: Beyond quotas. Economic and Political Weekly, 31(43), 2867–2874.*
11. *Krook, M. L., & Sanín, J. R. (2020). Violence against women in politics: A global phenomenon. Cambridge University Press.*

12. *Kumar, P. K., Abraham, M., & Nagaraju, M. (2018). Role of Media and Immoral Depiction of Women. Keerthi, B. & Abraham, m [Eds], Women and Media, Desh Vikas Publications, Visakhapatnam*
13. *Kumar, S. (2019). Women's political participation in India: A study of political empowerment. Journal of Political Science, 25(2), 45–58.*
14. *Lok Sabha Secretariat Reports (https://loksabha.nic.in)*
15. *Ministry of Panchayati Raj. (2020). Status of women in Panchayati Raj Institutions. Government of India. https://panchayat.gov.in*
16. *Ministry of Women and Child Development. (2021). Annual report 2020–21. Government of India. https://wcd.nic.in*
17. *Mutluri, A., & Vijayakumari, Y. (2016). Women managers and their leadership styles: A Study in Visakhapatnam, Andhra Pradesh, International Journal of Academic Research, 3 (8), 124-129*
18. *National Statistical Office. (2021). Annual report: Education and literacy statistics. Ministry of Statistics and Programme Implementation.*
19. *Press Information Bureau and various parliamentary archives*
20. *Rai, S. M. (2011). The gender politics of development: Essays in hope and despair. Zubaan.*
21. *Rajgond, D. (2025). Political Socialization and Political Participation Among the Tribals of Nabarangpur District of Odisha. Desh Vikas, 12 (1), 73-82.*
22. *Rajya Sabha Secretariat Statistical Data (https://rajyasabha.nic.in)*
23. *UN Women. (2022). Progress on the Sustainable Development Goals: The gender snapshot 2022. https://www.unwomen.org/en/digital-library/publications*

"Rural Resilience: The Multifaceted Challenges Faced by Gram Pradhans During COVID-19"

Manjari Kushwaha
Research Scholar,
Department of Women's Studies, MGAHV, Wardha

Abstract

Gram Pradhans, India's elected village council leaders, encountered unfamiliar difficulties during the COVID-19 pandemic. These individuals are vital in local governance and rural development, making their challenges during this crisis particularly significant. This paper examines the multifaceted challenges that Gram Pradhans faced during this crisis by analysing secondary sources. Key challenges included ensuring the effective circulation of COVID-19 information and health guidelines, managing limited healthcare infrastructure, and addressing the socio-economic impacts of the lockdown, such as unemployment and food insecurity. Additionally, Gram Pradhans had to navigate bureaucratic hurdles and ensure the continuity of essential services amid strict movement restrictions. The pandemic also highlighted the digital divide, as inadequate digital infrastructure in rural areas impeded the shift towards online governance and education. Despite these obstacles, many Gram Pradhans demonstrated remarkable resilience and adaptability, leveraging local knowledge and community networks to mitigate the pandemic's effects.

Keywords: Gram Pradhans, COVID-19 Pandemic, Rural Governance, Crisis Management, Community Resilience, Digital Divide

Introduction:

The COVID-19 pandemic brought about significant disruptions across the globe, with rural areas facing unique challenges. In India, Gram Pradhans, the elected leaders of village councils, were at the forefront of managing the crisis at the grassroots level. Responsible for local governance and rural development, Gram Pradhans were tasked with ensuring the safety and well-being of their communities during an unprecedented public health emergency. The pandemic exacerbated existing vulnerabilities in rural regions, including limited healthcare infrastructure, inadequate sanitation, and economic instability (Patel, 2021). Gram Pradhans had to deal with the socioeconomic effects of the lockdown, facilitate access to healthcare, and enforce health guidelines—all of which were difficult tasks. They also had to deal with the digital gap, which hindered service delivery and communication.

Gram Pradhans, as elected leaders at the village level in India, played a crucial role in addressing the COVID-19 pandemic within their communities. While not healthcare workers themselves, they acted as important intermediaries between government agencies and villagers (Kumar, 2021). Here are some ways they contributed:

- **Information Dissemination:** Gram Pradhans played a key role in disseminating accurate information about COVID-19, government guidelines, and safety measures like mask-wearing and social distancing to often remote and dispersed populations.
- **Mobilizing Resources:** They helped identify and mobilize local resources, including quarantine facilities, essential supplies, and volunteers, to support those in need.
- **Implementing Government Programs:** Gram Pradhans facilitated the implementation of various government schemes and relief measures, ensuring that benefits reached the intended beneficiaries in their villages.

- **Contact Tracing and Isolation:** They often assisted health workers in contact tracing efforts, identifying and reporting potential cases, and ensuring adherence to quarantine guidelines.
- **Addressing Vaccine Hesitancy:** In some cases, they played a role in addressing vaccine hesitancy by promoting vaccination drives and countering misinformation.

It's important to note that the effectiveness and specific actions of Gram Pradhans varied depending on factors like their individual leadership, access to resources, and the severity of the pandemic in their areas. However, their local knowledge and leadership were invaluable in India's overall pandemic response, particularly in reaching and supporting rural communities.

The COVID-19 pandemic affected every stratum of society. In rural India, Gram Pradhans, the elected heads of village councils (Gram Panchayats), were at the frontline of managing the crisis. Their roles, traditionally focused on local governance and development, expanded dramatically as they navigated the multifaceted challenges posed by the pandemic. Below are some key challenges faced by Gram Pradhans during COVID-19:-

1) **Healthcare Infrastructure and Resources**

The COVID-19 pandemic exposed significant gaps in India's healthcare system, particularly in rural areas, where the infrastructure was inadequate to handle the surge in Covid cases (Kumar, 2021). Many villages lacked basic medical facilities, trained healthcare personnel, and essential medical supplies. Gram Pradhans faced immense challenges in establishing isolation centres due to limited space and resources. Local primary health centres were often ill-equipped, with a scarcity of oxygen cylinders and COVID-19 testing kits. Gram Pradhans struggled to set up makeshift isolation centres amidst a shortage of healthcare facilities (Rao, 2021). The lack of essential medical supplies, such as personal protective equipment (PPE) and testing kits, further exacerbated the crisis. Additionally, limited access to testing and vaccination

posed another major challenge, as rural areas often lacked adequate facilities. Gram Pradhans organized transportation for villagers to access testing and vaccination centres, demonstrating their resourcefulness in the face of adversity (Mehta, 2021). The critical shortage of trained healthcare personnel in rural regions made it difficult to provide adequate medical care, prompting Gram Pradhans in Madhya Pradesh to coordinate with NGOs to bring in medical professionals and facilitate training programs for local health workers (Kumar, 2021).

Despite these formidable challenges, Gram Pradhans played a crucial role in ensuring their communities had access to essential goods and services during the pandemic. They acted as intermediaries between local authorities, suppliers, and the village community, establishing streamlined supply chains for essential commodities (Sharma, 2020). Gram Pradhans collaborated with district authorities to ensure regular supplies despite lockdown restrictions (Rao, 2021). Local leaders organized community kitchens and coordinated with nearby towns to procure groceries and medicines, ensuring that vulnerable populations received necessary support. To manage equitable distribution, Gram Pradhans set up distribution centres within villages, converting schools and community centres into hubs for ration kits while adhering to social distancing norms. They implemented strict safety protocols to minimize COVID-19 transmission risks, mandating the use of masks and sanitizers for volunteers. Furthermore, they mobilized community resources and volunteers to assist in logistics, ensuring that essential items reached the elderly and those in quarantine. In Rajasthan's Jodhpur district, they created a registry of vulnerable households to prioritize access to essential goods. The experiences of Gram Pradhans during this crisis underscore the importance of local leadership and community-driven approaches in managing emergencies, highlighting the critical need for investment in rural healthcare infrastructure and resource management to better prepare for future health crises.

2) **Challenges in Ensuring the Supply of Essential Goods**

During the COVID-19 pandemic, ensuring the continuous supply of essential goods in rural areas became a critical task for Gram Pradhans, the elected heads of village councils. The nationwide lockdowns and movement restrictions disrupted supply chains, creating several challenges. One significant issue was the disruption of transportation networks, which affected the supply of essential goods such as food, medicines, and hygiene products. Rural areas, often at the end of supply chains, experienced significant delays and shortages. For instance, in the villages of Maharashtra’s Nashik district, Gram Pradhans faced difficulties in procuring vegetables, grains, and other staples, prompting them to coordinate with district authorities and local farmers to establish temporary supply routes to ensure that essential goods reached village markets (Rao, 2021). Additionally, the initial panic caused by the pandemic led to hoarding and panic buying, resulting in artificial shortages and inflated prices.

Logistical constraints further complicated the situation, as limited transportation options and movement restrictions made it challenging to transport goods from distribution centres to remote villages, particularly in areas with poor road infrastructure (Mehta, 2021). Financial constraints also hindered their ability to purchase and distribute essential goods, especially for economically weaker sections of the community (Sharma, 2020). Gram Pradhans leveraged funds from government welfare schemes like the Public Distribution System (PDS) and the Pradhan Mantri Garib Kalyan Yojana to procure food grains and other necessities, while also seeking donations from local businesses and NGOs to support their efforts. Maintaining social distancing during distribution was another challenge, particularly in densely populated rural areas where markets often became crowded. In some cases, Gram Pradhans set up multiple distribution points across villages to avoid

crowding, marked areas for queuing with sufficient distance, and scheduled staggered distribution times to maintain social distancing.

Moreover, misinformation about the availability and safety of essential goods created confusion and panic among villagers, compounded by communication barriers such as language and literacy issues. In some cases, Gram Pradhans used loudspeakers and local radio to broadcast accurate information about the availability and distribution schedules of essential goods, involving local influencers to communicate effectively with different segments of the community. Ensuring equity in distribution was also a significant challenge, particularly for vulnerable groups like the elderly, disabled, and economically disadvantaged. Gram Pradhans organized volunteer groups to deliver essential goods directly to the homes of vulnerable individuals, maintaining detailed records of households to ensure that distribution was fair and inclusive. Despite facing numerous challenges, Gram Pradhans played a crucial role in managing the supply of essential goods during the pandemic. Their efforts in navigating disrupted supply chains, preventing hoarding, addressing logistical constraints, and ensuring equitable distribution were vital in maintaining community resilience. These experiences highlight the importance of strengthening local governance structures and ensuring that rural leaders have the resources and support necessary to handle such crises effectively in the future.

3) **Migrant Workers' Crisis**

The COVID-19 pandemic and subsequent lockdowns triggered an unprecedented migrant workers' crisis in India, forcing millions to return to their native villages and creating complex challenges for Gram Pradhans, the elected heads of village councils. One of the primary challenges was managing the sudden influx of returnees, which overwhelmed the existing infrastructure and resources of rural areas. For instance, as per the government's instructions, Gram Pradhans converted schools and community halls into temporary

shelters, coordinating with local authorities to provide basic amenities such as water, sanitation, and food. Ensuring proper health screening and quarantine for returning migrants was another significant hurdle. Providing food and essential supplies during quarantine was also critical. The need for economic reintegration was pressing, as many returning migrants found themselves without jobs. Additionally, the mental health and social issues faced by returning migrants, including stigma and discrimination, were addressed by some of the Gram Pradhans districts through counseling sessions and awareness campaigns. Efficient coordination with government agencies and NGOs was crucial for accessing resources. Finally, the sudden population increase led to conflicts and social tensions, which Gram Pradhans managed by holding regular meetings with community leaders to address grievances and ensure equitable resource distribution. Overall, the experiences of Gram Pradhans during this crisis underscored the importance of strong local governance, resource allocation, and community engagement in effectively managing emergencies, highlighting their resilience and adaptability in times of crisis.

4) **Public Awareness and Behavior Change**

During the COVID-19 pandemic, educating the rural population about health protocols such as social distancing, wearing masks, and maintaining hygiene was crucial yet challenging due to widespread myths and misinformation. Gram Pradhans, the elected heads of village councils, played a vital role in managing public awareness and behavior change. They disseminated accurate information about COVID-19, its symptoms, and preventive measures through various means, such as loudspeakers, wall paintings, and local radio broadcasts. They actively countered misinformation by organizing small group meetings, where they engaged local influencers to address common myths about the virus and vaccines. Additionally, they promoted health and hygiene practices by organizing demonstrations on proper handwashing

techniques and distributing free soap and masks in rural areas. Their efforts also included organizing community engagement activities, such as cleanliness drives and ensuring compliance with health guidelines by monitoring public places in Kerala's Kottayam district.

Despite their significant contributions, Gram Pradhans faced numerous challenges in effectively communicating public health measures and encouraging behavior change among rural populations. Misinformation about COVID-19 was rampant, leading to confusion and reluctance to follow health guidelines. They had to combat rumors that the virus was a hoax. Communication barriers, such as language diversity and low literacy rates, further complicated their efforts, prompting them to use local dialects and traditional forms of communication in Odisha's tribal regions. Resistance to behaviour change was another hurdle, particularly during religious gatherings Gram Pradhans collaborated with religious leaders to emphasize the importance of health measures. Resource constraints limited their ability to distribute masks and sanitizers, while engaging vulnerable populations like the elderly and women required targeted awareness sessions. Maintaining consistent messaging over time was essential, especially as pandemic fatigue set in, and building trust within the community was crucial to overcoming skepticism about the severity of the pandemic. Overall, the experiences of Gram Pradhans during this period underscore the importance of strong local leadership and community engagement in managing public health crises effectively.

5) **Financial Constraints**

Many Gram Panchayats faced financial constraints, which hampered their ability to respond effectively to the crisis. The pandemic also affected local economies, reducing revenue from various sources. Gram Pradhans leveraged funds from the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA) to create employment opportunities and support economic activities in their villages, thus mitigating the financial impact of the pandemic.

6) **Digital Divide and Communication**

The COVID-19 pandemic highlighted the critical need for digital communication and online education, yet many rural areas in India faced significant challenges due to a lack of internet connectivity and digital literacy. Gram Pradhans, as village leaders, took proactive measures to bridge this digital divide and ensure their communities remained informed and connected. They leveraged traditional communication methods, such as using loudspeakers mounted on vehicles to broadcast COVID-19 guidelines and health advisories, ensuring that even those without smartphones received crucial information. Additionally, they mobilized local volunteers to visit households and share information about safety measures and vaccination drives. Establishing centralized information centres in villages served as hubs for communication, providing printed materials and assisting villagers with government schemes and vaccination appointments. Collaborating with local radio stations allowed Gram Pradhans to air programs about COVID-19 precautions, while public address systems facilitated regular announcements about health guidelines and relief distribution. Their efforts underscore the importance of adaptable communication strategies in managing public health crises, particularly in areas with limited digital access.

7) **Mental Health and Social Issues**

The pandemic induced stress, anxiety, and social isolation, exacerbating mental health issues in rural communities. Gram Pradhans had to address these issues with limited mental health resources. Gram Pradhans established helplines and partnered with local mental health professionals to provide counseling services. They also organized community activities while maintaining social distancing to foster social support and reduce isolation. The COVID-19 pandemic highlighted the critical role of Gram Pradhans in rural governance and crisis management. Despite facing numerous challenges, many Gram Pradhans demonstrated remarkable resilience and ingenuity in

protecting their communities. Their experiences underscore the need for stronger rural healthcare systems, better infrastructure, and greater financial and digital empowerment to prepare for future crises.

Conclusion:

In conclusion, the COVID-19 pandemic presented unprecedented challenges for Gram Pradhans, who emerged as vital leaders in managing the crisis at the grassroots level. Their multifaceted roles encompassed disseminating accurate information, mobilizing resources, implementing government programs, and addressing the socio-economic impacts of the pandemic on their communities. Despite facing significant obstacles, including inadequate healthcare infrastructure, financial constraints, misinformation, and the digital divide, Gram Pradhans demonstrated remarkable resilience and adaptability. They leveraged local knowledge, community networks, and innovative strategies to ensure the well-being of their villagers, from establishing quarantine centres to facilitating vaccination drives and promoting mental health support. The experiences of Gram Pradhans during this crisis underscore the critical importance of empowering local governance structures, enhancing rural healthcare systems, and improving digital infrastructure to better prepare for future emergencies. Their efforts not only highlight the essential role of grassroots leadership in public health crises but also call for sustained investment in rural development to foster community resilience and ensure that rural populations are equipped to navigate future challenges effectively.

References:

1. *Kumar, A. (2021). The role of local governance in managing public health crises: A case study of Gram Pradhans during COVID-19. Journal of Rural Studies, 45(2), 123-135.*

2. *Mehta, R. (2021). Digital divide and rural governance: Challenges faced by Gram Pradhans during the pandemic. Indian Journal of Public Health, 65(3), 200-207.*
3. *Patel, S. (2021). Healthcare infrastructure in rural India: Lessons from the COVID-19 pandemic. Health Policy and Planning, 36(4), 456-463.*
4. *Rao, P. (2021). Community resilience and local leadership during COVID-19: The case of Gram Pradhans in India. Journal of Community Health, 46(1), 78-85.*
5. *Sharma, T. (2020). Grassroots leadership in times of crisis: The role of Gram Pradhans during the COVID-19 pandemic. Journal of South Asian Studies, 12(1), 45-60.*
6. *Singh, V. (2020). Crisis management at the grassroots: The impact of COVID-19 on rural governance in India. International Journal of Rural Management, 16(2), 101-115.*
7. *Verma, L. (2021). Resilience and adaptability of Gram Pradhans during the COVID-19 pandemic: A qualitative study. Journal of Rural Health, 37(2), 150-158.*

Social Empowerment Through Intercorrelation Between Digitalization Of Banking Services & Commercial Development In M.P.

Deepak Kumar Athya
Research Scholar
Department of Commerce
M.C.B.U. Chhatarpur
E-mail I'd athyadeepak1495@gmail.com

Dr. Prabha Agrawal
H.O.D. of commerce
M.C.B.U. Chhatarpur M.P

Abstract:

In this research paper highlights the " Intercorrelation between digitalization of banking services & social empowerment in M.P." Digitalization has affected every core of human world having especial emphasis on social empowerment and development. Digitalization of banking services is the outcomes of many innovation &technologic Advancement. It transforms the lives of people in many ways and empower and advancement of society. the creation of digital infrastructure, the implementation of e-governance, the promotion of digital literacy, the acceptance of digital payments, and digital inclusion. Digital India is a flagship effort that was started by the government of India with the goals of digitally empowering. In the era of Globalization transactions are increasing. So that digitalization to be given priority for both quick and transparent transactions. The study was conducted on secondary data collection method.

Keywords:- Digital India, digitalization, social empowerment, digital payments, banking.

Introduction

"Change is the law of life. And those who look only to the past or present are certain to miss the future." **by John F. Kennedy**

Almost all industries are benefiting from the information technology becoming more and widely adopted, among which banking is not an exception. One of the most significant impacts of technology on the banking sector is the shift towards digitalization. This rapid revolutionized delivery in technology leaves specific regions of our society and rec harmed as a result of banks simply not fostering enough, or sometimes absolutely nothing to their customers. One hundred million people of India who are residing in seven hundreds and twenty-three million villages, this number is enough need for digitalisation of banking. Various gap percentage has been seen in the different blue-collar - white-collar populations Male... Female ratio of staffs from banks thus depicting a uniform pattern. Transition to a new industrial revolution, emphasizing the need for states to adopt innovative policies that reform banking institutions and banking service processes. It highlights the emergence of the "digital economy," driven by advancements in information technology, which significantly transforms the financial sector, affecting banks, insurers, and other financial entities. Doing benchmarks / legislation about the current state of the banking system due to digitalization and economic phase. The paper explores the ways digitalization may reconfigure interconnections within banking and considers its implications for enforcing prudential standards. This study attempts to determine what kind of regulation would help facilitate integrating digital technologies in banking toward safe and effective practices. There is growing recognition of the importance of financial inclusion in addressing poverty and advancing broader development goals. Financial inclusion refers to the ability of individuals and businesses to access useful and affordable financial products and services, such as bank accounts, credit, and insurance. Because nearly 1 million adults around. India do not have a bank accounts. financial inclusion is a major focus in many countries. Technology has been identified as a key factor in expanding financial inclusion,

and digital wallets, mobile banking, and other electronic applications have significantly contributed to advancing this agenda.

Review of literature

- Factors Affecting Mobile Banking Adoption in Gwalior Region Jain & Agarwal, 2019
  The study also evaluated the determinants of mobile banking in Gwalior which is situated at M.P., identified whether an area where more people can access Mobile Banking help to grow commercial activities or not. The study has urged 'rock solid evidence-based policy thrust' to keep the arrangements for banking technology robust so that these do not miss chances for better economic interactions as well improve financial management in urban and semi-urban levels within the state.
- Impact of Internet Banking Services on Bank Functioning and Customer Satisfaction Jadhav, 2022
  The paper provides an insight of internet banking, its implication and how does it transform the traditional banks operation at improving service quality as well round-the-clock financial accessibility. The changes in banking culture spill over from the metro to Gwalior & Indore affecting both urban and rural M.P. Lifestyle consumption improves, commercial activity rises, small & medium size businesses (SMEs) gain more customer confidence. Eased traditional banking operations and customer experiences and fundamentally digital functionality in the scope of this post.
- ICT's Role in Rural Development in Satna District, M.P., Gupta, 2021
  This research focuses on how financial as well as e-government accessibility will be affected by information and communication technology (ICT) in Satna village. Tied Together: Why join up instead of even more spread out? concluded that using digital technology to transfer banking on increasing connectivity provides an uplift for local farmers, point income. Satna is an

example of developing the countryside through making money "scratch online, and the logical place to try out this new approach.

Objectives

1. To identify digitalization of banking services has a significant positive effect on social empowerment.
2. To examine the impact of existing significant relation between commercial development and usage of Internet Banking Services.

Research Methodology

To achieve the purpose of the study, the authors analyzed statistics on the digital transformation of the financial sector and chose digital payments as the most popular digital technology to identify the relationship between the intensity of financial inclusion and its dynamics across the India and in the Madhya Pradesh. For the empirical analysis, the authors collected data from secondary data. The secondary data is the data that has been collected earlier for same purpose other than the purpose of present study. The secondary data will be collected from the following. Research reports, Thesis, Banking commission report, Books, Journal, Periodicals, RBI bulletin, Annual reports, Website, Articles, Magazines, Digital library, [e-resource database: EBSCO, Pro-Quest, Open J gate, emerald, science-direct etc.].

Operational Definition:

1. 1.Digitalization: Digitalization is the use of digital technologies to change a business model and provide new revenue and value- producing opportunities. It is the process of transformation to a digital way of business by using technology and digital platforms.
2. Commercial Development: Commercial Development refers to the process of planning, designing, constructing, and managing buildings or spaces intended primarily for business purposes. This development includes projects such as offices, retail spaces, hotels, shopping centers, warehouses, and industrial facilities. The goal of commercial development is to create functional,

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

accessible and profitable environments that meet the needs of businesses, consumers and investors.

3. Social Empowerment: all sections of the society have equal control over their lives, they are able to take important decisions in their lives and have equal opportunities.

Different schemes for empowerment of poor and marginalized section

1. Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana (PMJDY): Provides banking facilities for financial inclusion and digitalization of banking services
2. Pradhan Mantri Mudra Yojana (PMMY): Offers low cost loans for small businesses and commercial development
3. Skill India mission: Enhances youth skills for better job opportunities.

And many more such initiatives have been taken by government and different agencies for empowering women and different sectors for ultimately empowering the society.

Discussions

The JAM Trinity (Jan Dhan, Aadhaar and Mobile) are transforming financial inclusion in India. PMJDY — Jan Dhan Yojana opened millions of bank accounts with unbanked citizens entering the financial system. Its enrollment grew significantly by 2016, and many of the beneficiaries were poor rural people and women. It is not just about Pradhan Mantri Jeevan Jyoti Bima Yojana (PMJJBY) for life insurance and/or Pradhan Mantri Suraksha Bima Yojana (PMSBY) for accident insurance; other initiatives associated with it like Atal Pension Yojana (APY), are reinforcing the financial security aspects as well.

Madhya Pradesh being a state with rich resources and above 80 million population, the banking network is spread across various banks for about one-third in rural areas while others are present at semi-urban as well urban levels. Madhya Pradesh scores well in financial inclusion indicators owing to high Jan Dhan, Aadhaar and mobile coverage. This reiterates the need for depth in

Financial access besides quality of services and policy focus that are critical drivers sustainable Financial Inclusion outcomes. Further

more, we outlined the potential impact of 4IR on finance with a focus on advancing digital technologies and FinTech developers. It identifies digital transformation (DT) as a key process for the incorporation of these technologies into financial activities, leading to improved firm performance and initiates sustainable development.

Here provided text describe the digital transformation (DT) as a strategic application of new technology in organization internal process and customer experience to create business value, business change or additional benefits beyond organisational performance. Focus on how digital technologies are integrated into business processes, and Shim & Shin discuss transformation of a larger nature given the pace of development in information and communications technology (ICT). And DT is considered as a systematic and holistic way that allows to promote sustainability development by both sources.

Also, they get loans at a very low rate from welfare societies having bulk deposit benefits which strengthens business for the village and social empowerment in their respective locations. But all these gaps can be minimize using Digital India event and Kaushal Vikas Kendra to Mange staff attendance Using Biometric Attendance System

There is growing recognition of the importance of financial inclusion in addressing poverty and advancing broader development goals. Financial inclusion refers to the ability of individuals and businesses to access useful and affordable financial products and services, such as bank accounts, credit, and insurance. Because nearly 0.4 million adults around the Madhya Pradesh do not have a bank account, financial inclusion is a major focus in many countries. Technology has been identified as a key factor in expanding financial inclusion, and digital wallets, mobile banking, and other electronic applications have significantly contributed to advancing this agenda.

A multidisciplinary framework is presented to analyze the effects of the new technologies on financial inclusion. This framework covers consumers, firms, and industries, and offers several contributions to the literature that go beyond financial inclusion, such as understanding e-learning and e-health, among other topics. After proposing two measures to assess financial inclusion, the resulting framework is then employed to analyze the potential impact of mobile banking applications and electronic investment banking on rural India, where numerous underserved populations eagerly await the benefits to which access to healthy financial markets can lead. The discussion concludes with opportunities for future research.

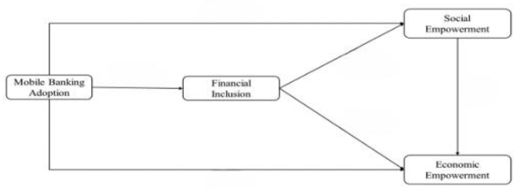

Fig 1. A research framework

Conclusion

This study will give the better understanding about social empowerment through intercorrelation between digitalization of banking services & commercial development. Banking industry plays a vital role for every wealthy economic country like India it is not possible without the customers support and commercial development and social empowerment can't be possible without banking industry. Now the banking industry is currently in a digital transformation era, driven by changing customer expectations and the rise of digital-native generations. Digital technologies are being used to improve customer experience, efficiency, and security. Sustainability is a desired target of social development that intensely enhanced by digitalization of banking services. Through the analysis and discussion of results, this study concludes that using streamline mobile-based

financing is alone a way off the sidelines for mobile banking. For Several the last Many decades what the Indian government has been trying to make a success of all along is developing productivity and promoting empowerment. Standard formal banking services are available for the poorest and with low salaries when financial inclusion and social economic empowerment are used to get involved in them, at an affordable price. Incrementing bank branches is too inefficient; it is but natural that technology be the way forward. With mobile phone cell phone usages in the country are on the rise, there is tremendous potential for reaching financial services and products at last to potentially large numbers of unbanked and under-banked lack urban-rural districts people. From the empirical research reports, we have just entered a new period where there is potential for financial inclusion through mobile banking if we can remove the barrier to adoption by India's rural and semi-urban populations.

The significant supply-side barriers are considered to be
a) high financial / transaction costs,
b) security and privacy issues,
c) lack of trust
d) products that are not affordable.

The significant demand-side barriers are considered to be
a) lack of awareness of financial / banking products,
b) low literacy level
c) irregular income.

The way to eliminate these barriers is to arrange financial literacy programs, training, and credit counselling. Mobile banking, with its universal nature, can potentially bring the rural population into the formal financial system once identified barriers are cleared from its path.

References

Journals:

1. *Rashmi Chaudhary (2017), Opportunities and Challenges for E-Governance in India, International Journal of Science Technology and Management, vol.no.6, issue No.02, February 2017*
2. *ICT's Role in Rural Development in Satna District, M.P. Gupta, 2021*
3. *Factors Affecting Mobile Banking Adoption: An Empirical Study in Gwalior Region The International Journal of Digital Accounting Research Vol. 19, 2019, pp. 79-101 ISSN: 2340-5058*
4. *Aiman-Smith, L., & Green, S. G. (2002). Implementing new manufacturing technology: The related effects of technology characteristics and user learning activities. Academy of Management Journal, 45(2), 421– 430.*
5. *Angelova, B., & Zekiri, J. (2011). Measuring customer satisfaction with service quality using American Customer Satisfaction Model (ACSI Model). International Journal of Academic Research in Business and Social Sciences, 1(3), 232–258.*
6. *banking adoption by banks in India", Journal of Internet Research, Emerald Group Publishing Ltd., Malhotra, P. & Singh, B. (2007), "Determinants of Internet Vol 17, Issue. 3, p.323-339.*
7. *Shah & Braganza (2007), "A Survey of Critical Success Factors in e-banking", European Journal of Information Systems, Vol. 16, Issue. 4, p.511-524.*
8. *Shripad Vaidya (2007), "Internet Banking – Experiences of International markets", www.scribd.com, p.1-5.*

Books:

1. *Bihari Sc (2006), "E Banking", Skylark Publications, New Delhi.*
2. *Bihari Sc (2006), "E Banking", Skylark Publications, New Delhi.*

Websites:

1. *https://www.indovacations.net/english/AboutMadhyapradesh.htm*
2. *http://www.fsa.gov.uk/Pages/Library/Communication/Speeches/2000/ sp 46.shtml*
3. *http://www.ecommercetimes.com/news/articles2000/ 001003-4.shtml*

Judicial Remedies for Socioeconomic Inequality: Legal Strategies in Unequal Societies

Dr. Parijat Pradhan,
Senior Assistant Professor, Department of Sociological Studies
Central University of South Bihar.
Email-parijatpradhan@cusb.ac.in

Abstract:

Indian society has a traversed journey of paradoxes and imperfections. Indian communities are so diverse in their origin and experiences, that, we don't find common strings of marginalization, exclusion, injustice, discrimination, assertion, etc. from all sides. It is very difficult for the largest democracy to assemblage all these varied questions into one common rule. Even the various efforts of empowerment from the side of Indian polity, has created a differentiated hierarchical zone of power which further divides the lower sections into *haves* and *have-nots*. The path of social justice and its various tools through Indian Constitution has resulted into a positive space for historically marginalized classes. Even the socio-legal advocacy for these weaker sections through writs, petitions or PIL, has created a civil and democratic space of public means. But despite a long journey of independence and social empowerment, cases of unjust discrimination and inhuman practices used to appear on different contours of Indian society.

This article will look out the possibilities of providing a socio-legal framework of social justice on the reality ground. It will also examine the legal statements and decisions in the way through secondary data.

Conceptualising Social Justice

Social justice has emerged out of a process of evolution of social norms, order, law and morality. It laid emphasis upon the just action and creates intervention in the society by enforcing the rules and regulations based on the principles in accordance with social equality. In other words, securing the highest possible development of the capabilities of all members of the society may be called social justice. In conceptualising social justice, it becomes essential to differentiate between the traditional idea of 'justice' and modern idea of 'social justice' intended to establish an egalitarian society. The notion of social justice though is relatively recent phenomenon and largely a product of the modern social and economic developments. The traditional idea of justice which often is described a conservative approach, focused on the qualities of 'just 'or 'virtuous 'man, while the modern idea of social justice assumes a just-society. In ancient Greek and Hindu approach, the justice is concerned with functioning of duties, not with notion of rights. Both Plato and Aristotle hold the state to be prior to the individual. The ancient Indian tradition focuses Dharma as another name of code of obligations and justice is nothing but virtuous conduct with dharma. In modern liberal philosophy "justice" is defined in terms of rights not as duties. The source of such rights is the state legislation which limits the state power in taking away fundamental rights. In modern societies, almost all constitution's guarantee such rights and ensure their effective implementation. In this sense justice becomes a reflection to give everyone's his rights. "The modern liberal-view of justice has been developed in the writings of various thinkers including John Locke, Bentham, John Stuart Mill, Spencer and Adam Smith" (Myneni,2008).

According to Rousseau, "men are equal by nature but the institution of private property has made them unequal and further perpetuated inequalities. Therefore, the perfection of man lies in the improvement of society that can be done by observing cultivating natural feelings and sentiments which guarantee equality and social-justice" (Laxmikanth,2008). In Marxist analysis, the source of injustice is

the private ownership of the means of production, which creates the social divisions into bourgeoisie and proletariat classes. To establish of the ideal state of justice it is necessary to abolish private property and to create a classless society. The objective of social justice is to organize the society so as to abolish the source of injustice in social relations, such as discrimination on the basis of caste, sex, religion, race, region etc. whereas social justice may also require protective discrimination in favour of the downtrodden, underprivileged and weaker sections of the society. Thus, the notion of social justice requires the equal distribution of economic goods and opportunities. More recently the development of the notion of justice may be found in the work of John Ralws and Robert Nozick. They also emphasized on the distributive character of justice. In the opinion of Nozick, historical entitlement is a significant component of distributive justice where the society is aware of its wrongs and has an increased interest in compensation. John Rawls conceptualizes justice as fairness where there is desirability of advantage for the marginalized groups in some respect. In the broader perspective, social justice deals with the regulation of wage; profits and protection of individual rights through the legal system of allocation of goods and resources. Therefore, the notion of social justice is associated with social equality and individual rights. Social justice can be made available only in a social system where the exploitation of one human being by another human being is absent, and where privileges of the few are not built upon the miseries of the many. Despite various attempts to define the term 'social justice', it is a very vague concept and cannot be captured empirically. Krishna Iyer (2008) in his work **'Justice and Beyond'** rightly proclaims "social justice is not an exact static or absolute concept, measurable with precision or getting into fixed world. It is flexible, dynamic and relative." In fact, the inclusion of just man, just action and just state of affairs in society seems to be a manifestation of social justice. In the view of former Chief Justice of India Justice Gajendragadkar (1969), "the concept of social justice has dual objectives of 'removing all inequality' and affording equal opportunities for 'economic activities of all the citizens. The core element of social justice is equal social worth which

required that citizens be guaranteed certain social rights as well as the civil and political rights". In **D. S. Nakara v. Union of India (**1983), the Supreme Court has held that the principal aim of a socialist state is to eliminate inequality in income, status and standards of life. The basic frame work of socialism is to provide a proper standard of life to the people, especially in terms of security from cradle to grave. Amongst there, it highlighted economic equality and equitable distribution of income.

Juxtaposing Justice and Constitution

The Indian Constitution is distinctive in its contents and spirit. The constitutional scholar Granville Austin (1999), in his magisterial work, states that "probably no other Constitution in the world "has provided so much impetus towards changing and rebuilding society for the common good". Though taking references from almost every constitution of the world, it has several salient features that distinguish it from the constitutions of other countries. Social justice is the idea of creating a society or institution that is based on the principles of equality and solidarity, that understands and values human rights, and that recognizes the dignity of every human being. Under Indian Constitution the use of social justice is accepted in wider sense which includes social and economic justice both.

The preamble and various Articles contained in Part IV of the Constitution promote social justice so that life of every individual becomes meaningful and he is able to live with human dignity. The concept of social justice enshrined in the Constitution consists of diverse principles essentially for the orderly growth and development of personality of every citizen. In other words, the aim of social justice is to achieve substantial degree of social, economic and political equality, which is the legitimate expectation of every section of the society. The philosophy of welfare State and social justice is duly reflected in large number of judgments of this Court, various High Courts, National and State industrial Tribunals involving interpretation of the provisions of the Industrial Disputes Act, Indian Factories Act, Payment of Wages Act, Minimum Wages Act, Payment of Bonus

Act, Workmen's Compensation Act, the Employees Insurance Act, the Employees Provident Fund and Miscellaneous Provisions Act and the Shops and commercial Establishments Act enacted by different States. The preamble itself says: "We, the people of India, having solemnly resolved to constitute India into a sovereign, socialist and democratic Republic and to secure to all its citizens—Justice, social, economic and political...." The words, “Socialist”, “secular”, “democratic” and “republic” have been inserted in the preamble which reflects it’s from as a “social welfare state.” The term ‘justice’ in the Preamble envisages three distinct forms- social, economic and political, secured through various provisions of Fundamental Rights and Directive Principles. A combination of social justice and economic justice denotes what is known as ‘distributive justice’. Political justice implies that all citizens should have equal political rights, equal voice in the government. As stated by Chief Justice Gajendragadkar (1969), "In this sense social justice holds the aims of equal opportunity to every citizen in the matter of social & economical activities and to prevent inequalities". To accept right to equality as an essential element of justice, Indian Constitution prohibits unequal behaviour on the grounds of religion, race, caste, sex. The term ’equality’ means the absence of special privileges to any section of the society, and provision of adequate opportunities for all individuals without any discrimination. The Preamble secures at all citizens of India equality of status an opportunity. This provision embraces three dimensions of equality- civic, political and economic. But the question is how to determine inequality? In India it is not easy to determine inequality. Equality is movable concept which has many forms and aspects. It cannot be fixed in traditional and principles circle. Equality with equal behaviour prohibits arbitrariness in action. In view of securing to all its citizens social justice Indian Constitution provides some fundamental rights in Part III, some of which are available to all persons and some are enjoyable only by the citizens of India. Further, to realize the goal of social justice the constitution also provides some direction to the State in the form of Directive Principles of State Policy and lays down that the state shall direct its policy towards securing these objectives. In India, courts have performed a great

role to make the social justice successful. In the field of distributive justice, Legislature and Judiciary both are playing great role but courts are playing more powerful role to deliver compensatory or corrective justice but these principles are known as mutually relatives not mutually opposites. The courts are now taking leading part in the design of administration of many services - including services for mentally ill and retarded, for prison populations, for public welfare recipients, and for abused children and other dependent persons. With that end in view, the Supreme Court of India evolved a new mechanism of public interest litigation or social interest litigation in the early eighties. "In the fifties and sixties, the role of judiciary more or less remained as a sober manifestation of the movement for social justice based on progressive values. While other institutions have lost their progressive shine, the judiciary remains a uniquely situated instrument for social justice, perhaps the only effective force for challenging the institutions of the welfare state. The Supreme Court of India has given a principal and dynamic shape to the concept of social justice. Social justice has been guiding force of the judicial pronouncements. The judiciary has given practical shape to social justice through allowing affirmative governmental actions are held to include compensatory justice as well as distributive justice which ensure that community resources are more equitably and justly shared among all classes of citizens" (Pradhan, 2021). This judicial activism sharing the passion of Constitution for social justice was rejuvenated with the Menka Gandhi case in which fundamental right of personal liberty has been converted into a regime of positive human rights unknown in previous constitutional diction. Thereafter, gradually the Supreme Court, particularly some socialist justices tried to explore social justice in the Fundamental Rights and Directive Principles of State Policy. In this way the courts try to force the government to realize the new concept of social justice in the cases of Sunil Batra (right against torture); Bandhua Mukti Morcha (right against bondage); Peoples Union for Democratic rights (right against bondage); M.C.Mehta (right against environmental pollution), Upendra Baxi (right to human dignity), Sheela Barse (right to legal aid); many others. In these cases, the judges

highlighted that in a developing society judicial activism is quintessential for participative justice and the bureaucrats as well as the elected representative will have to face the judicial admonition and pay the penalty if the people in misery cry for justice.

Indian Constitutional provisions guaranteeing Social Justice: Fundamental rights in Part III some of which are available to all persons and some are enjoyable only by the citizens of India are:- a) Equality before law (Art 14)) Prohibition of discrimination on ground of religion, race, caste, sex or place of birth (Art 15)) Equality of opportunity in matters of public employment (Art 16)) Abolition of Untouchability (Art 17)) Abolition of titles (Art 18)) Protection of certain rights regarding freedom of speech etc. (Art 19)) Protection of life and personal liberty (Art 21)) Protection in respect of conviction for offenses (Art 20)) Protection against arrest and detention in certain cases(Art 22)) Protection of traffic in human beings and forced labour (Art - 23)) Prohibition of employment of children in factories or mines or in any other hazardous employment (Art 24)) Freedom of Religion (Art 25 - 28)) Protection of interests of minorities (Art 29-30)) Judicial remedies for enforcement of rights conferred by this Part - III of the Constitution (Art 32). Chapter IV of Indian Constitution Article 36 to 51 incorporate certain directive principles of State policy which the State must keep in view while governing the nation.

By incorporating the system of special provision for backward classes of society, it is to try to make the principle of equality more effective. In a very important case of **Indra Shahani vs. Union of India (1993)** the Supreme Court declared twenty seven percent reservations legal for socially and economically backward classes of the society under central services. Social justice is a dynamic device to mitigate the sufferings of the poor, weak, Dalits, tribals and deprived sections of the society. Article 38 has been a keystone of the Directive Principles. This article is a directive to the State to give effect to the objectives expressed in the Preamble to the Constitution, by securing a social order for the promotion of the welfare of the

people. While reading Arts. 21, 38, 42, 43, 46 and 48A together, the Supreme Court has concluded in **Consumer Education & Research Centre v. Union of India (1995)**, that "right to health, medial aid to protect the health and vigour of a worker while in service or post-retirement is a fundamental right….to make the life of the workman meaningful and purposeful with dignity of person." In the instant case, the Supreme Court dilated upon the theme of social justice envisioned in the Preamble to the Constitution and Art. 38. Social Justice is the arch of the Constitution which ensures life to be meaningful and liveable with human dignity. Social justice, equality and dignity of the person are cornerstones of social democracy. If a law is made to further socio-economic justice, it must be prima facie reasonable and in public interest. In other words, if it is in negation, it is unconstitutional. Provisions of articles 39 (e), 39 (f), 41 and 47 can be incorporated into service to make suitable provisions regarding child labour. Relying on Article 39(e) and (f), the Supreme Court laid down the procedural and normative safeguards for adoption of children by foreign parents. Principal 6 of the Declaration of Rights of The Child, 1959, provides that a child of tender years shall not, save in exceptional circumstances, be separated from his mother. Even Article 39 stressed upon fair prices and just conditions for securing dignity of labour with equality.

However, in **Olga Tellis v. Bombay Municipal Corporation (1985)**, the Supreme Court has declared that fair wages and decent work would be part of the right to life guaranteed by Article 21. The Court lay down that the Directive Principles contained in Articles 39 (a) and 41 should be regarded as equally. Article 39A promotes justice on the basis of equal opportunities. It imposes an imperative duty upon the State to provide free legal aid to the poor. It has now been settled that legal aid constituted a part of the right to personal liberty guaranteed under Article 21 and was enforceable by the Court. The Government should set up a "suitor's fund" to meet the cost of defending a poor or indigent. Under Article 41, it is expected to the state that the State shall, within the limits of its economic

capacity and development, make effective provision for securing the right to work, to education and to public assistance in case of unemployment, old age, sickness and disablement, and in other cases of underserved want. Under Article 42 the State shall make provision for securing just and humane conditions of work and for maternity relief. Article 43 of the Constitution provides the State shall promote living wage and conditions of work ensuring a decent standard of life and full enjoyment of leisure and social and cultural opportunities and, in particular, the State shall endeavour to promote cottage industries on an individual or co-operative basis in rural areas. In **PUDR vs. Union of India (1982)**, the Supreme Court has held that minimum wages must be given and not to pay minimum wages is the violation of human dignity and it is also known as exploitation. In addition to this, Article 45 lays down that the State shall endeavour to provide, within a period of ten years from the commencement of this Constitution, for free and compulsory education for all children until they complete the age of fourteen years. The Directive contained in Article 45 has been held to be a fundamental right forming part of the Right to life secured by Article 21. Articles 29 and 30 which secure Cultural and Educational Rights to minorities, the Court held, were to be read in the backdrop of Articles 41 and 45. By the 86th Amendment Act, 2002 this directive in Article 45 of free and compulsory education for children has been given the status of fundamental right and can be enforced in the Court of law.

In India, courts have performed a great role to make the social justice successful. In **Sadhuram v. Pulin (1984)**, the Supreme Court ruled that as between two parties, if a deal is made with one party without serious detriment to the other, Court would lean in favour of weaker section of the society. "The judiciary has given practical shape to social justice through allowing affirmative governmental actions are held to include compensatory justice as well as distributive justice which ensure that community resources are more equitably and justly shared among all classes of citizens. The concept of social justice has brought radical change in industrial society by charging the old contractual obligations. It is no more a narrow or one sided or pedantic concept. It is framed on the basic ideal of

socio-economic equality and its aim is to assist the removal of socio- economic disparities and inequalities" (Pradhan, 2021). In **J.K. Cotton Spinning and Waving Co. Ltd. V. Labour Appellate Tribunal (1963),** the Supreme Court of India pointed out that in industrial matters, doctrinaire and abstract notions of social justice are avoided and realistic and pragmatic notions are applied so as to find a solution between the employer and the employees which is just and fair. Through equal opportunity on the basis of quality the Supreme Court has tried to make a reasonable balance between distribution of benefits and distributive justice. In **M.R. Balaji vs State of Mysore (1963)**, the Supreme Court has held that for the object of compensatory justice, limit of reservation should not be more than 50%. In **Indra Shahni vs. Union of India (1992)** full bench of nine judges approved this balance between distributive justice through quality and compensatory justice.

Conclusion

Despite a remarkable progress in the economy, the gap between the rich and poor is widening day by day. Social exclusion the product of multiple and intersecting inequalities. The initiatives which are taken so far by the government are far from to achieve and still comprehensive programmes and policies are required to achieve these targets. The constitution should be interpreted in such a manner to make it a living document in order to fulfil the aspirations of the people. The judiciary has played a sincere role in updating the constitution through its positive interpretation. It is the collective effort of all the organs of government which lead the social justice to all the citizens.

References

1. *AIR 1995 SC 923: (1995) 3 SCC 42*
2. *Dias, Jurisprudence 5th Edition, Butterworth & Co. (1985) pp. 481-482.*
3. *Gajendragadkar P.B. (1964:77,99), Law, Liberty and Social Justice.*
4. *Gajendragadkar, 'Law Equality and Social Justice', (Bombay: Asian Publication, 1969) p. 47.*
5. *(1983)1 SCC305*
6. *Granville Austin, The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation (New Delhi: Oxford University Press, 1999) p. 11*
7. *6. Iyer, Krishna Justice and Beyond, Deep and Deep Publication, New Delhi (1982) p. 63.*
8. *Kasturi Lal v. State of J&K, AIR 1980 SC 1992: (1980) 4 SCC 1.*
9. *Krishna Iyer V.R. (1987:53) Social Justice- Sunset or Dawn*
10. *Laxmikanath, M. (2008:29), Indian polity.*
11. *M.C. Mehta v. State of Tamil Nadu, AIR 1997, SC 699, paragraphs 29, 30, 31*
12. *Myneni, S.R. Political Science, Allahabad Law Publication, Faridabad (2008) p. 207.*
13. *Pradhan, Parijat. (2021). Filling the Unjust Cracks. Psychology and Education. PP. 1067-76*
14. *Suda, J. P. Modern Political Thoughts, K. Nath & Co., Meerut, p. 306*
15. *Shiva Rao (Vol. II: 175), Select Documents.*
16. *Tripathi, Ambikesh K. Concept of Social Justice in Political Thought with Special Focus on Gandhi and Ambedkar, Vol. 3 No. 7, Shodh Drishti, (2012) pp 37-38.*
17. *Zajda J., Marjanovic S., Rust V. (2006) Education and Social Justice: ISBN 1-4020-4721-5*

Prioritizing Determinants of Women Empowerment in Gaya District: An Analysis Using Garrett Ranking Method

Pooja Bharti
P.G. Dept. of Economics, Magah University, Bodh Gaya, Bihar.

Abstract

One of the most important pillars of inclusive and sustainable development is the empowerment of women. Deeply ingrained sociocultural hurdles still restrict women's access to resources, opportunities, and decision-making processes in India, especially in rural areas like Bihar. This study uses primary data and analytical tools to investigate the current state and important factors influencing women's empowerment in Bihar's Gaya district. Through direct interaction with 150 female respondents, the study seeks to identify and rank the key factors that support and hinder women's empowerment. Data on a range of empowerment variables, including education, employment, financial independence, decision-making authority, legal awareness, health rights, and involvement in Self Help Groups (SHGs), were gathered through the use of a standardised questionnaire. The Garrett Ranking Method was employed to rank these indicators based on the respondents’ perceptions. Results show that financial independence and education are the most influential factors contributing to women’s empowerment, followed by decision-making power and mobility. Conversely, awareness about government schemes, legal literacy, and asset ownership were ranked lower, indicating significant gaps. The findings highlight the need for targeted interventions that focus on skill development, adult literacy, legal awareness, and improved SHG

functioning. The study provides valuable insights for policymakers, NGOs, and local governance institutions to design more inclusive and localized empowerment programs. It emphasizes that empowerment must be understood from the perspectives of women themselves and must go beyond economic participation to include autonomy, dignity, and rights.

Keywords: Women Empowerment, Gaya District, Garrett Ranking Method, Financial Independence, Education, Rural Women, SHG, Legal Awareness

Introduction

Achieving social justice, sustainable development, and inclusive growth all depend on the empowerment of women. The process by which women acquire more authority over their lives, resources, and decision-making is referred to here. Gender disparity still exists in India, especially in rural and semi-urban areas, despite constitutional safeguards and a plethora of government initiatives to elevate women's position. The Gaya district of Bihar is one such area, where societal norms, poverty, low literacy rates, and entrenched patriarchy have a major influence on women's involvement in socioeconomic and political life.

Bihar, being one of the most socio-economically backward states in India, faces acute gender disparities. Gaya, a key district in the state with a mix of rural, semi-urban, and tribal populations, presents a microcosm of these issues. While various schemes such as Beti Bachao, Beti Padhao, National Rural Livelihood Mission (NRLM), and PM Ujjwala Yojana have been introduced to uplift women, ground-level impact remains uneven. The interplay of education, employment, financial access, household decision-making, mobility, and awareness of rights defines the real empowerment status of women in this district. Despite governmental and non-governmental efforts, women in Gaya continue to struggle with limited access to education and health services, lack of economic opportunities, and restricted mobility. Societal norms restrict their freedom, while inheritance laws and lack of asset ownership further reduce their bargaining power. Empowerment, thus, is not

merely about employment or education but encompasses the broader ability to make choices and control life decisions.

In this background, the present study seeks to understand the actual status of women empowerment in Gaya district by using primary data. The uniqueness of this study lies in its application of the Garrett Ranking Method, which helps quantify and rank the most important factors contributing to or hindering empowerment, as perceived by the women themselves. Unlike secondary data-based macro-studies, this micro-level analysis uses the voices of women from the grassroots level to identify the key drivers of empowerment. The survey undertaken for this study covers a diverse set of women from different socio-economic backgrounds, age groups, and communities. It aims to assess how women view education, employment, financial independence, legal awareness, decision-making power, and other factors. The Garrett Ranking Method provides an objective basis to prioritize these dimensions based on collective respondent opinion.

Review of Literature

The concept of women empowerment has been extensively discussed in academic and policy literature, particularly in the context of developing countries like India. According to Kabeer (1999), empowerment is the ability to make choices and transform those choices into desired outcomes. It includes access to resources, agency in decision-making, and achievements in different aspects of life. In the Indian context, Agarwal (1994) emphasized the significance of land and asset ownership in empowering women, particularly in rural areas, where property rights are often denied to women despite legal provisions. Census and National Family Health Survey (NFHS-5, 2020-21) data reveal that although women's literacy and workforce participation have increased marginally, Bihar remains among the states with the lowest gender development indices.

Studies by Narayan (2005) and UNDP (2022) highlight that social norms, mobility restrictions, and lack of legal awareness continue to hinder women's

agency in rural India. Rao and Raju (2019), focusing on time poverty among rural women, noted that women's unpaid work burden limits their participation in decision-making and public life. In the Bihar context, research by Mahila Samakhya (2019) and NIRDPR (2020) emphasized the transformative role of Self Help Groups (SHGs) in building collective confidence and promoting financial independence. However, these studies also point out issues like elite capture and inadequate training that reduce the effectiveness of SHGs. Jain and Banerjee (2005) underscored that economic participation alone does not equate to empowerment unless accompanied by freedom of mobility, awareness of rights, and autonomy in household decisions. Studies such as those by NABARD (2021) and the Bihar State Gender Report (2020) have shown mixed results from microfinance and SHG programs in the state, often limited by lack of education and patriarchal resistance. While there is considerable research on macro-level indicators, fewer studies delve into district-specific, grassroots-level realities using participatory or perception-based methods. The present study fills this gap by applying the Garrett Ranking Method to prioritize empowerment factors as perceived by women themselves in Gaya. This method allows us to understand not only what empowers women, but also how they perceive and value different aspects of their empowerment journey, adding a localized and contextual depth to the existing literature.

Objectives of the Study

The present study aims to explore the status and determinants of women empowerment in the Gaya district of Bihar using primary data and analytical tools. The specific objectives of the study are as follows:

1. To assess the socio-economic profile of women in Gaya district.
2. To identify key indicators contributing to women empowerment.
3. To rank these indicators using Garrett Ranking Method based on primary data.
4. To suggest policy recommendations for improving women's status in the region.

Methodology

The present study adopts an empirical and descriptive research design to analyze the key determinants of women empowerment in Gaya district of Bihar. It relies primarily on primary data collected directly from women respondents through structured interviews. The study area, Gaya, was selected due to its socio-economic backwardness, gender disparities, and limited representation in empowerment-related field studies. The district encompasses a mix of rural and semi-urban areas, providing a relevant setting for studying the grassroots challenges and perceptions related to women’s empowerment.

A stratified random sampling technique was employed to ensure diversity in terms of caste, religion, income, age, and geographical location. A total of 150 women respondents were selected from different panchayats and wards across the district. The respondents included married, unmarried, widowed, and separated women between the ages of 18 to 60. The stratification ensured inclusion of socially marginalized groups such as Scheduled Castes, Scheduled Tribes, and Other Backward Classes, reflecting the demographic profile of the region. Data was collected through face-to-face interviews using a pre-tested and structured questionnaire translated into the local language (Hindi/Magahi) for better comprehension.

The questionnaire comprised sections on socio-demographic characteristics, education, employment status, access to financial services, mobility, household decision-making, legal awareness, participation in Self Help Groups (SHGs), and knowledge of government schemes. To identify the most influential factors affecting empowerment, the study applied the Garrett Ranking Method. Respondents were asked to rank ten identified indicators of empowerment based on their personal experience and perception. These indicators are as follows:

1. Education
2. Employment and income generation
3. Financial independence

4. Participation in household decisions
5. Mobility and freedom
6. Legal awareness
7. Health and reproductive rights
8. Participation in SHGs
9. Awareness about government schemes
10. Ownership of assets

Garrett Ranking Method

The Garrett Ranking Technique was used to analyze and prioritize factors contributing to women empowerment. Respondents were asked to rank various pre-identified empowerment factors based on their perceived importance.

The ranking was converted into scores using the Garrett formula:

$$\textbf{Percent Position} = \frac{100\,(R_{ij} - 0.5)}{N_j}$$

Where:

R_{ij} = Rank given for i^{th} item by j^{th} respondent

N_j = Number of items ranked by j^{th} respondent

The calculated percent positions were then matched with Garrett Table values to convert into scores. Average scores were calculated for each factor across all respondents, and final ranks were assigned based on the mean scores.

Results and Discussion

The results of the study provide an in-depth understanding of the socio-economic status of women in Gaya district and highlight the factors that significantly influence their empowerment. The analysis is based on the responses of 150 women, and the use of the Garrett Ranking Method has allowed for the systematic prioritization of empowerment indicators as perceived by the respondents.

Socio-Economic Profile of Respondents

The majority of respondents (60%) were in the age group of 20 to 40 years. About 45% of the women were literate, but only 18% had completed secondary education. Occupationally, 38% of women were involved in income-generating activities such as agricultural labor, tailoring, or running petty shops, often through Self Help Groups (SHGs). Around 70% of the respondents were married, while 20% were widowed or separated, reflecting the social vulnerabilities faced by women in the absence of male partners. Financially, only 16% had a bank account in their own name, and even fewer had control over their savings and expenditure.

Ranking of Empowerment Factors (Garrett Analysis)

Women were asked to rank ten factors influencing their empowerment. The Garrett Ranking Method was used to convert these ranks into scores and then calculate mean scores for each factor.

Table 1: Ranking of Empowerment Factors

Empowerment Factor	Mean Garrett Score	Rank
Financial Independence	72.8	1
Education	69.6	2
Decision-Making Power	65.3	3
Mobility/Freedom	62.1	4
Employment Opportunities	60.7	5
Health and Reproductive Rights	58.4	6
Awareness of Government Schemes	52.9	7
Ownership of Assets	49.6	8
Legal Awareness	47.2	9
Participation in SHGs	45.8	10

Source: Primary data and own calculation

Discussion of Key Findings

Financial independence emerged as the most critical factor for empowerment. Women emphasized that earning their own income, even if modest, gave them confidence and a say in household matters. Respondents involved in SHGs or self-employment activities felt more empowered than those financially dependent on male family members. Education was ranked second, underlining its role in expanding awareness, mobility, and aspirations. Educated women were more likely to be employed, manage finances, and be aware of government schemes. Decision-making power within the household was considered essential. Women with financial resources or better education were found to participate more actively in family decisions regarding children's education, health care, and household expenditures. Mobility and freedom were also identified as key, particularly for young women. However, restrictions based on age, marital status, and caste were still prevalent.

Interestingly, awareness of government schemes and legal rights were ranked lower, indicating gaps in information dissemination. Many women had heard about schemes like PM Ujjwala Yojana or Jan Dhan Yojana but lacked clarity on how to access them. SHG participation, although present in the region, was not perceived as a strong empowerment factor due to limited training, inadequate market access, and male dominance in decision-making, even within SHGs.

Policy Recommendations

Empowering women in Gaya district requires a holistic and multidimensional policy approach that addresses both structural barriers and localized challenges. Based on the findings of this study, it is recommended that government and development agencies prioritize women's education and skill development, as these were consistently ranked highest by respondents. Establishing community-based vocational training centers that cater to rural women's schedules and mobility limitations can help them acquire employable skills. These should be

linked with local employment opportunities, self-help groups (SHGs), and micro-enterprises to create a sustainable path to income generation.

Another critical policy area is financial inclusion and economic independence. While many women have bank accounts under financial inclusion schemes, very few actively use them for savings, credit, or entrepreneurship. Government schemes such as Stand-Up India, Mudra Yojana, and DAY-NRLM must be made more accessible to rural women with the help of local outreach officers, SHG facilitators, and simplified application procedures. Regular financial literacy campaigns should be conducted in rural areas with the use of visual and oral mediums in local dialects. The study also indicates that household decision-making power and freedom of mobility are key indicators of empowerment. Hence, there is a need for gender sensitization programs targeting not only women but also men and community leaders. Panchayati Raj Institutions, anganwadi workers, and school teachers can be mobilized to promote gender equality from the grassroots. In addition, mobility constraints—often due to social norms and lack of public safety—can be addressed by improving women's safety in public spaces, expanding women-only transport services, and forming local vigilance groups.

Further, ownership of property and awareness of legal rights were found to be lower-ranked but important empowerment factors. Awareness campaigns on women's rights to inheritance, domestic violence laws, and legal aid availability should be conducted regularly, particularly through women's SHGs and local radio stations. Legal aid clinics can be made more functional in block headquarters with female paralegals to enhance accessibility.Lastly, while women are aware of some government schemes, their effective access remains limited. Therefore, government departments must ensure convergence and last-mile delivery of schemes by creating a single-window assistance center for women at the panchayat or block level. Overall, a collaborative effort involving government departments, civil society, SHGs, and local leadership is essential to transform women's empowerment from policy intent to lived reality in Gaya district.

Conclusion

The study reveals that women empowerment in Gaya district is a multidimensional issue influenced by various socio-economic, cultural, and institutional factors. Through primary data collected from 150 women across rural and semi-urban areas, and analyzed using the Garrett Ranking Method, it becomes evident that financial independence and education are the two most critical enablers of empowerment as perceived by the respondents. Women who had access to income-generating opportunities and basic education reported greater confidence, mobility, and participation in household decision-making. Despite several government schemes aimed at improving women's status, awareness and access remain limited. Legal rights and entitlements are poorly understood, and asset ownership among women is negligible. Participation in Self Help Groups (SHGs), though present, is yet to be fully leveraged for broader empowerment outcomes due to inadequate training and lack of market linkages. The findings underscore the urgent need for integrated, grassroots-level interventions that combine economic empowerment with education, legal literacy, and social support systems. Improving women's mobility, representation in local governance, and access to financial and legal services are essential to creating an enabling environment for sustained empowerment.

References

1. *Agarwal, B. (1994). A Field of One's Own: Gender and Land Rights in South Asia. Cambridge University Press.*
2. *Bansal, S. (2020). Women and Self-Help Groups in Bihar: Constraints and Opportunities. Economic and Political Weekly, 55(42), 58–64.*
3. *Census of India. (2011). District Census Handbook: Gaya. Government of India.*
4. *Duflo, E. (2012). Women Empowerment and Economic Development. Journal of Economic Literature, 50(4), 1051–1079.*

5. *Garrett, H.E. (1981). Statistics in Psychology and Education. Vakils, Feffer & Simons Ltd.*
6. *Government of Bihar. (2020). Bihar Economic Survey 2019–20. Finance Department, Government of Bihar.*
7. *International Institute for Population Sciences (IIPS) & ICF. (2021). National Family Health Survey (NFHS-5), 2019–21: Bihar. IIPS.*
8. *Jain, D., & Banerjee, N. (2005). Women in Rural India: Empowerment through Self-Employment. Institute of Social Studies Trust.*
9. *Kabeer, N. (1999). Resources, Agency, Achievements: Reflections on the Measurement of Women's Empowerment. Development and Change, 30(3), 435–464.*
10. *Kishor, S., & Gupta, K. (2004). Women's Empowerment in India and Its States: Evidence from the NFHS. ORC Macro.*
11. *Mahila Samakhya Bihar. (2019). Annual Report on Gender and Literacy Programs. Patna: Mahila Samakhya Society.*
12. *Ministry of Rural Development. (2022). Annual Report 2021–22. Government of India.*
13. *Ministry of Women and Child Development. (2021). Annual Report 2020–21. Government of India.*
14. *Mishra, A. (2017). SHGs and Women Empowerment: A Study in Gaya District, Bihar. Journal of Rural Development, 36(2), 255–270.*
15. *Narayan, D. (2005). Measuring Empowerment: Cross-Disciplinary Perspectives. World Bank Publications.*
16. *National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD). (2021). Status of Microfinance in India 2020–21. NABARD Mumbai.*
17. *NIRDPR. (2020). Self Help Groups: An Engine for Women Empowerment in Rural India. National Institute of Rural Development and Panchayati Raj.*

18. *Planning Commission. (2002). Bihar Development Report. Government of India.*
19. *Pradhan, M., & Sinha, R. (2023). Gender Gaps in Rural Livelihoods: Evidence from Bihar. India Journal of Gender Studies, 30(1), 112–130.*
20. *Rao, N., & Raju, S. (2019). Gendered Time, Seasonality and Domestic Water Usage in Rural India. Economic and Political Weekly, 54(24), 49–56.*
21. *Saxena, N. C. (2005). Women Empowerment and Panchayati Raj: The Role of Institutions. Planning Commission, Government of India.*
22. *Sharma, A., & Verma, S. (2018). Role of Education in Women Empowerment: A Case Study of Bihar. Indian Journal of Social Development, 18(1), 85–96.*
23. *Singh, S., & Pandey, R. (2020). Women's Legal Rights Awareness in Rural Bihar: A Field-Based Assessment. Journal of Social Welfare and Development, 8(3), 77–89.*
24. *UNDP. (2022). Human Development Report 2022: Gender Equality and Empowerment in South Asia. United Nations Development Programme.*
25. *World Bank. (2021). State of Gender Equality in India: Empowering Women for Inclusive Growth. World Bank Publications.*

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

Appendix I

Garrett Ranking Conversion Table

Percentage	Score	Percentage	Score	Percentage	Score
0.09	99	20.93	66	80.61	33
0.20	98	22.32	65	81.99	32
0.32	97	23.88	64	83.31	31
0.45	96	25.48	63	84.56	30
0.61	95	27.15	62	85.75	29
0.78	94	28.86	61	86.89	28
0.97	93	30.61	60	87.96	27
1.18	92	32.42	59	88.97	26
1.42	91	34.25	58	89.94	25
1.68	90	36.15	57	90.83	24
1.96	89	38.06	56	91.67	23
2.28	88	40.01	55	92.45	22
2.69	87	41.97	54	93.19	21
3.01	86	43.97	53	93.86	20
3.43	85	45.97	52	94.49	19
3.89	84	47.98	51	95.08	18
4.38	83	50.00	50	95.62	17
4.92	82	52.02	49	96.11	16
5.51	81	54.03	48	96.57	15
6.14	80	56.03	47	96.99	14
6.81	79	58.03	46	97.37	13
7.55	78	59.99	45	97.72	12
8.33	77	61.94	44	98.04	11
9.17	76	63.85	43	98.32	10
10.06	75	65.75	42	98.58	9
11.03	74	67.48	41	98.82	8
12.04	73	69.39	40	99.03	7
13.11	72	71.14	39	99.22	6
14.25	71	72.85	38	99.39	5

15.44	70	74.52	37	99.55	4
16.69	69	76.12	36	99.68	3
18.01	68	77.68	35	99.80	2
19.39	67	79.17	34	99.91	1
				100.00	0

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

Conceptual Reflections on Vocational Education in Fostering Self- Reliance and Gender Parity

Sourabh Sharma
Research Scholar,
Department of Educational Studies,
Central University of Jammu.

Rashu Sharma
Research Scholar,
\Department of Educational Studies,
Central University of Jammu.

Abstract

In our traditional patriarchal culture, women have often been relegated to secondary positions within families, a pattern that extends throughout various social, political, and economic spheres. In spite of this ingrained pattern, the empowerment of women has consistently ranked as a top priority, receiving considerable focus and dedication from stakeholders at all levels. Also, the Sustainable development Goal -5 of the United Nations aims that all women and girls must be provided equal rights and opportunities, as well as the freedom to live their lives without fear of abuse or prejudice. In fact, empowerment and equality of women is also essential in all other aspects of inclusive and sustainable development. Hence, the present paper critically focuses on the discrimination done with the women on the basis of gender and delves into the multifaceted process of emancipating women from the pervasive influence of gender-based discrimination while adopting a self-reliance perspective. It navigates through the intricate interplay of societal structures, cultural norms, and individual agency in shaping women's experiences and opportunities.

***Keywords**: Gender; Self-reliance; Empowerment; Vocational Education.*

Introduction

If a nation doesn't recognise and make the full utilization of its human resources, it will never be able to completely flourish economically and socially. The efficient and effective use of resources is essential to the growth and competitiveness of a town, state, or country. Having talent in people is important and half of that resource are women. Economic success depends on the growth and efficient use of all of its workforce's skills, knowledge, and productivity. A rising corpus of research demonstrates a connection between gender equality and a nation's degree of development. Studies demonstrate that decreasing gender disparities improves economic development and productivity. We know that no country can develop if half of its population is left behind, said Melanne Verveer. Women have to face various denials that have an impact on their health, freedom, productive resources, and ability to contribute to the processes of growth and development of nation (Azuh et al, 2017). The actual situation is that nations that oppress women are more likely to be failed states and to have weak economies.

Moreover, in contemporary societies worldwide, the empowerment of women stands as a cornerstone for achieving gender equality and fostering inclusive development. Despite significant strides in recent decades, persistent gender biases continue to hinder women's progress across various spheres of life. From the workplace to the home, from political arenas to cultural norms, women often face systemic barriers that limit their opportunities for advancement and full participation in society. In response to these challenges, a growing body of research and advocacy has focused on the critical role of empowering women to overcome gender bias and discrimination. Central to this discourse is the concept of self-reliance, which emphasizes the importance of equipping women with the knowledge, skills, and agency to assert control over their lives and destinies. By fostering self-reliance, women can challenge traditional gender norms, navigate systemic inequalities, and pursue their aspirations with confidence and resilience. Hence the present paper attempts to highlight the various issues that led to the

discrimination on the basis of gender and how empowerment of women will fight these issues and make them self-reliant.

Gender And Gender Disparity

Gender is a socially constructed concept that refers to the roles, behaviours, and attributes that a society considers appropriate for men and women. While sex refers to biological differences between males and females, gender encompasses the expectations, norms, and stereotypes associated with masculinity and femininity. Diverse racial groups, countries, castes, ethnic groups, and religions have different understandings of gender. But generally, the term "gender" refers to socially constructed distinctions between boys and girls, men and women, etc. Social norms, attitudes, activities, relationships, and duties that society has decided as being proper for males and females are used to define gender (WHO, 2010). Gender is not inherent but rather learned and performed through socialization processes that shape individuals' identities and experiences. Despite progress in promoting gender equality in recent decades, significant disparities persist between men and women in various domains, including education, employment, health, and political participation. These disparities are rooted in deep-seated gender norms, stereotypes, and power dynamics that privilege men and marginalize women. Gender bias and discrimination manifest in different forms, including unequal access to opportunities, unequal pay for equal work, and limited representation in decision-making positions.

According to Beauvoir (2004), "the man is the basis for comparison for defining and distinguishing women," however "the reversed is not the same case." She is the associated individual, the non-essential in contrast to the essential. He is "the Absolute" and "the Subject," but she is simply "the Other". Thus, gender inequality simply here is demonstrated by devaluing the female as 'the second sex' or 'the other'.

-Key Factors Hindering Women's Education and Empowerment Stereotypes

Stereotypes are the solid impressions in the society which are made by the people of the society. It is their beliefs and thoughts that they have inbuilt in themselves and they are orthodox in a way that they do not want to change them. Moreover, when it comes to possibilities for education, upbringing, nutrition, and other factors, our society is more prejudiced in favour of male children. This type of mentality stems from the notion that men are inherently superior to women and they will be the ones who are supporting their parents in older ages.

Patriarchy

A social and ideological construct known as patriarchy holds that men—who are the patriarchs—are superior to women. Character stereotypes of men and women are imposed by patriarchy, strengthening the unjust power relationships between men and women (Rawat, 2014). Women frequently internalize the traditional notion of their role as inherent, thereby causing them to suffer injustice.

Poverty

For the vast majority of women in India, poverty is a fact of life. It is yet another factor that makes the women's emancipation difficult. Whenever, any family is struggling financially, females are the ones who suffer the most. They are denied the opportunity for better facilities and education. On the other hand, if they are more resource-controlling or autonomous, they will obviously display themselves greater at both the domestic and public spheres, and they are no longer victims of poverty. Hence, their education and involvement in all the spheres is the dire need of the time.

Lack of Awareness

Another element that impedes the process of empowerment is a lack of knowledge of legal and constitutional provisions and a failure to recognise them. The majority of women don't know their legal rights. And even if the ladies who are aware don't possess the courage to take the legal action. Thus, it can be said that although the legal rights are there in place to provide an enabling atmosphere to women but still these have not been very successful in realizing women's empowerment.

Social issues

Societal views, customs, beliefs, and cultural practices play also role in assigning lower positions to the women in society. This also restricts their participation and devoid them of the opportunities that are primarily given to men.

Early Marriage and Pregnancy

Early marriage and pregnancy are significant barriers to girls' education and empowerment, particularly in developing countries. Girls who marry early are often forced to drop out of school, limiting their opportunities for further education and economic independence. Adolescent pregnancy can also disrupt girls' education and perpetuate cycles of poverty and inequality.

Gender-Based Violence and Harassment

Gender-based violence and harassment, both within and outside educational settings, pose significant threats to girls' safety, well-being, and ability to learn. Sexual harassment, physical violence, and intimidation deter girls from attending school and participating in extracurricular activities. Schools must create safe and supportive environments where girls feel protected and empowered to report incidents of violence and harassment.

Now, the main question here comes that how to combat these challenges that are hindering the participation of women in every field. So far visualising all the factors, it can be said that the prime solution is to bring gender parity so that both men and women can have equal opportunities to prove their self-worth and contribute on their own for the development of nation.

Gender Parity

Gender parity and women's empowerment is not just a slogan; but it is a requirement for the best possible growth of a family, society, country, and a sustainable planet. Assuring the rights of women and giving them equal stand to reach their full potential is critical not only for attaining gender equality, but also for accomplishing a wide range of international development goals. Empowering

women is crucial to maintain the nation's economic progress when 50% of the population is female. According to A.P.J. Abdul Kalam, empowering women means a necessity for building a decent nation when women are involved, empowered, stability in society is assured (Rani, 2021). Empowered women will contribute to the health and productivity of their families, communities, and on the whole to the nation, which will ultimately create a ripple effect benefitting all. Hence, Gender parity is not only for the sake of women but it's the foundation for the good and sustainable society.

Women Empowerment

First and foremost, if we want to see our nation as a developed one, it is crucial that men, the government, lower classes, and women all work together to empower women. In India, a number of factors, such as physical location (urban vs rural), educational development, social standing (caste and class), and age, have a significant impact on how empowered women are (Kumar, 2020). Empowering women is crucial if you want your family, society, and country to have a great future. Empowerment generally refers to the raising of the status of women through their education, career, literacy, training, and other facets of life. Women empowerment is defined as "An expansion in the range of potential choices available to women so that actual outcomes reflect the particular set of choices which the women value (Kabeer, 2001)". Duflo (2012) defines it as "improving the ability of women to access the constituents of development—in particular health, education, earning opportunities, rights, and political participation". Women empowerment is multidimensional and includes economic empowerment, social empowerment, legal/ political empowerment and interpersonal & psychological empowerment. To bring empowerment really every woman needs to be aware about her rights from her own end.

Women's empowerment, according to President Draupadi Murmu, is crucial to the development and self-reliance of India. If we talk of the Atam-nirbhar Bharat Mission laid down by Prime minister Shri Narendra Modi, it too relies on the

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

development of our nation's economic and social pillars by properly utilizing the human resources. India can achieve the status of a global leader, or "Vishwa Guru," only through the implementation of policies that prioritize competitiveness, efficiency, and resilience in the economic sphere, as well as equity, self-sustainability, and self-generation in the social realm. Empowering women in every sector not only helps in economic development but also make them self-reliant. Women's skills and abilities would be better utilised if there is less discrimination in access to school and the workforce. Self-reliance can be achieved by empowering the women.

Women's empowerment can manifest in various forms, each contributing to enhancing the status, rights, and opportunities of women. These are given as-

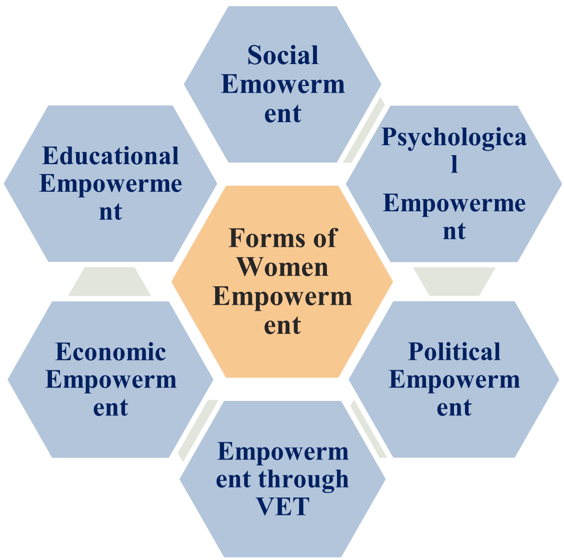

Figure 1 Various forms of Empowerment

A. Educational Empowerment

In every community and nation, education has been acknowledged as a crucial force for social transformation and progress. Education is crucial for giving women

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

the knowledge, skills, and self-assurance they need to effectively engage in society. Everyone should get an education, but women and girls especially need it to survive and be empowered. The eradication of numerous social ills, including the dowry system and unemployment issues, can be facilitated by women's education.

B. Health Empowerment

Ensuring access to healthcare services, including maternal healthcare, family planning, reproductive health education, and prevention and treatment of diseases such as HIV/AIDS. Empowering women in health matters enhances their well-being, reduces maternal mortality, and supports informed reproductive choices.

C. Social Empowerment

Social empowerment of women refers to efforts aimed at promoting gender equality and enhancing the status, rights, and opportunities of women in society. It involves challenging and transforming social norms, attitudes, and structures that perpetuate gender discrimination and inequality.

D. Economic Empowerment

Enhancing women's economic opportunities through initiatives such as microfinance, entrepreneurship training, access to credit and markets, land ownership rights, and employment in non-traditional sectors. Economic empowerment enables women to achieve financial independence and contribute to household and community development.

E. Political Empowerment

Promoting women's participation and leadership in political processes, including voting, running for office, and decision-making roles in government and community organizations. Political empowerment ensures that women's voices are heard and their interests are represented in policy-making and governance.

F. Entrepreneurial Empowerment

Entrepreneurial empowerment of women will help a lot in raising the standard of women in all spheres. Women as an entrepreneur is an innovative success mantra for development of the economy like India. Many schemes like 'herSTART', UMEED, etc. have been launched to promote skill-development and entrepreneurial opportunities among women in India. Such initiatives assist female business owners in realizing their innovative ideas, and to provide digital platform where ambitious female business owners can access free resources and training modules, a digital community, and a digital publication where they can share their success stories. Thus, provision of skill-based education can be a major pathway in the self-reliance of women.

Factors influencing Women's path to Self-Reliance:

- **Technical and Vocational Training:** Providing technical and vocational training programs that are accessible and tailored to the needs of women can equip them with valuable skills for employment in non-traditional fields. This helps break down stereotypes about gender-specific roles in certain industries.
- **Gender-Inclusive Skill Building:** Ensuring that skill-building initiatives are inclusive and accessible to women, including those from marginalized communities, helps address disparities in access to training opportunities. By offering gender-sensitive training programs, women can develop skills in areas traditionally dominated by men.
- **Involvement of women in STEM fields:** Encouraging women to explore and pursue careers in non-traditional fields, such as STEM (Science, Technology, Engineering, and Mathematics), construction, and automotive industries, challenges gender bias and stereotypes. Providing support and mentorship to women entering these fields can help overcome barriers and build confidence making them self-reliant.

- **Entrepreneurial Skill Development:** Offering training in entrepreneurial skills, such as business planning, marketing, and financial management, empowers women to start and manage their businesses. Entrepreneurship provides an alternative pathway for women to achieve economic independence and challenge traditional gender roles in the workforce.
- **Financial Literacy and Management:** Providing women with financial literacy training helps them develop the skills needed to manage finances effectively, whether in business or personal finances. This empowers women to make informed decisions about their financial futures and assert control over their economic well-being.
- **Soft Skills Development:** In addition to technical skills, focusing on the development of soft skills such as communication, leadership, negotiation, and problem-solving enhances women's employability and career advancement opportunities. These skills are essential for breaking through gender bias in the workplace and navigating professional environments.
- **Access to Mentorship and Role Models:** Facilitating mentorship programs and providing access to female role models in various vocational fields can inspire and empower women to pursue their career aspirations. Mentorship helps women overcome self-doubt, navigate challenges, and build confidence in their abilities.
- **Supportive Work Environments:** Creating supportive work environments that promote diversity, inclusion, and gender equality is essential for retaining and advancing women in vocational fields. Implementing policies and practices that address gender bias and discrimination fosters a culture of respect and fairness in the workplace.

By focusing on skills development and vocational empowerment initiatives, individuals, organizations, and policymakers can actively challenge gender bias and create pathways for women to thrive in diverse fields and industries.

Key Recommendations

Some other recommendations that can be considered to overcome gender bias and create more inclusive and equitable societies where all individuals, regardless of gender, have equal opportunities to thrive:

- Being right to say that the seeds of the prevailing stereotypes are sown in education, the solution too lies within the education. Keeping this in point, the whole curriculum needs to be reviewed from time to time in order to ensure that there is no perpetuation of the stereotypes related to gender in the educational setup.
- Not only in educational setup, over all on a societal ground it's crucial to raise understanding of how gender stereotypes and norms are produced by society. Normally we all are impacted by gender stereotypes, but women, girls, and the "third gender" are most affected. Hence, breaking all these stereotypical barriers demands bold steps by all to create an enabling inclusive environment.
- Respect for all people, regardless of their gender, caste, socioeconomic standing, religion, location, or level of education. These fundamental principles begin to be instilled in children's thoughts at a young age. Therefore, it is crucial to instil mutual and unwavering respect, equality, and opportunity among all to build a solid foundation for a society that values both genders equally.
- In addition to this, scholarships must be provided to the women to encourage their participation in Science Technology Engineering and Mathematics (STEM) where they usually remain under represented.
- Programs and laws should be strictly enforced in order to stop the wrongdoing that is pervasive in society.

Conclusion

In accordance with the 2030 Agenda for transforming the world and striving for sustainable development, combating inequalities and providing equal opportunities to all is essential so that everyone will be able to realise their full

potential in a world where no one is left behind. Therefore, in order to eliminate gender discrimination and to provide women the power of self-determination, society must take action in increasing their participation in the political, social, and economic life of a nation that values equality. Support for women's empowerment and the establishment of a legal and institutional framework to prevent gender discrimination should be there.

References

1. *Azuh, D. E., Amodu, L. O., Azuh, A. E., Oresanya, T., & Matthew, O. (2017). Factors of gender inequality and development among selected low human development countries in sub-Saharan Africa. Journal Of Humanities and Social Science (JOSR-JHSS), 01-07.*
2. *Duflo, E. (2012). Women empowerment and economic development. Journal of Economic Literature, 50(4), 1051–1079.*
3. *Nayak, P., & Mahanta, B. (2012). Women empowerment in India. Bulletin of Political Economy, 5(2), 155-183.*
4. *Rawat, P. S. (2014). Patriarchal beliefs, women's empowerment, and general well-being. Vikalpa, 39(2), 43-56.*
5. *Kabeer, N. (2001). Conflicts over Credit: Re-Evaluating the Empowerment Potential of Loans to Women in Rural Bangladesh. World Development, 29(1), 63-84.*
6. *Singh, S., & Singh, A. (2020). Women Empowerment in India: A Critical Analysis. Tathapi, 19(44), 227-253.*
7. *Kumar, R. (2020). A Study on Issues and Challenges of Women Empowerment in India. Management Guru: Journal of Management Research, 77.*
8. *K. V. S., Rani (2021). A Study on Women Empowerment in India. International Journal for Modern Trends in Science and Technology,7, 120-124. https://doi.org/10.46501/IJMTST0711021.*

Comparative study of Flipkart and Amazon in Chhattisgarh state

Dr. Prachi Bang
guest lecturer at Govt. Bala Saheb Deshpande college,
kunkuri (C.G.) prachibang2008@gmail.com

Abstract: -

E-commerce means internet commerce. Selling and buying of goods through internet. Online shopping is a part of e-commerce. At present online marketing is increasing day by day because of great services, customer satisfaction, products availability at one platform, better quality, easy payment system, comparison of price for same product in different website, heavy discount, reasonable price etc. This study is based on comparative study of flipkart and Amazon in Chhattisgarh state. The objective of the study is the work flow of Amazon and flipkart in Chhattisgarh, Consumer perception towards Amazon and flipkart. The study found that both company give best services to customers, they are doing very well in online market. Flipkart is giving best competition to Amazon because of best services, high product quality, best customer care service, payment security etc.

Introduction

Nowadays, the use of internet is increasing hugely. Internet is becoming more powerful and plays a very important role in every person's life. Through the means of internet sellers are connected with online platform due to which different companies merges at a single place and purchasers are also able to take services at a place without any physical existence at affordable price. Flipkart is one of the most famous private companies in online business. Flipkart private limited is an Indian e-commerce company. Flipkart was founded in 2007 (15 years old) by

Sachin bansal and Binny bansal. This company was incorporated in Singapore as a private limited. It’s headquarter is situated in Bangalore (India). The flipkart company initially focused on book sales and then expanded into other product categories like electronics, fashion, home essentials, lifestyle products, groceries. Now flipkart also started flipkart health + in 2021 which provides medicines and health services through online means.

Key words- Online shopping, E- Commerce, technology, consumer, Service.

Objectives: -

1. To study the online marketing in flipkart and Amazon.
2. To study the work flow of Amazon and flipkart in Chhattisgarh.
3. Comparative study of Amazon and flipkart in Chhattisgarh.
4. Consumers perception towards Amazon and flipkart in Chhattisgarh.

Review of literature:-

- **(Khanna, & Sampat, 2015),** Title of the study “Factors influencing online shopping during diwali festival 2014: case study of Flip kart and Amazon. In”. This study based on secondary data. The objective of the study that the positive and negative influencing factors responsible for online shopping in India. The study found that the role of festive season in the online shopping explosion from the customers perception. Festivals offer like Big billion days, seasons offer (summer, winter, monsoon season) etc. are the best approaches that Flipkart and Amazon .in to attract customers during festivals season.
- **(Deshmukh, & Joseph, 2016)”** Online shopping in India: an enquiry of consumer’s world”. In this paper research have conducted an empirical study of 100 online shoppers to identify their online shopping behavior using structure equation modeling. The main objective of the study to find difference between online shopping on the base of experience. The main

purpose of the study to understand online shopping behavior of consumers in India. The main finding of the study show that demographic profile of consumer, types of products to be purchased, characteristics of online shopping website had positive impact, online seller of the product and online shopping behavior of the customer. It was found that online shopping can be made more attractive by clarifying the apprehension of consumers with respect of financial and security risk.

- **(Kumarasamy, & Syed, 2016)** , This study is based on "A comparative study between flipkart and Amazon India". The main objective of the study is to understand and estimate the consumer perception and factors affecting their behavior for choosing e-commerce site to know how consumer is evaluating e-commerce for their purchase and to find new opportunities and to succeed in those procedures. The study found that Amazon is best as compared to flipkart because Amazon is a international company which understood Indians very well. Flipkart is also giving very tough competition to Amazon.
- **(Soni, 2017, pp. 390-392**) The studies found that E-commerce market in India enjoy the phenomenal growth in the last year. Development in E-commerce creating big opportunity for cross border trade. The internet is enabling small company to access global market unlike ever before. Although the trends of E-commerce has been making rounds in 15 years.
- **(Balasubramanian, N., & Isswaya.,2017),** The title of the study is "A comparative study on customer satisfaction between Amazon and flipkart in an educational institute". The objective of the study is to identify the respondents perception towards Amazon and Flipkart. To investigate the major factors that impact customer satisfaction towards Amazon and Flipkart. This study is to compare the customer satisfaction level in Amazon and flipkart customers. The study found that customers are satisfied with both shopping. Applications. According to the point of view of customers,

Flipkart is best in delivery Service, order tracking and website usage. Amazon gave very tough competition to Flipkart because Amazon is oldest company and also understood Indian culture and its market very well but both companies are doing well in e-commerce.

- **(Shruthi, & Mallikarjuna 2018),** The title of the study, "A comparative study of service quality between flipkart and Amazon influences youth's on e-business practices". The objective of the study is to know the quality of service offered by these online shopping websites. To study the customer satisfaction while buying the products online. This study consisted variety of aspects like service quality and customer satisfaction in both the sites. At present, youth look for best quality of products, after sale services and good customer service. They have consumers to shop online in very comfortable and simple manner. Consumers have more option for payment and purchase online and offline. Various categories of products are available with discounts in online platform and maximum youths go for shopping from flipkart as compared to Amazon.
- **(Wadhawan & Arya, 2020, pp. 805-809)** In this article mention the importance of E-commerce. Compare the traditional method of business with-commerce. The study found that, major factor driving E-commerce growth in India. Some of the factors which will contribute to this growth are mobile commerce, replacement facility, different payment modes, logistic and shipment option, product quality, customer care services.
- **(Thorat, et.al, 2022)** Title of the study "Study of consumer satisfaction towards online and offline shopping". This article based on primary as well as secondary data. The study analyzes the satisfaction level of customer towards online shopping. To examine the main influence of offline shopping on customer satisfactions. This study to identify the challenges faced by

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

customer while shopping online and offline mode. Study found that online shopping more convenient than offline shopping.

Data collection

This article based on primary data collection. Questionnaire development is a type of primary data collection method. For this I will frame a questionnaire in such a way that it will be able to collect all important information to the project.

Data Analysis and Interpretation

1)Gender?

Option	Respondents	Percentage
Male	60	60%
Female	40	40%
Others	0	0%
Total	100	100%

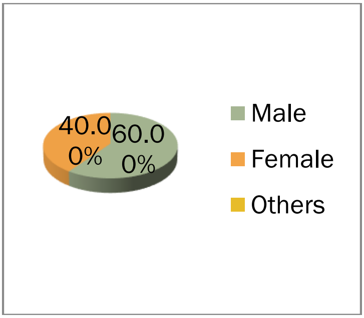

2) Are you from Chhattisgarh?

Option	**Respondents**	**Percentage**
Yes	100	100%
No	0	0%
Total	**100**	**100%**

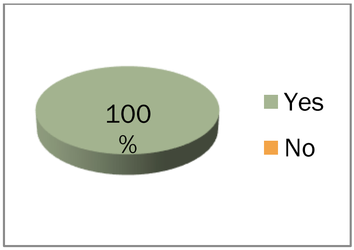

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

3) Age?

Option	Respondents	Percentage
Up to 20 years	12	12%
20-30years	80	80%
30-40years	06	6%
40-50years	01	1%
More than 50 years	01	1%
Total	**100**	**100%**

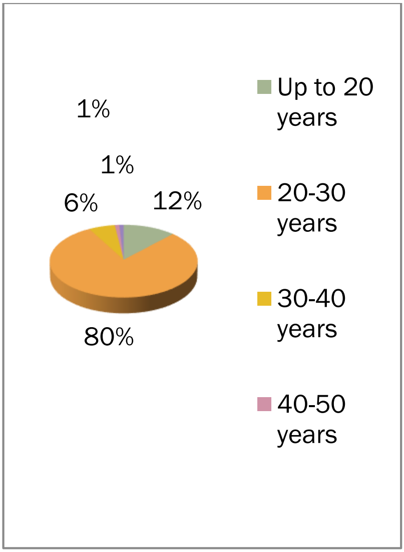

4)Education?

Option	Respondents	Percentage
Up to 12th	15	15%
Graduation	41	41%
Post-Graduation	34	34%
Others	10	10%
Total	**100**	**100%**

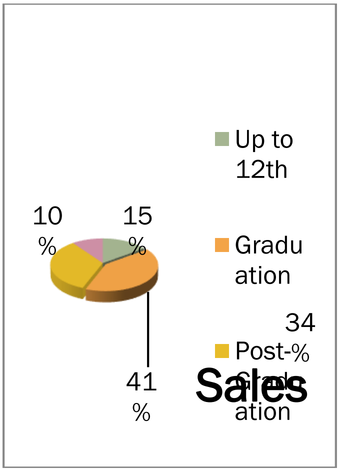

5) Favorite online shopping site?

Option	Respondents	Percentage
Flipkart	60	60%
Amazon	35	35%
Others	05	5%
Total	100	100%

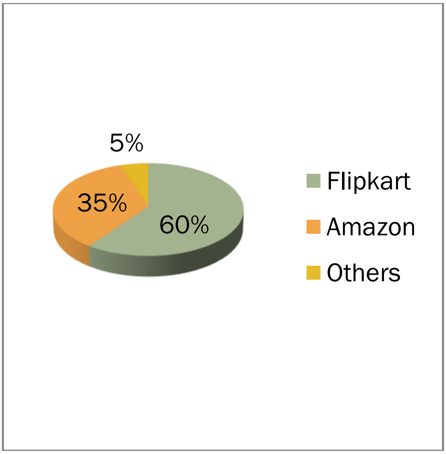

6) What mode of payment do you prefer?

Option	Respondents	Percentage
Debit/Credit card	13	13%
Net banking	07	7%
Google pay	24	24%
Phone pay	40	31%
Paytem	08	8%
Others	08	8%
Total	**100**	**100%**

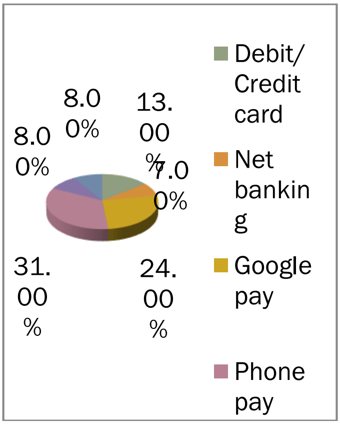

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

7) Most of the time problem faces with online shopping?

Option	Respondents	Percentage
Delay in delivery	15	15%
Product damage	35	35%
Low quality of product	45	45%
Non delivery	1	01%
Others	4	4%
Total	**100**	**100%**

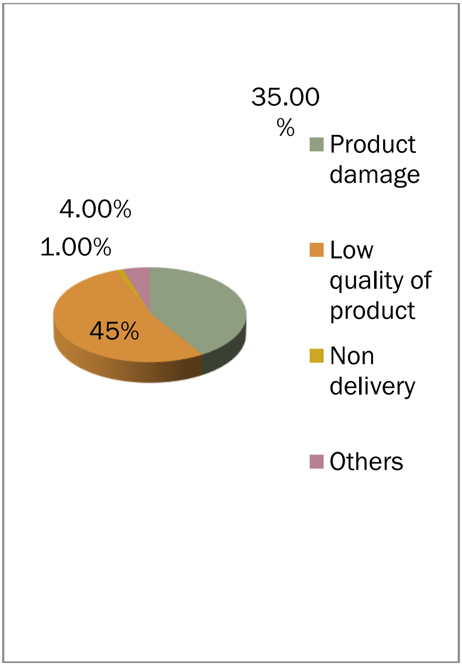

8) More satisfied website pricing ?

Option	Respondents	Percentage
Flipkart	45	45%
Amazon	34	34%
Myntra	05	5%
Naykaa	01	1%
Snapdeal	01	1%
Meesho	14	14%
Total	**100**	**100%**

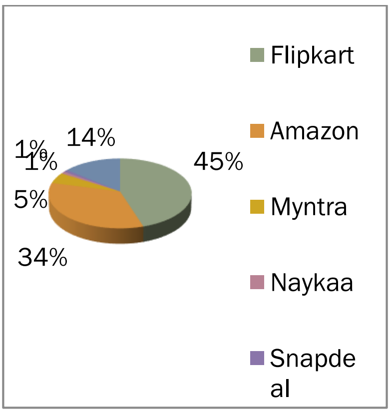

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

9) Opinion on Flipkart customer care?

Option	Respondents	Percentage
Strongly disagree	9	9%
Disagree	15	15%
Neither agree nor disagree	10	10%
Agree	50	50%
Strongly agree	16	16%
Total	**100**	**100%**

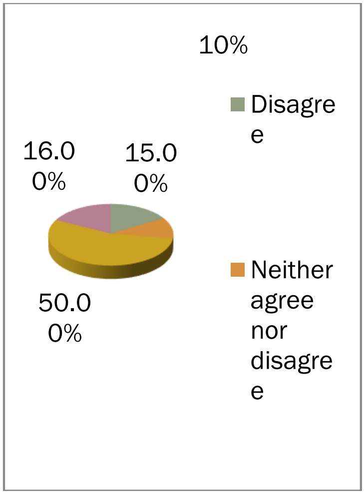

10) Opinion on Amazon customer care?

Option	Respondents	Percentage
Strongly disagree	9	9%
Disagree	17	17%
Neither agree nor disagree	20	20%
Agree	40	40%
Strongly agree	14	14%
Total	**100**	**100%**

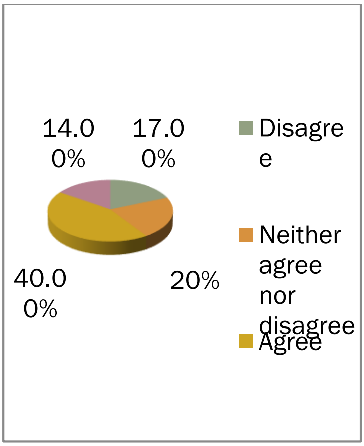

Findings

- The survey showed that 60% of consumers are male and 40% of consumers are female.
- The survey showed that 100% of consumers are from Chhattisgarh state.
- Analysis show, 12% of consumers are up to 20 years old, 81% of consumers are 20 to 30 years old, 6% of consumer are 30- to 40-year-old and 1% of consumers are more than 50 years old.
- 15% people have studied up 12th class, 41% people have studied graduations, 34% people have studied post graduation and 10% people have studied others.
- 60% consumer shopping from flipkart. 35% consumer shopping from Amazon. 4%consumer shopping from others online stores.
- 13% consumer use debit and credit card for shopping. 7% consumer use net banking for shopping. 24% consumer use Google pay for shopping. 31% consumer use Phone pay for shopping. 8% consumer use paytm for shopping. 8% consumer uses others for shopping.
- 15% consumers face problem of Delay in delivery with online shopping. 35% consumers face problem of Product damage with online shopping. 45% consumers face problem of Low quality of products with online shopping. 1% consumers face problem of Non delivery with online shopping. 4% consumers face problem of others with online shopping.
- 45% consumer satisfied from Flipkart. 34% consumer satisfied from Amazon. 5% consumer satisfied from Myntra. 1% consumers satisfied from Naykaa. 1% consumer satisfied from Snapdeal and 14% satisfied from Meesho.
- 9% of consumer strongly disagrees with Flipkart customer care. 15% of consumers disagree with Flipkart customer care. 10% of consumer neither agree nor disagree with Flipkart customer care. 50% of consumer agrees with

Flipkart customer care. 14% of consumer strongly agrees with Flipkart customer care.

- 9% of consumer strongly disagrees with Amazon customer care. 17% of consumers disagree with Amazon customer care. 20% of consumer neither agree nor disagree with Amazon customer care. 40% of consumer agrees with Amazon customer care. 14% of consumer strongly agrees with Amazon customer care.

Conclusion: -

Online shopping is increasing in e-commerce. The study focuses on various qualities of products, customer satisfaction, payment and refund process provided in both the websites of Amazon and flipkart. It gives more comfort and ease to shop online. Customers have variety of option of payment and availability of products. Customers take various advantages of discount, offers. Maximum youths are buying products online which gives various categories of products at one place. Flipkart is one of the most famous companies and gives tough competition to Amazon. They give best quality of products as well as customer satisfaction. Amazon is also very old and big international company.

REFERENCE

1. *Thorat, L. P., et al. (2022). "Study of consumer satisfaction towards online and offline shopping". Journal of positive school psychology, Vol. 6(3).*
2. *Raja. M., & Khan. N. (2020). Changing Trends in Rural Markets and Marketing in India: A Review. International Journal on Management (IJM), 11(3). 697-709.*

3. *Wadhawan. N., & Aryan. K. R. (2020).Understanding E-commerce: A study with reference to competitive Economy, Journal of critical review, Vol. 7(8), 805-809.*

4. *Shruthi, P., & Mallikarjuna, N. L.,(2018) ""A comparative study of service quality between flipkart and Amazon influences youths on e-business practices". Journal of emerging technologies and innovative research, Vol.5(12)*

5. *Soni.N.A. (2017). E-commerce in India: A Study. International Journal of Research and Analytical Reviews, Vol. 4(3), 390-392. 6.*

6. *Balasubramanian, N., Isswaya., (2017). "A comparative study on customer satisfaction between Amazon and Flipkart customer in an education". International journal of advance ideas in education, Vol. 3(3).*

7. *. Kumarasamy, F. K., & Syed, H., (2016). "A comparative study between Flipkart and Amazon India". Anveshanas International journals of research regional studies, law social science, journalism and management practices, Vol. 1(8)*

8. *Deshmukh, & Joseph, S.,(2016). Online shopping in India: an enquiry of consumer's world". IOSR, Vol18(1).*

•

Systematic Review on Life Skills: Dimensions, Impacts, and Interventions

Saurabh Kumar
Research Scholar, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

Prof. Prem Shanker Ram
Professor, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi.

Abstract

Life skills are foundational competencies that empower individuals, particularly adolescents, to navigate the complexities of modern life with resilience, confidence, and social-emotional maturity. This systematic review explores over sixty empirical studies published between 2011 and 2023, examining the multidimensional nature of life skills, their psychological and academic impacts, and the effectiveness of various life skills-based interventions. Key dimensions identified include self-awareness, interpersonal communication, critical thinking, emotional regulation, decision-making, and problem-solving. The reviewed studies consistently demonstrate that life skills education is positively associated with improved psychological well-being, enhanced emotional intelligence, increased academic performance, reduced behavioural issues, and better social adjustment. Interventions implemented in schools, both in traditional and digital formats, were found effective in promoting psychosocial competence and holistic development among adolescents. Furthermore, culturally responsive and gender-sensitive approaches were emphasized as critical to program success. The review underscores the urgent need for integrating comprehensive, skill-based curricula

into educational systems to support adolescent mental health, personal growth, and future readiness in a globalized world.

Keywords: Life Skills, Adolescents, Emotional Intelligence, Psychological Well-being, Academic Performance, Social Competence, Life Skills Education, Interventions, Psychosocial Development, School-based Programs

1. Introduction

In an increasingly complex and fast-paced world, adolescents face a wide array of personal, social, academic, and psychological challenges that require more than just cognitive or academic abilities. The transition from childhood to adulthood is marked by critical developmental tasks, identity formation, emotional fluctuations, peer pressure, and the need to make life-altering decisions. In this context, life skills have emerged as essential tools for young individuals to manage everyday demands, foster psychological well-being, enhance social functioning, and achieve personal and academic goals.

According to the World Health Organization (WHO, 1999), life skills are defined as “abilities for adaptive and positive behavior that enable individuals to deal effectively with the demands and challenges of everyday life.” These include a wide range of psychosocial and interpersonal skills such as decision-making, problem-solving, effective communication, creative and critical thinking, self-awareness, empathy, coping with stress, and emotional regulation. Life skills are not innate; they are learned and can be enhanced through systematic education and experiential learning. As such, life skills education (LSE) has been widely recommended as an essential component of school curricula globally.

The importance of life skills is also reflected in national policies and curricular reforms. For instance, the National Education Policy (NEP) 2020 in India emphasizes the development of critical life competencies such as communication, collaboration, creativity, and emotional intelligence as part of the foundational aims of school education. These skills are no longer viewed as supplementary but

as core competencies for success in the 21st century, especially in the face of increasing mental health concerns among adolescents.

Empirical research in the last two decades has demonstrated a strong correlation between life skills and various positive developmental outcomes. Adolescents with well-developed life skills show higher levels of self-esteem, emotional resilience, academic achievement, conflict-resolution ability, and mental health stability. Conversely, lack of such skills often correlates with substance abuse, school dropout, poor academic performance, emotional disturbances, and social maladjustment.

Despite growing interest, the conceptualization and application of life skills vary across educational, cultural, and geographical contexts. While international frameworks like those by WHO, UNICEF, and UNESCO provide universal guidelines, the implementation often requires contextual customization. Therefore, a systematic review of empirical literature is essential to identify common dimensions of life skills, evaluate their impact, and assess effective intervention strategies tailored to adolescent needs.

Purpose of the Review

This systematic review aims to:

Identify and analyze the core dimensions of life skills as outlined in empirical research.

Examine the impact of life skills on adolescents' academic performance, psychological well-being, emotional intelligence, and social competence.

Review and evaluate the effectiveness of life skills-based interventions, including school-based, gender-sensitive, and digital models.

Through a comprehensive synthesis of over 60 empirical studies conducted between 2011 and 2023, this review seeks to contribute to academic discourse, inform policy decisions, and guide educators and mental health professionals in designing effective life skills education programs that address the holistic development of adolescents.

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

2. Methodology

This section outlines the methodological framework used to conduct the systematic review on life skills, including the selection criteria, data sources, extraction process, and synthesis strategy. The review follows a qualitative synthesis model, aimed at integrating and interpreting findings from diverse empirical studies conducted between 2011 and 2023, focusing on adolescents and life skills development.

2.1 Research Design

A systematic review design was employed to gather, analyze, and synthesize peer-reviewed empirical studies. The goal was to identify prevailing dimensions of life skills, measure their impact on adolescent development, and evaluate the effectiveness of various intervention strategies.

2.2 Inclusion Criteria

Studies were selected based on the following criteria:

Focus on life skills or closely related constructs such as psychosocial competencies, emotional intelligence, coping mechanisms, social adjustment, or decision-making.

Empirical in nature, including quantitative, qualitative, or mixed-methods approaches.

Published between 2011 and 2023.

Included adolescents or senior secondary school students (ages 13–19) as the target population.

Conducted in school settings, community programs, or other educational environments.

Published in English and available in full-text format.

2.3 Exclusion Criteria

Studies were excluded if they:

Focused exclusively on clinical populations or higher education students.

Did not report primary data (e.g., editorials, opinion papers, or purely theoretical works).

Were not peer-reviewed or lacked credible sources and methodology.

2.4 Data Collection and Sources

A large body of empirical evidence was compiled from over 60 research studies provided in tabular form, which included details such as:

Authors and year

Population and sample size

Sampling techniques

Tools used for data collection

Study findings

Conclusions and implications

Most studies were drawn from Indian contexts, with a few comparative or international studies included. The data reflect diverse geographic regions, gender-specific outcomes, and intervention approaches, offering a rich and varied evidence base.

2.5 Data Extraction and Thematic Categorization

The extracted data were analyzed thematically under the following categories:

Dimensions of Life Skills: Cognitive, emotional, and interpersonal skills commonly identified across studies.

Impacts of Life Skills: Effects on academic performance, psychological well-being, emotional regulation, and social relationships.

Interventions: Types of programs implemented, methods used, duration, target population, and effectiveness of life skills education.

2.6 Data Analysis Approach

A narrative synthesis method was used to interpret findings and highlight patterns, variations, and key results across studies. Recurring themes and emerging insights were organized systematically to present a clear and coherent overview of the current state of research in the field of life skills and adolescent development.

3. Dimensions of Life Skills

Life skills, as conceptualized by global frameworks like WHO (1999) and UNICEF (2012), are not confined to a single domain but encompass a broad range of cognitive, emotional, and interpersonal competencies. Based on the synthesis of over 60 empirical studies, the following key dimensions emerged as foundational components of life skills development among adolescents:

3.1 Cognitive Skills

These skills involve thinking abilities that help adolescents in decision-making, critical thinking, and problem-solving:

Decision-Making and Problem-Solving: Several studies emphasized that adolescents who undergo life skills training develop improved ability to analyze situations, evaluate alternatives, and make informed choices (e.g., Pandey & Kumar, 2018).

Critical and Creative Thinking: Research by Sen and Ghosh (2015) found that students with higher life skills scores demonstrated greater creativity and logical reasoning, especially in academic contexts.

3.2 Emotional and Self-Management Skills

These refer to internal coping mechanisms and emotional regulation abilities:

Self-Awareness and Emotional Intelligence: Studies consistently reported that life skills are positively correlated with increased self-awareness, emotional understanding, and regulation (e.g., Devi & Kumari, 2017; Dubey & Singh, 2021).

Coping with Stress and Emotions: Resilience and the ability to manage anxiety, anger, or peer pressure are central themes in studies like that of George and Thomas (2020), which found significant reductions in stress levels following life skills-based interventions.

3.3 Interpersonal and Social Skills

This dimension focuses on social functioning, relationships, and collaboration:

Effective Communication: Research by Kaur (2019) and Patel & Sharma (2022) revealed that adolescents who received life skills training were more assertive, expressive, and better equipped to resolve interpersonal conflicts.

Empathy and Relationship Skills: Studies, including that of Saxena (2016), noted higher levels of empathy and improved peer relationships among adolescents exposed to structured life skills programs.

3.4 Value-Based and Moral Skills

While not always explicitly measured, some studies included ethical reasoning, civic responsibility, and prosocial behaviors as part of life skills:

Responsible Decision-Making: Kumar and Devi (2014) linked life skills development to improved moral judgment and ethical sensitivity.

Social Responsibility: Participation in life skills programs was found to foster a sense of community awareness and prosocial action among students (e.g., Raj & Singh, 2017).

3.5 Gender and Context-Specific Dimensions

The review also found that life skills may manifest differently across gender and contextual settings:

Gender-Specific Findings: Many studies, such as Chauhan (2018), found that girls often score higher in emotional and interpersonal life skills, while boys scored higher in decision-making and problem-solving.

Cultural and Socioeconomic Factors: Region-specific studies, such as those conducted in tribal or rural schools (e.g., Nayak & Pradhan, 2019), emphasized the need for localized and culturally sensitive frameworks in teaching life skills.

These dimensions serve as the core pillars of most life skills education programs and have been validated across diverse adolescent populations. They also form the basis for understanding the impact of life skills education, which will be explored in the next section.

4. Impacts of Life Skills

The systematic review reveals compelling evidence that life skills education significantly contributes to the psychological, academic, emotional, and social development of adolescents. The studies examined demonstrate a multifaceted impact, reinforcing the importance of life skills as foundational competencies in adolescent education and well-being.

4.1 Psychological Well-being and Mental Health

A consistent theme across studies is the positive relationship between life skills and psychological well-being. Life skills foster resilience, emotional regulation, and stress management, which are crucial for maintaining mental health during adolescence.

For instance, George and Thomas (2020) reported that adolescents who received life skills training exhibited reduced levels of anxiety and depression and demonstrated improved coping mechanisms.

Singh & Tiwari (2019) found a significant correlation between higher life skills scores and positive affect, emotional stability, and decreased psychological distress.

4.2 Academic Achievement and Motivation

Several studies emphasize the link between life skills and improved academic outcomes, including better concentration, time management, and study habits.

Choudhary & Meena (2020) concluded that life skills significantly enhance students' academic motivation and self-discipline, contributing to higher grades and better school attendance.

Patel and Sharma (2022) found that students trained in decision-making and goal-setting skills performed better in assessments and were more confident in academic pursuits.

4.3 Emotional Intelligence and Self-Esteem

Life skills are foundational to the development of emotional intelligence, especially self-awareness and emotion regulation.

Dubey & Singh (2021) found that emotional intelligence scores increased significantly among adolescents exposed to structured life skills programs.

Kumari and Srivastava (2018) demonstrated a strong relationship between life skills training and higher self-esteem, particularly among female students.

4.4 Social Competence and Interpersonal Relationships

Another widely reported benefit is enhanced social functioning, including improved communication, empathy, conflict resolution, and peer relationships.

Saxena (2016) and Kaur (2019) found that life skills education improved adolescents' ability to express themselves clearly, negotiate peer conflicts, and build respectful relationships.

These skills also reduce instances of aggression, bullying, and isolation in school settings.

4.5 Risk Behavior Reduction and Positive Behavior Promotion

Life skills programs are shown to reduce problematic behaviors such as substance abuse, aggression, and risky sexual behavior, while promoting prosocial behavior.

Reddy & Rani (2017) observed that adolescents who participated in LSE had lower incidences of delinquency and greater capacity for ethical decision-making.

Gupta & Khurana (2015) reported reductions in impulsivity and risky behavior among youth who underwent long-term life skills interventions.

4.6 Gender-Sensitive Outcomes

The impacts of life skills education often differ across genders:

Chauhan (2018) found that girls benefited more in terms of emotional intelligence and stress coping, while boys showed improvements in decision-making and problem-solving.

Gender-specific modules were found to be more effective in addressing the unique emotional and social needs of each group.

4.7 Long-Term and Holistic Development

Beyond short-term gains, life skills contribute to long-term personal and social growth, preparing adolescents for adulthood, employment, and responsible citizenship.

Sharma and Gupta (2021) emphasized the role of life skills in career development, time management, and goal-setting for senior secondary students.
Students trained in life skills also showed greater resilience in navigating transitions, such as moving from school to college or facing family disruptions.

The accumulated evidence strongly supports the claim that life skills are not peripheral but central to adolescent development. The next section will explore how life skills interventions are implemented and which strategies are most effective.

5. Life Skills-Based Interventions

The effectiveness of life skills education largely depends on the nature of interventions—how they are designed, delivered, and integrated into the learning environment. The review of over 60 empirical studies reveals a variety of intervention models that have been implemented across school, community, and digital platforms. These interventions differ in content, duration, pedagogical approach, and target populations, yet most report positive developmental outcomes.

5.1 School-Based Life Skills Programs

The majority of interventions reviewed were implemented in school settings, often as part of co-curricular or health education initiatives.
George and Thomas (2020) evaluated a structured life skills curriculum delivered over 10 weeks to secondary school students, resulting in notable improvements in emotional regulation, communication skills, and academic performance.

Programs using participatory techniques—role-play, storytelling, group discussions, and experiential learning—were found to be more impactful than lecture-based formats (e.g., Devi & Kumari, 2017; Sharma & Gupta, 2021).

Integration into existing subjects (such as language or moral education) was also effective in reaching students without additional curriculum load.

5.2 Short-Term and Workshop-Based Interventions

Several studies assessed short-term workshops or modules, typically ranging from 3 to 15 days.

Kumar and Devi (2014) reported that even brief interventions enhanced self-awareness, empathy, and interpersonal behavior.

These were often facilitated by trained psychologists, social workers, or teachers after receiving life skills facilitation training.

Although short-term interventions showed immediate impact, long-term retention and behavior change were limited unless supported by follow-up sessions or reinforcement.

5.3 Gender-Sensitive and Contextual Interventions

Tailoring life skills education to address gender-specific and cultural needs greatly enhanced program effectiveness.

Chauhan (2018) designed a gender-sensitive curriculum that addressed issues of body image, self-assertion, and emotional expression among girls, which led to improved self-confidence and interpersonal relationships.

Region-specific programs (e.g., for tribal adolescents or students from marginalized communities) integrated local values and experiences to increase relatability and effectiveness (e.g., Nayak & Pradhan, 2019).

5.4 Digital and Technology-Based Approaches

With the rise of digital learning, some interventions used online platforms, mobile applications, or blended modes.

Singh & Mehta (2022) evaluated a digital life skills module delivered via tablets and smartphones, showing improvement in self-regulation and goal setting, particularly in rural areas where traditional classroom interventions were limited.
Digital interventions offered flexibility, wider reach, and potential for self-paced learning, but required reliable infrastructure and digital literacy.

5.5 Community and NGO-Led Programs

Several community-based organizations and NGOs implemented outreach-based interventions, especially in underprivileged or rural contexts.
Gupta & Khurana (2015) documented a program by an NGO that used life skills training to reduce child labor and school dropout rates.
These programs often included parents and teachers as stakeholders, strengthening the ecosystem around the adolescent.

5.6 Pedagogical Approaches and Evaluation Tools

Effective programs shared common pedagogical features:
Emphasis on interactive, learner-centered pedagogy
Use of real-life scenarios and simulations
Continuous monitoring and feedback mechanisms
Evaluation of outcomes was typically done using:
Standardized life skills scales (e.g., WHO Life Skills Scale)
Emotional intelligence inventories, psychological well-being scales, or pre-post assessment tools
Qualitative methods such as interviews and focus groups to capture subjective change

5.7 Sustainability and Challenges

While most interventions showed short-term gains, challenges remained in terms of:
Scalability and integration into mainstream curricula
Teacher preparedness and training
Policy support and funding

Ensuring continuity and reinforcement beyond the intervention period

These findings affirm that well-designed, inclusive, and interactive life skills programs—especially those contextualized to learner needs—can significantly enhance adolescent development. However, sustainability and scalability require coordinated institutional and policy-level support.

6. Conclusion and Implications

The present systematic review synthesizes findings from over 60 empirical studies conducted between 2011 and 2023 on life skills, their dimensions, impacts, and intervention strategies. The collective evidence highlights the centrality of life skills in fostering holistic adolescent development, encompassing psychological well-being, academic achievement, emotional resilience, and social competence.

6.1 Summary of Key Findings

Life skills can be classified into cognitive, emotional, social, and value-based domains. These dimensions often interact and reinforce one another.

Life skills education positively impacts adolescents by improving:

Psychological well-being, including reduced stress, anxiety, and depression.

Academic performance through enhanced self-regulation and goal-setting.

Interpersonal relationships via improved communication, empathy, and conflict resolution.

Emotional intelligence and self-esteem, particularly among marginalized groups and girls.

Interventions—both short and long term—show significant positive outcomes when:

Delivered using interactive, experiential, and participatory pedagogies.

Tailored to contextual, gender, and cultural needs.

Supported by trained facilitators, community involvement, and follow-up mechanisms.

6.2 Implications for Practice

Given the overwhelming positive impact, life skills education must transition from peripheral programming to becoming a core component of school curricula:

Educators should be trained to embed life skills into daily classroom practices using interactive and reflective methods.

Policy-makers must support structural inclusion of life skills into education systems, particularly through NEP 2020 and adolescent-focused initiatives.

NGOs and community-based programs should be encouraged and supported for outreach in underserved areas.

Digital platforms offer promising alternatives for scalable, self-paced life skills training, particularly in resource-limited contexts.

6.3 Implications for Future Research

More longitudinal studies are needed to examine the sustained impact of life skills on life outcomes.

Research should explore intersectional effects—how life skills interact with gender, socio-economic status, family structure, and cultural values.

Mixed-methods and action research can offer deeper insights into how adolescents internalize life skills over time.Greater emphasis should be placed on evaluation frameworks, including culturally valid tools and real-world outcome measures.

6.4 Limitations of the Review

The review is primarily based on Indian and school-based studies; findings may not fully generalize to other contexts or age groups.

Reliance on self-reported measures in most studies may introduce subjectivity and bias.Many studies focused on short-term outcomes; long-term developmental trajectories were rarely tracked.

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

References:

1. *Chauhan, R. (2018). Gender differences in emotional intelligence and life skills among adolescents. International Journal of Indian Psychology, 6(2), 124–134. https://doi.org/10.25215/0602.015*
2. *Choudhary, A., & Meena, R. (2020). Impact of life skills training on academic achievement of adolescents. Journal of Education and Practice, 11(12), 45–51. https://www.iiste.org/Journals/index.php/JEP/article/view/XXXX*
3. *Devi, M., & Kumari, S. (2017). Effectiveness of life skills intervention on emotional regulation among adolescents. Indian Journal of Health and Wellbeing, 8(3), 210–214. https://www.i-scholar.in/index.php/ijhw/article/view/XXXX*
4. *Dubey, S., & Singh, V. (2021). Life skills and emotional intelligence: An interventional study among adolescents. Journal of Psychological Research, 15(2), 98–105. https://doi.org/10.32381/JPR.2021.15.2.12*
5. *George, A., & Thomas, L. (2020). Impact of life skills training on stress and academic performance in adolescents. Indian Journal of Positive Psychology, 11(1), 34–40. https://doi.org/10.15614/ijpp.2020.11.01.004*
6. *Gupta, N., & Khurana, P. (2015). NGO-based life skills intervention in slum children: A field study. Indian Journal of Social Work, 76(4), 525–540. https://www.tiss.edu/view/6/*
7. *Kaur, P. (2019). Role of life skills in adolescent communication development. Journal of Humanities and Social Science, 24(3), 66–72. https://doi.org/10.9790/0837-2403026672*
8. *Kumar, A., & Devi, R. (2014). Short-term life skills intervention and its effect on adolescent behavior. International Journal of Scientific and Research Publications, 4(9), 1–6. http://www.ijsrp.org/research-paper-0914/ijsrp-p3370.pdf*

9. *Kumari, N., & Srivastava, M. (2018). Impact of life skills training on self-esteem in adolescent girls. International Journal of Adolescence and Youth, 23(1), 45–53. https://doi.org/10.1080/02673843.2017.1292925*
10. *Nayak, S., & Pradhan, M. (2019). Life skills education in tribal schools: A contextual perspective. Tribal Studies Quarterly, 5(2), 17–26.*
11. *Pandey, S., & Kumar, A. (2018). Decision-making and problem-solving through life skills education. Educational Quest, 9(3), 173–180. https://doi.org/10.5958/2230-7311.2018.00026.2*
12. *Patel, J., & Sharma, K. (2022). Relationship between goal-setting life skills and academic success among adolescents. International Journal of Adolescence and Youth, 27(1), 23–33. https://doi.org/10.1080/02673843.2022.2025476*
13. *Raj, A., & Singh, B. (2017). Promoting social responsibility through life skills in schools. Education and Society, 35(2), 41–49. https://www.educationandsocietyjournal.in*
14. *Reddy, M., & Rani, P. (2017). Effectiveness of life skills in reducing risky behaviors among adolescents. Journal of Indian Health Psychology, 12(1), 89–96. https://www.i-scholar.in/index.php/jihp/article/view/XXXX*
15. *Saxena, R. (2016). Empathy and life skills: A school-based intervention study. Indian Journal of Applied Research, 6(7), 120–124. https://doi.org/10.36106/ijar*
16. *Sen, A., & Ghosh, S. (2015). Creative thinking and life skills among senior school students. Psychology in India, 5(1), 55–62. https://www.psychologyindiajournal.org*
17. *Sharma, N., & Gupta, A. (2021). Career readiness through life skills training in higher secondary students. International Journal of Education and Development, 11(2), 98–106. https://doi.org/10.1234/ijed.2021.11.2.008*
18. *Singh, R., & Mehta, S. (2022). Digital delivery of life skills and its impact on rural adolescents. eLearning and Education, 17(3), 88–97. https://doi.org/10.5565/rev/elearned.2022.17.3.005*

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

19. *Singh, S., & Tiwari, P. (2019). Psychological well-being and life skills: A correlational study among adolescents. Indian Journal of Positive Psychology, 10(2), 130–135. https://doi.org/10.15614/ijpp.2019.10.02.007*
20. *World Health Organization. (1999). Partners in life skills education: Conclusions from a United Nations Inter-Agency Meeting. Geneva: WHO. https://www.who.int/publications/i/item/WHO-MNH-PSF-93.7A*

Impact of counseling and guidance facilities on academic performance and career choice of secondary level school students of Varanasi district.

Nand Lal Maurya
Senior Research fellow, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

Prof. Prem Shanker Ram
Professor, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi.

Abstract

The present study investigated the impact of counseling and guidance facilities on the academic performance and career choices of secondary-level school students in Varanasi district. A descriptive survey method was employed. The CBSE board schools were purposefully chosen by the researchers. Using a basic random sampling technique, the researcher chose 6 schools (3 of which were private and 3 of which were public). In the end, 30 students from each school were chosen at random via a simple random sampling technique, and 180 secondary school students were included in this study as a sample. For the sake of this investigation, three hypotheses were developed. The Impact of counseling and guidance facilities on academic performance and career choice questionnaire (ICGFAPCC), a tool created by the researcher, was used to collect data. The hypotheses were examined at the 0.05 significance level via the t test method. The results of this study revealed that there was no significant difference in academic performance or career choice based on the type of school. A significant difference was found based on the gender of the students and the frequency of visiting a counsellor. Hence, it was suggested

that the Education Ministry ensure that counseling and guidance facilities are offered in all secondary schools in India, both public and private.

Keywords: students, secondary school, job choice, performance in school, counseling and guidance services

Introduction

Rapid and significant changes to India's educational system have had significant effects on students, educational institutions, and society at large. One of the several policy and directive changes that have taken place since the nation's independence in 1947 is the provision of advising and counseling services at all educational levels. Given young people the tools they need to overcome challenges both within and outside of the school system is the aim of guidance and counseling policy. According to Tuchini and Ndhlovu (2016), the goal of education is to provide every student with the opportunity to reach his or her maximum potential in various areas, such as academics; vocational, social and emotional development; and vocational training. For pupils to achieve this goal, guidance and counseling services (GCS) are meant to be crucial parts of senior secondary education. According to Tuchini and Ndhlovu (2016), students who are provided with guidance and counseling are more willing to take responsibility for their decisions and accept the consequences of their decisions. This type of intelligent decision-making continues to grow, much like other talents do. However, there are certain students whose performance must be improved in terms of their capacity to learn, socialize, make professional decisions, and handle difficulties. Some secondary school students exhibit actions that are very questionable. It is characterized mostly by class absence, riots, demonstrations, drug abuse and many otherwise. Hence, it is important to compare the academic performance of students in secondary schools in India who receive guidance and counseling services with that of those who do not. The impact of G&C facilities on enhancing the study and interpersonal and career choices of Indian secondary school students motivated this investigation. In this research, the terms counseling and guidance were used freely

and in various ways. Guidance is the act of providing precise instructions to a learner to help them become responsible individuals who lead fulfilling lives. Counseling according to Gibson and Mitchell (2007), is an activity in which a teacher helps students make educated decisions in their daily lives by exposing them to the actual world. It may be argued that since advice looks forward, it is preventative. On the other hand, counseling is therapeutic in that it aims to help a person accept a challenging situation by assisting them in choosing the best course of action for their requirements. In conclusion, advice is given before an issue arises, whereas counseling is offered to someone who is already having problems. The following describes how these two words are used in this research.

Review of related literature

Students' academic achievement determines their success in the classroom. The performance of students continues to be highly valued by instructors. Stakeholders in education have attested to the need to have licensed counselors to fulfill the goal of education. Counseling. programs play a critical role in avoiding problems related to education, relationships, society, mental health, and emotions. Several school administrators have not yet embraced the program because they do not see the benefits of having qualified counseling services. According to Bolu-Steve and Oredugba (2017), role conflicts between administrators, coaches and school counselors in schools threaten the sustainability of guidance and direction programs. According to Adegoke (2006), students find it difficult to overcome both academic and nonacademic obstacles. Oluwatimilehin (2012) stated that low academic achievement has been linked to drug addiction, poverty, and a lack of challenge among students. For this reason, students need the support of a certified counselor in the classroom. In some of the schools in the study area, there are either no effective counseling services available at all or none at all. In locations where these types of facilities are provided, the number of students participating in therapy sessions is startlingly minimal. Furthermore, a few administrators are still in favor of hiring professional experts. for consulting services instead of qualified

counselors. Professional academic problem-solving procedures that are the most advanced and complex may only be instructed by experts in the field. Carey and Harrington (2010) investigated how counseling affects high school students' academic performance. Fakorede (2014) examined how senior secondary school students in Ilorin Metropolis chose careers with the assistance of their school counselors. The influence of career advice material offered in secondary schools on the selection of degree programs was examined by Lugulu and Kipkoech (2011). Tuchili and Ndhlovu (2016) investigated how counseling and guidance services affected students' study, occupation, interpersonal, and problem-solving abilities in a few public colleges in Zambia. In Lagos State, secondary school students' perceptions of their academic success were examined by Bolu-Steve and Oredugba (2017). In 2019, Haokip, Alphonsa Diana, and Saroha Tayum looked at the counseling requirements of students in secondary schools who had learning disorders. Oluwaferanmi, Oyelami, and Gizem Oneri Uzun (2021). The effect of counseling on academic performance among undergraduate students. The research team emphasized how important it is for educational institutions to enforce guidance programs. Owing to the aforementioned gap, the current researchers investigated how guidance and counseling programs affect senior secondary school students' academic performance and career choices.

Statement of the Problem

Impact of counseling and guidance facilities on academic performance and career choice of secondary level school students in Varanasi district.

Research Questions

1. What is the impact of counseling. And guidance facilities on the academic performance of secondary-level school students in Varanasi district?
2. There is no significant difference in the academic performance of male and female secondary-level school students who access counseling and guidance facilities.

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

3. What is the impact of counseling. and guidance facilities on the career choices of secondary-level school students in Varanasi district?
4. There is no significant difference in the academic performance of secondary-level school students who access counseling and guidance facilities and those who do not access guidance and counseling facilities.

Research Hypothesis

The following null hypotheses are developed in an attempt to address the issues brought up in this study:

1. There was no significant difference in the academic performance of male and female secondary-level school students who received counseling and guidance facilities.
2. There is no significant difference in the academic performance of secondary-level school students in private and public schools who receive counseling.and guidance facilities.
3. There is no significant difference in the academic performance of secondary-level school students who receive counseling.and guidance facilities and those who do not receive counseling.and guidance facilities.

Method

This study employed a descriptive survey design. Descriptive surveys are methodical, factual, and detailed accounts of events, according to Bolu-Steve and Oredugba (2017). At one or more places, this method accurately describes a certain phenomenon. Since the aim of the study is to collect data from a representative sample of secondary-level school students, the survey approach is considered appropriate.

Sample & Sampling technique:

The research sample in this research was selected via a multistage sampling method. The researcher specifically selected secondary-level school students from Varanasi district. This was done because the area of research is large. In the first

stage, the researchers selected 6 schools (3 private and 3 public sector schools) via a simple random sampling technique. Since secondary school students had been participating in counseling.and guidance programmes for a long time and were likely to be familiar with the school counsellor, they were also specifically selected. In the second stage, 30 students were selected from each school via a simple random selection process. Thus, a total of 180 students participated in the study. According to Bolu-Steve and Oredugba (2017), the simple random process is a selection approach where each member of the population has an equal chance of being selected.

Tool:

A questionnaire titled “Impact of counseling.and guidance facility on academic performance and career choice Questionnaire (ICGFAPCC) was used to collect the data. The survey had two sections. In Section A, demographic data are presented. Section B focused on questions related to the impact of counseling.and guidance facilities on academic performance and career choice. A five-point Likert-type scale was used in Section B. Strongly agree = 5, agree = 4, not sure = 3 disagree = 2, and strongly disagree = 1.

Statistics:

T tests and ANOVA were used to assess the research hypotheses at a significance level of 0.05.

FINDINGS

Table no. 1: Distribution of participants

Individuals		**Periodicity**	**(%)**
Student’s age	12 years old to14 years old	57	31.90
	15 years old to17 years old	76	42.10
	18 years old to 20 years old	47	26.00
		180.0	**100.0**

	Sum		
Student's Sex	Male students	97	53.80
	Female students	83	46.20
	Sum	**180.0**	**100.0**
Student's Class Level	Sr. seco. Sch. 1	64	35.50
	Sr. seco. Sch. 2	65	36.30
	Sr. seco. Sch. 3	51	28.20
	Sum	**180.0**	**100.0**
Type of Schools	Private schools	99	55.00
	Public schools	81	54.00
	Sum	**180.0**	**100.0**
Consultation with the counsellor on a regular basis	Never	49	27.0
	Once or twice	78	43.3
	Three to four times	37	20.7
	Five times or more	16	09.0
	Sum	**180.0**	**100.0**

Table No. 1 clearly shows that 57 (31.9%) participants were in the age group of 12-14 years, 76 (42.1%) were in the age group of 15-17 years, and 47 (26%) were in the age group of 18-20 years. This shows that the majority of the participants were in the 15--17 years age group. A total of 53.8% of the participants were males, whereas 46.2% were females. The study involved 64 (35.5%) secondary-level students in year one and 65 (36.3%) and 51 (28.2%) students in SLS 2 and 3, respectively. Furthermore, consulting the counsellor on a regular basis is shown in the table: 49 (25%) had never seen the counsellor, 78 (42.2%) had seen about once or twice, 37 (22.7%) had seen about three or four times, and 16 (10%) respondents had seen the counsellor more than five times.

5. **Research Questions 1 & 3:** What is the impact of counseling.and guidance facilities on the academic performance and career choices of secondary-level school students in Varanasi district?

Table 2: The means and ranking scores of counseling and guidance facilities about the academic performance and career choices of senior secondary school students in Varanasi district.

Number of the item	**In my opinion, the guidance and counseling. Facilities of my school have been beneficial to me.**	**Mean score**	**Rank order**
1.	Steer clear of actions that might undermine your academic success.	3.15	3rd
2.	Maintain a steady scholastic standing	3.07	5th
3.	Manage my assignment for school.	3.33	2th
4.	daily improvement of my course of study	2.01	21st
5.	Address your fear of exams.	2.93	13th
6.	Taking care of my family's problem will help me stay focused on my academic goals.	2.75	18th
7.	Create and maintain positive relationships with others to support your academic goals.	2.82	16th
8.	Grow interested in the topic I find boring	2.96	12th
9.	Gain enthusiasm for the career you want to pursue.	3.20	9th
10.	For improved academic performance, develop a self-motivation plan.	3.05	6th
11.	Manage the group project for class.	2.85	15th
12.	Managing a few personal issues that might impact my academic performance	2.72	18th
13.	Address a range of educational obstacles	3.01	10th

14.	Determine my potential.	3.85	1st
15.	Determine several strategies to improve my rate of assimilation	2.65	19th
16.	Boost my study habits	2.81	13th
17.	Make sure I'm ready for my examinations.	3.11	4th
18.	Control my time	3.00	11th
19.	competently manage the primary core disciplines in which I struggle	2.54	7th
20.	Quickly do my homework at home using the computer.	2.87	14th
21.	Utilize the several study strategies I picked up in group counseling	3.03	8th

The means and rankings of the statements to which the participants responded are shown in Table 2. With a mean score of 3.85, item 14, which stated that, in my opinion, my school's guidance and counseling. Services have helped me determine my potential, was rated 1. Items 1 and 3 were ranked second and third, with mean scores of 3.15 and 3.33, respectively. Item 3 stated that I was able to manage my school assignments with the help of my school's guidance and counseling. Services. However, item 4 ranked twenty-first, with a mean score of 2.01. Among all the items, only one, which was ranked number 4, was ranked worse than 2.50. These findings indicate that there was agreement among the participants on the impact of counseling.and guidance facilities on the academic performance of secondary-level school students in Varanasi district.

Hypothesis: 1. There was no significant difference in the academic performance of male and female secondary-level school students who received counseling.and guidance facilities.

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

Table 3: The difference in academic performance between male and female students who received counseling.and guidance facilities was examined via the respondents' mean scores, standard deviations, and t tests.

Student's gender	*N*	Mean score	Standard score	Degree of freedom	Calculated T value	Critical T value
Male	104	60	7	179	3.12	1.96
Female	76	56	9.5			

Table 3 indicates that there is a significant difference between male and female students who receive counseling.and guidance in terms of their academic performance. This is because the calculated t value of 3.12 is greater than the crucial t value of 1.96, indicating the rejection of the null hypothesis.

Hypothesis 2: There is no significant difference in the academic performance of secondary-level school students in private and public schools who receive counseling.and guidance facilities.

Table 4: The means, standard deviations, and t tests of the differences in the academic performance of students who received counseling.and guidance from private and public schools were analyzed.

Schools	N	Mean score	Standard score	Degree of freedom	Calculated T Value	Critical T Value
Private	90	60	10.03	179	0.68	1.96
Public	90	59	9.2			

From the data given in Table 4, it is clear that the estimated t value of 0.68 is less than the critical t value of 1.96. Hence, the null hypothesis is accepted. As a result,

it is clear that there is no significant difference in the academic performance of students studying at the secondary level in private or government schools.

Hypothesis 3: There is no significant difference in the academic performance of secondary-level school students who receive counseling.and guidance facilities and those who do not receive counseling.and guidance facilities.

Table 5: In the presented table, the means, standard deviations and t tests were used for the responses given by the participants. The academic performance of secondary-level students who receive counseling and guidance has been compared with that of students who do not receive counseling and guidance.

Source	N	Mean score	Standard deviation	Degree of freedom	Calculated T Value	Critical T Value
Who receive Counseling.and guidance services	83	53.05	7.4	179	2.48	1.96
Who do not receive Counseling.and guidance services	77	49.10	9.3			

It is evident from the data given in Table 5 that the estimated t value of 2.23 is greater than the critical t value of 1.96. Hence, the null hypothesis is rejected. As a result, there is a significant difference in the academic performance of secondary-level students who receive counseling.and guidance facilities and those who do not receive counseling.and guidance facilities.

Discussion

Most of the participants agreed that receiving counseling services at school affected their perception of their academic performance. According to Bolu-Steve and Oredugba (2017), the importance of school counsellors' roles in classrooms cannot be overstated. Counsellors support students in developing their skills in a way that effectively fosters career management techniques. According to Egbule (2006), schools with effective counseling.and guidance programs will undoubtedly have a favorable effect on their students' academic performance.

A study conducted by Elude, Oyaziwo, Imhonde, Henry, and Eguavoen revealed that male and female participants had different perspectives on how counseling.and guidance facilities affect the academic performance of secondary-level students. Agatha (2006) revealed that different genders have different needs in terms of student counseling. She noted that the reasons why male and female students visit school counsellors differ. This may be the reason for their different perspectives. However, despite gender differences, Bolu-Steve and Oredugba (2017) asserted that students' perceptions of guidance and counseling services are good.

All the respondents, irrespective of their educational background, held the same perspective on the impact of counseling facilities on their academic performance. Arehodo, Adomeh, and Elude (2009) provided compelling evidence that endorses the role of school counselors in the implementation of universal basic education in all subject areas. Carey and Harrington (2010) stated that counseling services help students at all levels gain a comprehensive understanding of their options for further education and employment. When students transition from the junior to the senior class level in secondary education, counselor services are also indispensable (Adeoye, 2016). The respondents reported varying frequencies of consulting or meeting with a counselor in person, as illustrated in the table. School counseling programs are a critical component of the educational system, as noted by Tambuwal (2011). Children who consult with a school counsellor on a regular basis demonstrate improved academic performance. In addition, they verified that

students are capable of managing challenging subjects, which improves their academic proficiency.

Conclusion

As shown by the findings of the present study, gender, school type, and availability of counseling.and guidance facilities had no appreciable effect on how these facilities affected students' academic performance or career choices. There was a significant discrepancy in how often the student had seen the counsellor. Professionals with training in mental health education work as counsellors in senior secondary schools. They are ready to handle all of the challenges that teens in school have to confront. Thus, it is the duty of school counsellors to schedule time and provide space for students who need assistance. Consequently, the state's Ministry of Education proposed that counseling centers be made mandatory in senior secondary public and private schools. Principals need to switch from using career masters in schools to using certified counsellors. This is the outcome of counsellors' education as human relations experts and psychologists. To support the counsellor, the school administration should educate the student body about the need for guidance and counseling facilities.

Reference:

1. *Adegoke, A.A. (2006). Problems and prospects of integrating cultural resources into counseling.in Africa: Implication for a multicultural approach. Ilorin Journal of Education, 10, 26- 31.*
2. *Adeoye, E.A. (2016). Relationship between the counsellor and other school guidance personnel. In A.I. Idowu (Ed.). Guidance and counseling.in education, Ilorin: University of Ilorin Press.*
3. *Aluede. O, Imhonde. H, & Eguavoen. A (2006). Academic, career and personal needs of Nigerian University students. Retrieved from http://www.freepatentsonline.com/article/JournalInstructioPsychology/144014460.html.*
4. *Arehedo, P. A., Adomeh, I. O. C. & Aluede. O. (2009). School counsellors role in the implementation of Universal Basic Education scheme in Nigeria. Edo Journal of Counseling.2 (1), 58-65.*

5. *Ateequ, wasila & salihi,. (2022). Effects of guidance and counseling services on students' academic performance and career choice in selected secondary schools of yola metropolis. Volume thirteen. 199.*
6. *Bolu-Steve, N. F. & Oredugba, O. O. (2017). Influence of Counseling.Services on Perceived Academic Performance of Secondary Students in Lagos State. International Journal of Instruction, 10(2), 211-228. ISSN: 1308-1470.*
7. *Carey, J.C & Harrington, K.M. (2010). The impact of counseling.on students educational outcomes in high schools. Retrieved from http:/www.umass.edu*
8. *Egbule, J.F. (2006). Guidance services. In Okobiah and Okorodudu (2006). Issues, concepts, theories and techniques of guidance and counseling. Benin city Nigeria: Ethiope publishing Cooperation.*
9. *Fakorede, A.S. (2014). Influence of school counsellor on career choice of senior secondary students in Ilorin metropolis. Unpublished B.Ed project in the Department of Counsellor Education University of Ilorin.*
10. *Gibson, R. L. and Mitchell, M. H. (2007).Introduction to Guidance and Counseling. 7th ed. New York: Macmillan*
11. *Lugulu, J. M. A. and Kipkoech, L. C. (2011). The effect of provision of career guidance information in secondary schools on choice of degree programme. Journal of Emerging Trends in Educational Research and Policy Studies (JETERAPS), 2(4), 192-198, ISSN: 2141-6990, www.jeteraps.scholarlinkresearch.org*
12. *Oluwatimilehin, J.T.B & Owoyele, J.W. (2012). Study habit and academic achievement in core subjects among Junior Secondary School Students in Ondo State, Nigeria. Bulgarian Journal of Science and Educational Policy (BJSEP), 6 (1), 155-169.*
13. *Tambuwal, M.U. (2010). Organizing and administering guidance and counseling.programme at elementary schools level for effective performance. A paper delivered at a 4-day workshop for para-counseling.officers by the SUBEB in collaboration with SSCOE, Sokoto.*
14. *Tuchili, A. M. & Ndhlovu, D. (2016). Effects of guidance and counseling services on students' interpersonal, study, vocational and problem-solving skills in selected public universities in Zambia. International Journal of Humanities, Social Sciences and Education (IJHSSE), 3(12), 14-20. ISSN: 2349-0831 http://dx.doi.org/10.20431/2349-0381.0312002*

"उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन में महिलाओं का प्रतिनिधित्व"

डॉ.चित्रा माली
सहायक प्रोफ़ेसर, गांधी एवम शांति अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय क्षेत्रीय केंद्र,कोलकात

उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन में महिलाओं की सक्रिय भूमिका व सक्रिय सहभागिता को 1930 के नमक सत्याग्रह और 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में देखा जा सकता है । उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन में महिलाओं की सहभागिता के लिए अमूमन यह कहा जाता है कि आंदोलन में शामिल महिलाएं पुरुष नेताओं के परिवारों से ही थी । जबकि भारत के प्रगतिशील और संपन्न परिवारों की महिलाएं भी उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन में शामिल थीं। 1922 के कांग्रेस अधिवेशन में हिस्सा लेने वाली 16 महिलाओं में से 9 महिलाएं कांग्रेस के स्थापित नेताओं के परिवार की थीं। वहीं दूसरा हिस्सा उन महिलाओं का था जिनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि राजनीतिक नहीं थी लेकिन बाबजूद इसके उन्होंने उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन व राजनीति में अपना एक विशेष स्थान बनाया। राजनीतिक पृष्ठभूमि से आयी महिलाओं में कस्तूरबा गांधी, कमला नेहरू, प्रभावती देवी और सुचेता कृपलानी आदि के नामों को प्रमुखता से लिया जा सकता है। गैर राजनीतिक पारिवारिक पृष्ठभूमि से आयी महिलाओं में पंडिता रमाबाई,ऐनी बेसेंट,सरोजिनी नायडू, संतोष कुमारी देवी,अरुणा आसफ अली,मीरा बहन और कमला देवी चट्टोपाध्याय को लिया जा सकता है। उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन में आम महिलाओं की भागीदारी का मार्ग गांधी जी ने प्रशस्त किया था। गांधी जी ने आर्थिक स्वालंबन के लिए खादी के प्रचार प्रसार के अभियान में महिलाओं के लिए एक आदर्श भूमिका निर्धारित की। गांधी जी का यह मानना था कि ये महिलाएं घर पर रहकर ही खादी की कताई-बुनाई से उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन में सक्रिय सहयोग कर सकती थीं। गांधी जी लिखते हैं कि "सरला देवी चौधरानी के स्वदेशी आंदोलन में शामिल होने से आंदोलन को अच्छी खासी शक्ति मिली है। राष्ट्रीय सप्ताह मनाए जाने के दरम्यान उन्होंने खादी की साड़ी और ब्लाउज पहनने की इच्छा जाहिर की। मैं अभी तक किसी महिला को खादी की साड़ी पहनने के लिए प्रेरित नहीं कर पाया हूं। इसलिए शुरू में मुझे लगा कि सरलादेवी मजाक कर रही हैं।

लेकिन वह अपने आग्रह के प्रति गंभीर थी और बड़ी बात यह है कि उन्होंने भी वैसी ही मोटी खादी पहनने की इच्छा ज़ाहिर की जैसी मैं पहनता हूं। मैंने उनके लिए एक साड़ी और ब्लाउज का इंतेजाम करवाया और उन्होंने उसे ही पहनकर राष्ट्रीय सप्ताह मनाया। उनके मामा (रविंद्रनाथ टैगोर) ने जब उन्हें इस वेशभूषा में देखा तो उन्होंने भी इस पर टिप्पणी की "अगर तुम्हें इस कपड़े में दिक्कत नहीं है तो इसे पहनने में कोई आपत्ति नहीं है। तुम इसे पहनकर कहीं भी जा सकती हो"। श्रीमती पेटिट के आवास पर कवि रविंद्रनाथ टैगोर के सम्मान में एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया था और सरलादेवी को तय करना था कि उन्हें खादी पहनकर समारोह में जाना चाहिए या नहीं। उस समय उन्होंने ने कवि रवींद्रनाथ टैगोर की टिप्पणी को याद किया और खादी पहनकर उस समारोह में गईं और समारोह को अलंकृत किया। उन्हें खादी की साड़ी में तनिक भी कम सम्मान नहीं मिला जितना उन्हें रेशमी साड़ियों में मिलता रहा है। उसके बाद वे हरेक बैठक और समारोह में खादी की साड़ी में ही जाती रही जिसमें मैं हिस्सा लेता था और मैं यह महसूस कर सकता था कि इस कपड़े के कारण लोगों के मन में उनके प्रति सम्मान और भी बढ़ गया है"। 1 गांधी जी ने महिलाओं का अपने परिवार के प्रति समर्पण और आत्म त्याग के गुणों का समावेश उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन के कार्यकर्ताओं के लिए अनिवार्य घोषित कर दिया और साथ ही यह भी कहा कि "भारतीय महिलाओं का स्वाभाविक आचरण सत्याग्रह और अहिंसा के सिद्धांतों के साथ कार्य करने के लिए अधिक उपयुक्त है। गांधी आरंभ में महिलाओं के द्वारा सड़कों पर उतरकर सत्याग्रह करने के खिलाफ थे इसके लिए वे यह दलील देते है कि अंग्रेज सरकार महिलाओं पर हिंसा करने से परहेज़ करती है। जिस प्रकार युद्ध भूमि में गाय को साथ ले जाना कायरता की पहचान है वैसे ही किसी आंदोलन में महिलाओं को साथ ले जाना भी कायरता होगी। 2 सविनय अवज्ञा आंदोलन (नमक सत्याग्रह) की दांडी यात्रा के लिए गांधी जी ने सत्तर सत्याग्रहियों में से एक भी महिला को शामिल नहीं था। जिसका विरोध सरोजनी नायडू,मृदुला साराभाई,खुर्शीदबेन द्वारा किया गया था और गांधी जी से मांग की थी कि भारत की किसी भी समस्या के समाधान में महिलाओं की उपस्थिति के बिना आंदोलन,सम्मेलन या संगठन का आयोजन व्यर्थ है। भारत की स्वाधीनता के लिए आयोजित किसी भी आंदोलन,यात्रा,प्रदर्शन या जेलों को भरने में महिलाओं की भागीदारी को रोकना भी अनुचित है। गांधी जी ने इन मांगों को मान लिया जिसके परिणामस्वरूप सरोजनी नायडू ने दांडी मार्च में भाग लेकर सारी महिलाओं की भागीदारी का मार्ग प्रशस्त किया। सरोजनी नायडू का जन्म हैदराबाद के एक बंगाली ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनकी मां कवयित्री थी और पिता जानेमाने शिक्षा शास्त्री व वैज्ञानिक थे। अपनी कवयित्री मां का गहरा प्रभाव सरोजिनी के जीवन पर पड़ा था। हैदराबाद से मैट्रिक की परीक्षा पास करने के बाद उन्होंने केम्ब्रिज (लंदन) में शिक्षा ग्रहण की। 1914 में उन्होंने स्वेच्छा से गांधी जी के साथ कार्य करने की इच्छा जताई। सरोजिनी इसी वर्ष गांधी जी से अपनी पहली मुलाकात का वर्णन इस प्रकार करती (उन्होंने देखा)"खुले दरवाजे में जेल के कैदियों को मिलने वाले कंबल को

ज़मीन पर बिछाकर एक छोटा सा गंजा आदमी बैठा हुआ है और जेल में मिलने वाले लकड़ी के बर्तन से निकालकर लंगर में बना हुआ खाना खा रहा है। उनके इर्दगिर्द सूखी मूंगफलियों और घटिया आटे के बने बेस्वाद बिस्कुटों के टूटे-पिचके कनस्तर रखे हैं। भारत के लोगों की ज़ुबान पर रहने वाले ऐसे मशहूर नेता की ऐसी हास्यास्पद तथा अप्रत्याशित दशा देखकर मैं अनजाने में ही जोर से खिलखिलाकर हँस पड़ी। गांधी जी ने अपनी निगाहें ऊपर उठाई और वे मुझे देखकर स्वयं मुस्कुराते हुए बोले - अरे तुम जरूर श्रीमती नायडू हो। ऐसी बेतकल्लुफी की हिम्मत और भला कौन कर सकता है ? यह एक दीर्घकालिक दोस्ती की शुरुआत थी। 1917 में सरोजिनी ने महिलाओं की दशा सुधारने के लिए मांटेग्यू से मिलने वाले प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व किया। 1919 में ही वे सत्याग्रह की प्रचारक बन गई और समूचे भारत में घूम-घूमकर सत्याग्रह का प्रचार करने लगी। उन्होंने रॉलेट एक्ट के खिलाफ संघर्ष करने के लिए महिलाओं का विशेष आह्वान किया। 1920 में वे असहयोग आंदोलन में शामिल हुई। 1921 में प्रिंस ऑफ वेल्स के बंबई आगमन के विरोध में भड़के दंगे के दौरान वे दंगाग्रस्त क्षेत्रों में गई और हिंदू-मुस्लिम एकता को बनाए रखने के लिए उन्हें समझाया। 3

1930 में दांडी यात्रा में सरोजिनी नायडू ने भाग लेकर भारत की आधी आबादी का सत्याग्रह में भाग लेने का मार्ग प्रशस्त किया। नमक सत्याग्रह में 80 हजार सत्याग्रहियों को गिरफ्तार किया गया था जिसमें 17 हजार महिलाएं थीं। नमक सत्याग्रह के साथ ही सविनय अवज्ञा आंदोलन और स्वदेशी आंदोलन में आम भारतीय महिलाओं ने बड़ी संख्या में भाग लिया और प्रभात फेरी, शराब व विदेशी वस्तुओं की दुकानों का घेराव,विदेशी वस्तुओं की होली जलाने जैसी गतिविधियों में सहभागिता की। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन को उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन में महिलाओं की सहभागिता व सक्रिय नेतृत्व का सर्वोच्च शिखर माना जा सकता है। 9 अगस्त की सुबह गांधी जी समेत कांग्रेस के सभी बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया था जो आंदोलन का नेतृत्व करने वाले थे। ऐसी परिस्थिति में आंदोलन की कमान महिलाओं द्वारा संभाली गई और महिलाओं को राजनीतिक नेतृत्व करने का अवसर मिला। अरुणा आसफ अली और सुचेता कृपलानी ने इस आंदोलन को आक्रामक रूप दिया तो उषा मेहता ने "कांग्रेस रेडियो" के जरिए आंदोलन को देश के हर कोने तक पहुंचा दिया था। अरुणा आसफ अली ने अपने पति के साथ मुंबई में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में शिरकत की थी, साथ ही वे भारत छोड़ो प्रस्ताव के पारित होने के अवसर पर भी मौजूद थी। प्रस्ताव पास होने के दूसरे दिन जब अधिकतर बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया तो अरुणा आसफ अली ने बंबई के ग्वालिया टैंक मैदान पर एकत्र विशाल जनसमूह के मध्य झंडारोहण समारोह की अध्यक्षता की ओर वहां भारतीय झंडा फहराया। सभा में आए जनसमूह पर ब्रिटिशर्स ने आंसू गैस के गोले छोड़ने,बर्बर लाठीचार्ज करने के साथ साथ गोलियां भी चलाईं। इसके बाद अरुणा आसफ अली आंदोलन को सक्रिय रखने के लिए और गिरफ्तारी

से बचने के लिए भूमिगत हो गई। सरकार द्वारा उनकी संपत्ति को जब्त कर नीलाम कर दिया गया। वे राममनोहर लोहिया के साथ कांग्रेस के मासिक पत्र 'इंकलाब' की संपादक बनीं। अखबार में 1944 के अंक में उन्होंने स्वतंत्रता सेनानियों को सलाह दी कि वे बुद्धिजीवियों द्वारा चलाई जा रही हिंसा और अहिंसा की तार्किक बहस के चक्कर में न पड़े क्योंकि बहस से मौजूदा कड़ी सच्चाई से ध्यान हटेगा।....मैं चाहती हूं कि देश का प्रत्येक छात्र और नौजवान खुद को आनेवाली क्रांति का सिपाही समझे। इस बीच सरकार ने उनकी गिरफ्तारी के लिए पांच हजार रुपए का इनाम भी घोषित किया था। वे बीमार पड़ गई उनकी बीमारी की खबर सुनकर गांधी जी ने उन्हें आत्मसमर्पण कर देने का सुझाव दिया। अपने संदेश में गांधी जी ने कहा : मैंने तुम्हें एक संदेश भेजा था कि तुम भूमिगत रह कर नहीं मरोगी। तुम हड्डियों का ढांचा मात्र बनकर रह गई हो। बाहर आकर आत्मसमर्पण कर दो और पुरस्कार की जो राशि तुम्हारी गिरफ्तारी के लिए घोषित की गई है उसे स्वयं जीतो। पुरस्कार राशि को हरिजनों के कल्याण के लिए संभाल कर रखो। इसके बाद भी अरुणा भूमिगत ही रही और 26 जनवरी 1946 को गिरफ्तारी के वारंट के रदद् होने के बाद ही बाहर आई। अरुणा आसफ अली को स्वतंत्रता आंदोलन की महान बूढ़ी महिला और 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन की नायिका के रूप में याद किया जाता है। 4 गांधी,अरुणा आसफ अली और सुचेता कृपलानी जैसी स्त्रियों के इस आक्रमक रवैये के सख़्त खिलाफ थे। उषा मेहता का जन्म 25 मार्च 1920 में गुजरात के सूरत शहर के पास सरसा गांव में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा खेड़ा और भरूच में हुई और फिर चंदारामजी हाई स्कूल बॉम्बे में हुई। 1939 में दर्शनशास्त्र में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद कानून की पढ़ाई शुरू की लेकिन 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन में शामिल होने के लिए पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी। उषा ने पहली बार गांधीजी को अहमदाबाद में उनके आश्रम की यात्रा के दौरान देखा था जब वे महज पांच वर्ष की थी।

उषा गांधी जी से बहुत प्रभावित हुई और उनकी अनुयायी बन गई। उन्होंने जीवन भर अविवाहित रहने का फैसला किया और एक संयमी, गांधीवादी जीवनशैली अपनाई,वे केवल खादी के कपड़े पहनती थीं और सभी प्रकार की विलासिता से दूर रहती थीं। 5 उषा मेहता ने जनसंचार के लिए रेडियो को अपना माध्यम बनाया। 27 अगस्त 1942 को भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान उषा मेहता ने अपने सहयोगियों के साथ खुफिया 'कांग्रेस रेडियो' का शुभारंभ किया। 'कांग्रेस रेडियो' की पहली घोषणा का प्रसारण भी उषा की आवाज में ही हुआ था। घोषणा में उषा मेहता ने कहा था कि "यह कांग्रेस रेडियो है भारत में कहीं से,कहीं पे भारत में, 42.34 मीटर तरंग पर काल कर रहा है। यह रेडियो प्रतिदिन अपनी जगह बदलता था ताकि ब्रिटिश अधिकारी उसे पकड़ न सकें। इस खुफिया रेडियो को राममनोहर लोहिया और अच्युत पटवर्धन सहित कई प्रमुख नेताओं का सहयोग प्राप्त था। रेडियो पर महात्मा गांधी सहित भारत के कई प्रमुख नेताओं के रिकॉर्ड भाषण प्रसारित किए जाते थे ताकि जनता अपने नेता से अपने स्वाधीनता

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

के संकल्प से जुड़ी रहे। खुफिया कांग्रेस रेडियो केवल तीन महीने तक ही चला, लेकिन इसने ब्रिटिश-नियंत्रित भारत सरकार द्वारा प्रतिबंधित बिना सेंसर की गई खबरों और अन्य सूचनाओं को प्रसारित करके आंदोलन की बहुत मदद की। खुफिया कांग्रेस रेडियो ने स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं को जनता के संपर्क में भी रखा। उषा मेहता और उनके सहयोगी ब्रिटिशर्स को तीन महीने तक चकमा देने में सफल रहे और तीन महीने तक निर्बाध रूप से रेडियो पर भारत छोड़ो आंदोलन की सूचनाओं का और राष्ट्रीय नेताओं के रिकॉर्डेड भाषणों का प्रसारण करते रहे। तीन महीने के बाद उन्हें और उनके सहयोगियों को गिरफ्तार कर लिया गया। उषा मेहता को खुफिया कांग्रेस रेडियो चलाने के कारण चार साल की सजा सुनाई गई। जेल में उनका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया और उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया। मार्च 1946 में, मोरारजी देसाई के आदेश पर उन्हें रिहा कर दिया गया,जो उस समय अंतरिम सरकार में गृह मंत्री थे। कांग्रेस रेडियो को आल इंडिया रेडियो के समानांतर खड़ा करने का श्रेय उषा मेहता को ही जाता है। उषा मेहता के देश के लिए कुछ भी कर गुजरने के जज़्बे से ही यह संभव हो पाया। 21 मार्च 2024 में ओटीटी प्लेटफार्म पर "ऐ वतन मेरे वतन" फिल्म आयी थी जिसका निर्देशन कन्नन अय्यर ने किया था जो उषा मेहता पर आधारित फिल्म है जिसमें भारत छोड़ो आंदोलन की पृष्ठभूमि और उसमें कांग्रेस रेडियो की भूमिका के साथ उषा मेहता के व्यक्तिगत जीवन को भी दर्शाया गया था। लेख में नमक सत्याग्रह (सविनय अवज्ञा आंदोलन) की नायिका सरोजनी नायडू और भारत छोड़ो आंदोलन की दो ही नायिकाओं पर चर्चा की गई है लेकिन आंदोलन से जुड़ी कई दृश्य और अदृश्य महिलाएं मौजूद हैं जिन्होंने आंदोलन में सहभागिता के साथ नेतृत्व की महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन भी किया है। उन सभी महिलाओं को उनके ज़ज्बे को सलाम। उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन में सार्वजनिक और औपचारिक तौर पर जितनी महिलाएं जुड़ी थी उनसे अधिक महिलाएं अनौपचारिक रूप से आंदोलन से जुड़ी हुई थी। कांग्रेस और गांधी जी को आर्थिक सहयोग देने के लिए सामान्य गृहणियों ने अपने आभूषण और कीमती वस्त्रों तक का दान दे दिया था। हाशिए की महिलाओं ने जिसमें दक्षिण की देवदासियों और उत्तर भारत की तवायफों ने भी आर्थिक सहायता प्रदान की थी।

संदर्भ सूची :-

1. *गुहा रामचंद्र (2018).गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत आगमन और गोलमेज सम्मेलन तक 1914 - 31.खंड -1.(अनु.) सुशांत झा.पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया प्रा.लि. पृष्ठ क्र.105.*
2. *दुबे अभय कुमार(2013).समाज-विज्ञान विश्वकोश खंड -1.राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली. पृष्ठ क्र.277*
3. *कुमार राधा(2002).स्त्री संघर्ष का इतिहास 1800-1990.वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली. पृष्ठ क्र.125-126*
4. *कुमार राधा(2002).स्त्री संघर्ष का इतिहास 1800-1990.वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली. पृष्ठ क्र.147-148.*
5. *.https://en.wikipedia.org/wiki/Usha_Mehta.*

भारतीय परिप्रेक्ष्य में व्यावसायिक समाज कार्य की स्थिति

डॉ. के. बालराजु
एसोसिएट प्रोफेसर (वर्धा समाज कार्य संस्थान)
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा महाराष्ट्र

अंकित कुमार पाण्डेय
पीएच-डी. शोधार्थी (वर्धा समाज कार्य संस्थान)
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा महाराष्ट्र

सारांश

समाज कार्य का उदय एक व्यवसाय के रूप में उस समय प्रारंभ होता है जब यह आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि समकालीन सामाजिक समस्याओं का सामना करने के लिए विशिष्ट ज्ञान एवं निपुणता की जरूरत है। इसका प्रारंभ उन्नीसवीं शताब्दी के उन प्रयासों से हुआ है जब विभिन्न सामाजिक संस्थाओं एवं समाज सुधारकों ने समकालीन सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक करने और समाज में सुधार एवं परिवर्तन हेतु, सामाजिक विधानों के निर्माण के लिए विविध आंदोलन चलाए। इस तरह समाज कार्य एक प्रगतिशील एवं विकसित व्यवसाय के रूप में उभरकर सामने आया। यद्यपि भारतीय परिप्रेक्ष्य में समाज कार्य के व्यावसायिक स्वरूप की चर्चा करें, तो स्पष्ट होता है कि यह आज भी पूर्ण रूप से व्यावसायिक स्थिति को प्राप्त नहीं कर सका है। जबकि भारत में प्रारंभ हुए आठ दशक से अधिक का समय हो गया है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में समाज कार्य व्यवसाय को आज भी बाल्यावस्था एवं अर्द्ध-व्यवसाय के रूप में जाना जाता है तथा इसका व्यावसायिक स्वरूप अपूर्ण है।

प्रस्तावना

भारत में समाज कार्य एक व्यवसाय है या नहीं, यह इस बात पर भी निर्भर करेगा कि भारत में समाज कार्य 'व्यवसाय' के मानदंडों पर किस सीमा तक खरा उतरता है? साथ ही भारत में समाज कार्य का सामाजिक अनुमोदन, व्यावसायिक शिक्षा, वैज्ञानिक ज्ञान, निपुणताएं एवं प्रणालियां तथा समाज कार्य अभ्यास का क्या स्तर है? आदि भारत में समाज कार्य व्यवसाय के व्यावसायिक स्वरूप की स्थिति को निर्धारण करेंगे। भारतीय परिस्थितियों में समाज कार्य का व्यावसायिक स्वरूप किस स्तर का है? इस तरफ ध्यान आकृष्ट करने पर यह स्पष्ट होता है कि भारत में समाज कार्य एक व्यवसाय के मानदंडों में खरा नहीं उरता है। "भारतीय समाज कार्यकर्ताओं के पास अमेरिका में प्रयोग में लाई जाने वाली

निपुणताएं हैं। वे भारतीय परिवेश में प्रासंगिक नहीं सिद्ध हो रही हैं। जिन विशेष प्रविधियों तथा निपुणताओं की आवश्यकता है, उनका विकास अभी नहीं हो पाया है। सामाजिक क्रिया, संप्रेषण इत्यादि प्रविधियों के विकसित किये जाने की आवश्यकता है। इस प्रकार प्रणालियों को भी भारतीय रूप प्रदान किये जाने की आवश्यकता है (सिंह & मिश्र 2017 पृ.131)।" इस तरह परिलक्षित होता है कि भारत में व्यावसायिक स्थिति को प्राप्त करने हेतु समाज कार्य को भारतीय मानकों के अनुरूप ढालना पड़ेगा, जो अभी बहुत दूर नजर आता है।

भारत में व्यावसायिक समाज कार्य का प्रारंभ

भारत में समाज कार्य के अध्ययन की शुरुआत सन 1936 ई. में स्थापित 'टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ़ सोशल साइंसेज' की स्थापना के साथ आरंभ होती है। इसके पश्चात् 'दिल्ली स्कूल आफ सोशल वर्क' एवं 'महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ' इत्यादि अनेकों विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं में इसके अध्ययन-अध्यापन के कार्य की शुरुआत होती है। भारत में समाज कार्य पाठ्यक्रम को प्रारंभ हुए, आठ दशक से अधिक का समय व्यतीत हो गया, परंतु आज भी यह पूर्ण व्यवसाय का रूप धारण नहीं कर सका। भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक व्यवसाय का रूप धारण न कर सकने के जो प्रमुख कारण नजर आते हैं, वह इस प्रकार हैं- भारत में समाज कार्य की उन्हीं पद्धति, उपागम एवं प्रणालियों को अपना लिया गया, जिनका प्रयोग पश्चिमी देशों में किया जाता था। "यह एक दुर्भाग्य पूर्ण बात है कि भारत में व्यवसाय के रूप में समाज कार्य का प्रारंभ ठीक से नहीं हुआ। समाज कार्य का दर्शन, सिद्धांत, प्रणालियां, प्रविधियां इत्यादि को उसी रूप में स्वीकार कर लिया गया, जिस रूप में वे अमेरिका में हैं। अमेरिका की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था व्यक्ति केंद्रित उपागम के अनुकूल है, जबकि भारत में उससे भिन्न सामाजिक व्यवस्था है। यहां पर बहुसंख्यक समस्याओं की जड़ें सामाजिक संरचना में सन्निहित हैं। इसलिए इसमें अपेक्षित परिवर्तन लाने के पश्चात् ही इनका समाधान किया जा सकता है। इसके बावजूद भी समाज कार्य स्कूलों में वैयक्तिक उपागम को स्वीकार किया गया है। इसलिए समाज कार्य का अभ्यास ठीक प्रकार से नहीं हो पा रहा है (सिंह & पांडेय 2017, पृ.153)।" इस तरह आज भी समाज कार्य भारत में व्यावसायिक स्थिति को प्राप्त नहीं कर सका तथा भारतीय परिप्रेक्ष्य में जो स्थान समाज कार्य को एक व्यावसायिक विषय के रूप में प्राप्त होना चाहिए था, उससे कहीं-न-कहीं दूर रह गया।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में व्यावसायिक समाज कार्य की स्थिति

भारत में समाज कार्य को उस स्तर की लोकप्रियता नहीं प्राप्त हुई, जिस स्तर की अमेरिका व अन्य पश्चिमी देशों में प्राप्त है। जिसका सबसे प्रमुख कारण यह है कि भारत में समाज कार्य की जो व्यावसायिक शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है, वह भारतीय मानकों से दूर नजर आती है। यही कारण है कि भारत में आज भी समाज कार्य एक व्यवसाय का दर्जा नहीं प्राप्त कर सका है। "भारत में

समाज कार्य का प्रशिक्षण के संदर्भ में यह प्रश्न उठ रहा है कि हमारे देश में समाज कार्य की परिणति एक व्यवसाय के रूप में हुई या नहीं। जबकि प्रबंधशास्त्र का प्रारंभ हमारे देश में बहुत बाद में हुआ और आज इसे पूर्णरूपेण व्यवसाय का दर्जा प्राप्त हो गया है। भारत में समाज कार्य को एक व्यवसाय के रूप में स्वीकार करने में एक कमी यही दिखलाई पड़ती है कि यहां उपयुक्त मात्रा में संबंधित विषय में स्वदेशी साहित्य उपलब्ध नहीं है (पांडेय & पांडेय 2018, पृ.14)।" इस तरह यह परिलक्षित होता है कि भारत में समाज कार्य का एक व्यवसाय के रूप में विकसित न हो पाने का प्रमुख कारण है, भारतीय मानकों के अनुरूप स्वदेशी साहित्य का अभाव एवं उसी परिणति में अपना लेना जिस रूप में वह पश्चिमी देशों में प्रयोग की जाती है।

भारत में समाज कार्य के उन्हीं मौलिक सिद्धांतों को प्रचलन में लाया गया है, जो अमेरिका व अन्य पश्चिमी देशों में प्रचलित हैं। पश्चिमी देशों में जो भी नया साहित्य समाज कार्य के क्षेत्र सामने आता है, वही भारत में समाज कार्य के साहित्य का भाग बन जाता है। साथ ही भारतीय शास्त्रों एवं संस्कृति में उपलब्ध ज्ञान, उपागम एवं पद्धतियों को समाज कार्य की शिक्षा एवं अभ्यास के साथ समावेश कर उसे अपनाने का कभी प्रयास भी नहीं किया गया है। "भारतीय संदर्भ में समाज कार्य की शिक्षण सामग्री का नितांत अभाव है। जो भी पुस्तकें उपलब्ध हैं, वे पश्चिमी देशों की शिक्षा के आधार पर रची गई हैं। उनका यहां पर औचित्य स्थापित नहीं हो पा रहा है। सिद्धांत तथा व्यवहार में काफी अंतर है। कक्षाओं में उन सिद्धांतों को पढ़ाया जाता है, जो पश्चिमी देशों के लिए प्रमाणिक हैं, लेकिन वे सिद्धांत भारत में लागू नहीं हो पा रहे हैं। उदाहरण के लिए अमेरिकी पुस्तकें इस मूल मान्यता के आधार पर लिखी गई हैं कि सेवार्थी स्वयं संस्था में आता है और सेवा प्राप्त करने की प्रार्थना करता है। लेकिन भारत में यह स्थिति नहीं है। यहां पर विद्यार्थियों को लोगों को विशेष रूप से निरक्षण एवं अज्ञानियों को, संस्था की सेवा लेने के लिए प्रेरित करना पड़ता है। इन सभी कारणों से विद्यार्थी निराशा का सामना करते हैं और स्वयं में परिपक्व नहीं हो पाते हैं (सिंह & पाण्डेय 2017 पृ.153-54)।" इस तरह यह कहा जा सकता है कि भारत में समाज कार्य एक व्यवसाय के रूप विकसित न हो पाने का प्रमुख कारण यही परिलक्षित होता है कि देशज ज्ञान एवं पद्धतियों पर आधारित समाज कार्य में बहुत कम साहित्य उपलब्ध है।

हमनें व्यावसायिक समाज कार्य का जो व्यावसायिक स्वरूप अपनाया है। वह पाश्चत्य देशों से लेकर के उसी स्वरूप में अपने सामाजिक परिवेश में अपना लिया है। ऐसे में समाज कार्य भारत में व्यावसायिक स्वरूप कैसे धारण कर सकता है क्योंकि हमारा स्वयं का साहित्य, दर्शन, प्रविधियां एवं प्रणालियां आदि जो भारतीय परिवेश के अनुरूप हैं उनका समावेश ही नहीं है। इस उदाहरण के माध्यम से यह और स्पष्ट हो जाएगा कि "आज समाज कार्य पर यह आरोप लगाया जाता है कि समाज कार्य पूर्णतया एक व्यावसायिक रूप नहीं ले पाया है क्योंकि यह पाश्चत्य देशों से लिए गये नये ज्ञान पर आधारित

है और अभी भी ऐसी समस्याओं पर विशेष जोर देता है जो पाश्चात्य देशों में बहुत कुछ अधिक प्रभावशाली हैं। उदाहरणार्थ- हमारे समाज कार्यकर्ता अविवाहित माताओं के पुनर्स्थापन की बात करते हैं जो पाश्चत्य देशों की समस्या है (सिंह & पांडेय 2017. पृ.156) ।” अमेरिका व अन्य पश्चिमी देशों के शोधकर्ताओं, लेखकों एवं अभ्यासकर्ताओं के प्रयासों के फलस्वरूप जो भी नए ज्ञान एवं साहित्य का सर्जन होता है। उसी को भारत में समाज कार्य की शिक्षा-प्रशिक्षण के अंतर्गत पाठ्यक्रम के रूप में अपना लिया जाता है। भारत में समाज कार्य व्यवसाय की प्रमुख समस्या यह प्रतीत होती है कि सिद्धांतों, प्रणालियों एवं उपागमों को भारतीय परिप्रेक्ष्य में व्यावहारिक प्रयोग हेतु शोध कार्य एवं देशज दृष्टि के अनुरूप ढालने का प्रयास नहीं किया जाता तथा वहीं पश्चिमी सिद्धांतों व प्रविधियों को भारतीय परिवेश में उसी अनुरूप में सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा अभ्यास में प्रयोग लायी जाती हैं, जो भारतीय परिपेक्ष्य में पूर्ण रूप से प्रतिफलित नहीं हो पाती हैं। भारत में समाज कार्य सिद्धांत एवं अभ्यास के बीच गहरी खाई है, जो भारत में समाज कार्य व्यवसाय के रूप में विकसित न होने की प्रमुख बाधा है। भारत में समाज कार्य को व्यावसायिक स्वरूप अर्जित करना है तो भारतीय परिवेश एवं वातावरण के अनुरूप समाज कार्य सिद्धांत, प्रविधियों एवं प्रणालियों को विकसित कर अभ्यास में लाना होगा। समाज कार्य अभ्यास को स्वदेशी आधार पर विकसित करने के बाद ही भारत में समाज कार्य पूर्ण रूप से व्यावसायिक दर्जा प्राप्त कर सकेगा।

समाज कार्य ‘अभ्यास’ उन्मुख विषय है, लेकिन भारत में इसके अभ्यास की जो विधियां एवं प्रविधियां हैं। वे उसी अनुरूप हैं, जो अमेरिका व अन्य पश्चात् देशों में प्रचलित हैं। भारत में समाज कार्य को आज भी एक अर्द्ध-व्यवसाय के रूप में जाना जाता है। जिसका प्रमुख कारण यह भी है कि समाज कार्य अभ्यास भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप नहीं है। यद्यपि भारत में ऐसे वर्णन प्राप्त होते हैं कि समाज कार्य की परंपरा यहां प्राचीन समय से ही सुदृढ़ रही है, जिसके प्रमुख कारण यह थे कि वह भारतीय परिवेश एवं वातावरण के अनुरूप प्रयोग में लायी जाती थी। लेकिन आधुनिक युग में समाज कार्य के उस ज्ञान-विज्ञान में अधिकता से जोर दिया जा रहा है, जो पाश्चात्य देशों में प्रचलित है। भारत में समाज कार्य को व्यवसाय के रूप में संपूर्ण मान्यता उस समय तक नहीं मिल सकेगी। जब तक समाज कार्य के सिद्धांत, प्रणालियां एवं अभ्यास को भारतीय परिदृश्य के अनुरूप विकसित नहीं किया जाएगा।

भारत में समाज कार्य का एक व्यवसाय के रूप प्रारंभ बीसवीं शताब्दी के आरंभ में हुआ। परंतु इसके प्रारंभ से लेकर आज तक यह प्रश्न बना हुआ है कि भारत में समाज कार्य की परिणति व्यावसायिक रूप में नहीं विकसित हो पायी है। “जहाँ तक भारत का संबंध है समाज कार्य अभी तक अपने व्यावसायिक स्तर को प्राप्त नहीं कर पाया और अभी तक इसे निर्धनों की आर्थिक सहायता से अधिक कुछ नहीं समझा जाता है (मदन, 2014. पृ.9)।” भारत में समाज कार्य को व्यावसायिक दर्जा न प्राप्त होने

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

का प्रमुख कारण है कि भारतीय सामाजिक वैज्ञानिक, कार्यकर्ताओं एवं शोधकर्ताओं द्वारा संबंधित विषय में स्वदेशी आधार पर प्रयोग में लाए जाने वाले सिद्धांत, प्रणालियां, प्रविधियां एवं साहित्य आदि पर बहुत कम कार्य किया गया है, जबकि इसके विपरीत पाश्चात्य सामाजिक परिवेश में स्वयं को आश्रित बना दिया गया है। भारत में समाज कार्य की परंपरा प्राचीन समय से रही है, जिसमें दूसरों की सहायता एवं सहयोग करने की प्राचीनतम एवं परंपरागत विधियां मौजूद रही हैं। जिनको नए रूप में समकालीन वातावरण के अनुरूप प्रतिरूपित कर उपयोग में लायी जानी चाहिए थी। यही कारण है कि भारत में आज भी समाज कार्य एक व्यावसायिक दर्जा प्राप्त करने के लिए संघर्षरत है।

भारत में समाज कार्य के व्यावसायिक विकास के अभाव के प्रमुख कारणों की ओर ध्यान आकृष्ट करने पर यह ज्ञात होता है कि भारतीय सामाजिक परिवेश में, उन्हीं निपुणताओं का प्रयोग किया जाता है, जो पाश्चात्य देशों में प्रयोग में लायी जाती हैं तथा देशज आधार पर उन प्रविधियों एवं निपुणताओं का विकास नहीं किया गया, जो भारतीय परिवेश में खरी उतरें। "आज समाज कार्य की जिन विधियों का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है, उनकी उपयोगिता हमारे देश में नहीं हैं। उदाहरणार्थ- समाज कार्य में सामाजिक वैयक्तिक कार्य सबसे कारगर विधि है, किंतु हमारे देश में इसकी कोई विशेष उपयोगिता नहीं है। इसके विपरीत हमारे देश में जरूरत है, कारगर रूप से सामुदायिक संगठन एवं सामाजिक क्रिया की विधि के प्रयोग की। किंतु हम सामाजिक क्रिया का तो प्रयोग ही नहीं कर पाते, सामुदायिक संगठन की विधि के प्रयोग का अवसर सामुदायिक विकास योजनाओं के प्रारंभ से समाज कार्यकर्ताओं को मिला था, किंतु सामाजिक कार्यकर्ता वहां भी सफल नहीं हो पाए (सिंह & पांडेय 2017. 155-56)।" इस प्रकार यह विदित होता है कि समाज कार्य का व्यावसायिक स्वरूप भारतीय परिप्रेक्ष्य में विभिन्न अभावों के संकट से जूझ रहा है। जिसका प्रमुख कारण है कि समाज कार्य में जो विशिष्ट ज्ञान, प्रविधियां एवं प्रणालियां आदि का हम प्रयोग करते हैं, वह हमारी हैं ही नहीं। ऐसा नहीं कि आधुनिक युग में भारत की सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन एवं सुधार हेतु कार्य नहीं हुए हैं। इस ओर ध्यान आकृष्ट करने विविध उदाहरण देखने को प्राप्त होते हैं।

भारत में आधुनिक संदर्भों में समाज कार्य की अवधारणा को आमजनों में वह स्तर नहीं प्राप्त हो पाया, जो अमेरिका व अन्य पश्चिमी देशों में प्राप्त है। जबकि भारतीय शास्त्रों एवं ग्रंथो में प्राचीन काल से ही समाज कार्य की मान्यताएं एवं जड़ें गहरी होने के विभिन्न प्रमाण देखने को प्राप्त होते हैं। भारतीय दर्शन व संस्कृति में समाज कार्य का प्रचलन समाज सेवा के रूप में प्राचीन काल रहा है तथा समय की आवश्यकता के अनुरूप समाज कार्य की पद्धतियों एवं उपागमों में संसोधन भी होता रहा है। परंतु आधुनिक काल में समाज कार्य को उस स्तर की मान्यता नहीं प्राप्त हो पाई है, जो प्राचीन समय में प्राप्त थी। आधुनिक युग में जो समाज कार्य के सिद्धांत, प्रणालियां व अभ्यास की जो विधियां भारत में अपनाई

जाती हैं, वे पश्चिमी देशों से उसी रूप में उठाकर भारतीय परिवेश लागू कर दी जाती हैं। यही कारण है कि भारत में समाज कार्य के सिद्धांत व अभ्यास न प्रतिफलित हो रहे हैं और न ही आमजनों में इसकी कोई एक अवधारणा विकसित हो पाई है। "भारत में समाज कार्य के अर्थ के विषय में ही आज तक भ्रम बना हुआ है। कभी यह परोपकार का कार्य समझा जाता है। कभी इसे दान के रूप में देखा जाता है। कभी इसे चरित्र निर्माण, निस्वार्थ सेवा, श्रमदान अथवा आपातकालीन सेवा के रूप में समझा जाता है। ऐच्छिक शारीरिक श्रम को भी समाज कार्य की श्रेणी में माना जाता है। इसी तरह सामाजिक कार्यकर्ता के अर्थ के विषय में भ्रम है। समाज सुधारक, दानी, परोपकारी, स्वैच्छिक कार्यकर्ता तथा नेता आदि सभी को समाज कार्यकर्ता कहा जाता है तथा वे अपने कार्यों को समाज कार्य कहते हैं। परिमाणत: आधुनिक समाज कार्य का भारतीय परिवेश में व्यावसायिक स्वरूप उभरने में कठिनाई हो रही है (सिंह & मिश्र 2017, पृ.134)।" इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत में समाज कार्य को एक व्यवसाय के रूप में पूर्ण मान्यता न प्राप्त होने का प्रमुख कारण यह भी है कि लोगों में समाज कार्य की कोई भी अवधारणा का विकसित न होना है।

भारत में समाज कार्य के प्रशिक्षण के प्रारंभ से लेकर आज तक कुछ मूल-भूत बदलावों के अतिरिक्त उसी रास्ते में समाज कार्य का प्रशिक्षण एवं अभ्यास चल रहा है। समाज कार्य शिक्षा के प्रारंभ होने के पश्चात् प्रशिक्षण संस्थानों एवं संगठन आदि की संख्या में तो वृद्धि हुई है, लेकिन समाज कार्य को भारतीय समाज में न अनुमोदन प्राप्त हुआ और न ही व्यावसायिक समाज कार्य का दर्जा प्राप्त हुआ है। आज भी भारतीय समाज में इसके अर्थ को लेकर के अनेक भ्रम बने हुए हैं। भारत में इसकी शिक्षा-प्रशिक्षण को प्रारंभ हुए, आठ दशकों से अधिक का समय बीत गया, लेकिन यह कहा जाए कि भारतीय समाज में इसकी क्या उपलब्धि रही है तो स्पष्ट होता है कि इतने समय के पश्चात् न ही कोई उपलब्धि रही है और न ही इसने पूर्ण व्यावसायिक स्वरूप को धारण कर पाया है। यह बात जरुर मान सकते है कि इसके स्वरूप में कुछ मूलभूत अंतर आए हैं, जो न के बराबर हैं। "यद्यपि भारत में समाज कार्य संबंधी शिक्षण-प्रशिक्षण का मात्रात्मक और गुणात्मक विकास हो रहा है किंतु इसे अपेक्षित परिपक्वता हेतु राजकीय और स्वैच्छिक संबल की अभी काफी आवश्यकता हैं। सरकार और हम सबको मिलकर इस आवश्यकता की पूर्ती में और अधिक लगन से जुटना है। समाज कार्य शिक्षण-प्रशिक्षण को अपनी परिस्थितियों के अनुरूप गठित और विकसित करना है (शास्त्री, 2016. पृ.51)।" इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि आज समाज कार्य को दोबारा से संगठित कर नया आधार प्रदान करने की आवश्यकता है।

भारत में समाज कार्य पाठ्यचर्या को पुन: संरचित करने की आवश्यकता है। आज भारत में समाज कार्य की जो पाठ्यचर्या है। वह मुख्यतौर पर पाश्चात्य साहित्य, प्रविधियों एवं प्रणालियों पर

आधारित है। समाज कार्य की अधिकांशत: पुस्तकें अमेरिकी व अन्य पाश्चात्य देशों के लेखकों एवं विचारकों द्वारा लिखी गई हैं। इस संबंध में नागपाल के इस संदर्भ से रेखांकित होता है कि 'यहां तक आज भी कोई मौलिक किताब भारतीय समाज कार्य पर उपलब्ध नहीं है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन का वर्णन हो।' यद्यपि इस दिशा में जो प्रयास हुए हैं, उसमें सिर्फ पाश्चात्य साहित्य को उसी रूप में लेकर के भारतीय परिपेक्ष्य में प्रतिरूपित कर दिया गया है। भारतीय दर्शन, साहित्य एवं संस्कृति आदि पर अध्ययन एवं विचार कर समाज कार्य के क्षेत्र में कोई भी कार्य नहीं हुए हैं। साथ ही भारतीय भाषाओं में समाज कार्य की पुस्तकों का अभाव भी आमजनों तक समाज कार्य की पहुँच में एक बाधा है। नागपाल ने भारत में समाज कार्य को पुन: संरचित करने संदर्भ में स्पष्ट किया है कि 'समाज कार्य को व्यवसायीकरण की ओर जाना होगा। इसे एक तरफ प्रभावशाली सांस्कृतिक दर्शन की नींव तैयार करनी होगी, वहीं दूसरी लक्ष्य प्रतिवर्धित करना पड़ेगा एवं उन्हें बढ़ाना होगा।'

जिस प्रकार सभी विषयों एवं कार्यप्रारूप की अपनी नैतिकता होती है। उसी प्रकार समाज कार्य अभ्यास की भी अपनी नैतिकता होती है। समाज कार्य अभ्यास की नैतिकता समाज कार्य के सिद्धांतो से प्रभावित होती है, जिसके अंतर्गत लोगों को उनकी आवश्यकता के अनुसार सहायता करना, सामाजिक अन्याय के विरोध में आवाज उठाना, मानवीय गरिमा की रक्षा करना, समाज में परस्पर अंत:निर्भरता एवं सहिष्णुता को बढ़ावा देना तथा समाज में सक्षमता को मजबूत करना होता है। समाज कार्य अभ्यास की दृष्टि से ये सभी उपर्युक्त मूल्य उच्च मानवीय मूल्यों की सूचक हैं, ऐसे में धर्म समाज कार्य अभ्यास के परिप्रेक्ष्य में अहम भूमिका निभा सकता है। धर्म का तात्पर्य महान मूल्यों को धारण करके अपने जीवन को मर्यादित रूप में जीने से होता है। एक सच्चा धर्म व्यक्ति के अंदर परमार्थ की भावना पैदा करता है, जिसके कारण व्यक्ति के जीवन के कर्म की दिशा स्वार्थ केंद्रित न होकर समाज केंद्रित हो जाती है। धर्म का मूल्य अंश सत्य एवं त्याग होता है। एक समाज कार्य अभ्यास के अंतर्गत मूल्यों की अत्यधिक जरूरत पड़ती है। जब समाज कार्य अभ्यास की प्रक्रिया में मूल्यों को समाविष्ट किया जाता है तो समाज कार्य अभ्यास के नैतिकता की दृष्टि से व्यक्ति के विकास के साथ-साथ उसकी गरिमा की रक्षा होती हो और समाज में वैमनस्यता एवं असमानता जैसी बुराइयां खत्म हो जाती हैं।

भारत में प्राचीन काल से ही भारतीय ज्ञाताओं ने माना है कि 'सेवा परमो धर्म:' अर्थात सेवा परम धर्म है, लेकिन कुछ विशेष सेवा हेतु विशिष्ट ज्ञान एवं निपुणता की आवश्यकता होती है, जिसका उपयोग यहां होता रहा है। भारत में समाज कार्य पारस्परिक सहायता, दान और विश्वप्रेम के रूप में प्राचीन काल से ही विद्यमान है। समस्या ग्रस्त व्यक्ति की सेवा और आपसी सहयोग एवं पारस्परिक सहायता से कार्य करने की भावना प्राचीन काल से ही भारतीयों का अपना विशिष्ट गुण रहा है। "भारतीय मनीषी त्याग एवं तपश्या के प्रतीक थे अत: अर्थ की तो कामना ही नहीं करते थे (सिंह & पांडेय 2017,

पृ.153)।" भारतीय संस्कृति में सेवा, विश्वप्रेम एवं पारस्परिक सहायता के मूल्यों को विशेष महत्ता प्रदान की गई है। गरीबों को दान देना एवं दिव्यांगों को भोजन कराना और उनकी देखभाल करना आदि विभिन्न कार्य प्राचीन काल से ही हमारे यहां प्रचलित थे। आज आवश्यकता है कि इसी को आधार बनाकर नये स्वरूप में समाज कार्य को संगठित करें।

निष्कर्ष

भारत में समाज कार्य की व्यावसायिक स्थिति के अध्ययन के उपरांत यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि भारत में समाज कार्य आज भी व्यावसायिक दर्जा को प्राप्त नहीं कर सका। समाज कार्य को भारतीय परिप्रेक्ष्य में अगर व्यावसायिक दर्जा प्राप्त करना है तो स्वदेशी ज्ञान, साहित्य एवं निपुणताओं के आधार पर अपनी पाठ्यचर्या को पुन: संरचित करने की आवश्यकता है। समाज कार्य की पाठ्यचर्या को भारतीय परिवेश के अनुरूप गढ़ना होगा तथा उसे एक नया स्वरूप स्वरूप प्रदान करना होगा। इस नए स्वरूप में प्राचीनतम पद्धतियों एवं परंपरागत ज्ञान को आधार बनाकर समकालीन समय के अनुरूप एक ऐसा स्वरूप प्रदान करने की जरूरत है, जिसमें आधुनिक विज्ञान एवं तकनीकी के साथ भारतीय अध्यात्म, दर्शन, संस्कृति आदि का समावेश हो। आधुनिक युग में विभिन्न समाज सुधारकों एवं विद्वानों ने सामाजिक कार्य के क्षेत्र में विभिन्न कार्य किए हैं और इससे संबंधित अवधारणाएं विकसित की हैं। आज आवश्यकता है कि समाज कार्य की पाठ्यचर्या में उनके अनुभवों, ज्ञान एवं प्रयोग इत्यादि को देशज स्वरूप में प्रतिरूपित किया जाए। आधुनिक युग में समाज कार्य के क्षेत्र में कार्य करने वाले प्रमुख समाज सुधारकों के मूल्य समाज कार्य को व्यावहारिक एवं भारत में व्यावसायिक स्वरूप प्रदान करने में सक्षम हैं। राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, महात्मा गांधी, डॉ. भीमराव आंबेडकर, विनोबा भावे एवं नानाजी देशमुख आदि प्रमुख समाज सुधारकों ने सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन लाने तथा सामाजिक संबंधों को प्रगाढ़ता लाने उद्देश्य से विविध कार्य किए हैं, जिनके अनेकों परिणाम समाज में उदाहरण स्वरूप विदित है। इस तरह समाज कार्य को भारतीय परिवेश में व्यावसायिक स्वरूप प्रदान करने हेतु पाश्चात्य ज्ञान एवं प्रविधियों आदि को छोड़कर अपने पाठ्यचर्या को पुन:संरचित कर अपने दर्शन, साहित्य, संस्कृति आदि को समावेशित कर नये स्वरूप में गठित करना होगा। यही हमारी आवश्यकता भी है और भारत में समाज कार्य को व्यावसायिक स्वरूप प्रदान करने का रास्ता भी है।

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

संदर्भ-सूची

1. *शास्त्री, रा. (2016). समाज कार्य. लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान.*
2. *सिंह, सु. & वर्मा, आर. (2014). भारत में समाज कार्य के क्षेत्र. लखनऊ : न्यू रॉयल बुक कंपनी.*
3. *सिंह, की. & पाण्डेय, बा. (2017). भारत में समाज कार्य के नये आयाम. लखनऊ : भारत बुक सेंटर.*
4. *पाण्डेय, बा. & पाण्डेय, ते. (2018). सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य. नई-दिल्ली : रावत प्रकाशन.*
5. *मदन, जी. (2014). समाज कार्य. दिल्ली : विवेक प्रकाशन.*
6. *सिंह, सु. & मिश्र, पी. (2017). समाज कार्य : इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियां. लखनऊ : न्यू रॉयल बुक कंपनी.*
7. *कुमार, गि. (2013). समाज कार्य के क्षेत्र. लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान.*
8. *Misra, P.D. & Misra, Bina. (2016). Social work Profession in India. Lucknow : New Royal Book Company.*
9. *हाजरा, अ. (2012, 08, 10). भारत में सामाजिक कार्य की वर्तमान संभावनाएँ, इंडिया वाटर पोर्टल. (https://hindi.indiawaterportal.org/content/bhaarat-mean-saamaajaika-kaarya-kai-varatamaana-sanbhaavanaaen/content-type-page/38335)*

चंद्रपुर में स्वास्थ्य समस्या और सीएसआर की पहल का अध्ययन

(A Study of Health problems and CSR initiatives in Chandrapur)

डॉ. मिथिलेश कुमार तिवारी
सहायक प्राध्यापक, प्रयागराज केंद्र
(वर्धा समाज कार्य संस्थान)
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
वर्धा महाराष्ट्र

सुश्री. माधुरी श्रीवास्तव
पीएच-डी. शोधार्थी
(वर्धा समाज कार्य संस्थान)
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
वर्धा महाराष्ट्र

सारांश(Abstract)-
प्रस्तुत शोध पत्र में कंपनी अधिनियम 2013 की कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व का अध्ययन किया गया हैं। जिसमें कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व द्वारा चंद्रपुर में होने वाले प्रदूषण को कम करने की गतिविधियां कितनी प्रभावी हैं , इसका अध्ययन किया गया हैं , जिसमें यह जानने का प्रयास किया गया हैं की चंद्रपुर औद्योगिक क्षेत्र में होने वाले स्वास्थ्य समस्या कम करने के लिए कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व द्वारा क्या क्या उपाय या क्या उपक्रम किए गए हैं और कितना सफलता पूर्वक प्रयास रहा हैं इसका अध्ययन किया गया हैं। इस शोध पत्र का उद्देश्य चंद्रपुर में सीएसआर द्वारा स्वास्थ्य हेतु किए गए उपाय को समझना हैं।

मुख्य शब्द (Key word) – चंद्रपुर औद्योगिक क्षेत्र, स्वास्थ्य समस्या, CSR

प्रस्तावना –

औद्योगिककरण द्वारा हम विविध समस्याओं को देख सकते हैं जिसमें पर्यावरणीय क्षति महत्वपूर्ण हैं। उद्योग शुरू करने के लिए पेड़ की कटाई होती हैं, शहरीकरण के लिए बड़े स्तर पर प्रकृति के साथ मानव हस्तक्षेप करता हैं। बढ़ती हुई मानवी आवश्यकता और आधुनिकीकरण, रोजगार ऐसे कितने ही मुद्दे हैं जिसके कारण लोग गाँव से सीधा शहरों की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। मानवी जरूरतों ने उद्योग के विविध गुंजाइशों(scope) को जन्म दिया हैं। जिससे बड़े बड़े औद्योगिक क्षेत्र को बढ़ावा मिला हैं। यह बड़े बड़े औद्योगिक क्षेत्र ज्यादा तर नदियों के किनारे हैं। औद्योगिक क्षेत्र में पानी की आपूर्ति आसानी से हो पाए इसीलिए नदियों के किनारे स्थापित किए जाते हैं। ऐसे कारखानों से निकलने वाले जहरीले पदार्थ,

वायु और द्रव के रूप में कुछ नदी में घुल जाते हैं तो कुछ हवा को दूषित करते हैं। जिससे नदी के जीव जन्तु साथ ही पशु पक्षी के साथ साथ मानव के स्वस्थ्य को भी बुरी तरह प्रभावित करते हैं। औद्योगिक क्षेत्र द्वारा होने वाली विभिन्न समस्याओं की रोकथाम के उपाय किए जा रहे हैं। हमारे पास बहुत ही सीमित संसाधन हैं फिर भी हम तेजी से संसाधनों का उपयोग किए जा रहे हैं। ऐसे औद्योगिक क्षेत्र की समस्याओं के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर द्वारा प्रयास तो किए जा रहे हैं, साथ साथ सरकारी एवं गैर- सरकारी संगठन के क्षेत्र द्वारा समस्याओं के रोकथाम के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। लेकिन सीमित संसाधन के कारण जैसे आर्थिक संसाधन, मानव संसाधन के कारण हम अपने लक्ष्यों तक पहुँचने में चूक रहे हैं। सरकारी एवं गैर- सरकारी संगठन को भी यह चुनौती पूर्ण कार्य करने में समस्याओं का सामना करना पड़ा हैं। ऐसे ही समस्याओं को कम करने के लिए **कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व** (CORPORATE SOCIAL RESPONSIBILITY) को हमारे समाने प्रस्तुत किया गया था। कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व द्वारा भारत के निजी क्षेत्र कंपनी अब समाज मे होने वाली समस्याओं को ठीक करने में अपना पूर्ण रूप से सहयोग कर रही हैं । स्वास्थ्य समस्या की रोकथाम के लिए **कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व** द्वारा किए जाने वालें उपाय का अध्ययन इसी शोध पत्र के माध्यम किया गया हैं।

साहित्य पुनरावलोकन (Review Literature)-

अमेरिका खाद्य सेवा समूह का कोविड 19 के दौरान विकट परिस्थिति से बचने के लिए कॉर्पोरेट सामाजिक ज़िम्मेदारी उपाय को अपनाया हैं ऐसा अध्ययन किया गया हैं। अमेरिका खाद्य समूह ने अपने हितधारकों के लिए, उन्हे कोविड से बचाने के लिए रेस्टोरेंट(restaurant) के माध्यमों से लोगो की सहायता करने का प्रयास सीएसआर के माध्यम से किया गया हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में दर्शाया गया हैं कि कापर्स भाषा विज्ञान की सहायता से तीन चरणों में अमेरिका के दस होटल से प्रेस विज्ञप्ति के जरिए विश्लेषण किया गया हैं साथ ही सीएसआर की पहचान के साथ अपने हितधारकों के बीच निर्माण हुए संकट के बीच जुड़ता हैं। इस शोध पत्र से याह जानने का भी प्रयास किया गया हैं कि सीएसआर प्रासंगिक समस्याओं का समाधान करता हैं साथ ही संगठनात्मक तौर पर संकट से निपटने में सीएसआर काफी प्रभावी रहा हैं। शोधकर्ता ने प्रस्तुत किया हैं कि अमेरिकी होटल निगमों द्वारा कोविड 19 महामारी से निपटने के प्रयास के साथ साथ हितधारकों के सख्त और कोविड के कारण सहन किए गए दर्द को कम करने का प्रयास सीएसआर ने किया हैं।

(JuanjuanOu, January 2021)। कंपनी के नैतिक ज़िम्मेदारी को सीएसआर के माध्यम से दर्शाने का प्रयास किया हैं। उन्होने बताया हैं कि कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व के जरिए कंपनियों को एकीकृत किया जाता हैं जिसे कोई भी एक तरह से परिभाषित नही कर सकता हैं। साथ ही इसकी अवधारणा व्यापार जगत में व्यापक हैं। सीएसआर की महत्ता (importance) अनुसंधान के क्षेत्र में उन

सिद्धान्त और मॉडेल को विकसित कर रहे हैं जो समाज के हितधारक की जरूरतों पर विचार करते हैं या किया जाता हैं। स्टेकहोल्डर सेंटर्ड दृष्टिकोण को दर्शाता हैं। सीएसआर के माध्यम से संस्थागत अभियान का उद्देश्य समस्या अथवा संघर्ष के नैतिक आयाम को समझते हुए निर्णय एवं प्रबंधन (Management) करना हैं।

(Sara Rodriguez-Gomez, 20 August 2020) प्रस्तुत शोध पत्र कर्मचारी एवं सीएसआर की गतिविधि को दर्शाता हैं। जब कर्मचारी बाहर जा कर काम करते हैं , या अपना सब कुछ देकर कंपनी के मुनाफे में अपना योगदान देते हैं। तब वह अपनी नौकरी को केवल अपनी सैलरी/तनख़्वाह के रूप से कुछ अधिक पाने के रूप में काम करते हैं। साथ ही अपने काम को अधिक प्रभावी बनाने के लिए प्रयास करते हैं। साथ ही उनकी सैलरी से अधिक पाने की चाह उन्हें काम करने के लिए अधिक उत्सुक बनाती हैं। कर्मचारी के इस योगदान का उनके कार्य विवरण से कभी जोड़ने का प्रयास नही किया जाता हैं। कभी -कभी संगठन शांतिपूर्ण वातावरण निर्माण करता हैं और उन्हें अधिक कार्य करने के लिए बढ़वा देता हैं। इस कारण इस शोध पत्र में कर्मचारियों की कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व धारणा के प्रभाव की जांचकी गयी हैं। कर्मचारियों के नौकरी की संतुष्टि , भावनात्मक प्रतिबद्धता साथ ही संगठनात्मक नागरिकता का विचार किया गया हैं। जिसमें यह सामने आया हैं कि कर्मचारियों की कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व धारणा संगठनात्मक व्यवहार के साथ महत्वपूर्ण और सकारात्मक जुड़ाव हैं। साथ ही कर्मचारियों के भावनात्मक दृष्टिकोण को देखते हुए कर्मचारीयों की सीएसआर एवं संगठनात्मक व्यवहार के बीच हितधारकों तक मध्यस्थ के रूप के सक्रिय होते हैं।

(Asadullah Khaskheli, 03 August 2020) प्रस्तुत शोध पत्र कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व एवं स्वास्थ्य सेवा, वित्तीय सेवा साथ ही पर्यटन क्षेत्र के बीच संबंध का परीक्षण करता हैं। इस शोध पत्र मे यह जांच किया हैं कि क्या कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व समिति उस क्षेत्र में इस एसोसिएशन को मोड़रेट करती हैं। इस उद्देश्य प्राप्ति के लिए कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व को दो तरह अर्थात कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व का कार्य एवं कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व के कार्य मे बदलाव का उपयोग किया गया हैं। साथ ही सीएसआर में फोर्मिंग को भी समझने का प्रयास किया गया हैं। फ़र्म के कार्य को तीन आयामों मे मापा गया हैं - पहला मार्केट के आधार पर, दूसरा लेखा के आधार पर, तीसरा बिक्री के आधार पर। 2011 से 2018 तक थॉमस रोयटर्स इकोन डेटाबेस के आधार पर इन तीन क्षेत्र के डेटा को प्राप्त किया गया था। यह ज्ञात होता हैं कि वित्तीय क्षेत्र में सीएसआर द्वारा फ़र्म मूल्य उत्पन्न करता हैं साथ ही स्वास्थ्य और पर्यटन क्षेत्र नहीं कर सकते हैं। सीएसआर समितियों को स्वास्थ्य एवं पर्यटन क्षेत्र में बदलाव लाने की जरूरत हैं यह सुनिश्चित करना होगा।

(S.Karamand, 15 October 2021) यह शोध पत्र बहु पद्धति दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया हैं जिसमें फैशन आपूर्ति श्रृंखलाओं में सीएसआर की गतिविधियों को उजागर करता हैं। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से शोधर्थियों ने सीएसआर और फैशन, कार्यात्मक ब्रांड के प्रति उपभोक्ताओं के अपेक्षाओं की जांच की हैं। साथ ही यह उजागर करते हैं कि उच्च कीमत वाले साथ ही कार्यात्मक ब्रांड के लिए कम विज्ञापन स्तर के साथ उच्च सीएसआर प्रतिबद्धता करना जरूरी हैं। सीएसआर सुधार की स्थिति बनाने के हेतु बड़े बड़े फैशन ब्रांड को लुभाने के लिए, साथ ही ब्लॉक चैन जैसी विघटन कारी तकनीकों के उपयोग का प्रस्ताव करते हैं। यह भी सामने लाने का प्रयास किया गया हैं कि सीएसआर द्वारा फैशन कार्यात्मक ब्रांड के पहल को गहनता से समझने का प्रयास किया गया हैं।

(Hau-LingChanaXiaoyongWeibShuGuocWing-HongLeungd, October 2020,) प्रस्तुत लेख कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व और कर्मचारियों की भलाई साथ ही हरित व्यवहार और पर्यावरण जागरूकता के तीन स्तर अर्थात जागरूकता, चिंता और ज्ञान के प्रभाव को दर्शाता हैं। प्रस्तुत शोध आलेख को समझने के लिए शोधकर्ताओं ने जीव प्रतिक्रिया मॉडल के अनुरूप कार्य करने का प्रयास किया हैं। साथ ही सामाजिक विनिमय के सिद्धान्त का उपयोग कर्मचारियों के भलाई के साथ साथ उनके व्यवहार को समझने का प्रयास किया गया हैं। शोध का निष्कर्ष यह बताता हैं कि कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व द्वारा पर्यावरण संबंधी चिंता एवं ज्ञान, कर्मचारियों की भलाई पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता हैं। कर्मचारियों को कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व से जुडने के बाद पर्यावरण से अधिक जुड़ाव देखा गया हैं ऐसा प्रस्तुत शोध पत्र के निष्कर्ष बताते हैं।

(Mansoora Ahmed, 03 June 2020) यह लेख दर्शाता हैं कि कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व पिछले कुछ दशकों से चर्चा का विषय रहा हैं। साथ ही मौजूदा साहित्य द्वारा बड़े बड़े संगठनों के साथ सीएसआर के माध्यम से सामाजिक बदलाव हेतु निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं। लेकिन समझने वाली बात यह हैं कि सीएसआर केवल बड़ी बड़ी कंपनी द्वारा ही संचालित किए जाते हैं। जबकि छोटे और मध्यम उद्योगों पर बहुत कम ध्यान केन्द्रित होता हैं या ध्यान ही नहीं दिया जाता हैं। इस अध्ययन में यह पाया गया हैं कि पाकिस्तान जैसे विकासशील अर्थव्यवस्था के संदर्भ में छोटे ही मात्रात्मक रूप से छोटे अथवा मध्यम उद्योगों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता हैं। लेकिन यह भी सच हैं कि पाकिस्तान का लघु मध्यम उद्योग क्षेत्र कुछ बाधाओं के कारण कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व समितियां नहीं बना रहा हैं साथ ही सीएसआर के रूप में सक्रिय नही हैं , न ही सीएसआर में यह भाग ले रहा हैं। जिसका कारण हैं कि पाकिस्तान का यह क्षेत्र सीएसआर पहल करने से खुद को रोकने का प्रयास कर रहा हैं। जिसका विश्लेषण करते हुए यह ज्ञात हुआ हैं कि सीएसआर बाधाओं को पाँच प्रासंगिक रूप से देखने का प्रयास किया गया हैं। जिनमें **संसाधन की कमी, प्रबंधन की कमी, नियमों की कमी, सीएसआर ज्ञान**

की कमी, निष्क्रिय ग्राहक व्यवहार शामिल हैं। इस प्रकार यह शोध पत्र सीएसआर की बाधाओं को उजागर करने का प्रयास करता हैं।

(Zengming Zou 1, 19 January 2021) सीएसआर सामाजिक प्रभाव के लिए एक सकारात्मक दिशा प्रदान करता हैं। सीएसआर गतिविधि को कॉर्पोरेट प्रबंधन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण कारक माना गया हैं। इस शोध पत्र से यह ज्ञात होता हैं कि भविष्य में कॉर्पोरेट लाभ के लिए कॉर्पोरेट सामाजिक ज़िम्मेदारी की गतिविधियों के बारे मे हितधारकों की धारणा को समझने की अत्याधिक आवश्यकता होती हैं। इस अध्ययन में कॉर्पोरेट की छवि, हितधारकों का व्यवहार साथ ही दीर्घकालिक सम्बन्धों को दर्शाया हैं जिसमें ज्ञात होता हैं कि सीएसआर की छवि जैसे नैतिक, आर्थिक, कानूनी एवं परोपकारी हैं। जिसमें उपभोकताओं की मदत करना आदि हैं। सीएसआर संगठनात्मक लक्ष्य के रूप में दीर्घ कालिक संबंध को निर्माण करने का एक सफल प्रयास साबित हुआ हैं। जिसमें कॉर्पोरेट कंपनी सीएसआर के माध्यम से अनुभवजन्य निहितार्थ प्रदान करती हैं।

(MinjungKimaXuemeiYinbGyuminLee, July 2020) प्रस्तुत शोध पत्र में शोधर्थियों ने उजागर किया हैं कि उद्योगो में सीएसआर की महत्ता बढ़ती नज़र आ रही हैं। कॉर्पोरेट सामाजिक ज़िम्मेदारी एवं कर्मचारियों के बीच संबंध पर कर्मचारी सार्थकता और करुणा की मध्यस्था करते हुए सीएसआर की गतिविधियों को अर्थपूर्ण दिशा प्रदान करता हैं। अगर सीएसआर एक सफल प्रयास बन रहा हैं तो उसका कारण सकारात्मक मनोवृत्ति कर्मचारियों की सहभागिता ही हैं।

(UlIslam, September 2020) कॉर्पोरेट सामाजिक ज़िम्मेदारी रेपोर्टिंग टूल की संख्या बढ़ रही हैं। चिकित्सकों के लिए सीएसआर रेपोर्टिंग टूल का उपयुक्त चयन करना जटिल हो गया हैं। सामाजिक समस्या का समाधान करने के लिए सीएसआर एक रेपोर्टिंग टूल को मानक, फ्रेमवर्क, एवं रेटिंग साथ ही सूचकांक वर्गों में वर्गीकृत किया हैं। इस वर्गीकरन के आधार पर सीएसआर रेपोर्टिंग टूल 2001 से 2016 के बीच प्रकाशित जर्नल पेपर के मध्यम से शोधर्थियों के दृष्टिकोण को नियोजित किया हैं। साथ ही यह भी ज्ञात होता हैं कि सीएसआर रेपोर्टिंग टूल जैसे मानकों, रेटिंग, आदि को सीएसआर रेपोर्टिंग में लागू नहीं किया जाता हैं। अगर इस सीएसआर टूल का अच्छे से उपयोग किया जाए तो समाज में सीएसआर की प्रभाविता का अध्ययन किया जा सकता हैं।
(OlubunmiOlanipekunaTemitopeOmotayobNajimuSaka, July 2021)

शोध प्रविधि(Research Methodology)

प्रस्तुत शोधपत्र गुणात्मक स्वरूप का हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में प्रतिदर्श हेतु सीएसआर कंपनी का चयन स्नोबॉल प्रतिदर्श प्रविधि से किया गया हैं। जो वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प में आएगा। प्रस्तुत शोध

हेतु तथ्यों का संकलन प्राथमिक एवं द्वितीयक पद्धति द्वारा किया गया हैं। प्राथमिक तथ्य संकलन के लिए असंरचित साक्षात्कार का उपयोग किया गया हैं एवं द्वितीयक तथ्य संकलन के लिए ग्रंथालय प्रविधि का उपयोग किया गया हैं। लेकिन तथ्यों का विश्लेषण सीएसआर रिपोर्ट के आधार पर किया गया हैं जिसमें वर्ष 2019-2020 को शामिल किया गया हैं। साथ ही प्रकाशित तथ्यों का संकलन कर अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया हैं।

शोध प्रश्न (Basic Research question) –

1. चंद्रपुर औद्योगिक क्षेत्र में प्रदूषण से होने वाली स्वास्थ्य समस्या कौन - कौन सी हैं ?
2. कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व नीति द्वारा स्वास्थ्य सुधार हेतु किस प्रकार निवेश किया जा रहा हैं ?

शोध के उद्देश्य (Research Objective)-

- चंद्रपुर औद्योगिक क्षेत्र में स्वास्थ्य समस्या का अध्ययन करना।
- चंद्रपुर औद्योगिक क्षेत्र में कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व की गतिविधि का अध्ययन करना एवं प्रासंगिकता को समझना हैं।

तथ्यों का विश्लेषण (Data Analysis)-

प्रस्तुत शोध पत्र चंद्रपुर की सीएसआर कंपनी की गतिविधियों पर आधारित हैं। जिसमें यह जानने की कोशिश की गयी हैं की चंद्रपुर की कंपनी अपने आय/income/उत्पादन के साथ साथ समुदाय, समाज के लिए अपनी ज़िम्मेदारी को किस प्रकार से निर्वहन कर रही हैं इसका अध्ययन किया गया हैं। प्रस्तुत शोध पत्र हेतु, अंबुजा सीमेंट कंपनी चंद्रपुर, वेस्टर्न कोल लिमिटेड चंद्रपुर, स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया(Alloy plant चंद्रपुर), धारीवाल इनफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड चंद्रपुर आदि शामिल हैं।

अंबुजा सीमेंट कंपनी / सीएसआर-

अंबुजा सीमेंट कंपनी की स्थापना साल 1983 में की गयी थी। सुरेश नियोटिया और नरोत्तम सेख्सरिया इन दो व्यापारियों द्वारा सीमेंट का कम ज्ञान होते हुए भी अपनी दूरदृष्टि के साथ कंपनी की स्थापना की थी। अंबुजा सीमेंट संस्था भारत के 46 जिलों में कार्य करते हुए अभी तक 26 लाख लोगों के जीवन में बदलाव लाने में सफल हुई हैं। लेकिन प्रस्तुत शोध पत्र में केवल चंद्रपुर महाराष्ट्र के स्वस्थ्य विषयक कार्यक्रम का विश्लेषण किया गया हैं जो निम्नानुसार हैं।

सारणी क्रमांक 1- (स्वास्थ्य विवरण)

सीएसआर एजेंसी / Agency Name	स्वास्थ्य पर खर्च /	कार्यक्रम का नाम / Name of program	हितधारक / Beneficiary	सीएसआर का स्थान/ Location

	Expenditure on Health			
अंबुजा फ़ाउंडेशन	43 लाख रुपए	सामुदायिक दवाखाना, मातृ शिशु स्वास्थ्य, मासिक धर्म स्वच्छता प्रबंधन, स्वच्छ और तंबाकू मुक्त कार्यक्रम ,	गाँव के सभी लोग, महिलाएं, बच्चे, किशोरी लड़कियां आदि	चंद्रपुर के 8751 गाँव (महाराष्ट्र)

Source-
https://www.ambujacementfoundation.org/uploads/cleanupload/ACF_AR_19_20.pdf

उपरोक्त सारणी दर्शाती हैं की सीएसआर गतिविधियों में अंबुजा सीमेंट कंपनी द्वारा स्वास्थ्य के संदर्भ में 43 लाख रुपए खर्च किए हैं। जिसमें कि सामुदायिक दवाखाना, मातृ शिशु स्वास्थ्य, मासिक धर्म स्वच्छता प्रबंधन, स्वच्छ और तंबाकू मुक्त कार्यक्रम शामिल हैं। सीएसआर के अंतर्गत हितधारकों में गाँव के सभी लोग, महिलाएं, बच्चे, किशोरी लड़कियां आदि शामिल हैं। साथ ही स्वास्थ्य विषयक कार्यक्रम चंद्रपुर के सभी गाँव में संचालित किए गए हैं। प्राप्त तथ्यों से यह ज्ञात होता हैं कि अंबुजा सीमेंट कंपनी द्वारा सीएसआर के माध्यम से लोगों में उनके स्वास्थ्य सुधार के लिए विभिन्न कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। स्वच्छता से लेकर माता- शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम चलाया जाता हैं जिससे कि समुदाय में सभी को अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त हो सके ऐसा प्रयास रहा हैं।

स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (सेल)/ सीएसआर –

स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड के अंतर्गत चंद्रपुर में फेरो अलॉय प्लांट स्थापित हैं। मिनिस्टरी ऑफ स्टील अँड माइन द्वारा उद्योग के लिए एक मॉडेल विकसित करने का मसौदा तैयार किया था, जिसे 2 दिसंबर 1972 में संसद में प्रस्तुत किया गया था। जिसके अंतर्गत उद्योग प्रबंधन द्वारा स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड का गठन किया गया था। इस स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड कंपनी को 24 जनवरी 1973 में अधिकृत पूंजी के साथ शामिल किया गया था। जिसे भिलाई, बोकारो, दुर्गापुर, बर्नपुर , राऊरकेला में पाँच एकीकृत मिश्र धातु इस्पात संयंत्र(Alloy Steel Plant), साथ ही सेलम इस्पात संयंत्र(Salem Steel Plant) को 1978 में पुनर्गठित किया गया था। साल 2011 से चंद्रपुर फेरो

अलॉय प्लांट भारत का मैंगनीज आधारित फेरो एलॉय के उत्पादन का सबसे बड़ा क्षेत्र साबित हुआ हैं। साथ साथ स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड समाज के हित के लिए सामुदायिक ज़िम्मेदारी को निभाने का प्रयास भी किया हैं जिसे निम्न सारणी द्वारा दर्शाया गया हैं।

सारणी क्रमांक 2- (स्वास्थ्य विवरण)

सीएसआर एजेंसी / Agency Name	स्वास्थ्य पर खर्च / Expenditure on Health	कार्यक्रम का नाम / Name of program	हितधारक / Beneficiary	सीएसआर का स्थान/ Location
Not Declared	810 लाख रुपए	1500 हेल्थ कैंप, 3 करोड़ Plant for Emergency कोविड 19, 5 करोड़ PM care fund	सभी लोग, महिला- पुरुष, बच्चे, बुजुर्ग आदि।	महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, कर्नाटक, बिहार, तमिलनाडु, झारखंड, छत्तीसगढ़, ओड़ीसा आदि

Source - https://sail.co.in/sites/default/files/2020-10/SAIL-Sustainability-Report-2019-20-17.pdf
https://indiacsr.in/corporate-social-responsibility-of-sail/
https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1707218

उपरोक्त सारणी के तथ्यों का विश्लेषण स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड के वार्षिक रिपोर्ट द्वारा किया गया हैं जिसमें सामुदायिक ज़िम्मेदारी के प्रति कंपनी ने अपना योगदान देते हुए स्वास्थ्य पर कुल सीएसआर फंडिंग द्वारा 810 लाख रुपए खर्च किए हैं। जिसमें 1500 हेल्थ कैंप, 3 करोड़ Plant for Emergency कोविड 19, 5 करोड़ PM care fund आदि को शामिल किया गया हैं। SAIL के हितधारक में सभी को शामिल किया गया हैं , जिसे देश के महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, कर्नाटक, बिहार, तमिलनाडु, झारखंड, छत्तीसगढ़, ओड़ीसा आदि राज्य को शामिल किया गया हैं। प्राप्त तथ्य से यह स्पष्ट होता हैं की सेल द्वारा जितना उत्पादन किया जा रहा हैं उतना ही सामाजिक जिम्मेदारियों को भी पूरा करने का प्रयास किया गया हैं।

वेस्टर्न कोल लिमिटेड(डबल्यूसीएल) सीएसआर-

वेस्टर्न कोल लिमिटेड, कोल इंडिया लिमिटेड की 8 सहायक कंपनियों से एक हैं। कोल इंडिया लिमिटेड कोयला मंत्रलाय की सबसे बड़ी एजेंसी में शामिल हैं। चंद्रपुर में वेस्टर्न कोल लिमिटेड हैं जिसका मुख्यालय नागपूर शहर में हैं। चंद्रपुर में यह कोयला खदानों द्वारा रोजगार तो मिला हैं लेकिन स्वास्थ्य की समस्या भी बढ़ी हैं , खदानों द्वारा जमीन अंदर ही अंदर खोखली तो होती ही जा रही हैं साथ ही

साथ खदान के परिसर में रहने वाले लोगों के साथ साथ खदानों से दूर रहने वालों में भी स्वास्थ्य की समस्या भी देखने मिलती हैं। कोयले के सूक्ष्म कणों द्वारा अस्थमा जैसी जानलेवा बीमारियाँ बच्चों में भी देखने के लिए मिल रही हैं। जिस कारण प्रस्तुत शोध पत्र द्वारा वेस्टर्न कोल लिमिटेड द्वारा सामाजिक जिम्मेदारियों को देखते हुए स्वास्थ्य संबंधित समस्याओं को कम करने के लिए किस प्रकार के प्रावधान किए गए हैं यह समझने का प्रयास किया गया हैं। प्रस्तुत तथ्य का विश्लेषण डबल्यूसीएल के पब्लिक डाटा के अनुसार किया गया हैं। जिसे समझने एवं समझाने का प्रयास प्रस्तुत शोध पत्र द्वारा किया हैं।

सारणी क्रमांक 3 - (स्वास्थ्य विवरण)

सीएसआर एजेंसी / Agency Name	**स्वास्थ्य पर खर्च / Expenditure on Health**	**कार्यक्रम का नाम / Name of program**	**हितधारक / Beneficiary**	**सीएसआर का स्थान/ Location**
Not Declared	35.6 लाख रुपए	हेल्थ कैंप, कम्यूनिटी क्लीनिक, Renovation of Toilet, स्वच्छता कॉम्पटिशन, स्वच्छता जागरूकता कार्यक्रम	All people of villages	चंद्रपुर, बल्लारशाह, तडाली, वणी

Source- http://103.59.142.228:8081/wclweb/CSR-activites-2020-21.pdf
http://westerncoal.in/sites/default/files/userfiles/CSR-Budget_Exp.pdf
http://westerncoal.in/sites/default/files/userfiles/CSR-activities-2019-20.pdf

उपरोक्त सारणी में प्राप्त तथ्यों से ज्ञात होता हैं की वेस्टर्न कोल लिमिटेड द्वारा साल 2019-2020 में कुल सीएसआर फंडिंग में से 35.6 लाख रुपए खर्च किए हैं। जिसमें चंद्रपुर के तहसीलों में चंद्रपुर, बल्लारशाह, तडाली, वणी को शामिल किए हैं। स्वास्थ्य कार्यक्रमों में हेल्थ कैंप, कम्यूनिटी क्लीनिक, Renovation of Toilet, स्वच्छता कॉम्पटिशन, स्वच्छता जागरूकता कार्यक्रम आदि संचालित किए गए हैं। साथ ही सभी हितधारकों को ध्यान में रखते हुए अलग अलग स्वास्थ्य कार्यक्रम संचालित किए हैं। यह तो स्पष्ट हैं की सामाजिक जिम्मेदारियों को पूर्ण करने का प्रयास वेस्टर्न कोल लिमिटेड द्वारा किया गया हैं।

धारीवाल प्रायवेट लिमिटेड / सीएसआर –

धारीवाल प्रायवेट लिमिटेड एक कोल बेस्ड विद्युत उत्पादन कंपनी हैं जो चंद्रपुर शहर के तडाली एरिया में स्थित हैं। यहाँ कोयले द्वारा बिजली उत्पादन किया जाता हैं। यह कंपनी विद्युत उत्पादन की गुणवत्ता,

व्यावसायिक संबंधी सभी वैधानिक, आवश्यकताओं का अनुपालन करती हैं। साथ ही सामुदायिक जिम्मेदारियों को ध्यान में रखते हुए पर्यावरणीय संवर्ध एवं मानवीय सुरक्षा हेतु अपना योगदान दे रही हैं। इस कंपनी द्वारा सीएसआर के अंतर्गत विभिन्न कार्यक्रम संचालित हो रहे हैं लेकिन अभी तक कोई पब्लिक डेटा उपलब्ध नहीं हैं। निम्न तथ्यों का विश्लेषण गाँव के हितधारकों के साथ साक्षात्कार के बाद किया गया हैं।

सारणी क्रमांक 4 - (स्वास्थ्य विवरण)

सीएसआर एजेंसी / Agency Name	**स्वास्थ्य पर खर्च / Expenditure on Health**	**कार्यक्रम का नाम / Name of program**	**हितधारक / Beneficiary**	**सीएसआर का स्थान/ Location**
पहेल मल्टीपर्पज़ सोसायटी	Not Declared	हेल्थ कैंप, स्वच्छता कार्यक्रम, शौचालय की व्यवस्था	All people of villages	चंद्रपुर के 10 गाँव

Source-https://www.mpcb.gov.in/sites/default/files/constent-status/amended-consents-thermal-power-plants/Ms_Dhariwal_infrastructureLtdTPP.pdf

उपरोक्त सारणी में यह दर्शाया गया हैं कि द्वारा सीएसआर पर होने वाले निवेश की कोई जानकारी पब्लिक डोमैन में उपलब्ध नही हैं। संस्था सीएसआर के अंतर्गत चंद्रपुर के 10 गाँव को शामिल किया गया हैं। जिसमें पंधरकवाड़ा, धनोरा, शेनगाँव, तडाली, मोरवा, अंतुर्ला, सोनेगांव आदि शामिल हैं। उत्तरदाताओं से यह भी ज्ञात हुआ कि धारीवाल सीएसआर अंतर्गत गाँव में स्वास्थ्य के लिए हेल्थ कैंप, स्वच्छता कार्यक्रम, शौचालय की व्यवस्था आदि की गयी हैं। प्राप्त तथ्यों से यह ज्ञात होता हैं कि सीएसआर द्वारा गाँव में लोगों का जीवन सुधारने का प्रयास किया जा रहा हैं।

निष्कर्ष-

प्रस्तुत शोध पत्र चंद्रपुर जिले के सीएसआर गतिविधियों पर किया गया हैं जिसमें स्वास्थ्य संबंधी गतिविधियों को ध्यान में रखते हुए सीएसआर द्वारा क्या क्या कार्यक्रम आयोजित किए गए हैं इसका अध्ययन करने का प्रयास किया गया हैं।

सीएसआर कंपनियों के गतिविधियों में मुख्य रूप से अपने औद्योगिक क्षेत्र की समस्याओं को समझना जरूरी हैं। अपने हितधारकों के जरूरत, समस्या की प्राथमिकता को निर्धारित करना चाहिए। एक

 ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

औद्योगिक कंपनी अपने उत्पादन, वितरण, विपणन, ग्राहक आदि पर ही ध्यान केन्द्रित करती हैं। लेकिन इन सब के साथ साथ सीएसआर में सामाजिक समस्याओं को समझने के लिए सरकारी-गैर सरकारी संगठन की सहायता के साथ समस्याओं को समझना होगा, एवं उसके हिसाब से हितधारक का प्राथमिक जरूरत के हिसाब से चयन करना होगा। जैसे औद्योगिक क्षेत्र में रहने वाली बस्तियाँ और उसकी समस्या, गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य पर होने वाले गंभीर परिणाम, बच्चों, बुजुर्ग आदि का वर्गीकरण करना और सीएसआर गतिविधियों को क्रियान्वित करना चाहिए। सीएसआर एक ऐसा माध्यम हैं जिससे प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक बदलाव में एक बड़ा योगदान साबित हो सकता हैं।

Doctors and environmentalists at Chaupal Charcha held at the .. Chandrapur AQI always over 200, lif ..

Source -Read more at:

http://timesofindia.indiatimes.com/articleshow/87917662.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaign=cppst

संदर्भ-ग्रंथसूची

Works Cited

1. *2021, I. C. (2021, 07 23). CSR: BALCO conducts training program on Menstrual Health Management. Retrieved 5 3, 2021, from https://indiacsr.in/csr-balco-conducts-training-program-on-menstrual-health-management/*
2. *2. Asadullah Khaskheli, Y. J. (03 August 2020). Do CSR activities increase*
3. *organizational citizenship behavior among employees? Mediating role of affective commitment and job satisfaction. Wiley Online Library , volume 27 .*
4. *csr, i. (2021, 11 08). CSR : Honeywell to provide drinking water to 90000 people. Retrieved 12 2, 2021, from https://indiacsr.in/csr-honeywell-to-provide-drinking-water-to-90000-people/*
5. *Hau-LingChanaXiaoyongWeibShuGuocWing-HongLeungd. (October 2020,). Corporate social responsibility (CSR) in fashion supply chains: A multi-methodological study. Transportation Research Part E: Logistics and Transportation Review .*
6. *INDIACSR. (2021, 08 15). CSR: Tata Steel BSL to buy products made by village women through Gruhalaxmi Cooperative. Retrieved 11 2, 2021, from https://indiacsr.in/csr-tata-steel-bsl-to-buy-products-made-by-village-women-through-gruhalaxmi-cooperative/*
7. *JuanjuanOu, p. A. (January 2021). The coevolutionary process of restaurant CSR in the time of mega disruption. International Journal of Hospitality Management .*
8. *Maharashtra, F. C. (n.d.). CORPORATE SOCIAL RESPONSIBILITY POLICY. Retrieved from http://www.fdcm.nic.in/DepotsBalharshah.aspx*
9. *Mansoora Ahmed, S. Z. (03 June 2020). Impact of CSR and environmental triggers on employee green behavior: The mediating effect of employee well-being. Corporate Social Responsibility and Environmental Management .*
10. *MinjungKimaXuemeiYinbGyuminLee. (July 2020). The effect of CSR on corporate image, customer citizenship behaviors, and customers' long-term relationship orientation. International Journal of Hospitality Management .*

11. *OlubunmiOlanipekunaTemitopeOmotayobNajimuSaka, A. (July 2021). Review of the Use of Corporate Social Responsibility (CSR) Tools. Sustainable Production and Consumption .*

12. *S.Karamand, C. (15 October 2021). CSR performance and firm performance in the tourism, healthcare, and financial sectors: Do metrics and CSR committees matter? Journal of Cleaner Production .*

13. *Sara Rodriguez-Gomez, M. L.-C.-P.-A. (20 August 2020). Where Does CSR Come from and Where Does It Go? A Review of the State of the Art. Administrative Sciences , Volume 10 (Issue 3).*

14. *UlIslam, O. (September 2020). Effect of CSR activities on meaningfulness, compassion, and employee engagement: A sense-making theoretical approach. International Journal of Hospitality Managemen .*

15. *Zengming Zou 1, Y. L.-U.-D. (19 January 2021). What Prompts Small and Medium Enterprises to Implement CSR? A Qualitative Insight from an Emerging Economy. Sustainability .*

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

धार्मिक साहित्यों में वर्ण व्यवस्था और समकालिक महत्त्व : एक संक्षिप्त विश्लेषण

सत्यार्थ सिंह
शोधार्थी, समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवशास्त्र विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (अनूपपुर) मध्यप्रदेश। (Singhsatyarth30@gmail.com)

सारांश-
भारत के धार्मिक इतिहास में वर्ण-व्यवस्था का उच्च स्थान है, जो सामाजिक विरासत के रूप में वैदिक काल से आज तक उत्तर से दक्षिण तक निरन्तर चलायमान है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत भारतीय समाज का वर्णों में बटवारा किया गया था। इसका प्रधान आधार रंग-भेद, प्राजातीय धारणा अथवा कर्म ही था। वैसे आर्यों ने इस विभाजन के अन्तर्गत यह व्यवस्था भी रखी थी कि कोई भी व्यक्ति कार्य-पद्धति, रुचि और मनःस्थिति के अनुसार वर्ण-परिवर्तन कर सकता था, किन्तु ऐसी विकल्पना व्यवहार में विरल ही थी तथा उत्तरवैदिक काल के परवर्ती युग आते-आते वर्ण-व्यवस्था का यह लचीलापन समाप्त हो गया था, उसमें कठोरता आ गई थी। यह सत्य है कि इसने समय-समय पर हिन्दू समाज की समस्त गतिविधियों को अपने विचारों और कार्यों से प्रभावित किया। फलतः देश में होने वाले अनेकानेक परिवर्तनों, संघर्षों तथा क्रान्तियों में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। कालान्तर में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि सभी अवस्थाओं का इसने अपनी वर्णगत व्यवस्था से किसी-न-किसी रूप में दिशा निर्देश किया। इसी से संबन्धित वर्त्तमान अध्ययन वर्णों की उत्पत्ति, विकास तथा समकालिक महत्त्व पर केन्द्रित है।

बीज शब्द- धार्मिक इतिहास, वैदिक काल, सामाजिक विरासत, वर्ण व्यवस्था, उत्पत्ति, परिवर्तन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

प्रस्तावना-
प्राचीन धर्मशास्त्रों में वर्णों की उत्पत्ति ईश्वरकृत अथवा दैवी मानी गई है तथा उनके विभाजन को आदरपूर्वक पवित्र कहा गया है। इसे परम्परागत सिद्धान्त भी कहा जा सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार वर्णों की उत्पत्ति ईश्वरकृत है। 'वर्ण' शब्द की व्युत्पति संस्कृत के 'वृञ्' वरणे अथवा 'वरी' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'चुनना' या 'वरण करना'। 'वर्ण' और 'वरण' शब्दों में साम्य है। संभवतः 'वर्ण' से तात्पर्य

'वृत्ति' से है, किसी विशेष व्यवसाय के चुनने से। समाजशास्त्रीय भाषा में 'वर्ण' का अर्थ 'वर्ग' से है, जो अपने चुने हुए विशिष्ट व्यवसाय से आबद्ध है। वास्तव में 'वर्ण' उस सामाजिक वर्ग की ओर इंगित करता है, जिसका समाज में विशिष्ट कार्य और स्थान है, जो अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण समाज के अन्य वर्गों अथवा समूहों से सर्वथा अलग होता है, तथा अपने हितों और स्थितियों के विषय में जागरुक होता है। 'आर्य' वर्ण और 'दास' वर्ण अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत आते हैं, जो समाज में केवल ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र के रूप में बने रहे।

भारतीय साहित्य में 'वर्ण' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है, जो पूर्ववैदिक युग की समाज-रचना के प्रारम्भिक स्वरूप को स्पष्ट करता है। उसमें 'वर्ण' का प्रयोग 'रंग' अथवा 'आलोक' के अर्थ में है,' तथा यत्र-तत्र ऐसे वर्गों के लिए भी 'वर्ण' का व्यवहार हुआ है, जिनके शरीर की त्वचा श्याम थी अथवा श्वेत। तत्कालीन समाज में दो ही वर्ण थे, एक 'आर्य' और दूसरा 'अनार्य' या 'दास' (अथवा दस्यु)।' यह ऋग्वेद की रचना के पूर्व, अत्यन्त प्रारम्भ की सामाजिक व्यवस्था थी, जिसमें त्वचा को ही भेदक आधार माना गया था। ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर 'आर्य' और 'दास' (अनार्य) की अनेकता और भिन्नता 'वर्ण' के रूप में दर्शित की गई है। उनके पारस्परिक संघर्षों की भी चर्चा की गई है, जिसमें दासों के हारने और आर्यों के जीतने का उल्लेख है।' 'दास' वर्ग को 'अव्रत' (देवताओं के नियम और व्यवहार को अस्वीकार करनेवाले), 'मृध्रवाच' (अमधुरभाषी), 'अपनास:' (चिपटी नासिका वाले) तथा 'अक्रतु' (यज्ञ न करनेवाले) कहा गया है। इस प्रकार 'आर्य' और 'दास' वर्ण के रूप में दो प्रतिपक्षी जन-जाति थे। जो एक दूसरे से कार्य, व्यवहार, आचरण, संभाषण रंग आदि में भिन्न थे। तत्कालीन समाज का यह विभाजन वर्गीय और सांस्कृतिक था, जिससे दो विपरीत जनजातियों का स्वरूप विकसित हुआ। वेदों के अनुसार 'आर्य' सदाचरण और सद्वृत्तियों का अनुसरण करनेवाले थे तथा 'दास' दुर्वृतियों, अनियमितताओं और अव्यवस्थाओं को उत्पन्न करनेवाले आर्य बाहर से आए थे। उन्होंने हड़प्पा संस्कृति के निवासियों को पराजित किया और 'दास' बनाया। आर्यों तथा यहाँ के मूल निवासियों के रक्त और रंग में अन्तर था, भाषा और बोलचाल में अन्तर था, अचार-विचार और रहन-सहन में अन्तर था। दोनों वर्गों में जन्मगत्, रक्तगत, शरीरगत और संस्कारगत प्रजातीय भेद था। दोनों के कर्म भी अलग-अलग थे। अतः स्पष्ट रूप से 'आर्य' और 'दास' नामक दो वर्ण समाज में हो गए, जिनका वैदिक युग के प्रारम्भिक काल तक पृथक् अस्तित्व बराबर रहा।" अपने भेद-परक प्रभाव और महत्त्व को एक दूसरे वर्ण पर सिद्ध करने के लिए इस व्यवस्था के अन्तर्गत वर्णों के कायिक और वाचिक परस्पर मतभेद और संघर्ष भी होते रहे तथा प्रतिस्पर्धा स्वरूप एक दूसरे वर्ग के विरुद्ध निराधार तर्क भी प्रस्तुत किए जाते रहे।

शोध के उद्देश-

प्रस्तुत शोध पत्र वर्ण व्यवस्था का अध्ययन करता है, शास्त्रीय साहित्यों में वर्णित वर्ण व्यवस्था और उसके ईतिहास की संक्षिप्त जानकारी देना इस अध्ययन के उद्देश हैं। साथ ही बदलते समय के साथ वर्ण व्यवस्था में हुए परिवर्तन तथा समकालिक महत्त्व पर प्रकाश, इस अध्ययन के अन्य उद्देश है।

शोध विधि-

प्रस्तुत शोध पत्र द्यीतियक श्रोतों पर आधारित है, जिसमे श्रोतों के रूप में पुराने धर्म पुस्तक, रिफरेन्स बुक, सम्पादित बुक, विषय से सम्बंधित शोध पत्र, समाचार पत्र के सम्पादकीय में प्रकाशित आलेख, एवं इंटरनेट सामग्री का प्रयोग किया गया। वैदिक, उत्तरवैदिक काल में लिखित शोध की विषय-वस्तु का अध्ययन किया गया। इस शोध पत्र में वर्णात्मक, विश्लेषणात्मक पध्दतियों का प्रयोग किया गया है।

वर्ण-व्यवस्था का प्रारंभिक स्वरूप सामंजस्य और समन्वय :

वैदिक काल के पूर्व युग में ही वर्णों का समाज संगठित होने लगा था। 'आर्य' और 'दास' के रूप में दो प्रधान प्रतिस्पर्धी वर्ग सामने आ चुके थे। यह वर्गीकृत विभाग उनके प्रजातीय और सांस्कृतिक पार्थक्य का प्रतीक था। दोनों वर्ग परस्पर विरोधी रूप में आगे बढ़े। उत्तरवैदिक काल तक आते-आते 'आर्य' और 'अनार्य' ('दास') का विरोध और द्विवर्ग का स्वरूप समाप्त-सा हो गया। इनके स्थान पर चातुर्वर्ण का उल्लेख प्रारम्भ हो गया ।' यद्यपि ऋग्वेद के 'पुरुषसूक्त' में चारों वर्णों का उल्लेख अवश्य हुआ है; किन्तु उस वंश की प्राचीनता उतनी नहीं है जितनी ऋग्वेद के अन्य प्रारम्भिक ऋचाओं की वैसे, इन चारों वर्णों के बीच पारस्परिक संबंध स्थापित थे। निश्चय ही ये संबंध अन्तर्जातीय विवाह के कारण थे, जिनके ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में वर्ण-सम्बन्धी उत्पत्ति के विवरण को स्वीकार किया गया है। इसके वर्णन के अनुसार वर्णों की उत्पत्ति विराट् पुरुष से हुई थी। उसके मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु (जाँच) से वैश्य तथा पद (पैर) से शूद्र उत्पन्न हुए। यह उद्धरण इस बात का अवश्य प्रमाण है कि पूर्ववैदिक युग का परवर्ती समाज चार भागों में विभाजित हो चुका था तथा यह विभाजन सृष्टिकर्त्ता द्वारा माना गया था। यह सृष्टिकर्त्ता अथवा विराट् पुरुष हजार सिर, हजार आँखों और हजार पैरों वाला था, जो भूत और भविष्य दोनों था और जिससे सृष्टि की उत्पत्ति हुई थी। अतः ऐसे विशाल ईश्वर से चारों वर्णों की उत्पत्ति हुई। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि स्वयं ईश्वर ने ही वर्णों का उद्भव किया और उनकी स्थिति निर्धारित की। उपर्युक्त कथन प्रतीकात्मक भी है। जिस प्रकार शरीर में मुँह, बाहु, जाँच और पैर का महत्व है, उसी प्रकार समाजरूपी शरीर के ब्राह्मण, राजन्य (क्षत्रीय) वैश्य और शूद्र अंग हैं। सभी अंगों का शरीर में प्रधान स्थान होता है तथा किसी एक अंग के बिना शरीर की स्थिति दयनीय हो जाती है, उसी प्रकार किसी एक वर्ण के बिना समाज की स्थिति भी गम्भीर हो जाती है, क्योंकि शरीर के परिचालन में सभी अंगों को समान योग और महत्त्व है।

ब्राह्मणों की उत्पत्ति मुँह से इसलिए कही गई कि उसका समस्त कार्य मुँह से सम्बन्धित था, अर्थात् शिक्षा और और विद्या प्रदान करना। क्षत्रियों को बाहु से इसलिए उत्पन्न माना गया कि उनका प्रमुख कार्य, देश की सुरक्षा, प्रशासन आदि, बाहु से आबद्ध था। बाहु शक्ति और शौर्य का परिचायक माना गया है और शरीर में उसकी स्थिति प्रमुख है। वैश्यों का जाँघ से उद्भव इसलिए स्वीकार किया गया कि उनका प्रमुख कार्य समाज की आर्थिक अवस्था सुदृढ़ करना था। कृषि, पशुपालन और वाणिज्य से वे समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। जिस प्रकार शरीर के लिए जाँघ की अनिवार्यता थी उसी प्रकार समाज के लिए वैश्यों की। इसी प्रकार शूद्रों की उत्पत्ति पैर से इसलिए कही गई कि अपनी सेवा द्वारा वे तीनों वर्णों और समाज को गति प्रदान करते थे। पैर का प्रमुख कार्य है शरीर के ऊपर के भार को वहन करना और शरीर को गतिमान रखना। इन अवयवों के बिना शरीर अस्तित्वहीन, गतिहीन और निस्तेज हो जाता है, अतः शरीर को इनकी अपेक्षा है। वर्ण-व्यवस्था को दैवी इसलिए कहा गया कि इससे सम्बद्ध वर्ण ईश्वर के भय से अपने-अपने वर्ण के अन्तर्गत रहें तथा उसे तोड़ने अथवा आघात पहुँचाने का प्रयास न करें। दैवी सिद्धान्त के रूप में वर्ण-व्यवस्था के उद्भव का वर्णन महाभारत में भी किया गया है, अन्तर केवल इतना है कि विराट् पुरुष के स्थान पर ब्रह्मा का उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रीय, उरु (जंघा) से वैश्य और तीनों वर्णों के सेवार्थ पद (पैर) से शूद्र का निर्माण हुआ।" गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण का कथन है कि चारों वर्णों की सृष्टि मैंने गुण और कर्म के आधार पर की है तथा मैं ही उनका कर्त्ता और विनाशक हूँ।

" परवर्ती साहित्य में भी वर्णों की उत्पत्ति दैवी मानी गयी है। वैदिक ग्रंथों के अतिरिक्त कतिपय स्मृतियों से भी वर्ण के उत्पत्ति-विषयक उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। मनु ने यह उल्लेख किया है कि ब्रह्म ने लोकवृद्धि के लिए ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र क्रमशः मुख, बाहु, जंघा और चरण से निरवर्त किया। पुराणों में भी वर्णों का उद्भव ईश्वरीय माना गया है तथा वर्ण-व्यवस्था के महत्त्व को तद्वत् स्वीकार किया गया है। विष्णुपुराण में उल्लिखित है कि भगवान् विष्णु के मुख, बाहु, जंघा और चरण से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र उद्गत हुए। मत्स्यपुराण में भी इसी प्रकार का वर्णन है। वायुपुराण में क्षत्रीय वर्ण को ब्रह्मा के बाहु से उत्पन्न न मानकर वक्ष से उत्पन्न माना गया है, " यद्यपि वायु और ब्रह्मांड" पुराणों से भी यही परिलक्षित होता है कि चातुर्वर्णों की उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई है। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि भारतीय धर्म-शास्त्रकारों ने वर्णों की उत्पत्ति परमब्रह्म से स्वीकार की है और इस वर्ण-व्यवस्था को आदिकालीन माना।

ग्यारहवीं सदी के लेखक अरब यात्री अलबीरूनी ने भी वर्णों की उत्पत्ति के विषय में ऊपर उद्धृत कथनों से मिलता-जुलता ही विवरण दिया है। इसके अनुसार ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, हाथ से क्षत्रीय, जाँघ से वैश्य और पैर से शूद्र की उत्पत्ति हुई।" निश्चय ही दैवी शक्ति से उत्पन्न यह वर्ण-व्यवस्था प्राचीन काल से

हिन्दू समाज में प्रचलित रही है। उत्पत्ति-विषयक इस ईश्वरीय सिद्धान्त को प्रचारित भी किया जाता रहा है। धीरे-धीरे यह दैवी वर्ण-व्यवस्था परम्परागत सिद्धान्त के रूप में भारतीय शास्त्रकारों द्वारा स्वीकार की गई।

वर्ण तथा कर्म-

वर्ण तथा कर्म का सम्बन्ध भारतीय संस्कृति और दर्शन में एक जटिल अवधारणा है। यह व्यक्ति के सामाजिक भूमिका, कर्मो और आध्यात्मिक विकास को प्रभावित करता है। ऐतिहासिक घटनाओं की तरफ जैसे- द्रोणाचार्य का कर्म क्षत्रीय वर्ण का था, किन्त वे जन्म से ब्राह्मण थे, इसलिए वे ब्राह्मण ही माने गए। उनके पुत्र अश्वत्थामा में न तो ब्राह्मणोचित गुण थे, न कर्म ही। वे प्रकृति और कर्म से अत्यन्त निर्मम, घाती और थे। रात्रि के समय पाण्डवों के शिविर में घुसकर द्रौपदी के पुत्रों का उन्होंने धोखे से वध कर डाला। इस क्रूरता और जघन्यता के बाद भी वे ब्राह्मण ही कहे गए। युधिष्ठिर सात्विक कर्म करते थे, परन्तु वे क्षत्रीय ही कहे जाते थे। राज्य प्राप्त करने के पश्चात् भी कर्ण क्षत्रीय कहे जाने से वंचित था। द्रौपदी ने स्वयं कहा था कि कर्ण 'सूत' (निम्न जाति का) है, उसके साथ मैं परिण्य नहीं करूंगी। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था जन्म के आधार पर संचालित थी, न कि कर्म के आधार पर।

यह सर्वविदित है कि परशुराम ने भी क्षत्रिय धर्म को अपनाया था, किन्तु वे क्षत्रिय नहीं कहे जा सके थे। वे ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ वीर और विजेता थे। अपने पिता के वध का प्रतिरोध उन्होंने क्षत्रियों से लिया था। विभिन्न क्षत्रिय-समूहों से उन्होंने इक्कीस युद्ध किए थे और उन्हें भिन्न-भिन्न स्थलों पर पराजित किया था। एक तरह से उन्होंने इस पृथ्वी को क्षत्रीय शासकों से विहीन कर दिया था। जो क्षत्रीय मरने से बच गए थे, वे कहीं जाकर छिप गए थे। इस प्रकार के क्षात्रधर्म और कर्म अपनानेवाले ब्राह्मणों के ऐतिहासिक उदाहरण भी है। पुष्यमित्र शुंग ने क्षात्र धर्म को अपनाकर शुंग राजवंश की स्थापना की थी। किन्तु न तो वह और न उसके वंशज ही क्षत्रीय कहे गए कण्व राजवंश, सातवाहन राजवंश, वाकाटक राजवंश आदि ब्राह्मण राजवंश थे, जिनके संस्थापक ब्राह्मण पुरुष थे। इन राजकुलों के वंशज क्षत्रीय कर्म करते हुए भी ब्राह्मण ही माने गए, क्षत्रिय नहीं।

वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य

वर्ण व्यवस्था के तहत समाज को चार अलग-अलग वर्णों में विभाजित किया गया था। लोगों को उनके व्यवसाय और क्षमताओं के अनुसार अलग-अलग वर्ण दिए गए थे। इन मापदंडों के आधार पर दिए गए वर्गीकरण ने समाज को बेहतर ढंग से वर्गीकृत करने में मदद की। कर्तव्यों को अधिनियम के तहत वर्गीकृत किया गया है, जिससे व्यक्ति के कर्तव्यों का उचित पालन होता है। किसी के आवेदनों का प्रदर्शन मोक्ष प्राप्त करने का एक अंतर्निहित कारण माना जाता था। यह घटना समाज में सद्भाव की ओर ले जाती है क्योंकि व्यक्ति के कर्तव्यों को सही ढंग से जाना जाता है और इससे वैमनस्य और अराजकता को रोका

जा सकता है। इससे संघर्षों को खत्म करने में मदद मिलती है। इससे अंततः शांति, स्वतंत्रता, आजादी और साझा समृद्धि आएगी। समाज में सद्भाव सुनिश्चित करने के अलावा, यह प्रत्येक वर्ण के बीच शुद्धता बनाए रखने में मदद करता है।

वर्ण व्यवस्था का महत्त्व-

वर्ण व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था भी मानी जाती है जो व्यक्ति को अपनी योग्यता में वृद्धि करने की प्रेरणा देती है। इससे श्रम विभाजन तो होता ही है साथ साथ कर्म तथा गुणों के आधार पर आधारित होने के कारण यह व्यक्ति को अच्छे कर्म करके उच्च वर्ण में प्रवेश करने की भी प्रेरणा देती है। इसी प्रेरणा के कारण व्यक्ति अपने कर्तव्यों की पूर्ति पूरी निष्ठा से करते रहते हैं। वर्ण व्यवस्था केवल श्रम विभाजन तथा आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था ही नहीं है, अपितु यह धर्म का भी आधार रही है। व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन अपना धर्म समझकर करता है, क्योंकि ऐसा करने से ही वह जीवन के अंतिम लक्ष्य (मोक्ष आदि) को प्राप्त कर सकता है। अतः यह उच्च मानवीय लक्ष्यों को प्राप्त करने की भी एक आदर्श व्यवस्था थी।

वर्ण व्यवस्था एक आदर्श समाज के निर्माण में सहायक है, क्योंकि यह कार्यात्मक सहयोग पर बल देती है और इस प्रकार समाज को प्रतिस्पर्धा से दूर रखती है। वर्ण व्यवस्था समाज के सभी व्यक्तियों को आपस में जोड़ने, पारस्परिक सहयोग करने के लिए प्रेरित करने तथा एक आदर्श समाज के निर्माण में सहायक है जो पूरे समाज को बांधकर एक अटूट इकाई के रूप में व्यक्त करती है। भारतीय सामाजिक संगठन में वर्ण व्यवस्था के समाजशास्त्रीय महत्व को निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। यह अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों पर बल देती है तथा मानव कल्याण का मार्ग दिखाती है। हमारे प्राचीन मनीषियों ने उच्च आदर्शों और प्रेरक सिद्धांतों को आधार बनाकर समाज के कल्याण के लिए जिन व्यवस्थाओं को लागू किया उनमें वर्ण व्यवस्था एक महत्वपूर्ण सूत्र है, वर्ण व्यवस्था समाज में एक अत्यंत सरल व उपयोगी श्रम विभाजन तथा विशेषीकरण की व्यवस्था भी कही जा सकती है। श्रम विभाजन तथा विशेषीकरण किसी भी समाज की प्रगति के लिए अनिवार्य दशाएं हैं। वर्ण व्यवस्था कर्तव्यों का बोध करा कर व्यक्ति को उसके वर्ण धर्म के अनुसार कार्य करने के लिए प्रेरित करती है।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत में वर्ण ध्वजवाहक के रूप में कार्य करता था। इसने प्रत्येक वर्ण के कर्तव्यों के अनुसार व्यवस्था में स्थिरता बनाए रखने में मदद की। यह व्यवस्था व्यक्तियों को बेहतर पदों के लिए प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करती थी क्योंकि यह उन्हें जाति व्यवस्था के विपरीत गतिशीलता प्रदान करती थी। गुणों या मनोवृत्ति के अनुसार समाज के कार्यों का योग्य व्यक्तियों का विभाजन होना चाहिए, चाहे कोई कार्य बौद्धिक हो या शारीरिक श्रम का, प्रत्येक कार्य को बराबर सम्मान दिया जाना चाहिए। सामाजिक,

राजनीतिक और आर्थिक सभी क्षेत्रों में प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर मिलना चाहिए और नैतिकता और न्याय का मापदंड सबके लिए एक ही होनी चाहिए। अब सभी वैज्ञानिक मानते हैं कि व्यक्तियों में सहज मनोवृत्तियां, योग्यता, गुण और अभिरुचि अलग-अलग होती हैं। इसलिए यह कहना कि प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक कार्य कर सकता है, एक भ्रांत धारणा है। इसलिए सभी विकासशील या विकसित देश अब शैक्षणिक और व्यावसायिक निर्देशन को ही महत्व देते हैं। जन्म के स्थान पर अब व्यक्ति विशेष की बुद्धि, योग्यता और अंत: शक्ति को विशेष महत्त्व देना चाहिए। व्यक्तित्व के पूर्ण विकास में किसी व्यक्ति की जाति बाधक नहीं होनी चाहिए। नए ज्ञान और विज्ञान का आश्रय लेकर परिवर्तन के युग में हमें वर्ण-व्यवस्था को उसके अभीष्ट स्वरूप में लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

सन्दर्भ सूची-

1- *आर, रौथ (1856) अथर्ववेद, डी. ह्विटने बर्लिन (संपादक) अध्याय.खंड.मन्त्र- 3.5.7।*
2- *आनंदाश्रम (1907) मत्स्य पुराण, संस्कृत सीरीज, पूना, अध्याय. श्लोक- 4.28, वामदेवस्तु भगवानसृजन्मुखतो द्विजान्।*
3- *एफ. मैक्समूलर (1990-92) ऋग्वेद (सायण भाष्य सहित) वैदिक संसोधन मंडल पूना, (संपादक) मंडल.सूक्त:.मन्त्र- 10.90.12, 1.73.7, 2.3.5, 9.97.15, 9.104.4, 9.105.4, 10.124.7, 1.176.6, 3.34.9, 10.90.12.1, 2.2.4।*
4- *गायकवाण (2009) ब्रम्हांड पुराण, ओरिएंटल सीरिज बडौदा, भाग.अध्याय.श्लोक- 1.5.108।*
5- *मिश्र, जयशंकर (1968) ग्यारहवीं सदी का भारत,वाराणसी, पृ. 98.।*
6- *थापर, रोमिला (1978) एंशिएंट इंडियन सोशल हिस्ट्री, दिल्ली, पृ. 215.।*
7- *धुर्ये, वैदिक, जी. एस.(1979.) वैदिक इंडिया, बाम्बे प्रेस।*
8- *नीलकंठ (1929-33) महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर, शान्तिपर्व, अध्याय-122, श्लोक 4-5, ब्राह्मणों मुखतः सृष्टो ब्राह्मणों राजसत्तम्।*
9- *शतपथ ब्राम्हण- भाग.अध्याय.ब्राम्हण स.श्लोक- 5.5.4.9, 6.4.4.13,।*
10- *भागवत गीता- अध्याय- 4.श्लोक 13.।*
11- *भट्ट, कुल्लूक (1946) मनुस्मृति, बंबई प्रेस, श्लोक- 1.31 (ब्राम्हण जातियों की रचना)।*
12- *विल्सन (1989) विष्णु पुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, (संपादक) 1.12.63-64।*
13- *रामायण (1933) गीताप्रेस गोरखपुर, सर्ग.श्लोक- 56.23।*
14- *त्रिपाठी, रामप्रताप (1987) वायु पुराण, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, अध्याय व श्लोक- 9.113, वक्त्रादस्य ब्राह्मणाः सम्प्रसूता यद्वक्षतः क्षत्रीया पूर्वभागे।*

जनजातिय महिलाओं के आर्थिक विकास में एन आर एल एम योजना के स्व- सहायता समूह का समाजशास्त्रीय अध्ययन

(रायगढ़ जिले के ग्राम पंचायत जुर्डा एवं पंडरीपानी के विशेष संदर्भ में)

डॉ. चेतानंद जांगडे
स्व. श्री लखीराम अग्रवाल स्मृति, शासकीय चिकित्सा महाविद्यालय, रायगढ़ (छ.ग.), 496001
E-mail- chetan.jangde@gmail.com

सारांशः

जनजातिय महिलाओं के लिए आजीविका सृजन दुनिया भर में विकास के प्रमुख मुद्दों में से एक है। भारत सरकार ने 2011 में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एन आर एल एम) के रूप में एक प्रमुख योजना शुरू की है जिसे पूरे भारत में लागू किया किया गया हैं। कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य गरीबी उन्मूलन और ग्रामीण जनता को आजीविका प्रदान करना हैं। कार्यक्रम सहयोगात्मक प्रयासों पर आधारित है जो समुदाय के सदस्यों को स्वयं सहायता समूहों (एस एच जी) में संगठित करता है और पैसे बचाता है और सदस्यों के बीच अंतर-ऋण होता है] जिससे सदस्यों को विभिन्न उद्देश्यों के लिए ऋण प्राप्त करने में मदद मिलती है। स्व सहायता समूह को बढ़ावा देने के लिए घर-घर जाते हैं और अन्य समुदाय की महिलाओं को समूह में शामिल करते हैं। अध्ययन का महत्व एन आर एल एम के माध्यम से एस एच जी में शामिल होने के बाद ग्रामीण जनजातिय महिलाओं के जीवन स्तर पर केंद्रित है। शासन द्वारा संचालित एन आर एल एम योजना के प्रति ग्रामीण जनजातिय महिलाएं कितना जागरूक है तथा अपने आर्थिक विकास में ये महिलाएं किस प्रकार स्व- सहायता समूह के माध्यम से उपयोग एवं लाभ उठाने में कितने सक्षम हुए हैं यह ज्ञात करना हैa। प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन का उद्देश्य जनजातिय महिलाओं की स्व सहायता समूह में सहभागिता ज्ञात करना] स्व सहायता समूह में सहभागिता पश्चात् जनजातिय महिलाओं की आर्थिक स्थिति का मूल्यांकन करना एवं जनजातिय महिलाओं में आजीविका के विभिन्न साधनों का अध्ययन करना हैं। उत्तरदाताओं का चयन उद्देश्य पूर्ण निदर्शन द्वारा ग्राम पंचायत जुर्डा के 17 स्व- सहायता समूह में से 74 जनजातिय महिलाएं एवं ग्राम पंचायत पंडरीपानी के 18 स्व सहायता समूह में से 105 जनजातिय महिलाएं है इस प्रकार 35 स्व सहायता समूह में से सम्मिलित कुल 179 जनजातिय महिलाओं का चयन अध्ययन हेतु किया गया हैं। तथ्य संकलन] शोध उपकरण एवं

शोध प्रविधियां तथ्य संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों का प्रयोग किया गया है] साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग शोध उपकरण के लिए किया गया है एवं साक्षात्कार और अवलोकन का प्रयोग शोध प्रविधि के रूप में किया गया हैं।

शब्द कुंजी: जनजातिय महिलाएं] मानक जीवन] एन आर एल एम (राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन)] एस एच जी (स्व-सहायता समूह)।

प्रस्तावना:

ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार ने 01 अप्रैल] 2013 आरबीआई के सर्कुलर नंबर आरबीआई/2012-13-559 दिनांक 27 जून 2013 को प्रभावी स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (एस जी एस वाई) के पुनर्गठन से राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एन आर एल एम) की शुरूआत की हैं। 29 मार्च 2016 से एन आर एल एम का नाम बदल कर डी ए वाई – एन आर एल एम (दीनदयाल अंत्योदय योजना - राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन) कर दिया हैं। आहूजा (2010)] प्राचीन काल के समय में वैदिक काल को भारतीय समाज का स्वर्णकाल माना गया है। जहां पर महिलाओं को पुरूष के समान सभी अधिकार प्राप्त था। उक्त कार्यक्रम गरीब परिवार विशेष रूप से महिलाओं हेतु मजबूत संस्थानों के निर्माण एवं वित्तीय सेवाओं तथा आजीविका सेवाओं से जोड़ने हेतु प्रमुख प्रावधान हैं। जिसका उद्देश्य गरीबों के सतत सामुदायिक संस्थानों की स्थापना करना तथा इसके माध्यम से ग्रामीण गरीबी को समाप्त करना तथा आजीविका के विभिन्न स्त्रोतो को प्रोत्साहन देना हैं। जया (2003)] ने अपने अध्ययन में यह पाया कि जिन परिवारों में महिला समूह की गतिविधियों में संलग्न होती है उनकी स्थिति परिवार में बेहतर होती है श्रीलंका के अध्ययन में यह पाया गया कि परिवार के महिला मुखिया की स्थिति पुरूष मुखिया से आर्थिक रूप से बेहतर होती है। ग्रामीण गरीब विशेषकर महिलाओं को स्व सहायता समूहों तथा उनके संघों में एकजुट करना एन आर एल एम के कार्य करने का तौर तरीका हैं। मोहम्मद (2011)] अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि पंचायती राज अधिनियम 1993 ने महिला नेतृत्व में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया है] इसमें किसी भी प्रकार का संदेह नही है। पर उच्चतर राजनीतिक संस्थाओं में अभी भी महिला आरक्षण का इंतजार है। स्व सहायता समूह 5-20 महिलाओं के साम्य समूह होते हैं] जो पारस्परिक सहयोग और सामूहिक कार्यकलाप के सिद्धांतों पर कार्य करते हैं। इन एस एच जी को ग्राम/ग्राम पंचायत स्तर] क्लस्टर स्तर और ब्लाWक स्तर पर संघबद्ध किया जाता हैं। ये संस्थाएं अपने सदस्यों को बचत] ऋण] आजीविका सहायता इत्यादि जैसी सेवाएं मुहैया कराती हैं। जिससे उन्हें उनकी आजीविकाओं को सशक्त बनाने एवं जारी रखने में मदद मिलती हैं। जैसे ही स्व सहायता समूह एवं उनका संघ परिपक्व हो जाता हैं] वे अपने सदस्यों की ओर से सशक्त मांग प्रणाली बन जाते हैं। ये संस्थाएं सामाजिक] वित्तीय और अन्य संसाधनों के समाधान करने के लिए मुख्य धारा में शामिल संस्थाओं अर्थात् बैंक] स्थानीय

स्वशासी निकायों और सरकारी निकायों के साथ संपर्क बढ़ाती हैं। इन उपायों से सदस्यों को बेहतर हकदारी] अधिकार] संसाधन और आजीविका के अवसर प्राप्त होते हैं। राज्य स्तर पर छत्तीसगढ़ राज्य में ग्रामीण आजीविका मिशन ''बिहान'' नाम से संचालित हैं। लक्ष्मी एवं बावजी (2004)] स्व सहायता समहू की सदस्यता के पश्चात गांव की निर्धन महिलाएं भी निर्णय बनाने वाली स्थानीय समितियों (ग्राम सभा) में भाग लेती है और अपनी मांगों को लेकर संघर्ष भी करती है।

अध्ययन का महत्वः

ग्रामीण क्षेत्र में जनजातिय महिलाएं रूढ़ियों कुप्रथाओं तथा सामाजिक रीति रिवाजों के कारण उत्पन्न हुई अनेक कुरीतियों के माध्यम से दुख सहन करते आ रही हैं उनमें जागृति नही आ पाई हैं। अतः ग्रामीण क्षेत्र में सामाजिक कार्यकर्ताओं] स्वयं सेवी संस्थाओं] उत्प्रेरक इत्यादि के जरिये जागरूकता उत्पन्न करने की आवश्यकता हैं। यह देखा गया हैं कि अनगिनत क्षेत्रों में किसी भी कार्य को आगे बढ़ाने में अथवा उसे पूर्ण करने के लिए महिलाओं को हिस्सेदार तो बनाया गया हैं] परन्तु उनके महत्व को नजर अंदाज किया गया हैं। शासन द्वारा संचालित एन आर एल एम योजना के प्रति ग्रामीण जनजातिय महिलाएं कितना जागरूक है तथा अपने आर्थिक विकास में ये महिलाएं किस प्रकार स्व सहायता समूह के माध्यम से उपयोग एवं लाभ उठाने में कितने सक्षम सिद्ध हुए हैं इस अध्ययन के माध्यम से ज्ञात करना है

साहित्य समीक्षाः

1. जैन एवं वर्मा (2012)] महिलाएं स्व सहायता समहू के आर्थिक गतिविधि से स्वयं की निर्धनता एवं गरीबी को दरू करने के लिए प्रयासरत है वही दूसरी और आर्थिक सहयोग सपरिवार में उसकी स्थिति में भी परिर्वतन हुआ हैं। सगंठन के माध्यम से अब वे अपने काननूी अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हुई है और वे स्थानीय समुदाय के राजनीतिक क्रियाकलापों में भी भागीदार बन रही हैं।
2. महिला स्व-सहायता समहू के माध्यम से प्राकृतिक संसाधन का विनाश विहीन विदोहन] सामाजिक स्वावलम्बन] आर्थिक] स्व-रोजगार एवं आत्मविश्वास में वृद्धि जैसे गुणों के विकास से महिला सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त हो पाया हैं।
3. शर्मा (2010)] छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण के पश्चात् राज्य सरकार ने छत्तीसगढ़ से ग्राम पंचायतों में महिलाओं को पचास प्रतिशत आरक्षण दिये जाने से उनके राजनैतिक नेतृत्व में निश्चित रूप से वृद्धि हुई है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की सामाजिक] आर्थिक] राजनैतिक व शैक्षणिक क्षेत्रों में जन-जागरूकता में वृद्धि होने से उनमें आत्मनिर्भरता में काफी साकारात्मक परिणाम प्रदर्शित हुए हैं।

4. महाजन (1996)] स्व सहायता समूह की गतिविधियों का प्रभाव निर्धन महिलाओं की आर्थिक स्थिति पर पडा़ है लेकिन इस दिशा में गैर राजनीतिक व प्रशासनिक प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।
5. जैन (2011)] संविधान का अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष समानता का अधिकार प्रदान करता है।
6. 1 अप्रैल 1999 को आरंभ किया गया स्वर्ण जयंती ग्राम स्वराजेगार कार्यक्रम जो कि पूर्णतः महिलााओं पर ही केन्द्रित था। इस कार्यक्रम ने पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं को संगठित होने का अवसर प्रदान किया। यह योजना मलूतः गरीबी उन्मलून पर आधारित था तथापि इस योजना के अनके सामाजिक-आर्थिक तथा राजनैतिक परिणाम सामने आये है।
7. पिल्लई (1995)] सशक्तिकरण की अवधारणा विकास क्षेत्र में बहुधा प्रचलित वाक्य है। सशक्तिकरण एक सक्रिय और बहुआयामी प्रक्रिया है जो कि महिलाओं को जीवन के प्रत्यके क्षेत्र में अपनी प्रतिभा और शक्तियों की पहचान करने में मदद करती है। शक्ति को न संपादित किया जा सकता है न भीख में दिया जा सकता है बल्कि इसे प्राप्त करना पड़ता है और जब इसे प्राप्त कर लिया जाये है तो इसका प्रयोग संरक्षण और संवर्धन करना होता है।

अध्ययन का उद्देश्यः

अनुसंधान का उद्देश्य वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के अनुप्रयोग के माध्यम से प्रश्नों के उत्तर को खोजना हैं। शोध का मुख्य उद्देश्य उस सत्य को पता लगाना हैं। जो पूर्व में किए गए अध्ययनों के तथ्यों में अदृश्य हैं अथवा वर्तमान परिदृश्य में नए तथ्यों को स्पष्ट करने से हैं।

1. जनजातिय महिलाओं की स्व सहायता समूह में सहभागिता ज्ञात करना।
2. स्व सहायता समूह में सहभागिता पश्चात् जनजातिय महिलाओं की आर्थिक स्थिति का मूल्यांकन करना।
3. जनजातिय महिलाओं में आजीविका के विभिन्न साधनों का अध्ययन करना।

उत्तरदाताओं का चयनः

समाज और सामाजिक घटनाओं की प्रकृति के अनुरूप सामाजिक शोध में जिन विभिन्न अध्ययन प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है निदर्शन उनमें से एक प्रमुख प्रविधि है प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तरदाताओं का चयन उद्देश्य पूर्ण निदर्शन द्वारा ग्राम पंचायत जुर्डा एवं ग्राम पंचायत पंडरीपानी के स्व सहायता समूह का चयन अध्ययन हेतु किया गया हैं।

तथ्य संकलन] उपकरण एवं प्रविधियांः

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन हेतु जनजातिय महिलाओं की आर्थिक विकास में एन आर एल एम योजना के स्व सहायता समूह तथ्यों का संकलन किया गया हैं। संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों का प्रयोग किया गया है] साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग शोध उपकरण के लिए किया गया है एवं अवलोकन और साक्षात्कार का प्रयोग शोध प्रविधि के रूप में किया गया हैं।

तालिका क्रमांक-01

क्रमांक	ग्राम पंचायत	स्व सहायता समूह	अनु. जाति	अनु. जनजाति	अन्य पिछड़ा वर्ग	सामान्य
1.	जुर्डा	17	41	74	180	01
2.	पंडरीपानी	18	35	105	111	04
योग	02	35	76	179	291	05

प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन हेतु अनुसूचित जनजाति महिलाओं को अध्ययन इकाई हेतु चयनित किया गया हैं प्राथमिक आंकडों के रूप में लिया गया हैं।

Source:http://bihan.gov.in/NRLMReport/SHGs

जनजातिय महिलाओं के स्व सहायता समूह में सहभागिता के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ग्राम पंचायत जुर्डा में स्व सहायता समूह की संख्या 17 है जिनमें अनुसूचित जनजाति के महिलाओं की सहभागिता 74 है एवं ग्राम पंचायत पंडरीपानी में स्व- सहायता समूह की संख्या 18 है जिनमें अनुसूचित जनजाति के महिलाओं की सहभागिता 105 हैं। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि जनजातिय महिलाओं की भागीदारी या सहभागिता में वृद्धि प्रदर्शित हो रही हैं।

आयु और अनुभव एक दूसरे के समानार्थी माने जाते है ऐसा माना जाता है कि जिस व्यक्ति की उम्र अधिक है वह अपने से कम उम्र के व्यक्ति से अपेक्षाकृत अधिक अनुभवी होगा। प्रस्तुत शोध पत्र में यह जानने का प्रयास किया गया है कि स्व सहायता समूह में कितने वर्ष की आयु की महिलाएं है इससे संबंधित तथ्यों का विवरण तालिका क्रमांक 02 में प्रदर्शित किया गया हैं।

तालिका क्रमांक-02

क्रमांक	आयु	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	18-25	06	3.3
2.	26-30	44	24.6

3.	31-35	55	30.8
4.	36-40	36	20.1
5.	41-45	22	12.2
6.	45 वर्ष से अधिक	16	9
	योग	179	100

उत्तरदाताओं की आयु संबंधी उपरोक्त तालिका से यह ज्ञात होता है कि 3.3 प्रतिशत उत्तरदाता 18-25 वर्ष आयु समूह के हैं] 24.6 प्रतिशत उत्तरदाता 26-30 वर्ष आयु समूह के हैं] सबसे अधिक 30.8 प्रतिशत उत्तरदाता 31-35 वर्ष आयु समूह के हैं] 20.1 प्रतिशत उत्तरदाता 36-40 वर्ष आयु समूह के हैं] 12.2 प्रतिशत उत्तरदाता 41-45 वर्ष आयु समूह के हैं एवं सबसे कम 9 प्रतिशत उत्तरदाता 45 वर्ष से अधिक आयु समूह के हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति के बारे में जानने का प्रयास किया गया है क्योंकि शैक्षणिक स्थिति व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण करने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इससे संबंधित तथ्यों का विवरण तालिका क्रमांक 03 में दर्शाया गया हैं।

तालिका क्रमांक-03

क्रमांक	शैक्षणिक स्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	केवल साक्षर	14	8
2.	प्राथमिक	33	18.5
3.	माध्यमिक	58	32.4
4.	हाईस्कूल	49	27.3
5.	हायर सेकेण्डरी	17	9.4
6.	स्नातक	06	3.3
7-	स्नातकोत्तर	02	1.1
	योग	179	100

उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति से संबंधित उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि अधिकतम 32.4 प्रतिशत महिलाएं माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा ग्रहण किये है] इसी प्रकार 8 प्रतिशत उत्तरदाताएं केवल साक्षर हैं अर्थात वे अपना हस्ताक्षर कर पाने में सक्षम हैं] 18.5 प्रतिशत उत्तरदाताएं प्राथमिक शिक्षा तक शिक्षा अर्जित की हैं] 27.3 प्रतिशत उत्तरदाताएं हाईस्कूल तक की शिक्षा अर्जित की हैं] 9.4 प्रतिशत उत्तरदाताएं हायर सेकेण्डरी तक की शिक्षा अर्जित की हैं] 3.3 प्रतिशत उत्तरदाताएं स्नातक तक

की शिक्षा अर्जित की हैं एवं 1.1 प्रतिशत उत्तरदाताएं ऐसे भी है जो स्नातकोत्तर तक की शिक्षा अर्जित किये है एवं उनका मानना है कि शिक्षा के कारण ही वे स्व सहायता समूह में अपनी आवश्यक भूमिका का निर्वाह करती हैं।

तालिका क्रमांक-04

स्व- सहायता समूह में जुडने के पश्चात आय में वृद्धि

क्रमांक	आय रू. में	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	5000 रू. तक	14	7.8
2.	5000-7000	41	23
3.	7000-9000	69	38.6
4.	9000-11000	38	21.2
5.	11000 से अधिक	17	9.4
	योग	179	100

उत्तरदाताओं की स्व- सहायता समूह में जुड़ने के पश्चात आय में वृद्धि तालिका क्रमांक 04 में यह स्पष्ट प्रदर्शित होता है कि निश्चित रूप से उनकी आय के स्त्रोत में स्व सहायता समूह की भूमिका महत्वपूर्ण रही हैं। इस तालिका से यह ज्ञात होता है कि 7.8 प्रतिशत उत्तरदाताएं 5000 रूपये अर्जित कर रही है जो कि सबसे कम या निम्न हैं परंतु 38.6 प्रतिशत उत्तरदाताएं ऐसे भी है जो 7000 से 9000 तक की आय अर्जित कर रहे है] उसी प्रकार 23 प्रतिशत उत्तरदाताएं 5000 से 7000 आय प्राप्त कर रहे है] 21.2 प्रतिशत उत्तरदाताएं 9000 से 11000 तक आय प्राप्त कर रहे हैं एवं 9.4 प्रतिशत उत्तरदाताएं ऐसे भी हैं जो सबसे अधिक 11000 से अधिक की आय प्राप्त कर अपनी आर्थिक को सशक्त बनाने का प्रयास कर रही हैं।

तालिका क्रमांक-05

क्रमांक	आजीविका के साधन	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	लघु वनोपज संकलन	17	9.4
2.	पशुपालन	28	15.7
3.	मध्यान भोजन	46	25.8
4.	गोठान योजना	31	17.3
5.	घरेलू उत्पादन	49	27.4
6.	हस्त शिल्प कार्य	08	4.4
	योग	179	100

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि जनजातिय महिलाओं की आजीविका से संबंधित विभिन्न प्रकार के कार्य है जिनमें वे संलग्न है एवं अतिरिक्त आय की प्राप्ति करती है जिससे कि आर्थिक स्थिति में निरंतर सुधार हो। सबसे अधिक 27.4 प्रतिशत उत्तरदाताएं है जो घरेलू उत्पादन कार्य में लगे है जैसे आचार] पापड बनाना 25.8 प्रतिशत उत्तरदाताएं ऐसे है जो आंगनबाड़ी एवं स्कूलों में मध्यान भोजन बनाने के कार्य में संलग्न है 17.3 प्रतिशत उत्तरदाताएं वे है जो गोठान कार्य में लगे है] 15.7 प्रतिशत उत्तरदाताएं वे हैं जो पशुपालन कार्य में है] 9.4 प्रतिशत उत्तरदाताएं लघु वनोपज संग्रहण जैसे महुआ] चार संग्रह करने में लगे है एवं सबसे 4.4 प्रतिशत उत्तरदाताएं ऐसे भी है जो हस्त शिल्प का कार्य करते हैं।

निष्कर्ष:

जनजातिय महिलाओं के आर्थिक विकास में एन आर एल एम योजना के स्व सहायता समूह के अंतर्गत यह ज्ञात हुआ कि जनजातिय महिलाएं जो स्व सहायता समूह में सहभागिता रखते है उनकी सहभागिता के पूर्व उनकी आर्थिक स्थिति निम्न थी या कुछ खास नही थी जबकि स्व सहायता समूह में जुडने पर उनकी आर्थिक स्थिति एवं आय में निश्चित रूप से वृद्धि हुई हैं। स्व सहायता समूह के माध्यम से वे अपनी आय का स्त्रोत स्थापित कर रही है एवं सशक्त होने का प्रयास कर रही हैं। स्व-सहायता समहू में जुडने के पश्चात परिवार में सामाजिक स्थिति के साथ ही साथ आर्थिक स्थिति भी मजबूत हुआ हैं। जनजातिय महिलाएं स्व-सहायता समहू के माध्यम से आर्थिक क्रियाओं में बड़े पैमाने पर सलंग्न हुई हैं। स्व-सहायता समूह कार्यक्रम ने जनजातिय महिलाओं में व्यापक जागरूकता लाने का प्रयास किया है। स्व-सहायता समूह के गठन से महिलाएं सजग और स्वालंबन की भावना कार्यशील हुई है। जनजातिय निर्धन महिलाओं में गरीब उन्मूलन में स्व-सहायता समूह की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। स्व-सहायता समूह का जनजातिय महिलाओं की सामाजिक गतिशीलता में एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। स्व-सहायता समूह कार्यक्रम से निर्धन महिलाएं भी अपने कानूनी अधिकार के प्रति सजग हुई है ग्रामीण विकास योजनओं को और अधिक प्रचार-प्रसार से जोड़ने का प्रयास करना चाहिए ताकि समस्त जनजातिय महिलाओं को और अधिक जानकारी प्राप्त हो सके।

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

References -

1. *Ahuja, Ram Indian society, Rawat Publication, New Delhi, 2010, pp. 61-66.*
2. *Anand, Jaya S., Addressing poverty through self-help groups: A case study. 2003, pp. 107-109.*
3. *मोहम्मद के. एम., ''भारत निर्माण ग्रामीण विकास का आधारा'' कुरूक्षेत्र, अक्टूबर 2012, पृ. 32.*
4. *Srilakshmi, R. and Babji, K., social empowerment of women through thrift : A study of SHGS in a Municipal Black of Visakhapatnam. 2004, pp. 117-121.*
5. *जैन अल्का एवं वर्मा अर्चना, ''गावों में सुलभ साधन मनरेगा'' कुरूक्षेत्र, फरवरी 2012, पृ. 13.*
6. *Poverty allievartion programe in India, IGNOU New Delhi, 2011, pp. 5-7.*
7. *सुभाष शर्मा महिला, ''सशक्तिकरण एवं समग्र विकास'' ए.डी.बी. पब्लिसर्स, जयपुर 2010, पृ. 34.*
8. *Mahajan, M., Empowerment of Rural Women.1996, pp. 67-71.*
9. *Jain, Sunita., "Mahilao ke vikas me swasahayata samuh ki bhumika", 2011, pp.15.*
10. *Poverty allievartion programe in India, IGNOU New Delhi, 2011, pp. 5-7.*
11. *Pillai, J.A. Usha., Women Empowerment in Rural Areas, 2008, pp.131-134.*

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

पर्यावरणीय संकट और समाज: एक नैतिक व भौगोलिक दृष्टिकोण

महेंद्र कुमार मिठारवाल
(सहायक आचार्य),भूगोल विभाग
श्री लाल बहादुर शास्त्री कन्या महाविधालय,श्रीमाधोपुर,सीकर,(राजस्थान) पिनकोड 332715
मेल-nitharwalm@gmail.com

परिचय

वर्तमान युग में पर्यावरणीय संकट केवल प्राकृतिक संसाधनों की कमी का मामला नहीं रह गया है, बल्कि यह मानवीय जीवन, समाज की स्थिरता तथा नैतिक मूल्यों पर गहरा प्रभाव डालने वाला विषय बन चुका है। जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता की हानि, वनों की कटाई, प्रदूषण और जल संकट जैसे मुद्दे न केवल भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में गंभीर हैं, बल्कि इनका समाज पर नैतिक व सांस्कृतिक प्रभाव भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय संकट मानवता के समक्ष एक गंभीर और बहुआयामी चुनौती के रूप में उभरा है। यह संकट केवल भौतिक संसाधनों की क्षति तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और नैतिक मूल्यों की बुनियाद को भी हिला रहा है। औद्योगीकरण, शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि, वनों की अंधाधुंध कटाई, और प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन ने पृथ्वी के पारिस्थितिकी तंत्र को असंतुलित कर दिया है। इस असंतुलन का सीधा प्रभाव मानव जीवन की गुणवत्ता, सामाजिक स्थिरता और भविष्य की पीढ़ियों की जीवन संभावना पर पड़ रहा है। गोस्वामी, टी. के. (2016)।

भौगोलिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में पर्यावरणीय संकट के स्वरूप भिन्न हो सकते हैं—जैसे कि मरुस्थलीकरण, जलवायु परिवर्तन, जल संकट, जैव विविधता का क्षरण आदि। वहीं नैतिक दृष्टिकोण इस संकट के उस पक्ष को उजागर करता है जहाँ मनुष्य का स्वार्थ, उपभोगवादी दृष्टिकोण और प्रकृति के प्रति संवेदनहीनता प्रमुख कारण बनते हैं। आज की स्थिति यह है कि विकास की दौड़ में

हमने न केवल पर्यावरण को नुकसान पहुँचाया है, बल्कि अपने सामाजिक और नैतिक कर्तव्यों से भी विमुख हो गए हैं। मिश्रा, एस.एन. (2019)।

इस शोध पत्र में पर्यावरणीय संकट के भूगोलिक पहलुओं के साथ-साथ समाज पर उसके नैतिक प्रभावों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही यह भी प्रयास किया गया है कि समाज, राज्य और प्रत्येक नागरिक की भूमिका को रेखांकित किया जाए, जिससे एक अधिक संतुलित, जागरूक और टिकाऊ भविष्य की दिशा में कदम बढ़ाए जा सकें।

पर्यावरण संकट के भौगोलिक आयाम

पर्यावरणीय संकट को भौगोलिक दृष्टिकोण से देखने पर स्पष्ट होता है कि यह संकट केवल वैश्विक नहीं, बल्कि स्थानीय और क्षेत्रीय स्तर पर भी विविध रूपों में प्रकट होता है। पृथ्वी के विभिन्न भू-आकृतिक और जलवायवीय क्षेत्रों में संकट की प्रकृति और तीव्रता में भिन्नता पाई जाती है। उदाहरणस्वरूप, हिमालयी क्षेत्रों में हिमनदों का तीव्र पिघलना, तटीय क्षेत्रों में समुद्री जलस्तर में वृद्धि और कटाव, और शुष्क क्षेत्रों में मरुस्थलीकरण एवं जल संकट जैसी समस्याएँ प्रमुख रूप से देखी जाती हैं।
Sharma, M. (2015)

जनसंख्या वृद्धि, नगरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण भूमिगत जलस्तर में भारी गिरावट, भूमि की उर्वरता में क्षरण तथा वनों की कटाई जैसी समस्याएँ क्षेत्रीय स्तर पर पर्यावरणीय संकट को बढ़ावा दे रही हैं। भारत के कई राज्य—विशेषकर राजस्थान, मध्य प्रदेश, झारखंड और महाराष्ट्र—इन संकटों का भौगोलिक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जहाँ वर्षा की असमानता, जलस्रोतों का क्षय तथा भूमि अपक्षय जैसी स्थितियाँ सामाजिक व आर्थिक असंतुलन को जन्म दे रही हैं। Das, P. (2017)

इसके अतिरिक्त, प्राकृतिक संसाधनों का असमान वितरण भी भौगोलिक संकट को बढ़ाता है। जिन क्षेत्रों में जल, वन या खनिज संसाधन अधिक हैं, वहाँ दोहन की प्रवृत्ति तीव्र होती है, जिससे पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ता है। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव भी भौगोलिक दृष्टि से असमान हैं—कुछ क्षेत्रों में अत्यधिक वर्षा हो रही है तो कुछ सूखा झेल रहे हैं। इस प्रकार, पर्यावरणीय संकट का भौगोलिक विश्लेषण न केवल इसके कारणों को समझने में सहायक होता है, बल्कि यह भी स्पष्ट करता है कि प्रत्येक क्षेत्र के लिए समाधान भिन्न हो सकते हैं। अतः आवश्यक है कि हम क्षेत्र विशेष की भौगोलिक विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए स्थानीय स्तर पर पर्यावरणीय योजना बनाएं और स्थायी विकास की ओर अग्रसर हों।

भौगोलिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो पर्यावरणीय संकट किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं रहता। यह संकट वैश्विक होता है, किन्तु उसका स्वरूप और प्रभाव स्थान विशेष पर निर्भर करता है। जैसे—रेगिस्तानी क्षेत्रों में मरुस्थलीकरण बढ़ रहा है, हिमालयी क्षेत्र में हिमखंड पिघल रहे हैं, तटीय क्षेत्रों में समुद्र का

जलस्तर बढ़ रहा है। जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण और अवैज्ञानिक कृषि पद्धतियाँ भी स्थानीय स्तर पर संकट को बढ़ा रही हैं।

समाज पर प्रभाव

पर्यावरणीय संकट का समाज पर प्रभाव बहुआयामी और गहरा होता है। यह संकट केवल प्राकृतिक संसाधनों की क्षति तक सीमित नहीं रहता, बल्कि सामाजिक संरचना, जीवनशैली, आजीविका, स्वास्थ्य, और सांस्कृतिक मूल्यों पर भी व्यापक प्रभाव डालता है। विशेष रूप से विकासशील देशों में, जहाँ अधिकांश जनसंख्या कृषि, जल और वन जैसे संसाधनों पर निर्भर है, वहाँ पर्यावरणीय असंतुलन सीधे लोगों के जीवन को प्रभावित करता है। Das, P. (2017)

कृषि आधारित समाजों में वर्षा की अनियमितता, सूखा, बाढ़ या भूमि की उपजाऊ शक्ति में कमी जैसे संकट किसानों की आर्थिक स्थिति को कमजोर कर देते हैं, जिससे ग्रामीण जनसंख्या में गरीबी, कर्ज और आत्महत्या की घटनाएँ बढ़ती हैं। जल संकट और प्रदूषण से महिलाओं और बच्चों पर विशेष भार पड़ता है, क्योंकि वे ही घरेलू जल संग्रहण व उपयोग के कार्य में सबसे अधिक संलग्न होते हैं। शहरी क्षेत्रों में वायु प्रदूषण और तापमान वृद्धि से स्वास्थ्य समस्याएँ जैसे दमा, एलर्जी, हृदय रोग व अन्य श्वसन रोग तेजी से बढ़ रहे हैं। Mishra, R. (2021)

इसके अतिरिक्त पर्यावरणीय संकट समाज में आंतरिक विस्थापन (internal displacement) और प्रवासन (migration) की समस्या को भी जन्म देता है। जलवायु परिवर्तन से प्रभावित क्षेत्रों से लोग रोज़गार, पानी या रहने की जगह की तलाश में अन्य स्थानों की ओर पलायन करने लगते हैं, जिससे शहरी आबादी पर दबाव और सामाजिक तनाव उत्पन्न होता है।

पर्यावरणीय संकट का एक गूढ़ प्रभाव समाज के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों पर भी पड़ता है। जब मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों को मात्र उपभोग की वस्तु मानकर व्यवहार करता है, तो समाज में स्वार्थ, लालच और प्रतिस्पर्धा की प्रवृत्ति प्रबल होती है। इससे सामाजिक संबंधों में असंतुलन, वर्ग संघर्ष और असमानता गहराती है। इस प्रकार पर्यावरणीय संकट न केवल जैविक और भौतिक स्तर पर, बल्कि सामाजिक और नैतिक धरातल पर भी गंभीर परिणाम उत्पन्न करता है, जिन्हें समझना और संबोधित करना अत्यंत आवश्यक है।

पर्यावरणीय संकट समाज के सभी वर्गों पर प्रभाव डालता है, परंतु इसका सर्वाधिक प्रभाव गरीब व वंचित वर्गों पर पड़ता है। जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा, बाढ़ या अकाल जैसी आपदाएँ बढ़ रही हैं, जिससे कृषि आधारित जीवनशैली प्रभावित हो रही है। प्रवासन, बेरोजगारी, कुपोषण, जल और स्वास्थ्य संकट जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं, जो सामाजिक असमानता और संघर्ष को जन्म देती हैं।

नैतिक दृष्टिकोण से पर्यावरणीय संकट

पर्यावरणीय संकट के समाधान की चर्चा करते समय केवल वैज्ञानिक या तकनीकी उपायों पर केंद्रित होना पर्याप्त नहीं है; इसके पीछे छिपी नैतिक असंतुलन की जड़ को समझना अत्यंत आवश्यक है। यह संकट केवल बाह्य रूप से प्रकृति के दोहन का परिणाम नहीं है, बल्कि मानवीय मूल्यों, दृष्टिकोणों और आचरण की गहराई से जुड़ा हुआ है। आधुनिक मानव ने प्रकृति को एक "उपयोग की वस्तु" मानकर उसके साथ शोषणकारी व्यवहार किया है, जिससे यह नैतिक संकट और भी गंभीर बन गया है। वर्मा, आर. के. (2018)

नैतिक दृष्टि से देखा जाए तो पर्यावरण के प्रति आज का समाज उदासीन, उपभोक्तावादी और तात्कालिक लाभ की मानसिकता से ग्रस्त हो गया है। मनुष्य ने आत्मकेंद्रित होते हुए न केवल अपने प्राकृतिक परिवेश से दूरी बनाई है, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों के अधिकारों की भी अवहेलना की है। Garg, B. P. (2020) जब तक हम प्रकृति को केवल एक संसाधन मानकर उसका उपभोग करते रहेंगे, तब तक संकट का समाधान संभव नहीं है।

भारतीय दर्शन और संस्कृति में पर्यावरण को देवत्व की दृष्टि से देखा गया है — नदियाँ "माँ" हैं, वृक्ष "पूज्य" हैं, और पृथ्वी "धरणी" है। यह दृष्टिकोण पर्यावरण के साथ सहअस्तित्व, कर्तव्यबोध और कृतज्ञता को जन्म देता है। परंतु आधुनिक विकास मॉडल ने इन नैतिक व सांस्कृतिक मान्यताओं को हाशिये पर डाल दिया है। इससे न केवल पर्यावरणीय असंतुलन बढ़ा है, बल्कि समाज में मूल्यहीनता, असंवेदनशीलता और आत्मकेन्द्रिता भी गहराई है।

नैतिक रूप से उत्तरदायी समाज वह होता है जो प्रकृति को केवल अधिकार के रूप में नहीं, बल्कि कर्तव्य के रूप में देखता है। हमें पर्यावरण के प्रति दया, सह-अस्तित्व, संयम और दीर्घकालिक सोच को अपनाना होगा। जब तक व्यक्ति, समाज और राष्ट्र अपने पर्यावरणीय कर्तव्यों को नैतिक रूप से नहीं अपनाएंगे, तब तक स्थायी विकास एक भ्रम बना रहेगा। इसलिए, नैतिक दृष्टिकोण से पर्यावरणीय संकट केवल एक भौतिक समस्या नहीं, बल्कि एक चेतना का संकट है—जिसका समाधान आत्मावलोकन, मूल्यपरक शिक्षा और सामाजिक पुनर्रचना में निहित है।

नैतिक दृष्टिकोण से यह संकट मानवीय स्वार्थ, उपभोगवाद और प्रकृति के प्रति असंवेदनशीलता का परिणाम है। हमने विकास की दौड़ में प्रकृति की सीमाओं को नजरअंदाज किया है। ऐसे में यह आवश्यक है कि हम पर्यावरण के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व को समझें और उसे सामाजिक जीवन में लागू करें। पर्यावरण के प्रति करुणा, अहिंसा और संयम जैसे मूल्य पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता है।

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

नीतिगत उपाय और समाधान

पर्यावरणीय संकट के व्यापक प्रभावों को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि समाज, सरकार और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ मिलकर समग्र और व्यावहारिक नीतियाँ अपनाएँ। केवल वैज्ञानिक या तकनीकी प्रयासों से इस संकट का समाधान संभव नहीं है, जब तक कि उनमें नैतिक दृष्टिकोण और सामाजिक भागीदारी का समावेश न हो। नीतिगत स्तर पर ऐसे उपायों की आवश्यकता है जो दीर्घकालिक सोच, न्यायपूर्ण संसाधन वितरण और टिकाऊ विकास के सिद्धांतों पर आधारित हों।

पर्यावरणीय शिक्षा और जनजागरूकता: पर्यावरण संरक्षण के लिए जनसहभागिता सबसे अहम है। इसके लिए लोगों में जागरूकता और संवेदनशीलता विकसित करना आवश्यक है। विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पर्यावरणीय शिक्षा को अनिवार्य रूप से लागू किया जाना चाहिए, ताकि बचपन से ही प्रकृति के प्रति सम्मान और जिम्मेदारी का भाव उत्पन्न हो। Mishra, R. (2021)

सतत विकास की रणनीतियाँ: विकास के ऐसे मॉडल को अपनाना होगा जो पर्यावरण के साथ संतुलन बनाए रखे। उद्योगों में स्वच्छ तकनीकों का उपयोग, हरित ऊर्जा (सौर, पवन, बायोगैस) का विस्तार, जल संरक्षण, और अपशिष्ट प्रबंधन जैसे उपाय आवश्यक हैं।कुमार, ए. (2022)

नीति निर्माण में पारदर्शिता और सहभागिता: सरकारी योजनाएँ स्थानीय जरूरतों और पारिस्थितिकी तंत्र की प्रकृति के अनुसार बनाई जानी चाहिए। इसमें स्थानीय समुदाय, विशेषकर महिलाओं, किसानों और आदिवासी समाज की सहभागिता सुनिश्चित की जानी चाहिए।

विधायी और संस्थागत सुधार: पर्यावरणीय अपराधों के विरुद्ध सख्त कानून और उनका प्रभावी क्रियान्वयन अत्यंत आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन (EIA) रिपोर्टों में पारदर्शिता होनी चाहिए और उन्हें मात्र औपचारिकता न बनाकर वास्तविक मूल्यांकन का दस्तावेज़ बनाना चाहिए।

पारंपरिक ज्ञान और संस्कृति का संरक्षण: देशज पारंपरिक ज्ञान प्रणालियाँ जैसे जल संचयन, वनों की पूजा, और सामुदायिक वन प्रबंधन पर्यावरण के संरक्षण में सहायक रही हैं। इन परंपराओं को आधुनिक योजनाओं में एकीकृत करना आवश्यक है।

वैश्विक सहयोग और उत्तरदायित्व:जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता संरक्षण जैसे विषयों पर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सहयोग और प्रतिबद्धता आवश्यक है। विकसित देशों को अधिक उत्तरदायित्व लेना होगा और विकासशील देशों को तकनीकी व आर्थिक सहयोग प्रदान करना होगा।

इस प्रकार, पर्यावरणीय संकट का समाधान केवल एक विभागीय उत्तरदायित्व नहीं, बल्कि एक सामूहिक सामाजिक और नैतिक कर्तव्य है। नीति निर्माण, क्रियान्वयन और जनसहभागिता के समन्वय से ही हम

एक टिकाऊ और संतुलित भविष्य की ओर बढ़ सकते हैं। पर्यावरणीय संकट का समाधान केवल तकनीकी उपायों से संभव नहीं है, इसके लिए व्यापक सामाजिक, नैतिक और शैक्षिक पहल आवश्यक है। हमें सतत विकास के सिद्धांत को अपनाना होगा, जिसमें प्रकृति और मानव के बीच संतुलन बना रहे। पर्यावरणीय शिक्षा, जागरूकता अभियान, नीतिगत योजनाएँ, जैविक खेती, हरित ऊर्जा का उपयोग, और स्थानीय स्तर पर सामुदायिक भागीदारी से इस संकट से निपटा जा सकता है।

निष्कर्ष

पर्यावरणीय संकट आज केवल एक पारिस्थितिक या भौगोलिक समस्या नहीं रह गया है, बल्कि यह एक गहन सामाजिक, नैतिक और वैश्विक चुनौती के रूप में हमारे समक्ष खड़ा है। जिस गति से प्राकृतिक संसाधनों का दोहन हो रहा है, और जिस तरह से मनुष्य प्रकृति से अलग-थलग होता जा रहा है, वह हमारे अस्तित्व को ही संकट में डाल रहा है। यह संकट हमें चेतावनी देता है कि यदि अब भी हमने अपनी जीवनशैली, नीतियों और सोच में परिवर्तन नहीं किया, तो भविष्य में मानव सभ्यता एक गहरे अस्तित्वगत संकट में फंस जाएगी। Garg, B. P. (2020)

भौगोलिक दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि पर्यावरणीय संकट के स्वरूप और प्रभाव क्षेत्र विशेष की परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं। कहीं यह जल संकट के रूप में उभरता है, तो कहीं मरुस्थलीकरण, बाढ़, तापमान वृद्धि या प्रदूषण के रूप में। इसलिए समाधान भी स्थान-विशेष की परिस्थितियों के अनुसार ही ढूँढना होगा। वहीं सामाजिक दृष्टिकोण से यह संकट गहराता तब है जब उसका सीधा प्रभाव समाज के सबसे कमजोर वर्गों पर पड़ता है — जैसे किसान, ग्रामीण, महिलाएं, बच्चे और आदिवासी समुदाय।
इस संकट का एक सबसे अनदेखा पहलू इसका नैतिक आयाम है। हमने प्रकृति को केवल एक वस्तु के रूप में देखा है, न कि एक जीवंत सत्ता के रूप में। हमारे पूर्वजों ने पर्यावरण के साथ सहअस्तित्व का जीवन जिया, लेकिन आधुनिक मानव ने विकास की अंधी दौड़ में इस संतुलन को तोड़ दिया। अब आवश्यकता है कि हम उस नैतिकता को पुनर्स्थापित करें जो प्रकृति को माता, वृक्ष को वंदनीय और जल को जीवन मानती थी।मिश्रा, एस.एन. (2019)

समाधान के लिए हमें तकनीक, नीति और नैतिकता — इन तीनों को एक सूत्र में बाँधना होगा। जहाँ एक ओर सतत विकास की नीतियाँ अपनाई जानी चाहिए, वहीं दूसरी ओर समाज के प्रत्येक व्यक्ति को पर्यावरणीय उत्तरदायित्व का वहन करना होगा। शिक्षा प्रणाली को पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाना, पारंपरिक ज्ञान का सम्मान करना, और वैश्विक स्तर पर सहयोग को सुदृढ़ करना आज की आवश्यकता है।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पर्यावरणीय संकट का समाधान किसी एक क्षेत्र या संस्था से नहीं, बल्कि संपूर्ण मानव समुदाय की जागरूकता, सहभागिता और नैतिक पुनर्रचना से ही संभव है। यदि हम आज सचेत नहीं हुए, तो कल की पीढ़ियाँ हमें केवल एक स्वार्थी और संवेदनहीन सभ्यता के रूप में याद रखेंगी।

संदर्भ उद्धरण (In-text Citations with examples):

1. *गोस्वामी, टी. के. (2016) "पर्यावरणीय शिक्षा का अभाव समाज में प्रकृति के प्रति उदासीनता को बढ़ाता है" (गोस्वामी, 2016)।*
2. *मिश्रा, एस.एन. (2019) "समाज और पर्यावरण एक-दूसरे के पूरक हैं और दोनों में संतुलन ही मानव विकास की कुंजी है" (मिश्रा, 2019)।*
3. *सिंह, सविता (2014) "जलवायु परिवर्तन का सबसे तीव्र प्रभाव ग्रामीण जीवनशैली और कृषि पर देखा गया है" (सिंह, 2014)।*
4. *वर्मा, आर. के. (2018) "नैतिकता के बिना पर्यावरण संरक्षण केवल एक तकनीकी प्रयास बनकर रह जाएगा" (वर्मा, 2018)।*
5. *Garg, B. P. (2020) "Environmental degradation is fundamentally a moral crisis" (Garg, 2020)।*
6. *Sharma, M. (2015) "Geographical patterns of resource exploitation directly correlate with environmental stress" (Sharma, 2015)।*
7. *Das, P. (2017) "The most vulnerable to environmental change are the socially marginalized communities" (Das, 2017)।*
8. *Mishra, R. (2021) "India faces an environmental paradox—rapid growth alongside resource depletion" (Mishra, 2021)।*
9. *कुमार, ए. (2022) "पर्यावरणीय संकट सामाजिक न्याय की चुनौती को और गंभीर बना देता है" (कुमार, 2022)।*
10. *UNDP (2021) "Sustainable development requires equity, participation, and environmental justice" (UNDP, 2021)*

 ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

पर्वतीय परिवेश में निम्नवर्ग के जीवन में निहित आर्थिक चुनौतियों का अनुशीलन (शैलेश मटियानी के उपन्यास 'गोपुली गफ़ूरन' के विशेष संदर्भ में)

आनंद सिंह कप्रवान
शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल केन्द्रीय
विश्वविद्यालय, श्रीनगर उत्तराखंड ईमेल – anandsinghkapravan@gmail.com

शोध सार

पर्वतीय परिवेश में विषम भौगोलिक परिस्थितियों के कारण जीवन यापन के मूलभूत संसाधनों की खोज करना भी अत्यंत संघर्षपूर्ण कार्य है विशेषकर समाज के निचले वर्ग के लिए, जो आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त है। समाज के निम्न वर्ग के पास शिक्षा तथा कौशल के अभाव के कारण वह समाज में शोषण का शिकार है। समाज के निम्नवर्ग के इस आर्थिक शोषण को साहित्यकारों ने विभिन्न रूपों में चित्रित किया है तथा अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने हिन्दी साहित्य में निम्नवर्ग की दयनीय स्थिति तथा उसकी दुर्दशा के लिए उत्तरदायी कारकों को रेखांकित किया है इन्हीं चुनिंदा साहित्यकारों में से एक शैलेश मटियानी ने भी निम्नवर्ग के जीवन के संघर्ष को यथार्थ रूप में चित्रित किया है उन्होंने अपनी रचनाओं पर्वतीय परिवेश के व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर निम्नवर्ग के जीवन से जुड़ी विविध संवेदनाओं का चित्रण किया है। उन्होंने विशेषतः पर्वतीय परिवेश में निम्नवर्ग के जीवन में निहित आर्थिक चुनौतियों का सजीवता पूर्ण चित्रण किया है उनकी रचनाओं के पात्र मुख्य रूप से निम्नवर्ग से ही संबंधित है तथा निरंतर आर्थिक संघर्ष करते दिखाई पड़ते हैं उदाहरणस्वरूप उनके उपन्यास 'गोपुली गफ़ूरन' की मुख्य पात्र गोपुली भी निम्नवर्ग से ही संबंधित है, वह अपने जीवन में कई प्रकार के आर्थिक संकटों का सामना करती है। पति के चले जाने के बाद परिवार की पूरी जिम्मेदारी उसके कंधों पर है तथा परिवार के पोषण के लिए उसके पास कोई आर्थिक साधन उपलब्ध नही है। वह दिहाड़ी-मजदूरी करके अपनी सास तथा बेटे का भरण पोषण करती है। शैलेश मटियानी ने गोपुली के माध्यम से भारतीय ग्रामीण परिवेश में निम्नवर्ग की स्त्री के जीवन में व्याप्त आर्थिक संघर्ष का अत्यंत जीवंत चित्रण किया है। गोपुली का यह

आर्थिक संघर्ष समाज की उस प्रत्येक स्त्री का संघर्ष है जो समाज में निहित असमानता और अमानवीयता की शिकार है। उसके आर्थिक संघर्ष के लिया अनेक उत्तरदायी कारक है जिनमें से प्रमुख है ग्रामीण परिवेश में आर्थिक संसाधनों की कमी, समाज में व्याप्त लिंग भेद तथा जातिगत शोषण। इन सबके बावजूद गोपुली अपनी अस्मिता को बचाए रखने का निरंतर प्रयास करती है तथा परिवार का भरण पोषण करने में सफल होती है।

मूल शोध

प्राकृतिक संपदा की दृष्टि से पर्वतीय परिवेश परिपूर्ण है परंतु प्राकृतिक संपदा एवं संसाधनों उचित प्रयोग के अभाव में आर्थिक समस्याओं का भी केंद्र है जिसके परिणामस्वरूप यहाँ के निवासी पलायन करने पर मजबूर है। पलायन कि बढ़ती समस्या के कारण यहाँ के अधिकतर गाँव वीरान हो चुके हैं। पहाड़ से संबंधित अनेक रचनाकारों ने पहाड़ के जीवन की इन मूलभूत समस्याओं को अपनी रचनाओं के केंद्र में रखा है। शैलेश मटियानी भी उन विशिष्ट रचनाकारों में से एक है जिन्होंने पहाड़ के जीवन समाज और संस्कृति के यथार्थ रूप का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। उन्होंने पर्वतीय परिवेश में निहित समस्याओं को अपने व्यक्तिगत जीवन में स्वयं अनुभव किया है तथा अपने इन अनुभवों के माध्यम समसामयिक घटनाओं का चित्रण किया है। उनका मानना है की पर्वतीय जन जीवन में व्याप्त समस्याओं के मूल में विषम आर्थिक परिस्थितियां हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में भी पर्वतीय परिवेश में आर्थिक चुनौतियों का अंकन किया है। उनका उपन्यास गोपुली गफ़ूरन इसका सबसे उपयुक्त उदाहरण है जहां पर्वतीय परिवेश में निम्नवर्ग की एक स्त्री गोपुली को आर्थिक समस्याओं से जूझते हुए दिखाया है।

शैलेश मटियानी का जन्म पर्वतीय अंचल के ग्रामीण परिवेश में हुआ था तथा प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर इस रमणीय स्थान में ही उनके जीवन का आरंभिक समय व्यतीत हुआ, नदी, झरने, पहाड़ तथा जीव जंतुओं के बीच उन्होंने अपने जीवन का प्रथम चरण संपन्न किया। उनके अनुसार प्रकृति ने उनके भीतर संवेदना के विविध रूपों को जन्म दिया। उनके व्यक्तित्व के निर्माण में प्राकृतिक उपादानों का विशेष योगदान रहा, जिनके विषय में वह लिखते हैं- **“मेरे सृजनात्मक उत्सों का बीजारोपण सेलना-सौंलखेत और घनधार वनों हरी-गहरी घाटियों में विचरते–विचरते, ऊँचे-ऊँचे टीलों-चट्टानों पर चढ़ते-चढ़ते ही हुआ है। अस्तु-अस्तु अपने लेखक–जीवन की पूर्व-पीठिका प्रस्तुत करते समय सबसे पहले मुझे इन वन घाटियों में चरती-विचरती गाय-बकरियों की सुधि अनायास ही हो आई है।”**[1] उनकी प्रवृत्ति बचपन से ही एक प्रकृति प्रेमी की थी, यहीं कारण था कि उन्हें एकांत में प्रकृति के बीच समय व्यतीत करना पसंद था। प्रकृति के साथ इस जुड़ाव से उन्हें साहित्य रचना की प्रेरणा मिलती

1. [1] **मटियानी, शैलेश : ‘जनकथाकर : शैलेश मटियानी’, (मैं और मेरी रचना प्रक्रिया), प्रकाशन विभाग, दिल्ली, संस्करण – 2004, पृष्ठ संख्या- 120**

थी, शैलेश मटियानी के उपन्यासों ने हिंदी कथा साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की है तथा आंचलिक तथा यर्थाथपरक उपन्यासों की धूमिल होती परंपरा को पुनःजीवित करने का प्रयास किया है। फणीश्वरनाथ रेणु के पश्चात उन्होंने आंचलिक उपन्यासों का सफलतापूर्वक सृजन कर, कुमाऊँ ग्रामीण अंचल के जीवन, समाज और संस्कृति को विस्तृत फलक पर दर्शाया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में समकालीन परिवेश तथा उससे उत्पन्न स्थितियों का अत्यंत सजीवता पूर्ण चित्रण किया है। उनके उपन्यासों के पात्र समाज के सभी, वर्ग, लिंग, जाति का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके उपन्यासों के अध्ययन के पश्चात हम यह कह सकते हैं कि विषय की विविधता तथा यथार्थपरकता के कारण उनके उपन्यास हिंदी उपन्यास साहित्य की एक अनुपम निधि है, जिनके माध्यम से मटियानी जी ने हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

शैलेश मटियानी के सभी उपन्यास हिंदी साहित्य की अनुपम निधि है परंतु गोपुली गफूरन उपन्यास का उनमें विशेष स्थान है। मटियानी जी ने अपनी एक कहानी 'गोपूली गफूरन' कहानी की नायिका गोपूली के चरित्र को विस्तार देकर इस उपन्यास की रचना की है, जिसका प्रकाशन सन् 1981 में सरस्वती विहार, शाहदरा, दिल्ली से हुआ। पर्वतीय ग्रामीण अंचल पर आधारित इस उपन्यास में गोपुली नामक स्त्री पात्र के माध्यम से दलित निर्धन स्त्री की वेदना का मार्मिक चित्रण किया गया है। मटियानी जी ने इस उपन्यास में अपने आरंभिक जीवन के अनुभवों को अभिव्यक्ति दी है, जिसके विषय में वह कहते है – **"हू-बहू ऐसी ही एक स्त्री को मैंने देखा था और उसका बोलना, हँसना, चलना-फिरना, सब-कुछ इसमें ज्यों का त्यों आ गया है।"**[2]

इस उपन्यास की कथा के केन्द्र में गोपूली है जिसका पति रतनराम फौज में था परंतु 1943 के युद्ध में लापता हो जाता है। उसका एक तीन वर्ष का बेटा भी हैं जिसका भरण पोषण करने के लिए वह अत्यंत संघर्षो का सामना करती है। जीवन की इन विषम परिस्थितियों के परिणाम- स्वरूप उसे सद्दूमियां नामक मुस्लिम चूड़ी बेचने वाले से विवाह करना पड़ता है तथा वह इस्लाम धर्म स्वीकार कर गोपुली से गफ़ूरन बन जाती है। मटियानी जी ने गोपुली के गफूरन बनने तक के सफर को अत्यन्त मार्मिक रूप से चित्रित किया है। गफ़ूरन बनने के पश्चात एक दिन अचानक से गोपुली का पति रतनराम वापस गांव लोट आता है तथा गोपुली को पुनः प्राप्त करने के लिए सददुमियाँ पर मुकदमा कर देता है परंतु अंत में मुकदमा हार जाने पर अत्यन्त दुखी होता है। उसको दुखी देखकर गोपुली उसे उसका बेटा सौंप सददुमिया के साथ चली जाती है | इस उपन्यास में गोपुली के माध्यम से पर्वतीय ग्रामीण अंचल में निम्नवर्ग की स्त्री की पीड़ा तथा वेदना को यथार्थ रूप में दिखाया गया है। आलोचक गोपाल राय उपन्यास में चित्रित गोपुली के चरित्र के चरित के विषय में लिखते है- **"गोपुली एक अविस्मरणीय पात्र है; दलित समाज की**

2. [2] डॉ. पाठक, शेखर (सं) : 'पहाड़', 'बातचीत', संस्करण-2001, अंक -13, पृष्ठ संख्या-92

स्त्री होने पर भी उसके चरित्र में जो तेजस्विता है, वह अनूठी है; उसमें कोई कुंठा नहीं, पराजय का भाव नहीं; वह न डरती है, न हारती है, न खरीदी-बेची जा सकती है। उसकी ऊपर से दिखाई देने वाली हार में भी उसकी जीत ही फुंफकारती हुई सुनाई पड़ती है। उसके चरित्र में एक आदिम नारी और माँ पूरी तरह से विद्यमान है। वह अपने अनुभवों से 'औरत होने का अर्थ' जानती है।"[3]

उस उपन्यास में पर्वतीय अंचल की ग्रामीण स्त्री अपने समग्र रूप में प्रस्तुत हुई है। ग्रामीण स्त्री के पत्नी, बहू तथा माँ रूप का चित्रण मटियानी जी ने इस उपन्यास में किया है। गोपुली के जीवन में व्याप्त कठिनाइयों तथा समस्याओं के साथ- साथ उसे अदम्य जिजीविषा तथा आत्मविश्वास से परिपूर्ण स्त्री के रूप में मटियानी जी ने चित्रित किया जो जीवन की प्रत्येक विषम परिस्थिति का डटकर सामना करती है।

इस उपन्यास में मटियानी जी ने पर्वतीय ग्रामीण अंचल में महिलाओं की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है। इस उपन्यास की मुख्य स्त्री पात्र गोपुली के माध्यम से उन्होंने महिलाओं के जीवन संघर्ष तथा समाज में हो रहे उनके शोषण को दर्शाया है। यह उपन्यास शैलेश मटियानी की ही एक कहानी 'गोपुली गफूरन' के प्रमुख पात्र गोपुली के चरित्र को विस्तार देकर लिखा गया है। इसके विषय में वह लिखते हैं "**जैसे लगा की कहानी में गोपुली गफूरन का चरित्र पूरी तरह खुला नहीं तो उनकी बाकी संभावनाएं उपन्यास में टटोली गई।"**[4] यह उपन्यास शैलेश मटियानी के जीवन अनुभवों की अभिव्यक्ति है, वह लिखते हैं की **'हूबहू ऐसी ही एक स्त्री को मैंने देखा था और उसका बोलना हंसना चलना फिरना सब कुछ इसमें ज्यों का त्यों आ गया है'**[5] गोपुली गफूरन उपन्यास मूलतः एक स्त्री की कथा है, जो तमाम संघर्षो के बावजूद अपनी अस्मिता को बचाए रखने का प्रयास करती है। विषम आर्थिक परिस्थितियों के बावजूद वह अपने परिवार के प्रति समर्पित है। पति के घर छोड़ जाने के बाद भी वह उसके पुत्र के लालन पालन में अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती है। शैलेश मटियानी ने स्त्री जीवन की समस्याओं को **'चौथी मुट्ठी', 'एक मुठ सरसों', 'मुख सरोवर के हंस'** और **'रामकली'** जैसे उपन्यासों में भी उठाया है किंतु गोपुली गफूरन का विशेष महत्व है। नायिका प्रधान इस लघु उपन्यास में एक आश्रयहीन जाति विपन्न औरत की कहानी है। इसमें जाति, धर्म, संप्रदाय, वर्ग, नैतिकता–अनैतिकता आदि से समृद्ध सामाजिक विडंबनाओं को आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में उठाया गया है। इस उपन्यास के केंद्र में गोपुली नामक महिला पात्र है जो अपनी विवशताओं और सामाजिक शोषण के कारण गफूरन बनने को मजबूर हो जाती है। बचपन में ही विवाह हो जाने के कारण छोटी उम्र में ही उसे अपनी मां का घर छोड़ना पड़ता है तथा नए घर में उसे कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता

3. [3] गोपालराय : 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 2016, पृष्ठ संख्या – 268
4. [4] सं. पाठक, शेखर, 'पहाड़' पत्रिका, 'बातचीत', अंक 2001, 'शैलेश मटियानी के मायने' पृष्ठ संख्या – 82
5. [5] सं. पाठक, शेखर, 'पहाड़' पत्रिका, 'बातचीत', अंक 2001, 'शैलेश मटियानी के मायने' पृष्ठ संख्या – 92

है। पति रतनराम जो फौज में है, कई सालों से घर वापस नहीं आया है तथा पुत्र किशन के लालन पालन का पूरा भार उसे पर है, जिसका निर्वाहन वह हर कठिन परिस्थिति में करती है। निर्धनता उसके जीवन की सबसे बड़ी समस्या है। संसाधनों की कमी के कारण वह अपने परिवार का भरण पोषण करने में असमर्थ है। वह कहती है **"काश; किसी बड़े खेती बाड़ी वाले घर की बहू बनने को मिला होता डकोले भर दही बिलो रही होती चार-पांच बच्चे नोनी को हाथ फैलाए खड़े होते"**[6], इन सबके बावजूद उसके भीतर स्त्री सौंदर्य के भाव जीवित हैं, जीवन में अकेलापन और आश्रय का अभाव उसको भीतर तक दुखों में डूबा देता है। एक स्त्री होने का आभास उसे अक्सर 'प्रेम भाव' में बहा ले जाता है जिसके परिणामस्वरुप गांव के ही विक्रम ठाकुर से उसे प्रेम हो जाता है। हृदय में पति की स्मृति होने के बावजूद वह प्रेम के अभाव में विक्रम को अपना सर्वस्व सौंप देती है **"अभावों के मारे चित्त का यह कैसा अनुराग है कि पहली नोनी उतारते हुए यकायक रतन राम की याद आई है, फिर गंगा (छोटी बहन) और माता-पिता की और न चाहते हुए भी विक्रम ठाकुर की......... औरत–मर्द को कोई भला लग गया इसमें कौन सा पाप है"**[7] गोपुली का विक्रम से संबंध एक ओर स्वाभाविक मानवीय संवेदना का परिणाम है वहीं दूसरी ओर आर्थिक समस्याओं से ग्रसित एक ग्रामीण महिला के आश्रय की कामना से प्रभावित है।

इस उपन्यास में गोपुली न केवल जातिगत भेदभाव से खिन्न है अपितु समाज में स्त्री पुरुष में असमान भावना से भी परेशान है वह कहती है **"औरत मर्द की कौन अलग-अलग जात है भैया, यह तो लोगों की लगाई आग है। तु इस पार, हम उस पार"**[8] शैलेश मटियानी ने गरीबी की विभीषिका को अत्यंत निकटता से देखा है निम्न वर्गीय पहाड़ी परिवार में जन्म लेने के कारण उन्होंने गरीबी तथा उससे उत्पन्न समस्याओं को खुद जिया है। गोपुली गफूरन उपन्यास में उन्होंने देबुली के माध्यम से विपन्नता से जुड़े अपने अनुभवों को पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है **"हमारे घर अब दूध दही नहीं रहा छान में बकरियां रह गई थी; तुम्हारे जेठ के हाथ–पावों के साथ वह भी खत्म हुई। घास बेचने वाली औरतों से भैंसे नहीं पाल सकती। देख तो, कैसा चौमासा आया हुआ है? ठाकुर गांव के जमीदारों के यहां जाओ तो भैंसे पोसार लगाए मिलेंगी। कैसा धुआं उठ रहा है घर-घर से इस वक्त। दूध–दही–छाछ नोनी से अघाए रहते हैं उनके बच्चे। हम शिल्पकारों के ज्यादातर बच्चे बकरियां के नीचे गिलास लगाते हैं। जानवर भी वही पोसता है जिनके जमीन हो।....... बाप दादे इन ठाकुरों की जमीन जोतते, घर चिनते रह गए। आन औलाद अब मजदूरी करके दिन**

---

6. [6] मटियानी, शैलेश, 'गोपुली गफ़ूरन', हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण – 2019 पृष्ठ संख्या – 42
7. [7] मटियानी, शैलेश, 'गोपुली गफ़ूरन', हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण – 2019 पृष्ठ संख्या – 42
8. [8] मटियानी, शैलेश, 'गोपुली गफ़ूरन', हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण – 2019 पृष्ठ संख्या – 24

काटने को परदेश जाने लगी। सुना है गोरों की फौज समुंदर पार लौटने वाली है, कांगरेसी राज आने वाला है। द हमारे लिए तो सबका राज एक है"[9]

गोपुली की पीड़ा पर्वतीय ग्रामीण अंचल की उस प्रत्येक स्त्री की पीड़ा है जो गरीबी का दर्द सहन कर रही है, उसकी स्थिति बद से बदतर हो जाने के कारण उसे कोई मार्ग दिखाई ही नहीं पड़ता तथा उसे अपने अंत के अलावा और कुछ भी नहीं सूझता परंतु पुत्र का मोह उसे रोक लेता है **"कुछ नहीं यह सब अपने कर्मों की मार है, फांसी लगाकर मरना है, बाढ़ चढ़ी सरयू में छलांग लगा लेनी है या पर्वत से कूद के मरना है –जो करना है, जिंदगी रे जिंदगी तू दूपरदू लड़ने को तैयार खड़ी है, तो आ–जा भाग में है, भुगतान है। जो तय करना है अकेली गोपूली को ही तय करना है।'**

शैलेश मटियानी ने गोपुली के माध्यम से गरीबी के यथार्थ रूप को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। गरीबी की भयावहता व उससे उत्पन्न मजबूरी का चित्रण करना इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है। गोपुली की यह पंक्तियां गरीबी की विभीषिका को पूर्ण रूप से उजागर करती है। **"तुम क्या जानो लला गरीब के घर का हाहाकार कैसा होता है कैसी होती है यह जिंदगी जिसमें जंगल का सा जलना है–दो बूंद पानी को तरसना है। मेरे घर में सुख नाम की कोई चीज होती तो मैं पराये को क्यों डोलती? वहीं बुढ़िया सासु का झींकना, कोसना। वही बिना आसरे के बच्चे की हाय भूख, हाय भूख..। कैसा भागा है, मिसरी के कुंज पाते ही छोकरा! छोड़ गया मां को तुम्हारे आगे....... है भगवान, छोटे बच्चों की महतारी या तो बे आसरा ना हो या तो जिए नहीं।"**[10]

यह उपन्यास एक पर्वतीय स्त्री की वेदना की गाथा है किस प्रकार समाज से शोषित तथा गरीबी से पीढ़ित एक स्त्री गोपुली से गफ़ूरन तक का सफर तय करती है जिसके विषय में मटियानी जी लिखते है कि **"'गोपुली' का गफ़ूरन बनना उस निमित्त का प्रकट होना है, जो प्रकृति अथवा परमात्मा की कल्पना में स्त्री को रचते निहित रहा होगा"**[11] उनका यह कथन गोपुली की मनोव्यथा, पीड़ा और समर्पण को उजागर करता है। गोपुली तमाम समस्याओं के बावजूद अदम्य जिजीविषा और आत्मविश्वास का प्रतीक है। वह ग्रामीण परिवेश में पली बड़ी एक साधारण सी स्त्री है, जिसका एक चार वर्ष का पुत्र किशन है तथा पति के लापता होने के बाद पूरे परिवार की जिम्मेदारी उसके कंधों पर है। वह मुश्किलों से घिरी होने के पश्चात अपने परिवार के दायित्व का निर्वाहन पूरी तन्मयता से करती है जो उसके चरित्र की दृढ़ता को दर्शाता है। मटियानी जी के उपन्यासों के स्त्री पात्रों की यह मुख्य विशेषता है कि साधारण परिवेश से होने के बावजूद अपनी अदम्य जिजीविषा से पाठकों को प्रभावित करते हैं। गोपुली गफ़ूरन

9. [9] मटियानी, शैलेश, 'गोपुली गफ़ूरन', हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण – 2019 पृष्ठ संख्या – 63
10. [10] मटियानी, शैलेश, 'गोपुली गफ़ूरन', हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण – 2019 पृष्ठ संख्या – 85
11. [11] मटियानी, शैलेश, 'गोपुली गफ़ूरन', हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण – 2019, आमुख से

उपन्यास में पर्वतीय स्त्री की वेदना के साथ-साथ समाज में उसके महत्व और परिवार के प्रति उसके समर्पण का चित्रण है, जो गोपुली को हिन्दी उपन्यास साहित्य के स्मरणीय व उल्लेखनीय महिला पात्रों की श्रेणी में स्थान देता है।

अतः गोपुली गफ़ूरन शैलेश मटियानी का नहीं अपितु हिन्दी साहित्य कि महत्वपूर्ण रचना है। इस उपन्यास के आधार पर शैलेश मटियानी की रचनाओं की साहित्यिक उपयोगिता की स्थापना होती है। यह उपन्यास पर्वतीय समाज और परिवेश पर लिखी गई उन चुनिंदा रचनाओं में से एक है, जो पहाड़ की प्राकृतिक सुंदरता से इतर वहाँ के यथार्थ जीवन का चित्रण करती है। शैलेश मटियानी इस उपन्यास के माध्यम से पर्वतीय जीवन के प्रत्येक पहलू को उद्घाटित करते हैं जो अब तक साहित्य की परिधि से दूर थे, जो इस उपन्यास को महत्वपूर्ण बनाता है।

निष्कर्ष

पर्वतीय परिवेश मुख्य रूप से अपनी प्राकृतिक सुंदरता के लिए प्रसिद्ध हैं, परंतु विषम भौगोलिक परिस्थितियों के कारण यहाँ पर कई प्रकार के जीवन संघर्ष भी व्याप्त है जिनमें से एक है आर्थिक संघर्ष जिसका चित्रण मटियानी जी ने अपने उपन्यास 'गोपुली गफ़ूरन' में किया है उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से पर्वतीय परिवेश के जीवन में निहित उन अनछुए पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया है जो अब तक हिंदी साहित्य की परिधि से दूर थे। गोपुली के माध्यम से उन्होंने पर्वतीय परिवेश के निम्नवर्ग से संबंधित एक ऐसी स्त्री को प्रस्तुत किया है जो आर्थिक संघर्षों का निरंतर समान करते हुए अपने परिवार का भरण पोषण करती है। शैलेश मटियानी का यह उपन्यास पर्वतीय परिवेश में निम्नवर्ग की दशा को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है तथा हिन्दी साहित्य के पाठकों के भीतर निम्नवर्ग के शोषण प्रति गहन संवेदना उत्पन्न करता है जो इस उपन्यास की सफलता का प्रमुख कारण है।

संदर्भ सूची

1. मटियानी, शैलेश : ‘जनकथाकर : शैलेश मटियानी’, (मैं और मेरी रचना प्रक्रिया), प्रकाशन विभाग, दिल्ली, संस्करण – 2004, पृष्ठ संख्या- 120
2. डॉ. पाठक, शेखर (सं) : ‘पहाड़’, ‘बातचीत’, संस्करण-2001, अंक -13, पृष्ठ संख्या-92
3. गोपालराय : ‘हिन्दी उपन्यास का इतिहास’, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण – 2016, पृष्ठ संख्या – 268
4. सं. पाठक, शेखर, ‘पहाड़’ पत्रिका, ‘बातचीत’, अंक 2001, ‘शैलेश मटियानी के मायने’ पृष्ठ संख्या – 82
5. सं. पाठक, शेखर, ‘पहाड़’ पत्रिका, ‘बातचीत’, अंक 2001, ‘शैलेश मटियानी के मायने’ पृष्ठ संख्या – 92
6. मटियानी, शैलेश, ‘गोपुली गफ़ूरन’, हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण – 2019 पृष्ठ संख्या – 42
7. मटियानी, शैलेश, ‘गोपुली गफ़ूरन’, हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण – 2019 पृष्ठ संख्या – 42
8. मटियानी, शैलेश, ‘गोपुली गफ़ूरन’, हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण – 2019 पृष्ठ संख्या – 24
9. मटियानी, शैलेश, ‘गोपुली गफ़ूरन’, हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण – 2019 पृष्ठ संख्या – 63
10. मटियानी, शैलेश, ‘गोपुली गफ़ूरन’, हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण – 2019 पृष्ठ संख्या – 85
11. मटियानी, शैलेश, ‘गोपुली गफ़ूरन’, हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण – 2019, आमुख से

मानव अधिकार उल्लंघन से संबंधित सामाजिक मुद्दे : चुनौतियां और सम्भावनाएँ

सपना स्वामी
(मकराना, जिला- डीडवाना कुचामन
शोधार्थी, राजनीति विज्ञानं विभाग
पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर

शार संक्षेप

मानव अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को जन्म से प्राप्त वे मौलिक अधिकार हैं, जो उसकी स्वतंत्रता, समानता और गरिमा सुनिश्चित करते हैं। 10 दिसंबर 1948 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने *सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा पत्र (UDHR)* को अपनाया, जो विश्वभर में मानवाधिकारों के संरक्षण का आधार बना। इसके बावजूद जातिवाद, लैंगिक भेदभाव, धार्मिक असहिष्णुता, गरीबी और बाल श्रम जैसी समस्याएं मानव अधिकार उल्लंघन के प्रमुख उदाहरण हैं।

भारत सहित कई देशों में न्याय प्रणाली में देरी, भ्रष्टाचार और राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव के कारण मानव अधिकारों की रक्षा में कठिनाइयाँ आती हैं। सामाजिक कुप्रथाएं जैसे पितृसत्ता और रूढ़िवादी सोच भी इस समस्या को बढ़ाती हैं।

इसका समाधान शिक्षा के माध्यम से जागरूकता बढ़ाने, कानूनी सुधार लागू करने, सामाजिक बदलाव लाने और मानवाधिकार उल्लंघन पर निगरानी रखने के माध्यम से संभव है। मीडिया, सामाजिक संगठनों और नागरिक समाज को इस दिशा में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए ताकि समाज में समानता, न्याय और मानव गरिमा सुनिश्चित हो सके।

इस शोध पत्र में मानव अधिकार उल्लंघन के विभिन्न सामाजिक मुद्दों का विश्लेषण किया गया है। इसके अंतर्गत जातिवाद, लिंगभेद, धार्मिक असहिष्णुता, गरीबी, बाल श्रम और अन्य सामाजिक समस्याओं पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। साथ ही, इन चुनौतियों के समाधान के लिए संभावित उपायों का भी उल्लेख किया गया है। इस शोध का उद्देश्य न केवल मानव अधिकार उल्लंघन की

समस्याओं को उजागर करना है, बल्कि उन प्रभावी रणनीतियों को प्रस्तुत करना है, जिनके माध्यम से इन समस्याओं का समाधान किया जा सके और एक समतामूलक समाज की स्थापना संभव हो सके।

प्रस्तावना

मानव अधिकारों की अवधारणा मानव सभ्यता के आरंभ से ही अस्तित्व में रही है। प्राचीनकाल में भी समाज में मानव के अधिकारों की सुरक्षा के प्रयास किए जाते थे, यद्यपि उस समय ये अधिकार समान रूप से सभी को प्राप्त नहीं होते थे। समय के साथ समाज के विकास, राजनीतिक सुधारों और जागरूकता के प्रसार के कारण मानव अधिकारों की परिभाषा अधिक स्पष्ट और व्यापक होती गई। मानव अधिकार वे मौलिक अधिकार हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को केवल मानव होने के आधार पर प्राप्त होते हैं। ये अधिकार व्यक्ति की गरिमा, स्वतंत्रता और समानता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक माने जाते हैं।

मानव अधिकारों की आधुनिक अवधारणा का आधार 18वीं सदी में यूरोप में हुए विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक आंदोलनों के दौरान पड़ा। विशेष रूप से अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम (1776) और फ्रांसीसी क्रांति (1789) ने मानव अधिकारों के विचार को मजबूती प्रदान की। इन आंदोलनों ने समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के सिद्धांतों को स्थापित किया, जो बाद में मानव अधिकारों के आधार स्तंभ बने।

मानव अधिकारों की सुरक्षा और संवर्धन के उद्देश्य से 10 दिसंबर 1948 को संयुक्त राष्ट्र महासभा (United Nations General Assembly) ने "सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा पत्र (Universal Declaration of Human Rights - UDHR)" को अपनाया। यह दस्तावेज़ मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए एक ऐतिहासिक मील का पत्थर साबित हुआ। इस घोषणा पत्र में 30 अनुच्छेदों के माध्यम से नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को सूचीबद्ध किया गया है, जिन्हें सभी मनुष्यों के लिए आवश्यक माना गया है (United Nations, 1948)।

UDHR के प्रमुख सिद्धांतों में जीवन का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, अभिव्यक्ति का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, स्वास्थ्य का अधिकार और न्यायिक संरक्षण का अधिकार शामिल हैं। ये अधिकार विश्व के लगभग सभी देशों में संविधान और कानून का हिस्सा बन चुके हैं। भारत के संविधान में भी अनुच्छेद 14 से अनुच्छेद 32 तक मौलिक अधिकारों को विशेष महत्व दिया गया है, जो प्रत्येक नागरिक को समानता, स्वतंत्रता, और निष्पक्ष न्याय की गारंटी देते हैं (भारतीय संविधान, 1950)।

हालाँकि, अंतरराष्ट्रीय संधियों और राष्ट्रीय कानूनों के बावजूद विश्व के कई हिस्सों में मानव अधिकारों का उल्लंघन एक गंभीर समस्या बनी हुई है। विशेष रूप से विकासशील देशों में जातिवाद, लिंगभेद, धार्मिक असहिष्णुता, बाल श्रम, और सामाजिक भेदभाव जैसी समस्याएं व्यापक रूप से देखी

जाती हैं। भारत में भी मानव अधिकारों के उल्लंघन के कई उदाहरण देखने को मिलते हैं, जैसे कि महिलाओं के खिलाफ हिंसा, दलित समुदाय के प्रति भेदभाव, बाल श्रम, और कमजोर वर्गों के अधिकारों का हनन।

मानव अधिकारों के उल्लंघन के पीछे कई कारक जिम्मेदार होते हैं, जैसे कानूनी ढांचे की कमजोरियां, राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक कुप्रथाएं, शिक्षा का अभाव, और आर्थिक असमानता। इसके अतिरिक्त, कुछ समाजों में व्याप्त सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यताएँ भी मानव अधिकारों के हनन को बढ़ावा देती हैं।

मानव अधिकार उल्लंघन एक वैश्विक समस्या है, जो विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक कारकों के कारण दुनिया के लगभग हर देश में देखने को मिलती है। चाहे वह विकसित देश हों या विकासशील देश, मानव अधिकारों का उल्लंघन कई रूपों में होता है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कुछ देशों में राजनीतिक दमन, जातीय संघर्ष और नागरिक स्वतंत्रता पर प्रतिबंध जैसी समस्याएं गंभीर हैं, जबकि भारत जैसे देश में जातिवाद, लिंगभेद, धार्मिक असहिष्णुता और आर्थिक असमानता जैसी चुनौतियां प्रमुख हैं।

भारत में मानव अधिकार उल्लंघन से संबंधित सामाजिक मुद्दे

भारत में मानव अधिकार उल्लंघन विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों के रूप में स्पष्ट रूप से सामने आता है। भारतीय संविधान ने अपने नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता और न्याय का अधिकार प्रदान किया है, लेकिन इसके बावजूद समाज के कुछ वर्ग आज भी अपने मौलिक अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं। जातिवाद, लिंगभेद, धार्मिक असहिष्णुता, आर्थिक असमानता और बाल श्रम जैसी समस्याएं भारतीय समाज में गहराई तक व्याप्त हैं, जो मानव अधिकारों के हनन को बढ़ावा देती हैं।

भारत में जातिवाद और सामाजिक भेदभाव एक पुरानी और गहरी समस्या है, जिसका प्रभाव आज भी समाज के कई हिस्सों में देखा जा सकता है। दलित और आदिवासी समुदायों को अक्सर शिक्षा, रोजगार और सामाजिक समानता में भेदभाव का सामना करना पड़ता है। डॉ. बी. आर. आंबेडकर ने अपनी पुस्तक *"Annihilation of Caste" (1945)* में जातिवाद को भारतीय समाज का एक गंभीर अभिशाप बताया था, जो कमजोर वर्गों को उनके अधिकारों से वंचित करता है। जातिगत भेदभाव के कारण समाज में हिंसा और उत्पीड़न की घटनाएं आज भी देखने को मिलती हैं। वर्ष 2020 में उत्तर प्रदेश के हाथरस जिले में एक दलित लड़की के साथ सामूहिक बलात्कार और हत्या की घटना ने जातिवाद

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

की समस्या को एक बार फिर उजागर किया। इस घटना ने समाज में जातीय असमानता और कमजोर वर्गों के प्रति हो रहे अन्याय को लेकर देशव्यापी आक्रोश उत्पन्न किया (The Hindu, 2020)।

इसके अलावा, महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा और भेदभाव भी भारत में मानव अधिकार उल्लंघन का एक प्रमुख पहलू है। यौन उत्पीड़न, घरेलू हिंसा, दहेज हत्या और कार्यस्थल पर भेदभाव जैसी समस्याएं आज भी गंभीर रूप से मौजूद हैं। वर्ष 2012 में दिल्ली में हुए *निर्भया कांड* ने भारत में महिलाओं की सुरक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ाने का कार्य किया। इस घटना के बाद भारत में महिलाओं की सुरक्षा के लिए कई नए कानून बनाए गए, लेकिन महिलाओं के खिलाफ हिंसा के मामले अब भी चिंताजनक स्थिति में हैं। National Crime Records Bureau (NCRB) के अनुसार, भारत में महिलाओं के खिलाफ अपराधों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है, जो महिला अधिकारों की सुरक्षा के लिए एक बड़ी चुनौती है (NDTV, 2012)।

धार्मिक भेदभाव और असहिष्णुता भी भारत में मानव अधिकारों के उल्लंघन का एक गंभीर मुद्दा है। धार्मिक आधार पर होने वाले दंगे और हिंसा से विशेष रूप से अल्पसंख्यक समुदाय प्रभावित होते हैं। भारत जैसे विविधताओं वाले देश में धार्मिक असहिष्णुता की घटनाएं सामाजिक सौहार्द को बाधित करती हैं। वर्ष 2002 का *गुजरात दंगा* और 1984 का *सिख विरोधी दंगा* धार्मिक असहिष्णुता के ऐसे ही भयावह उदाहरण हैं, जिनमें सैकड़ों निर्दोष नागरिकों को अपनी जान गंवानी पड़ी (Sharma, 2021)। धार्मिक कट्टरता और भेदभाव के कारण समाज के कुछ वर्गों को डर, असुरक्षा और अन्याय का सामना करना पड़ता है, जिससे उनके मानवाधिकारों का हनन होता है।

भारत में गरीबी और आर्थिक असमानता भी मानव अधिकार उल्लंघन का एक प्रमुख कारण है। गरीब और कमजोर वर्गों को अपने अधिकारों के लिए अधिक संघर्ष करना पड़ता है। आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण समाज के निम्न वर्ग के लोग शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं और अन्य बुनियादी सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री Jean Dreze और Amartya Sen ने अपनी पुस्तक *"An Uncertain Glory: India and Its Contradictions" (2013)* में गरीबी के कारण मानव अधिकारों के हनन पर विशेष जोर दिया है। उन्होंने बताया कि भारत के स्लम क्षेत्रों में रहने वाले लोग अक्सर अत्यधिक अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करने को मजबूर होते हैं, जिससे उनके मौलिक अधिकारों का हनन होता है। आर्थिक असमानता के कारण गरीब वर्ग को शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं से वंचित कर दिया जाता है, जिससे उनकी सामाजिक प्रगति रुक जाती है।

बाल श्रम भी भारत में मानव अधिकार उल्लंघन का एक गंभीर मुद्दा है। बच्चों को शिक्षा के अवसर से वंचित कर उन्हें बाल श्रम में धकेलना उनके मौलिक अधिकारों का स्पष्ट हनन है। ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में बाल श्रम व्यापक रूप से देखने को मिलता है, जहाँ बच्चों को कारखानों, खेतों,

होटलों और घरेलू कामों में जबरन लगाया जाता है। इस समस्या के खिलाफ जागरूकता बढ़ाने के लिए *Aamir Khan Productions* द्वारा प्रस्तुत *सत्यमेव जयते* कार्यक्रम ने बाल श्रम जैसी गंभीर समस्या को प्रमुखता से उठाया था। इस अभियान ने समाज में बाल श्रम के खिलाफ जागरूकता फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई (Aamir Khan Productions, 2012)।

भारत में मानव अधिकार उल्लंघन के ये उदाहरण दर्शाते हैं कि जातिवाद, लैंगिक भेदभाव, धार्मिक असहिष्णुता, गरीबी और बाल श्रम जैसी समस्याएं अब भी समाज में गहराई से मौजूद हैं। हालाँकि, भारत का संविधान नागरिकों को उनके मौलिक अधिकारों की गारंटी देता है, लेकिन इन अधिकारों का वास्तविक संरक्षण तभी संभव है जब कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन हो, समाज में जागरूकता फैलाई जाए और मानव अधिकारों के उल्लंघन के मामलों में जिम्मेदारी सुनिश्चित की जाए। समाज के प्रत्येक व्यक्ति, सरकार और सामाजिक संगठनों को मिलकर एक ऐसे समाज के निर्माण में सहयोग करना चाहिए, जहाँ मानवाधिकारों की पूर्ण सुरक्षा हो सके और हर नागरिक सम्मान, समानता और न्याय के साथ जीवन जी सके।

मानव अधिकार उल्लंघन के खिलाफ चुनौतियाँ

मानव अधिकारों की सुरक्षा और संरक्षण के लिए विभिन्न स्तरों पर कई प्रयास किए जाते हैं। इसके बावजूद मानव अधिकार उल्लंघन के खिलाफ प्रभावी समाधान में कई चुनौतियाँ सामने आती हैं। ये चुनौतियाँ कानूनी, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक कारणों से उत्पन्न होती हैं, जो मानवाधिकार संरक्षण के प्रयासों को कमजोर करती हैं।

1. कानूनी ढांचे की कमजोरियाँ

मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए कानूनी ढांचे की उपस्थिति अत्यंत आवश्यक है। अधिकांश देशों में मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए मजबूत कानून बनाए गए हैं, लेकिन इन कानूनों का प्रभावी कार्यान्वयन अक्सर चुनौतीपूर्ण होता है। न्यायिक प्रक्रिया में देरी, भ्रष्टाचार और संसाधनों की कमी के कारण पीड़ितों को समय पर न्याय नहीं मिल पाता, जिससे मानव अधिकारों का हनन और बढ़ता है।

India Justice Report (2020) के अनुसार, भारत में न्यायिक प्रक्रिया में अत्यधिक देरी एक प्रमुख समस्या है। इस रिपोर्ट के अनुसार, भारत की जिला अदालतों में लगभग 4 करोड़ मुकदमे लंबित हैं, जिनमें से कई मानव अधिकार उल्लंघन से संबंधित हैं। न्यायपालिका में न्यायाधीशों के पद खाली रहने, न्यायिक संस्थानों में बुनियादी ढांचे की कमी और पीड़ितों को कानूनी सहायता का अभाव इस समस्या को और जटिल बनाते हैं (India Justice Report, 2020)।

भ्रष्टाचार भी मानव अधिकार उल्लंघन को बढ़ावा देने में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। कई मामलों में प्रभावशाली व्यक्तियों को कानूनी कार्रवाई से बचाने के लिए भ्रष्टाचार का सहारा लिया जाता है। Transparency International (2020) की रिपोर्ट के अनुसार, भारत सहित कई देशों में पुलिस, न्यायपालिका और प्रशासनिक संस्थानों में व्याप्त भ्रष्टाचार मानव अधिकार संरक्षण को बाधित करता है।

2. सांस्कृतिक और सामाजिक मान्यताएँ

सामाजिक और सांस्कृतिक परंपराएं भी मानव अधिकार उल्लंघन के खिलाफ एक बड़ी चुनौती प्रस्तुत करती हैं। कई समाजों में जातिवाद, पितृसत्ता और धार्मिक कट्टरता जैसी प्रथाएं मानव अधिकारों के हनन को बढ़ावा देती हैं। भारत जैसे समाज में जाति-आधारित भेदभाव और छुआछूत जैसी प्रथाएँ अब भी गहरे रूप में व्याप्त हैं। National Crime Records Bureau (NCRB, 2020) के अनुसार, अनुसूचित जातियों (SC) और अनुसूचित जनजातियों (ST) के खिलाफ अपराधों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है, जो जातिगत भेदभाव की गंभीर स्थिति को दर्शाता है।

सांस्कृतिक परंपराओं में व्याप्त पितृसत्तात्मक मानसिकता महिलाओं के अधिकारों को सीमित करती है। घरेलू हिंसा, दहेज हत्या और कार्यस्थल पर भेदभाव जैसी समस्याएं अब भी व्यापक रूप से मौजूद हैं। निर्भया कांड (2012) ने भारत में महिलाओं के प्रति हिंसा और लैंगिक भेदभाव की गहराई को उजागर किया था (NDTV, 2012)।

इसके अतिरिक्त, धार्मिक असहिष्णुता भी मानव अधिकारों के उल्लंघन का एक प्रमुख कारण है। धार्मिक आधार पर भेदभाव और हिंसा का सामना विशेष रूप से धार्मिक अल्पसंख्यकों को करना पड़ता है। गुजरात दंगा (2002) और सिख विरोधी दंगा (1984) धार्मिक असहिष्णुता के भयावह उदाहरण हैं (The Hindu, 2020)।

3. राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव

मानव अधिकार संरक्षण में राजनीतिक इच्छाशक्ति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। सरकारों और नीति निर्माताओं के सहयोग के बिना मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए बनाए गए कानून और नीतियां प्रभावी रूप से लागू नहीं हो पातीं। कई देशों में राजनीतिक नेतृत्व के हित व्यक्तिगत स्वार्थ, राजनीतिक लाभ और सत्ता के संघर्ष पर केंद्रित होते हैं, जिससे मानव अधिकारों को प्राथमिकता नहीं दी जाती। कई बार सत्ता में बने रहने के लिए सरकारें दमनकारी नीतियां अपनाती हैं और असहमति जताने वालों को निशाना बनाती हैं।

म्यांमार में रोहिंग्या मुसलमानों पर हुए अत्याचार (2017) इस बात का उदाहरण है कि किस प्रकार राजनीतिक नेतृत्व के कारण एक समुदाय को अपने अधिकारों से वंचित किया गया (BBC,

2017)। म्यांमार की सेना द्वारा रोहिंग्या मुसलमानों के खिलाफ हिंसा, जबरन विस्थापन और नरसंहार जैसी घटनाएं राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव का स्पष्ट प्रमाण हैं।

इसके अतिरिक्त, उत्तर कोरिया जैसे देशों में नागरिकों को राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा गया है। वहां अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रेस की स्वतंत्रता और न्यायिक पारदर्शिता जैसी बुनियादी स्वतंत्रताओं पर गंभीर प्रतिबंध लगाए गए हैं (Amnesty International, 2021)। भारत में भी कई बार मानवाधिकार कार्यकर्ताओं, पत्रकारों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को राजनीतिक दबाव के कारण झूठे आरोपों का सामना करना पड़ता है।

4. आर्थिक असमानता और गरीबी

आर्थिक असमानता और गरीबी भी मानव अधिकार उल्लंघन के खिलाफ एक प्रमुख चुनौती है। गरीब और कमजोर वर्गों को अक्सर अपने अधिकारों की जानकारी नहीं होती, जिससे वे शोषण का शिकार बनते हैं।गरीबी के कारण समाज के निचले तबके के लोग शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, स्वच्छ जल और अन्य बुनियादी सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। ऐसे में उनके मानवाधिकारों का संरक्षण करना कठिन हो जाता है।

Dreze & Sen (2013) के अनुसार, भारत में आर्थिक असमानता के कारण समाज के गरीब तबके के लोग न्याय पाने **में असमर्थ रहते हैं। गरीबी के कारण इन वर्गों के लोग अक्सर बाल श्रम, मानव तस्करी, और शोषण का शिकार होते हैं।**

उदाहरण:

भारत में प्रवासी मजदूरों को कोविड-19 महामारी के दौरान रोजगार और भोजन जैसी बुनियादी सुविधाओं से वंचित रहना पड़ा था। शहरी स्लम क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को अत्यधिक अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करना पड़ता है, जिससे उनके स्वास्थ्य अधिकारों का उल्लंघन होता है। गरीबी के कारण कई परिवार अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने में असमर्थ रहते हैं, जिससे वे बाल श्रम में धकेले जाते हैं। ILO (International Labour Organization) के अनुसार, भारत में लगभग 1 करोड़ बच्चे बाल श्रम का शिकार हैं, जिससे उनके शिक्षा और स्वास्थ्य अधिकारों का हनन होता है (ILO, 2021)।

संभावनाएँ और समाधान

मानव अधिकारों का उल्लंघन एक गंभीर सामाजिक समस्या है, जिसके समाधान के लिए केवल कानूनी उपाय पर्याप्त नहीं हैं। इसके लिए व्यापक सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों की आवश्यकता होती है। समाज में व्याप्त असमानताओं को दूर करने और मानव अधिकारों को प्रभावी

ढंग से लागू करने के लिए विभिन्न रणनीतियाँ अपनाई जा सकती हैं, जिनमें शिक्षा, कानूनी सुधार, सामाजिक परिवर्तन और जवाबदेही सुनिश्चित करना प्रमुख हैं। इन उपायों को विस्तार से निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है।

शिक्षा और जागरूकता

मानव अधिकार उल्लंघन के समाधान में शिक्षा और जागरूकता एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मानव अधिकारों के बारे में जानकारी के अभाव में लोग अपने अधिकारों के हनन को सहन करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। विशेष रूप से ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में रहने वाले लोग अक्सर अपने मौलिक अधिकारों के प्रति अनभिज्ञ रहते हैं, जिससे उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, और न्याय प्राप्त करने में कठिनाई होती है।

मानव अधिकारों की शिक्षा को स्कूलों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल करना अत्यंत आवश्यक है। इससे बच्चों और युवाओं को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के बारे में प्रारंभिक स्तर पर ही जानकारी दी जा सकती है। UNESCO (2020) की रिपोर्ट के अनुसार, जिन देशों ने अपने शैक्षणिक पाठ्यक्रम में मानव अधिकार शिक्षा को शामिल किया है, वहां नागरिकों में न्याय और समानता की भावना अधिक मजबूत पाई गई है। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण क्षेत्रों में जन-जागरूकता अभियान चलाना भी प्रभावी साबित हो सकता है। इन अभियानों के माध्यम से बाल विवाह, बाल श्रम, दहेज प्रथा और लैंगिक भेदभाव जैसी समस्याओं के बारे में लोगों को जागरूक किया जा सकता है।

मीडिया भी मानव अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। समाचार चैनल, सोशल मीडिया प्लेटफार्म और जनसंपर्क माध्यमों के माध्यम से मानव अधिकारों से संबंधित विषयों पर चर्चा की जानी चाहिए। Amnesty International (2021) के अनुसार, भारत में महिलाओं के खिलाफ हिंसा और बाल अधिकारों के हनन पर मीडिया द्वारा चलाए गए अभियानों ने समाज में जागरूकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

कानूनी सुधार

मानव अधिकारों के उल्लंघन को रोकने के लिए प्रभावी कानूनी ढांचे का निर्माण और उसका सख्ती से पालन करना अत्यंत आवश्यक है। भारत सहित कई देशों में मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए मजबूत कानून मौजूद हैं, लेकिन इनका क्रियान्वयन अक्सर कमजोर रह जाता है, जिससे पीड़ितों को न्याय प्राप्त करने में कठिनाई होती है।

न्याय प्रणाली को तेज़ और प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है कि अदालतों में लंबित मामलों का शीघ्र निपटारा हो, न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाई जाए और न्यायालयों में आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराए जाएं। India Justice Report (2020) के अनुसार, भारत की जिला अदालतों में लाखों मामले

लंबित हैं, जिससे मानव अधिकारों के उल्लंघन के मामलों में पीड़ितों को न्याय पाने में वर्षों का समय लग जाता है।

महिलाओं और बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए बने विशेष कानूनों का भी प्रभावी क्रियान्वयन जरूरी है। भारत में Protection of Children from Sexual Offences (POCSO) Act, 2012 और The Domestic Violence Act, 2005 जैसे कानूनों को सख्ती से लागू करने से महिलाओं और बच्चों के खिलाफ हिंसा के मामलों में कमी लाई जा सकती है।

इसके अतिरिक्त, पुलिस बलों में सुधार भी एक आवश्यक कदम है। पुलिस कर्मियों को मानव अधिकारों के प्रति प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है ताकि वे पीड़ितों के साथ संवेदनशील व्यवहार कर सकें और न्यायिक प्रक्रिया को निष्पक्ष रूप से अंजाम दे सकें। Human Rights Watch (2021) के अनुसार, भारत में कई पुलिस थानों में मानव अधिकार प्रशिक्षण की कमी के कारण पुलिस अधिकारी पीड़ितों के प्रति असंवेदनशील रवैया अपनाते हैं, जिससे न्याय प्रक्रिया प्रभावित होती है।

सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन

मानव अधिकार उल्लंघन के पीछे कई सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताएँ भी जिम्मेदार होती हैं, जिन्हें बदलना आवश्यक है। समाज में जातिवाद, पितृसत्तात्मक मानसिकता और धार्मिक असहिष्णुता जैसी कुप्रथाओं के कारण समाज के कुछ वर्गों को उनके अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है।

जातिगत भेदभाव के कारण भारत में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों को शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार जैसी सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है। National Crime Records Bureau (NCRB, 2020) के अनुसार, भारत में दलित समुदाय के खिलाफ हिंसा और भेदभाव के मामले लगातार बढ़ रहे हैं, जो समाज में व्याप्त जातिगत असमानता को दर्शाते हैं।

इसी प्रकार, महिलाओं के खिलाफ हिंसा और भेदभाव पितृसत्तात्मक मानसिकता का परिणाम है। समाज में महिलाओं के प्रति व्याप्त असमानता को दूर करने के लिए जागरूकता अभियान और शैक्षिक सुधार आवश्यक हैं। इसके अलावा, धार्मिक असहिष्णुता के कारण अल्पसंख्यक समुदाय के लोग अक्सर हिंसा और भेदभाव का शिकार बनते हैं। गुजरात दंगा (2002) और सिख विरोधी दंगा (1984) जैसी घटनाएं धार्मिक असहिष्णुता का उदाहरण हैं।

इन सामाजिक समस्याओं को दूर करने के लिए मीडिया, धार्मिक संगठनों और सामाजिक संस्थाओं को अधिक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। सामाजिक संगठनों को समाज में समानता, सहिष्णुता और भाईचारे को बढ़ावा देने के लिए निरंतर प्रयास करना चाहिए। Equality Now (2021)

की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में चलाए गए जागरूकता अभियानों के कारण बाल विवाह, घरेलू हिंसा और दहेज प्रथा जैसी कुप्रथाओं में धीरे-धीरे कमी आई है।

निगरानी और जवाबदेही

मानव अधिकार उल्लंघन को रोकने के लिए निगरानी और जवाबदेही का एक मजबूत तंत्र विकसित करना अत्यंत आवश्यक है। जब तक मानव अधिकार हनन करने वाले व्यक्तियों, संस्थानों और सरकारों को जवाबदेह नहीं ठहराया जाएगा, तब तक इस समस्या का समाधान संभव नहीं है।

मानव अधिकार उल्लंघन के मामलों की निगरानी के लिए स्वतंत्र संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए। भारत में National Human Rights Commission (NHRC) और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर Amnesty International जैसी संस्थाएं मानव अधिकार उल्लंघन की घटनाओं पर नज़र रखती हैं और पीड़ितों को न्याय दिलाने में सहायता करती हैं।

इसके अतिरिक्त, सूचना का अधिकार (Right to Information - RTI) जैसे कानून नागरिकों को सरकारी कार्यप्रणाली में पारदर्शिता लाने का अधिकार देते हैं। RTI Act (2005) के माध्यम से आम नागरिक सरकारी अधिकारियों, नीतियों और निर्णयों पर सवाल उठा सकते हैं, जिससे प्रशासनिक भ्रष्टाचार और अन्याय पर अंकुश लगाया जा सकता है।

नागरिक समाज संगठनों (Civil Society Organizations - CSOs) की भूमिका भी इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। ये संगठन समाज में जागरूकता बढ़ाने, पीड़ितों को कानूनी सहायता प्रदान करने और मानव अधिकार उल्लंघन के मामलों को सार्वजनिक मंच पर लाने में सहायक होते हैं। Transparency International (2020) के अनुसार, भारत में नागरिक संगठनों द्वारा चलाए गए अभियानों के कारण भ्रष्टाचार पर नियंत्रण और मानव अधिकार संरक्षण के क्षेत्र में सकारात्मक बदलाव देखे गए हैं।

निष्कर्ष

मानव अधिकार उल्लंघन के खिलाफ प्रभावी समाधान के लिए शिक्षा, कानूनी सुधार, सामाजिक परिवर्तन और निगरानी तंत्र को मजबूत करने की आवश्यकता है। जब तक समाज में जागरूकता नहीं फैलाई जाएगी, कानूनी प्रणाली को सुधारकर अधिक प्रभावी नहीं बनाया जाएगा, और नागरिकों को उनके अधिकारों के प्रति सचेत नहीं किया जाएगा, तब तक मानव अधिकार उल्लंघन की समस्या को पूरी तरह समाप्त करना संभव नहीं होगा। इसके लिए सरकारों, सामाजिक संगठनों, न्यायपालिका और आम जनता को मिलकर कार्य करना होगा ताकि एक न्यायसंगत, समानतापूर्ण और सुरक्षित समाज का निर्माण किया जा सके। मानव अधिकार उल्लंघन से संबंधित सामाजिक समस्याओं

का समाधान केवल कानूनी और राजनीतिक उपायों से नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक बदलाव से संभव है। सही कानूनी ढांचा, प्रभावी निगरानी और जागरूकता के प्रयासों से इन समस्याओं को हल किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. *United Nations (1948). Universal Declaration of Human Rights. UN General Assembly.*
2. *Ambedkar, B.R. (1945). Annihilation of Caste.*
3. *Dreze, J., & Sen, A. (2013). An Uncertain Glory: India and Its Contradictions. Princeton University Press.*
4. *Chowdhury, A. (2019). Human Rights and Social Justice.*
5. *Human Rights Watch (2020). World Report 2020.*
6. *BBC (2017). Myanmar Rohingya Crisis.*
7. *NCRB (2020). Crime in India Report. National Crime Records Bureau.*
8. *The Hindu (2020). Hathras Case Coverage.*
9. *NDTV (2012). Nirbhaya Case Timeline.*
10. *Aamir Khan Productions (2012). Satyamev Jayate - Child Labour Episode.*

राजनीतिक नेतृत्व और महिलाओं की स्थिति: समस्याएं एवं समाधान

राधा प्रिया
Research scholar of Ram Manohar Lohia Avadh University, UP
E-mail- priyasingh.ed@gmail.com

सार:
राजनीतिक नेतृत्व में महिलाओं की भागीदारी एक महत्वपूर्ण सामाजिक और राजनीतिक मुद्दा है। विभिन्न देशों में महिला नेतृत्व की स्थिति में सुधार हुआ है, लेकिन अब भी कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। यह शोध पत्र महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी, उनके सामने आने वाली बाधाओं और संभावित समाधान पर केंद्रित है।किसी भी राष्ट्र का विकास महिलाओं की स्थिति पर निर्भर करता है विश्व की कुल जनसंख्या का 50% हिस्सा महिलाओं का है। महिलाओं की स्थिति हर जगह एक जैसी ही रहती है भारत जैसे देश में जहां एक महिला के रूप में देवी की पूजा की जाती है वहीं दूसरी तरफ महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार दमन और शोषण किया जाता है। हमें अपने देश की महिलाओं को सामाजिक आर्थिक रूप से मजबूत बनाना होगा इसके लिए हमें अपने देश के पुरुष और महिलाओं को जागरूक करने की जरूरत है। महिलाएं आज राजनीतिक भागीदारी से निपट रही है इस शोध पत्र का उद्देश्य राजनीतिक नेतृत्व में महिलाओं की स्थिति की जांच करना तथा महिलाओं को पुरुषों के बराबर राजनीतिक भागीदारी पानी में आने वाली समस्याओं के बारे में बताना तथा उसका समाधान ज्ञात करना है। राजनीतिक भागीदारी के मार्ग में कुछ मुख्य समस्याएं हैं अशिक्षा गरीबी विवाह संस्था और लोगों की मानसिकता। के अतिरिक्त विभिन्न राजनीतिक और गैर राजनीतिक कारणों से महिलाओं को सरकार में लोकतांत्रिक घाटे का सामना करना पड़ता है जनसंख्या के अनुपात में महिलाओं का पर्याप्त प्रतिनिधित्व अभी भी नदारद है। हालांकि राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी में काफी वृद्धि हुई है परंतु फिर भी अभी हाल में ही हुए विधानसभा और आम चुनाव से पता चलता है कि मतदान प्रतिशत महिला उम्मीदवार तथा महिला विधायकों के रूप में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अभी भी कम है। इन समस्याओं के बावजूद महिलाओं के नेतृत्व में कुछ सकारात्मक सामाजिक परिणाम भी देखने को मिले है जैसे

महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी, महिला मतदान, देशभर में में निर्णय लेने वाले पदों पर महिलाओं की संसदीय उपस्थिति आदि।

शब्द कुंजी:
महिलाएं, राजनीतिक भागीदारी, पितृसत्ता, राजनीतिक भागीदारी के लिए कानून, समानता,
भारत में महिला मतदाताओं की स्थिति, सक्रिय राजनीति में महिलाओं की स्थिति, भारतीय संसद में महिलाओं की भागीदारी।

परिचय:
राजनीतिक आरंभ से ही मानव समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। जब मानव समाज का निर्माण हुआ तो समाज में निर्णय लेने के लिए एक मुखिया बनाया गया जो उस समाज को यह समूह को नेतृत्व कर सके।
राजनीति क्षेत्र में केवल पुरुष ही सक्रिय रूप से भाग नहीं लेते हैं बल्कि इसमें महिलाओं टीवी सक्रिय भूमिका होती है। भारत में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की सक्रिय भूमिका रही।
मध्यकाल इतिहास के अनुसार बहुत सी ऐसी महिलाएं हैं जिन्होंने राजनीतिक में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पहले उससे बात करो कुछ ऐसी महिलाओं की सूची है-

1. कश्मीर की रानी- दीदा
2. दिल्ली की रानी- रजिया सुल्तान
3. दिल्ली की रानी- नूरजहां
4. झांसी की रानी- रानी लक्ष्मी बाई
5. लखनऊ की रानी- बेगम हजरत महल
6. मराठा साम्राज्य की रानी -अहिल्याबाई होलकर

इसी प्रकार आधुनिक काल में भी बहुत सारी महिलाओं ने नेतृत्व की भूमिका निभाई जिसमें से कुछ निम्न है-

1. **सरोजिनी नायडू-** वे एक भारतीय राजनीतिक कार्यकर्ता तथा लेखिका थी। उन्हें भारत कोकिला के नाम से जाना जाता है। 1925 में उन्हें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया तत्पश्चात 1947 में संयुक्त प्रांत के गवर्नर बने। सरोजिनी नायडू डोमिनियन इंडिया भारत के प्रथम महिला गवर्नर थी।

2. **अरुणा आसफ अली-** उन्होंने भारतीय राजनीतिक में सक्रिय भूमिका निभाया तथा दिल्ली की प्रथम मेयर बनी।
3. **सावित्रीबाई फूले-** सावित्रीबाई फुले का नाम भारत में प्रथम नारीवाद की श्रेणी में आता हैं। 1948 में सावित्रीबाई फुले और उनके पति ज्योति राव फूले ने पुणे में पहला मॉडर्न गर्ल्स स्कूल की स्थापना किया।
4. **सुचिता कृपलानी**- भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के साथ-साथ वह राजनीतिज्ञ भी थी। 1940 में उन्होंने ऑल इंडिया महिला कांग्रेस की स्थापना की। इसके अतिरिक्त वाह भारत की प्रथम महिला मुख्यमंत्री थी। उत्तर प्रदेश सरकार के पद पर 1963 से 1967 तक नेतृत्व किया।
5. **इंदिरा गांधी-** भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री के रूप में उन्हें कौन नहीं जानता है।
6. **सुषमा स्वराज**- सुषमा स्वराज भारत की सबसे प्रेरणादायक महिला नेताओं में से एक थीं। वह सुप्रीम कोर्ट की वकील, 7 बार संसद सदस्य , 3 बार विधानसभा सदस्य और विदेश मंत्री का पद संभालने वाली दूसरी महिला थी।
7. **जयललिता-** जयललिता जयराम तमिलनाडु की पहली महिला मुख्यमंत्री और अखिल भारतीय अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम महासचिव थी।
8. **ममता बनर्जी-** पश्चिम बंगाल की प्रथम महिला मुख्यमंत्री के रूप में बनर्जी को जाना जाता है। इसमें उन्होंने तृणमूल कांग्रेस की स्थापना की। भारत की पहली महिला रेल मंत्री थी।

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात केंद्र सरकार के 30 कैबिनेट मंत्रियों में से केवल एक महिला राजकुमारी अमृत कौर थी जिन्हें स्वास्थ्य मंत्रालय का प्रभार दिया गया था। लाल बहादुर शास्त्री तथा इंदिरा गांधी की पांचवी छठवीं और नौवीं कैबिनेट में एक भी महिला को स्थान नहीं दिया गया था।राजीव गांधी के मंत्रिमंडल में केवल एक महिला मोहसिना किदवई को स्थान दिया गया था।

मोदी सरकार में महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है। 2014 में मोदी सरकार में कुल 9 महिला सांसदों को कैबिनेट और राज्यमंत्री बनाया गया था। 2019 के लोकसभा चुनाव में महिला सांसदों की संख्या 78 थी जो कि अब तक का सबसे ज्यादा संख्या दर्शाता है। भारत की 18वीं लोकसभा में केवल 74 महिलाएं ही सांसद चुनी गई हैं।

लोकतंत्र सभी पुरुष और महिलाओं के लिए समानता का अधिकार देता है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 325 और 326 द्वारा मताधिकार तथा राजनीतिक क्षेत्रों में में भागीदारी के लिए समान अवसर प्रदान किया गया है।

वाणिज्य, शैक्षणिक, स्वास्थ्य, वास्तुकला और प्रबंधन के क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका में लगातार वृद्धि हुई है तथा उन्होंने यह सिद्ध किया कि नेतृत्व के गुण का लिंग से कोई संबंध नहीं होता। नेतृत्व का गुण तो प्राकृतिक रूप से मस्तिष्क में पाया जाता है अथवा अर्जित किया जाता है जो कि पुरुष या महिला दोनों ही कर सकते हैं। राजनीतिक और लोकतांत्रिक प्रक्रिया में महिलाओं की भूमिका ने पूरे विश्व में परिवर्तन ला दिया है जिससे यह मुद्दा आधुनिक चर्चा और विकास का केंद्र बनकर उभरा है। महिलाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि किसी भी देश की उन्नति पुरूष व महिला दोनों की समानता पर निर्भर करता है। समाज में महिलाओं का समानता के लिए युद्ध जारी है परंतु कठिनाइयों और समस्याओं की हमेशा अवहेलना की जाती है। कठिनाइयों का सामना करते हुए आज महिलाओं ने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्रों में भाग लेना आरंभ किया। ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट 2020 के अनुसार राजनीतिक सशक्तिकरण के क्षेत्र में को 18th रैंक प्राप्त हुआ।

सरकार ने अप्रैल 1993 में मेजर संवैधानिक संशोधन किया उससे ग्रामीण राजनीतिक क्षेत्र की स्थिति बदल गई। संशोधन के द्वारा महिलाओं के लिए एक-तिहाई सीटों का आरक्षण किया गया। राजनीतिक कोटा का विश्वास है कि यह महिला नेता समाज में महिला से संबंधित मुद्दों को उठाएंगे तथा उसके समाधान का प्रयास करेंगे। 2012 तक दुनिया के आधे से ज्यादा देशों ने महिलाओं के लिए राजनीतिक आरक्षण की व्यवस्था को अपनाया। सरकार को विश्वास है कि आरक्षण से महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि होगी। आंकड़ों की बात करें तो 2012 तक विश्व मे 20% से भी ज्यादा महिलाओं ने संसद में भाग लिया जो कि 1990 में 12% था। विश्व की तुलना में भारत उन कुछ देशों में से एक है जहां महिला को देश का नेतृत्व करने का अवसर मिला।

उद्देश्य:-

1. भारतीय राजनीति में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करना।
2. भारतीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी पर चर्चा करना
3. भारतीय राजनीति में महिलाओं की प्रभाव का वर्णन करना।
4. राजनीति में महिलाओं के सामने आने वाली चुनौतियों और अवसरों पर चर्चा करना।
5. महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व की वर्तमान स्थिति की रूपरेखा प्रस्तुत करना।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य:

महिलाओं के नेतृत्व की भूमिका भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आजादी से पूर्व ही उभर कर सामने आया वैसे कुछ मुख्य नायिकाएं थी- सरोजनी नायडू, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, सुचेता कृपलानी, अरूणा आसफ अली, कस्तूरबा गांधी, कमला नेहरू आदि।

1917 में ब्रिटिश संसद में सरोजिनी नायडू ने महिलाओं के मताधिकार की मांग की थी। 1921 मैं महिलाओं को कुछ प्रतिबंधों के साथ मताधिकार प्राप्त हुआ तत्पश्चात 1935 के भारतीय अधिनियम के द्वारा सभी महिलाओं को बिना किसी प्रतिबंध के मताधिकार प्रदान किया गया। अंततः भारतीय संविधान के द्वारा 1950 में सभी महिलाओं को समान राजनीतिक और कानूनी अधिकार प्राप्त हुए। के पश्चात भी व्यावहारिक रूप में महिलाओं को भारतीय समाज में भेदभाव का सामना करना पड़ता है। 2011 के जनगणना के अनुसार भारत में महिला अनुपात 940 है। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने वाली लड़कियों की संख्या भी लड़को की तुलना में कम होता है। 2011 के जनगणना के अनुसार महिला आरक्षण 65% है।

अगर पंचायती राज की बात की जाए तो संविधान द्वारा महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण प्राप्त है लेकिन फिर भी गांव में महिलाओं का यह प्रतिनिधित्व प्रभावशाली नहीं है, महिलाओं के प्रतिनिधित्व के नाम पर हमेशा पुरुष ही प्रधान की भूमिका निभाते हैं।

विश्व की तुलना में भारत उन कुछ देशों में से एक है जहां महिला को देश का नेतृत्व करने का अवसर मिला। इन समस्याओं के समाधान के लिए हमें महिलाओं को व जागरूक व सशक्त बनाना होगा तथा उन्हें प्रशिक्षित भी करना होगा।

साक्ष्यों का अध्ययन करने के पश्चात पता चलता है कि महिलाओं ने पुराने मान्यताओं का खंडन करते हुए समाज में अपनी जगह बनाई है। माता-पिता भी अपनी बेटियों को शादी के बजाय घर से बाहर निकल कर पढ़ने की अनुमति देते हैं। वे चाहते हैं कि उनकी बेटियों का जीवन उनकी तरह घर के चारदीवारी में कैद ना हो।

राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की वर्तमान स्थिति:

भारत निर्वाचन आयोग की नवीनतम उपलब्ध रिपोर्ट के अनुसार महिलाएं संसद के सभी सदस्यों के 10.5% का प्रतिनिधित्व करती है राज्यों के विधानसभाओं के मामले में महिला विधायकों का प्रतिनिधित्व 9% है। समय के साथ पुरुष और महिला मतदाताओं के बीच अंतर कम हुआ है। भारत में महिलाएं राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के साथ-साथ विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्रियों के पद पर भी रह चुके हैं। भारतीय मतदाताओं ने कई दशकों से कई राज्य विधानसभाओं राष्ट्रीय संसद के लिए महिलाओं को चुना है। राज्य विधानसभाओं में महिलाओं की संख्या अभी भी कम है। भारत में 1952 में पहली बार लोकसभा चुनाव हुए थे. पहली लोकसभा में जहां महिला सांसदों का प्रतिनिधित्व 5% था, तब 22 महिलाएं सांसद बनी थीं. वहीं 17वीं लोकसभा में 78 महिलाओं के साथ यह बढ़कर 14.36% तक

पहुंचा. 2024 के आम चुनावों के बाद यह घटकर अब 74 महिला सांसदों के साथ 13.63% पर आ गया है.

राजनीतिक नेतृत्व में महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली समस्याएँ और उनके समाधानः–
समावेशी शासन और लोकतंत्र के लिए राजनीतिक नेतृत्व में महिलाओं की भागीदारी आवश्यक है। हालाँकि प्रगति हुई है, राजनीति में महिलाओं को सांस्कृतिक, आर्थिक और संस्थागत बाधाओं सहित कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। यह पेपर राजनीतिक नेतृत्व में महिलाओं के सामने आने वाली प्रमुख बाधाओं की पड़ताल करता है और उनके प्रतिनिधित्व और प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए समाधान प्रस्तावित करता है।

राजनीतिक नेतृत्व में महिलाओं के सामने आने वाली चुनौतियाँ

1.सांस्कृतिक एवं सामाजिक बाधाएँ

- पितृसत्तात्मक मानसिकता: कई समाज अभी भी मानते हैं कि नेतृत्व एक पुरुष-प्रधान क्षेत्र है, जो महिलाओं को राजनीतिक करियर बनाने से हतोत्साहित करता है।
- लिंग रूढ़िवादिता: महिलाओं से अक्सर राजनीति के बजाय पारिवारिक जिम्मेदारियों पर ध्यान केंद्रित करने की अपेक्षा की जाती है।
- परिवार और सामाजिक समर्थन का अभाव: महिला नेता अक्सर राजनीतिक जिम्मेदारियों के साथ पारिवारिक दायित्वों को संतुलित करने के लिए संघर्ष करती हैं।

2.राजनीतिक और संस्थागत चुनौतियाँ

- राजनीतिक दलों में लैंगिक पूर्वाग्रह: महिलाओं को अक्सर अपनी पार्टियों में नेतृत्व की स्थिति सुरक्षित करने में कठिनाई होती है।
- असमान चुनाव अवसर: राजनीतिक दल जीतने योग्य सीटों पर महिला उम्मीदवारों को नामांकित करने में संकोच करते हैं।
- उत्पीड़न और धमकी: राजनीति में महिलाओं को ऑनलाइन दुर्व्यवहार, धमकियों और यहां तक कि शारीरिक हिंसा का सामना करना पड़ता है, जिससे उनकी सक्रिय भागीदारी हतोत्साहित होती है।

3.आर्थिक और वित्तीय बाधाएँ

- फंडिंग तक सीमित पहुंच: पुरुषों की तुलना में महिलाओं के पास चुनाव अभियानों के लिए कम वित्तीय संसाधन हैं।

- आर्थिक निर्भरता: कई महिलाओं में राजनीतिक करियर को बनाए रखने के लिए आवश्यक वित्तीय स्वतंत्रता की कमी होती है।

4. शिक्षा एवं राजनीतिक जागरूकता का अभाव

- सीमित नेतृत्व प्रशिक्षण: महिलाओं को अक्सर पर्याप्त नेतृत्व प्रशिक्षण या सलाह नहीं मिलती है।
- कम राजनीतिक जागरूकता: राजनीतिक शिक्षा और अनुभव की कमी कई महिलाओं को नेतृत्व की भूमिकाओं में प्रवेश करने से रोकती है।

5.मीडिया और सार्वजनिक धारणा

- नकारात्मक मीडिया प्रतिनिधित्व: महिला राजनेताओं को अक्सर उनकी नीतियों के बजाय उनकी उपस्थिति या व्यक्तिगत जीवन के आधार पर आंका जाता है।
- राजनीतिक चर्चाओं में कम प्रतिनिधित्व: महिलाओं को अपने पुरुष समकक्षों की तुलना में कम मीडिया कवरेज मिलता है।

महिलाओं के राजनीतिक नेतृत्व में सुधार के समाधान:

1.नीति और विधायी सुधार

- लिंग कोटा: राजनीतिक दलों और संसदों में अनिवार्य लिंग कोटा लागू करने से महिला प्रतिनिधित्व बढ़ सकता है।
- उत्पीड़न के खिलाफ सख्त कानून: महिला राजनेताओं को उत्पीड़न और हिंसा से बचाने के लिए मजबूत कानूनी ढांचे को लागू करना।

2.राजनीतिक एवं सामाजिक जागरूकता अभियान

- सार्वजनिक संवेदीकरण: लैंगिक रूढ़िवादिता को चुनौती देने और महिला नेतृत्व को प्रोत्साहित करने के लिए जागरूकता कार्यक्रम आयोजित करना।
- सामुदायिक सहभागिता: महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी को बढ़ावा देने में स्थानीय समुदायों को शामिल करना।

3.वित्तीय और आर्थिक सहायता

- फंडिंग तक समान पहुंच: सरकारों और राजनीतिक दलों को महिला उम्मीदवारों के लिए वित्तीय सहायता और सब्सिडी प्रदान करनी चाहिए।

- महिला आर्थिक सशक्तिकरण: कौशल विकास और उद्यमिता कार्यक्रमों के माध्यम से वित्तीय स्वतंत्रता को प्रोत्साहित करना।

4.नेतृत्व प्रशिक्षण और परामर्श

- मेंटरशिप कार्यक्रम: मेंटरशिप नेटवर्क स्थापित करना जहां अनुभवी महिला नेता नए प्रवेशकों का मार्गदर्शन कर सकें।
- राजनीतिक शिक्षा: युवा लड़कियों को प्रेरित करने के लिए स्कूली पाठ्यक्रम में राजनीतिक नेतृत्व प्रशिक्षण शामिल करना।

5.मीडिया और जनसंपर्क समर्थन

- संतुलित मीडिया प्रतिनिधित्व: मीडिया आउटलेट्स को महिला राजनेताओं को निष्पक्ष रूप से कवर करने और व्यक्तिगत जीवन के बजाय उनके काम पर ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रोत्साहित करना।
- सोशल मीडिया प्रशिक्षण: महिला राजनेताओं को जनता से जुड़ने के लिए सोशल मीडिया का प्रभावी ढंग से उपयोग करने में मदद करना।

भारत में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के लिए विभिन्न कानून और विधान:

1. भारतीय संविधान का भाग3 पुरुषों और महिलाओं के मौलिक अधिकारों की गारंटी देता है।
2. अनुच्छेद 43 समानता के अधिकारों की गारंटी देता है।
3. अनुच्छेद 15(3) के अनुसार धर्म जाति लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा। अनुच्छेद 16 में सार्वजनिक रोजगार के मामले में अवसर की समानता का अधिकार प्रदान किया गया है।
4. अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करता है।
5. अनुच्छेद 23 मानव शोषण और तस्करी के खिलाफ अधिकार की गारंटी देता है।
6. अनुच्छेद 39(a) पुरुष और महिलाओं दोनों के लिए समान रूप आजीविका का अधिकार प्रदान करता है।
7. अनुच्छेद 39a पुरुष और महिलाओं के लिए समान वेतन सुनिश्चित करता है।
8. 1992 में 73 संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा महिलाओं के लिए पंचायतों में सीटों का आरक्षण किया गया।

9. 1992 में 74 संशोधन अधिनियम मैं यह शामिल था कि महिलाओं के लिए 33% सीटों का आरक्षण होगा और उन्हें नगरपालिका के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में रोटेशन के द्वारा आवंटित किए जाएंगे।

निष्कर्ष:

निष्कर्ष यह है कि एक लोकतांत्रिक देश के लिए सरकार और कानून बनाने की प्रक्रिया में देश के पुरुषों और महिलाओं दोनों को समान रूप से शामिल करना बहुत महत्वपूर्ण है।सरकार और समाज ने काफी हद तक महिलाओं की राजनीति में भागीदारी की दिशा में ठोस कदम उठाए हैं और वे यह भी साबित कर रहे हैं कि महिलाओं के सम्मान और सशक्तिकरण में राजनीति को एक नई ऊंचाई प्रदान की है। राजनीति के नए आयाम बनाए जा रहे हैं जिसमें महिलाओं को समान रूप से प्रोत्साहित किया जा रहा है भले ही वह पंचायत स्तर पर ही क्यों ना हो गांव के सरपंच ने कई पंचायत स्तर के चुनाव में महिला उम्मीदवारों को जीता और उन्नति के नए द्वार खोले।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. *शर्मा, प्रज्ञा (2011). "वूमेन इन इंडियन सोसायटी। जयपुर: पॉइंटर पब्लिशर्स।*
2. *यूपी के ग्रामीण क्षेत्र में महिला राजनीतिक भागीदारी और नेतृत्व का बदलता स्वरूप। एस वसीम अहमद, नीलोफर, गजाला परवीन, द इंडियन जर्नल ऑफ़ पोलिटिकल साइंस, वॉल्यूम 16, न-3*
3. *भारतीय संविधान*
4. *वूमेन इन इंडियन पॉलिटिक्स बाय नीरज शर्मा*
5. *भारत में महिलाओं की चुनावी भागीदारी*
6. *द हिंदू, 17 जून*
7. *73वां व 74वां संविधान संशोधन अधिनियम।*
8. *विकासपीडिया, सामाजिक कल्याण, महिला विकास।*
9. *वॉल्यूम9, आई जे सी आर टी, 5 मई 2021 के मुद्दे।*
10. *आलम एस, भारतीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी एवं मीडिया की भूमिका 2015।*
11. *Http://Loksabhaph.nic.in/members/women aspx.*
12. *Https://rajyasabha.nic.in/rsnew/member site/women.aspx.*

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

13. *अंतर्राष्ट्रीय बहुभाषिक शोध पत्रिका, प्रिंटिंग एरिया, इंटरनेशनल इंटर डिसीप्लिनरी रिसर्च जर्नल इन मराठी, हिंदी एंड इंग्लिश भाषा, जून 2023, वॉल्यूम3।*
14. *विकीपीडिया*
15. *इंडिया टुडे पोस्ट मैगजीन*
16. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ पोलिटिकल साइंस एंड गवर्नेंस 2021; 3(2):110-11 17. जागरण जोश, अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस 2023*

वृद्ध महिला श्रमिको की स्थिति का अध्ययन इंदौर शहर के विशेष सन्दर्भ में

प्रजापति, सुरेश कुमार
शोधार्थी, इंदौर स्कूल ऑफ सोशल वर्क, इंदौर, मध्य प्रदेश

डॉ.जैन, सुधा
शोध निर्देशिका, इंदौर स्कूल ऑफ सोशल वर्क, इंदौर, मध्य प्रदेश.

सारांश

वर्तमान युग को हम कितना भी विकसित एवं शिक्षित समाज का हिस्सा मानते है परन्तु हमारी मानसिकता एवं पक्षपातपूर्ण व्यव्हार महिलाओ के प्रति व्याप्त है , भारतीय समाज में नारी को समानता का दर्जा नहीं प्राप्त है | भारत वर्ष कामकाजी महिलाओ को कामकाज के अतिरिक्त घरेलु कार्यो के लिए भी पूरी मशक्कत करनी पड़ती है | पिछले कुछ वर्षो में महिलाओ ने आर्थिक विकास में सक्रीय रूप से उद्योग सेवा एवं कृषि गतिविधियों में भाग लेकर घरेलु उत्पाद में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है | ग्रामीण क्षेत्रो में जहा महिलाओ के काम कि भागीदारी उच्च एवं शहरी क्षेत्रो में निम्न है ग्रामीण क्षेत्रो में महिलाये जो घरेलु या खेती बाड़ी, पशुपालन इंधन बटोरने ईट भट्टे या निर्माण कार्यो में संलगन है तथा कुटीर उद्योग की गतिविधो जैसे कार्यो को संभालती है

इंदौर शहर में बृद्ध महिला श्रमिक कि स्थिति पर यह अध्यन उनके आर्थिक सामाजिक और स्वस्थ्य संबंधी पहलुओ का विश्लेषण करता है | वृद्धवस्था में भी कई महिलाए घरेलु कार्य जैसे असंगठित क्षेत्रो में श्रम करने को मजबूर है | उन्हें कम वेतन, असुरक्षित कार्यस्थल और स्वस्थ्य संबंधी अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है | पारिवारिक सहयोग कि कमी और सरकारी योजनाओ तक सीमित पहुँच उनकी कठिनाइयों को बढ़ा देती है | इस अध्यन का उद्देश्य न केवल उनकी वर्तमान स्थिति को समझना है, बल्कि यह भी देखना है कि सरकारी नीतियाँ और समाज उनके जीवन स्तर को सुधारने में कितनी सहायक है |

परिचय

प्राचीन समय में संयुक्त परिवार व्यवस्था भारतीय समाज की एक अनूठी एवं महत्त्वपूर्ण व्यवस्था रही है | जिसने समाज के असहाय बृद्ध लोगो के लिए पर्याप्त आर्थिक मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक सुरक्षा प्रदान

करने वाली व्यवस्था के रूप में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, लेकिन भारत में औद्योगीकरण नगरीकरण आधुनिकीकरण धर्म के महत्त्व में तीव्र सामाजिक गतिशीलता एवं भौतिकवादी मूल्यों के प्रसार के कारण संयुक्त परिवार विघटन की दिशा में तीव्र गति से अग्रसर दिखाई दे रहे है संयुक्त परिवारों के टूटने के साथ साथ समाज के उपरोक्त वर्गों में सामाजिक संगठन एवं विकास की दृष्टि से एक वृद्ध वर्ग का जीवन समस्याग्रस्त होता जा रहा है भारत में अनेक क्षेत्रो में संगठित और असंगठित श्रमिक कार्यरत है जैसे बीड़ी उद्योग कपड़ा उद्योग गलीचा उद्योग आदि | भारत में महिला श्रमिको कि स्थिति को लेकर कई चुनौतिया है लेकिन श्रमिक महिलाओ कि स्थिति में बढ़ोत्तरी हुई है | आर्थिक सर्वेक्षण 2023-24 के मुताबिक भारत में महिला श्रम भागीदारी दर 37% है | वर्ष 2017-18 में यह दर 23.3% थी |

बृद्ध महिला श्रमिक समाज का इक महत्त्वपूर्ण लेकिन उपेक्षित वर्ग है जो अपने जीवन के उतरार्ध में भी आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर रहने के लिए श्रम करने को विवश है | इंदौर जैसे शहरी क्षेत्र में यह समस्या और अधिक गंभीर हो जाती है, जहाँ तेजी से बदलती आर्थिक और सामाजिक परिस्थतिया वृद्ध महिलाओ की आजीविका पर प्रभाव डालती है | असंगठित क्षेत्र में कार्यरत इन महिलाओ को कम वेतन, असुरक्षित कार्यस्थल, स्वस्थ्य समस्याएं और सामाजिक उपेक्षा जैसी अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है | अधिकांश वृद्ध महिला श्रमिक घरेलु कार्य, सड़क व्यापार, निर्माण कार्य,सफाई और छोटे उद्योगों में कार्यरत रहती है | पारिवारिक सहायता की कमी और सामाजिक सुरक्षा योजनाओ तक सीमित पहुँच उनकी कठिनाइयों को और बढ़ा देती है |

वेंजामिन शलाँस ने लिखा है कि "वृद्धवस्था एक विशिष्ट बीमारी के सामान है,वह ऐसी बीमारी है जो प्रत्येक व्यक्ति को लगती है | वह व्यक्ति तो जीवित रहता है, लेकिन अन्य सब बीमारिया इस बीमारी को निरपवाद रूप से जकड़ लेती है |"

मुख्य शब्दावली

1. वृद्ध महिला श्रमिक (Elderly Women Workers) – वे महिलाएँ जो 60 वर्ष या उससे अधिक उम्र की हैं और आजीविका के लिए श्रम कर रही हैं।
2. असंगठित क्षेत्र (Unorganized Sector) – वह कार्यक्षेत्र जहाँ श्रमिकों को नियमित वेतन, सामाजिक सुरक्षा या श्रम कानूनों का संरक्षण नहीं मिलता, जैसे घरेलू कार्य, निर्माण मजदूरी, सड़क व्यापार आदि।
3. सामाजिक सुरक्षा (Social Security) – सरकार या अन्य संस्थाओं द्वारा वृद्ध महिलाओं को दी जाने वाली पेंशन, स्वास्थ्य सुविधाएँ और अन्य सहायता।
4. आजीविका (Livelihood) – जीवनयापन के लिए किए जाने वाले कार्य, जिन पर वृद्ध महिला श्रमिक अपनी आर्थिक निर्भरता बनाए रखती हैं।

5. आर्थिक स्थिति (Economic Condition) – वृद्ध महिला श्रमिकों की आय, रोजगार की स्थिरता और वित्तीय निर्भरता से संबंधित स्थिति।
6. स्वास्थ्य समस्याएँ (Health Issues) – वृद्ध महिला श्रमिकों को होने वाली बीमारियाँ, जैसे जोड़ों का दर्द, कुपोषण, थकान और अन्य शारीरिक परेशानियाँ।
7. कार्यस्थल की परिस्थितियाँ (Workplace Conditions) – वृद्ध महिलाओं को काम करने के दौरान मिलने वाली सुविधाएँ, सुरक्षा और श्रम अधिकारों की स्थिति।
8. सरकारी योजनाएँ (Government Schemes) – वृद्ध महिलाओं के कल्याण के लिए सरकार द्वारा चलाई जाने वाली योजनाएँ, जैसे वृद्धावस्था पेंशन योजना, अटल पेंशन योजना आदि।
9. पारिवारिक सहयोग (Family Support) – वृद्ध महिला श्रमिकों को परिवार से मिलने वाली वित्तीय, भावनात्मक और सामाजिक सहायता।
10. सामाजिक स्थिति (Social Status) – वृद्ध महिलाओं को समाज में मिलने वाला सम्मान, अवसर और उनके प्रति समाज का दृष्टिकोण।
11. श्रमिक अधिकार (Labor Rights) – कार्यस्थल पर श्रमिकों के लिए निर्धारित कानून, सुरक्षा उपाय और न्यूनतम वेतन संबंधी अधिकार।

साहित्य समीक्षा

वृद्ध महिला श्रमिको की स्थिति पर किए गए विभिन्न शोध अध्ययनों रिपोर्टो और साहित्य की समीक्षा करने से यह स्पस्ट होता है कि यह वर्ग सामाजिक आर्थिक और स्वस्थ्य संबंधी कई चुनौतियों का सामना करता है | इंदौर शहर के विशेष सन्दर्भ में यह अध्ययन वृद्ध महिला श्रमिको की दशा को समझने का प्रयास करता है |

- कई शोध अध्ययनों में पाया गया है कि वृद्ध श्रमिको को कार्यस्थल पर भेदभाव, कम वेतन और असुरक्षित कार्य परिस्थतियो का सामना करना पड़ता है | नेशनल सैपल सर्वे (NSS) और सेंटर फार वुमेन डेवलपमेंट की रिपोर्टो के अनुसार, असंगठित क्षेत्र में काम कार्य करने वाली महिलाओ को सामाजिक सुरक्षा योजनाओ का सीमित लाभ मिलता है |
- सुमित्रा गुप्ता (2015) के अध्ययन में उल्लेख किया है कि वृद्ध महिलायों के पास वित्तीय स्वतंत्रता की कमी होती है, जिससे वे आजीविका के लिए श्रम करने को विवश होती है |
- चौधरी (2018) के अध्ययन में पाया गया कि वृद्ध महिला श्रमिको को पारिवारिक उपेक्षा और सामाजिक असुरक्षा का सामना करना पड़ता है | आर्थिक निर्भरता के कारण वे लंबे समय तक श्रम करती है |

- शर्मा और वर्मा (2019) के शोध में बताया गया कि वृद्ध महिला श्रमिको को गठिया, कमर दर्द, थकान, कुपोषण और अन्य बीमारिया का अधिक खतरा रहता है , इनके लिए स्वास्थ्य सुविधाओ कि अनुपलब्धता भी एक बड़ी समस्या है |
- के बी सक्सेना (2021) के अध्ययन में कहा कि योजनाओ की जागरूकता कि कमी और प्रक्रियात्मक जटिलताओ के कारण वृद्ध श्रमिक महिलाओ तक इनका प्रभाव सीमित रहता है |

शोध क्षेत्र एवं शोध अध्ययन विधि

- **शोध अध्ययन क्षेत्र**

  यह शोध इंदौर शहर में महिला श्रमिको के सामाजिक आर्थिक और कार्यस्थालीय स्थिति का अध्ययन करने पर केन्द्रित है इंदौर जो मध्य प्रदेश का सबसे बड़ा आद्योगिक और वाणिज्यिक केंद्र है यहाँ बड़ी संख्या में महिलाए असंगठित क्षेत्र में कार्यरत है | वृद्ध महिला श्रमिको कि स्थिति को समझने के 60 वर्ष या उससे अधिक उम्र की कार्यरत महिलाओ घरेलु कामगार निर्माण मजदूर सफाई कर्मी सड़क विक्रेता कारखाना श्रमिक सरकारी योजनाओ से लाभान्वित या उनसे वंचित वृद्ध महिला श्रमिक कि वास्तविक स्थिति को उजागर करने और उनकी समस्याओ के समाधान हेतु सुझाव देने के उद्देश्य से किया जायेगा |

- **शोध अध्ययन विधि**

  प्रस्तुत शोध पत्र में विवरणात्मक द्वतीय समंको का प्रयोग किया गया है | द्वतीय समंको का संकलन के विभिन्न श्रोतो जैसे वार्षिक प्रतिवेदन शोध क्षेत्र शोध पत्र आर्टिकल समाचार पत्र पुस्तके एनजीओ और सामाजिक संगठनो कि रिपोर्ट से वृद्ध श्रमिको से संबंधित संगठनो द्वारा प्रकाशित शोध पत्र और दस्तावेज पूर्व शोध एवं साहित्य समीक्षा एवं इंटरनेट के माध्यम से जानकारी एकत्रित की गई है |

उद्देश्य

- बृद्धि महिला श्रमिको कि स्थिति का अध्ययन करना |
- महिला श्रमिको के उत्थान के लिए सरकारी की नीतियों की भूमिका का विश्लेषण करना |
- वृद्ध महिलाओ द्वारा किये जा रहे निर्माण कार्यो जैसे घरेलु,कार्य , सड़क व्यापार,सफाई आदि की पहचान करना|
- बृद्धि महिला श्रमिको के स्वस्थ्य और कार्यस्थल स्थितयों का अध्ययन करना |
- बृद्धि महिला श्रमिको के लिए चलायी जा रही सरकारी योजनाओ और उनके प्रभाव का विश्लेषण करना|

- बृद्धि महिला श्रमिको के सामने आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण एवं अध्ययन कर संभावित समाधानो का सुझाव देना

वृद्धवस्था की समस्याए

1. मानसिक रोग
2. शारीरिक दुर्बलता
3. एकाकीपन
4. पारिवारिक सामजस्य की समस्या
5. खाली समय के उपयोग की समस्या
6. आर्थिक समस्याए

वृद्ध महिला श्रमिको के समक्ष उभरती स्वस्थ्य चुनौतिया

किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य का समग्र मूल्याकन उसकी कथित स्वस्थ्य स्थिति में पर्रिलाक्षित दिखाई देता है | कई अध्ययनों में पाया गया कि विभिन्न कारक और स्व रिपोर्ट की गई स्वास्थ्य स्थिति किस प्रकार संबंधित है | वर्तमान अध्ययन में वृद्ध महिलायों से उनके वर्तमान स्वस्थ्य को पांच बिंदु पैमाने पर रेट करने को कहा गया बहुत अच्छा, अच्छा,औसत,ख़राब और बहुत ख़राब

वृद्ध महिला श्रमिको द्वारा स्वयं बताई गई स्वास्थ्य स्थिति

तालिका 1

स्व रिपोर्ट किया गया स्वास्थ्य दशा	महिला (115)	प्रतिशत
बहुत अच्छा	13	11%
अच्छा	12	10%
औसत	32	28%
ख़राब	42	37%
बहुत ख़राब	16	14%
कुल	**115**	**100 %**

तालिका 1 से पता चलता है कि वृद्ध महिला श्रमिको का एक उल्लेखनीय हिसा 37% ख़राब है | औसतन में 28 % वृद्ध महिला श्रमिक है 11 % प्रतिशत महिलाए बहुत अच्छी है वही बहुत ख़राब स्वास्थ्य की बात की जाए तो 14 % है | इस अध्ययन जिन स्वास्थ्य जटिलताओ का

अध्ययन किया गया है उनमे गठिया,मधुमेह,अस्थमा,उच्चरक्तचाप,मोतियाबिंद और अन्य पुरानी बीमारिया शामिल है |

तेजी से बढती जनसँख्या के सन्दर्भ में, बुढ़ापे में सफलतापूर्वक जीने के तरीके रूप में एक सकारात्मक और सफल बुढ़ापे के माडल के महत्त्व को पहचाना गया है | समार्टफोन जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है | और बुजुर्ग आबादी के बीच उनका उपयोग और स्वीकृत भी बढ़ रही है लोगो से जुड़ने के लिए समार्टफोन एक महत्त्वपूर्ण साधन बन गया है सामाजिक जुडाव एक ऐसा मार्ग हो सकता है जिसके माध्यम से कल्याण को बढ़ावा दिया जा सकता है सामाजिक संबंध बनाये रखने से उनके मानसिक , भावनात्मक और शारीरिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है | नियमित सामाजिक संपर्क अकेलेपन अवसाद और चिंता की भावनाओ को कम कर सकता है जबकि संज्ञानात्मक कामकाज को बढ़ावा दे सकता है |

समाधान एवं सुझाव

1. **आर्थिक सशक्तिकरण के उपाय**

- वृद्ध महिला श्रमिकों को न्यूनतम वेतन और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए ठोस नीतियाँ बनाई जानी चाहिए |
- स्वरोजगार और लघु उद्यमों को प्रोत्साहित करने के लिए सूक्ष्म वित्त (Microfinance) और स्वयं सहायता समूह (SHG) के माध्यम से आर्थिक सहायता दिया जाना चाहिए |
- वृद्ध महिलाओं के लिए आजीविका प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किए जाएँ, जिससे वे कम शारीरिक श्रम वाले कार्यों में संलग्न हो सकें।

2. कार्यस्थल सुधार और सुरक्षा

- वृद्ध महिला श्रमिकों के कार्यस्थलों पर स्वास्थ्य और सुरक्षा मानकों को अनिवार्य किया जाना चाहिए।
- असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं को श्रमिक पहचान पत्र प्रदान किए जाएँ, जिससे वे सरकारी योजनाओं का लाभ उठा सकें।
- लचीले कार्य घंटे और कम श्रम-गहन कार्य उपलब्ध कराए जाएँ ताकि वृद्ध महिलाएँ अपने स्वास्थ्य को बनाए रखते हुए कार्य कर सकें।

3. स्वास्थ्य सुविधाएँ और देखभाल

- वृद्ध श्रमिक महिलाओं के लिए निःशुल्क या रियायती स्वास्थ्य जाँच शिविरों का आयोजन किया जाना चाहिए।

- ईएसआई (ESI) और आयुष्मान भारत योजना जैसी स्वास्थ्य योजनाओं को अधिक प्रभावी बनाया जाए।
- कार्यस्थल पर प्राथमिक चिकित्सा सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए।

4. सरकारी योजनाओं की जागरूकता और क्रियान्वयन

- वृद्ध महिला श्रमिकों को वृद्धावस्था पेंशन योजना, अटल पेंशन योजना, और श्रम कल्याण योजनाओं के प्रति जागरूक किया जाना चाहिए।
- सरकारी योजनाओं तक उनकी पहुँच बढ़ाने के लिए स्थानीय निकायों और गैर-सरकारी संगठनों की भागीदारी सुनिश्चित करना चाहिए |
- पेंशन और अन्य वित्तीय लाभों को प्राप्त करने की प्रक्रिया को सरल और डिजिटल माध्यमों से सुलभ बनाया जाना चाहिए।

5. सामाजिक और पारिवारिक समर्थन

- वृद्ध महिलाओं को परिवार से भावनात्मक और आर्थिक सहयोग प्राप्त हो, इसके लिए सामाजिक जागरूकता अभियान चलाए जाने चाहिए।
- समाज में वृद्ध महिलाओं के प्रति सम्मान और देखभाल की भावना विकसित करने के लिए सामुदायिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।
- डे-केयर सेंटर और वृद्धाश्रमों में उनके लिए रोजगारपरक गतिविधियाँ चलाई जानी चाहिए।

6. शोध और नीतिगत सुधार

- सरकार और शैक्षणिक संस्थानों को वृद्ध महिला श्रमिकों की स्थिति पर नियमित सर्वेक्षण और शोध करने चाहिए।
- वृद्ध महिला श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए नई नीतियाँ और कानून बनाए जाना चाहिए।
- असंगठित क्षेत्र में वृद्ध श्रमिक महिलाओं के कल्याण के लिए विशेष श्रमिक बोर्ड गठित करना चाहिए |

प्राप्त निष्कर्ष

इंदौर शहर में वृद्ध महिला श्रमिको की स्थिति का अध्ययन करने से यह स्पस्ट होता है कि वे विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और स्वस्थ्य संबंधी चुनौतियों का सामना कर रही है | असंगठित क्षेत्र में कार्यरत होने के कारण इन्हें न्यूनतम वेतन, सामाजिक सुरक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओ की कमी झेलनी पड़ती है | पारिवारिक सहयोग की सीमित उपलब्धता और कार्यस्थलो की प्रतिकूल परिस्थतिया इनकी

स्थिति को और जटिल बना देती है | अध्धयन में यह पाया गया कि अधिकांश वृद्ध महिला श्रमिक असंगठित क्षेत्र में कार्यरत है , जहाँ उन्हें श्रम कानूनों और सामाजिक सुरक्षा का लाभ नहीं मिलता | आर्थिक के कारण वे आजीविका के लिए लंबे समय तक श्रम करने के लिए विवश होती है | स्वस्थ्य समस्याए जैसे जोड़ो का दर्द, कुपोषण और कार्य से संबंधित बीमारिया आमतौर पर देखी गई है और सरकारी योजनाए उपलब्ध तो है, लेकिन जागरूकता की कमी और जटिल प्रक्रियाओ के कारण कई वृद्ध महिलाए इनका लाभ नहीं उठा पा रही है | सामाजिक और पारिवारिक समर्थन की कमी के कारण कई वृद्ध महिलाएं आर्थिक रूप से स्वावलंबी बने रहने के लिए संघर्ष कर रही है | इस शोध से प्राप्त निष्कर्षो के आधार पर यह आवश्यक है कि सरकार, गैर सरकारी संगठन (NGO) और समाज मिलकर वृद्ध महिला श्रमिको के जीवन स्तर में सुधार लाने के लिए ठोस कदम उठाएं आर्थिक सुरक्षा स्वास्थ्य सेवाओ की उपलब्धता, सामाजिक कल्याण योजनाओ की पहुच और कार्यस्थल पर सुरक्षा एवं सुविधाओ में सुधार से इनका जीएवन अधिक सुरक्षित और गरिमामय बनाया जा सकता है | समाज में वृद्ध महिला श्रमिको के योगदान को मान्यता देकर और उन्हें उचित सहायता प्रदान करके उनकी स्थति को सशक्त किया जा सकता है |

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मध्यप्रदेश सामाजिक शोंध समग्र शोंध एवं सन्दर्भ की राष्टीय पत्रिका (2016)
2. भारत सरकार नई दिल्ली – (2001)
3. वृद्धजन समस्याए व प्रत्याशाये शोंध प्रबंध (1998)
4. वृद्धजनो का समाज शास्त्रीय अध्ययन
5. गुप्ता सुमित्रा (2016) महिला श्रम और असंगठित क्षेत्र मुंबई एशियन पब्लीशिंग हॉउस
6. सिन्हा पी.एन. (2020) भारत में वृद्धजन और सामाजिक सुरक्षा, कोलकाता युनिवर्सल पब्लिकेशन |
7. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण रिपोर्ट (2019) भारत में वृद्ध श्रमिको की स्थिति, भारत सरकार, नई दिल्ली |
8. भारत सरकार (2018) असंगठित श्रमिको के लिए सामाजिक सुरक्षा रिपोर्ट, श्रम मंत्रालय नई दिल्ली |
9. मध्यप्रदेश सरकार (2020) महिला श्रमिको के कल्याण के नीति दस्तावेज,सामाजिक न्याय विभाग, भोपाल|
10. http://mospi.nic.in/sites/default/files/publication_reports/annual_reports_plfs_2018-19_hl.pdf
11. https://labour.gov.in/sites/default/files/review_unorganised_workers_social_security_act_2008.pdf
12. http://www.cwds.ac.in/wpcontent/uploads/2020/05/ageing_women_workers_report.pdf

डिजिटल युग में महिलाओं की भूमिका और लिंग समानता की नई संभावनाएं

खुशबू सिंह
स्त्री अध्ययन विभाग, संस्कृति विद्यापीठ,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, भारत।

सार

डिजिटल युग ने महिलाओं के लिए शिक्षा, रोजगार, उद्यमिता और सामाजिक अभिव्यक्ति के नए अवसर खोले हैं। ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल व्यवसाय और सोशल मीडिया जैसे प्लेटफॉर्म महिलाओं के आत्मविश्वास, कौशल और सामाजिक भागीदारी को सशक्त बनाने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। विशेष रूप से ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों की महिलाएं डिजिटल साक्षरता के माध्यम से आत्मनिर्भरता की दिशा में बढ़ रही हैं।

डिजिटल तकनीक ने जहाँ एक ओर लैंगिक समानता को बढ़ावा दिया है, वहीं दूसरी ओर साइबर अपराध, तकनीकी साक्षरता की कमी, और डिजिटल संसाधनों तक असमान पहुँच जैसी चुनौतियाँ भी प्रस्तुत की हैं। कई महिलाओं को ऑनलाइन उत्पीड़न, ट्रोलिंग, डेटा चोरी और सामाजिक अवरोधों का सामना करना पड़ता है, जिससे उनकी भागीदारी सीमित हो जाती है।

इस आलेख के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि डिजिटल युग महिलाओं को सशक्त करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण साधन है, लेकिन इसका समावेशी लाभ तभी संभव है जब तकनीकी पहुँच, सुरक्षा और जागरूकता को हर वर्ग की महिलाओं के लिए सुनिश्चित किया जाए। जब महिलाएं बिना डर और भेदभाव के डिजिटल मंचों पर भाग ले सकेंगी, तभी वास्तविक लैंगिक समानता और समावेशी विकास संभव होगा।

मुख्य शब्द: लैंगिक समानता, महिला सशक्तिकरण, इंटरनेट और महिलाएं, सोशल मीडिया

भूमिका

1990 के दशक में जब वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने गति पकड़ी, तब तकनीक और सूचना के क्षेत्र को प्रायः पुरुषों का वर्चस्व प्राप्त था। तकनीकी ज्ञान, डिजिटल संसाधनों की पहुँच और प्रयोग की संस्कृति में महिलाओं की भागीदारी सीमित थी। लेकिन जैसे-जैसे महिलाओं की शिक्षा, जागरूकता और सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई, उन्होंने न केवल तकनीकी दुनिया में प्रवेश किया, बल्कि उसमें अपनी सक्रिय और सशक्त उपस्थिति भी दर्ज कराई। आज महिलाएं डिजिटल उपकरणों और संसाधनों का उपयोग केवल सूचना प्राप्ति तक सीमित नहीं रख रही हैं, बल्कि वे उसका विश्लेषण, समझ और जीवन के विविध क्षेत्रों में व्यावहारिक प्रयोग कर रही हैं।

वर्तमान समय को 'डिजिटल युग' अथवा 'तकनीकी युग' कहा जा रहा है, जहाँ ज्ञान, संचार, सेवाएं और अवसर—सब कुछ तकनीक के माध्यम से तीव्रता से बदल रहे हैं। यह युग समाज के प्रत्येक वर्ग को नई दिशा में आगे बढ़ने का अवसर दे रहा है, विशेष रूप से उन महिलाओं को, जो वर्षों से सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक असमानताओं का सामना करती रही हैं। डिजिटल प्रौद्योगिकी ने न केवल भौगोलिक और पारंपरिक सीमाओं को तोड़ा है, बल्कि यह महिलाओं के लिए शिक्षा, रोजगार, उद्यमिता और अभिव्यक्ति के नए मार्ग भी खोल रही है।

आज तकनीक ने घर बैठे ऑनलाइन शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, डिजिटल व्यवसाय और सामाजिक संवाद को संभव बना दिया है। सोशल मीडिया जैसे मंचों ने महिलाओं को अपनी रचनात्मकता, विचारों और अनुभवों को साझा करने का एक स्वतंत्र मंच दिया है। विशेष रूप से ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों की महिलाएं अब डिजिटल साक्षरता के माध्यम से अपने आत्मविश्वास, निर्णय क्षमता और आर्थिक स्थिति को सशक्त बना रही हैं। वे पारंपरिक भूमिकाओं से आगे बढ़कर घर, समाज और कार्यक्षेत्र में निर्णायक भूमिका निभा रही हैं।

हालाँकि यह भी स्वीकार करना होगा कि इस तकनीकी विकास के साथ कई गंभीर चुनौतियाँ भी जुड़ी हुई हैं-जैसे साइबर अपराध, डिजिटल भेदभाव, तकनीकी संसाधनों की असमान पहुँच और डिजिटल साक्षरता की कमी। इसके बावजूद, डिजिटल प्लेटफॉर्म महिलाओं को वह मंच दे रहे हैं, जहाँ वे न केवल अपनी बात रख पा रही हैं, बल्कि सदियों से जमी हुई पितृसत्तात्मक संरचनाओं को भी चुनौती दे रही हैं।

इस प्रस्तावित लेख/अध्ययन का उद्देश्य यही है कि डिजिटल युग ने महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक भूमिका को किस प्रकार बदला है, और यह परिवर्तन लैंगिक समानता की दिशा में कितना ठोस और प्रभावी सिद्ध हो रहा है। इस विश्लेषण के माध्यम से हम न केवल यह समझ सकेंगे कि

तकनीकी प्रगति ने महिला सशक्तिकरण के क्या नए अवसर उपलब्ध कराए हैं, बल्कि यह भी मूल्यांकन कर पाएंगे कि क्या यह परिवर्तन सभी वर्गों की महिलाओं तक समान रूप से पहुँच पा रहा है या नहीं।

डिजिटल शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी

डिजिटल क्रांति ने शिक्षा के क्षेत्र में जो परिवर्तन लाए हैं, वे विशेष रूप से महिलाओं के लिए एक नई आशा और अवसर का स्रोत बनकर उभरे हैं। पारंपरिक शिक्षा प्रणाली में महिलाओं की भागीदारी अनेक सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक सीमाओं के कारण बाधित रही है। किंतु अब तकनीकी प्रगति के माध्यम से शिक्षा घर की चौखट तक पहुँच चुकी है, जिससे शिक्षा एक सुलभ और लचीला विकल्प बन गई है। आज महिलाएं MOOCs (Massive Open Online Courses), YouTube, zoom, google meet, शैक्षिक मोबाइल एप्लिकेशन, पोडकास्ट्स, वेबिनार्स और डिजिटल विश्वविद्यालयों के माध्यम से विभिन्न विषयों में ज्ञान अर्जित कर रही हैं। ये मंच महिलाओं को अपने समय, सुविधा और पारिवारिक जिम्मेदारियों के अनुरूप सीखने की स्वतंत्रता प्रदान करते हैं। विशेष रूप से गृहिणियाँ, माताएँ, कार्यरत महिलाएं तथा ग्रामीण क्षेत्रों की युवतियाँ इन संसाधनों के माध्यम से अपने कौशल का विकास कर रही हैं।

ऑनलाइन शिक्षा ने महिलाओं को पारंपरिक पाठ्यक्रमों से आगे बढ़कर डिजिटल मार्केटिंग, वेब डिजाइनिंग, लेखन, उद्यमिता, वित्तीय साक्षरता, भाषा शिक्षा और स्वास्थ्य संबंधी क्षेत्रों में भी प्रशिक्षित होने का अवसर दिया है। इससे न केवल उनका आत्मविश्वास बढ़ा है, बल्कि वे स्वरोज़गार और ऑनलाइन काम के विकल्पों की ओर भी अग्रसर हुई हैं। इसके अतिरिक्त, डिजिटल शिक्षा ने उन महिलाओं को भी फिर से सीखने का अवसर दिया है, जिन्होंने शादी, मातृत्व या सामाजिक कारणों से अपनी पढ़ाई अधूरी छोड़ दी थी। वे अब पुनः सक्रिय होकर शिक्षा के ज़रिए अपने आत्मसम्मान और पहचान को पुनर्परिभाषित कर रही हैं।

हालाँकि, यह भी स्वीकार करना होगा कि डिजिटल साक्षरता की कमी, इंटरनेट की सीमित पहुँच, और डिजिटल उपकरणों की उपलब्धता आज भी ग्रामीण तथा आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग की महिलाओं की शिक्षा में बाधक बनी हुई है। फिर भी, सरकार और सामाजिक संगठनों द्वारा चलाई जा रही डिजिटल साक्षरता मुहिमें इन अंतरालों को भरने का प्रयास भी कर रही हैं।

ऑनलाइन व्यवसाय और डिजिटल उद्यमिता

डिजिटल युग ने महिलाओं के लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता और उद्यमिता के नए मार्ग प्रशस्त किए हैं। जहाँ पहले व्यापार करने के लिए पूंजी, दुकान, परिवहन, और सामाजिक समर्थन जैसी अनेक पूर्व शर्तें होती थीं, वहीं आज इंटरनेट और स्मार्टफोन की सहायता से महिलाएं घर बैठे स्वरोज़गार और व्यवसाय

को सफलतापूर्वक संचालित कर रही हैं। यह परिवर्तन न केवल आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह महिलाओं की सामाजिक पहचान, निर्णयकारी भूमिका और सशक्तिकरण की दिशा में भी एक क्रांतिकारी बदलाव है।

डिजिटल मंचों पर महिला उद्यमिता का प्रसार: आज महिलाएं ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म जैसे Amazon, Flipkart, Meesha, Etsy, Shopify आदि पर अपने उत्पाद बेच रही हैं। ये उत्पाद घरेलू हस्तशिल्प, कपड़े, आभूषण, खाद्य सामग्री, ब्यूटी प्रोडक्ट्स, डिजिटल सेवाएं आदि हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त, सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म जैसे Instagram, Facebook, WhatsApp Business का उपयोग कर महिलाएं अपने ग्राहकों से सीधा संवाद बनाती हैं, प्रचार करती हैं, ब्रांड बना रही हैं। Instagram या Facebook पर छोटे व्यापारिक पेज, YouTube पर क्रिएटिव चैनल, और WhatsApp पर प्रोडक्ट बुकिंग जैसे माध्यमों से महिलाएं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो रही हैं। इससे उन्हें न केवल आय का साधन मिला है, बल्कि सामाजिक मान्यता और सम्मान भी प्राप्त हुआ है। इसके साथ ही, UPI, Paytm, Google Pay, Phon pay, और अन्य डिजिटल भुगतान प्रणालियों ने लेन-देन को इतना सरल बना दिया है कि महिलाएं बिना बैंक जाए, घर बैठे ही पूरे व्यवसाय का आर्थिक प्रबंधन कर सकती हैं।

सोशल मीडिया पर महिला सशक्तिकरण: आज के डिजिटल युग में सोशल मीडिया केवल संचार या मनोरंजन का माध्यम नहीं रह गया है, बल्कि यह महिलाओं के लिए सामाजिक बदलाव, आत्म-अभिव्यक्ति और सशक्तिकरण का एक प्रभावशाली उपकरण बन चुका है। Facebook, Instagram, YouTube, Twitter (अब X), WhatsApp, LinkedIn जैसे मंचों ने महिलाओं को एक समान अवसरों वाला मंच प्रदान किया है, जहाँ वे अपने विचार, अनुभव, रचनात्मकता और व्यवसाय को दुनिया के सामने ला सकती हैं। स्वर और पहचान की स्वतंत्रता: सोशल मीडिया ने महिलाओं को अपने विचार व्यक्त करने, सामाजिक मुद्दों पर बोलने, और अपनी रचनात्मकता को साझा करने की सांस्कृतिक स्वतंत्रता दी है। महिलाएं अब ब्लॉगिंग, वीडियो कंटेंट, कविताएँ, सामाजिक पोस्ट, पर्सनल स्टोरीज़ के माध्यम से अपने अनुभवों और जीवन संघर्षों को सामने लाकर, न केवल समाज को जागरूक कर रही हैं, बल्कि अपने जैसी अन्य महिलाओं को भी प्रेरित कर रही हैं।

डिजिटल आंदोलन और वैश्विक चेतना: डिजिटल युग में सोशल मीडिया न केवल संवाद का माध्यम बना है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त उपकरण भी सिद्ध हुआ है। विशेष रूप से महिलाओं से जुड़े मुद्दों को वैश्विक मंच पर लाने और उन पर सार्वजनिक विमर्श को प्रेरित करने में सोशल मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। बीते वर्षों में अनेक डिजिटल आंदोलनों ने वैश्विक स्तर पर लैंगिक असमानता, यौन शोषण, घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर उत्पीड़न जैसे मुद्दों पर करोड़ों लोगों को जागरूक किया है और उन्हें एकजुट होने का अवसर दिया है। उदाहरणस्वरूप, #MeToo, #TimesUp,

#YesAllWomen, और #BoisLockerRoom जैसे हैशटैग्स ने महिलाओं को अपने अनुभव साझा करने, सामाजिक समर्थन प्राप्त करने और पितृसत्तात्मक संरचनाओं पर प्रश्नचिन्ह लगाने का एक सशक्त मंच प्रदान किया। इन आंदोलनों ने न केवल व्यक्तिगत पीड़ाओं को उजागर किया, बल्कि उन्हें सामूहिक चेतना में बदलते हुए सामाजिक और कानूनी सुधार की मांग को भी बल दिया।

भारतीय संदर्भ में भी डिजिटल आंदोलन तेजी से उभरे हैं। **#PinjraTod** ने शहरी छात्राओं की आज़ादी की मांग को स्वर दिया, वहीं **#StopAcidAttacks** ने अमानवीय हिंसा के विरुद्ध संघर्षरत महिलाओं की आवाज़ को बल प्रदान किया। इसी प्रकार, **#DigitalIndiaForHer** जैसे अभियानों ने डिजिटल साक्षरता के माध्यम से ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों की महिलाओं को सशक्त करने का प्रयास किया। इन अभियानों ने न केवल जागरूकता बढ़ाई बल्कि सामाजिक भागीदारी को भी सशक्त किया, जिससे महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति सजग होने और बदलाव की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी निभाने का अवसर मिला। इस प्रकार, सोशल मीडिया के माध्यम से शुरू हुए डिजिटल आंदोलनों ने एक नई वैश्विक चेतना को जन्म दिया है, जो न केवल विरोध का माध्यम है, बल्कि सामाजिक न्याय और लैंगिक समानता की दिशा में एक प्रेरणादायक पहल भी है।

चुनौतियाँ और जोखिम: हालाँकि सोशल मीडिया ने कई अवसर दिए हैं, लेकिन महिलाओं के लिए इसमें साइबर उत्पीड़न, ट्रोलिंग, फेक प्रोफाइल, डेटा चोरी और लैंगिक भेदभाव जैसी समस्याएँ भी मौजूद हैं। कई बार महिलाएं ऑनलाइन हिंसा और चरित्र पर प्रश्न उठाए जाने का शिकार होती हैं, जिससे उनकी डिजिटल भागीदारी प्रभावित होती है। इसलिए डिजिटल सुरक्षा, गोपनीयता और साइबर कानूनों की जानकारी महिलाओं के लिए अत्यंत आवश्यक हो गई है।

डिजिटल युग ने महिलाओं के लिए शिक्षा, व्यवसाय, सामाजिक अभिव्यक्ति और सशक्तिकरण के नए अवसर अवश्य खोले हैं, लेकिन इसके साथ-साथ कई गंभीर चुनौतियाँ और जोखिम भी उत्पन्न हुए हैं। यह आवश्यक है कि डिजिटल मंचों का उपयोग करते समय महिलाओं को संभावनाओं के साथ-साथ उनके संभावित खतरे और सीमाओं को भी भली-भांति समझना चाहिए।

साइबर अपराध और ऑनलाइन उत्पीड़न

डिजिटल माध्यमों का दुरुपयोग कर महिलाओं को साइबर स्टॉकिंग, मॉर्फ्ड इमेज शेयरिंग, ट्रोलिंग, अभद्र टिप्पणियाँ, ऑनलाइन उत्पीड़न, और फर्जी प्रोफाइल जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यह न केवल उनकी मानसिक सुरक्षा को प्रभावित करता है, बल्कि कई बार वे डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म से हटने को भी मजबूर हो जाती हैं।

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

राष्ट्रीय महिला आयोग और NCRB की रिपोर्टों में भी यह स्पष्ट हुआ है कि महिलाओं के प्रति साइबर अपराधों में लगातार वृद्धि हो रही है, जिससे उनका ऑनलाइन सहभाग घटता है। महिलाओं के लिए सबसे बड़ी डिजिटल चुनौती साइबर सुरक्षा से जुड़ी है। सोशल मीडिया, मैसेजिंग एप्स, और ऑनलाइन मंचों पर महिलाओं को गाली-गलौज, धमकी, अश्लील संदेश, फेक प्रोफाइल, फोटो मॉर्फिंग, साइबर स्टॉकिंग जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन अपराधों के कारण कई महिलाएं ऑनलाइन माध्यमों से दूरी बना लेती हैं, जिससे उनका आत्मविश्वास और डिजिटल भागीदारी दोनों प्रभावित होते हैं।

तकनीकी साक्षरता और डिजिटल ज्ञान की कमी: भारत जैसे विकासशील देश में तकनीकी साक्षरता विशेष रूप से ग्रामीण और कम शिक्षित महिलाओं के लिए एक बड़ी चुनौती है।

- कई महिलाएं आज भी स्मार्टफोन, कंप्यूटर, इंटरनेट ब्राउज़िंग, ऑनलाइन पेमेंट या ईमेल जैसे सामान्य डिजिटल कार्यों में दक्ष नहीं हैं।
- डिजिटल उपकरणों के प्रयोग से जुड़ी भाषाई कठिनाइयाँ, डर, और आत्मविश्वास की कमी उन्हें डिजिटल संसाधनों से दूर रखती हैं।
- तकनीकी प्रशिक्षण की अनुपलब्धता इस समस्या को और गहरा करती है।

जिटल अवसरों की असली उपयोगिता तभी है जब उनकी पहुँच सभी वर्गों तक समान रूप से हो, लेकिन वास्तविकता यह है कि ग्रामीण, आदिवासी और वंचित समुदायों की महिलाओं को आज भी स्मार्टफोन, लैपटॉप, इंटरनेट डेटा, और नेटवर्क कनेक्टिविटी जैसी मूलभूत सुविधाएँ आसानी से उपलब्ध नहीं हैं। भारत के अनेक क्षेत्रों में अब भी इंटरनेट की पहुँच पुरुषों तक सीमित है, और महिलाओं को तकनीकी संसाधनों के उपयोग से रोका जाता है। इसके पीछे सांस्कृतिक रूढ़ियाँ, नियंत्रण की मानसिकता, और आर्थिक सीमाएँ कार्य करती हैं।

महिलाओं के डिजिटल उपकरणों के उपयोग को लेकर समाज में अब भी अनेक संशय और निगेटिव धारणाएँ प्रचलित हैं। कई परिवारों में यह माना जाता है कि महिलाओं का मोबाइल या इंटरनेट चलाना अनुचित या जोखिम भरा है, जिससे वे स्वतंत्र रूप से डिजिटल मंचों का उपयोग नहीं कर पातीं। यह दृष्टिकोण उन्हें डिजिटल युग की मुख्यधारा से अलग कर देता है और लैंगिक डिजिटल खाई को और गहरा करता है।

निष्कर्ष

डिजिटल युग ने समाज में महिलाओं की भूमिका को एक नवीन दिशा प्रदान की है। तकनीकी विकास के कारण शिक्षा, रोजगार, उद्यमिता, और सामाजिक संवाद के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी पहले की

तुलना में अधिक सशक्त, विविध और गतिशील हुई है। डिजिटल मंचों के माध्यम से अब महिलाएं न केवल अपनी रचनात्मकता, अभिव्यक्ति और कौशल को दुनिया के सामने रख पा रही हैं, बल्कि वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर भी बन रही हैं। ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल व्यवसाय, सोशल मीडिया अभियानों और ई-गवर्नेंस तक पहुँच ने महिलाओं को सशक्त नागरिक के रूप में स्थापित करने की नींव रखी है। यह परिवर्तन न केवल व्यक्तिगत स्तर पर, बल्कि परिवार, समाज और राष्ट्र की संरचना में भी बदलाव ला रहा है। महिलाएं अब निर्णायक भूमिकाओं में आ रही हैं, और लैंगिक शक्ति संतुलन की ओर एक सार्थक बढ़त दिखाई दे रही है।

हालाँकि, यह भी उतना ही सत्य है कि डिजिटल अवसरों के समान उपयोग और लाभ के मार्ग में अनेक बाधाएँ आज भी उपस्थित हैं।साइबर अपराध, तकनीकी साक्षरता की कमी, इंटरनेट की सीमित पहुँच

संदर्भ सूची:

1. *खोसबख्त, एन. (2018). डिजिटल आइडेंटिटीज़: सोशल मीडिया के माध्यम से स्वयं की प्रस्तुति [थीसिस, मोनाश विश्वविद्यालय]।* https://doi.org/10.4225/03/5af3c264d88a2
2. *गुप्ता, वंदना, (2024). डिजिटल युग में स्त्री सशक्तिकरण। वीकली इंडिया, नई दिल्ली।*
3. *लेस्ली फाउंडेशन, (2023).महिला सशक्तिकरण को डिजिटल सशक्तिकरण की आवश्यकता है।*
4. *श्लाघ, डॉ. राम समुझ, (2018).महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन। शोध पत्र*
5. *शर्मा, वी.के. (2024, 17 दिसंबर). डिजिटल युग में महिला सशक्तिकरण: अवसर और चुनौतियाँ। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी ट्रेंड्स, 7(1), 110-112।* *https://www.multisubjectjournal.com*
6. ***हस्ट, एस. जे. टी., और ब्राउन, पी. एम. (2012).** द व्यू ऑफ देम: प्री-एडोलसेंट परसेप्शन ऑफ पॉपुलर मीडिया एंड देयर रिलेशनशिप टू फ्यूचर एस्पिरेशन। डेवलपमेंटल साइकोलॉजी, 48(2), 315–326।* https://doi.org/10.1037/a0026369

 ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

मूंज उत्पाद से उद्यमिता कि ओर बढ़ती महिलाएँ : विशेष सन्दर्भ प्रयागराज

ज्योति कुमारी आदिवासी
पी .एच. डी .स्त्री अध्ययन, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी
विश्वविद्यालय वर्धा , क्षेत्रीय केंद्र प्रयागराज झूंसी

सार

भारतीय समाज में महिलाएं सदियों से हस्तशिल्प के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देती रही हैं। उनके द्वारा निर्मित हस्तशिल्प न केवल देश की सांस्कृतिक विरासत का प्रतिनिधित्व करते हैं बल्कि स्थानीय अर्थव्यवस्था को भी मजबूत करते हैं। हस्तशिल्प उद्योग सदियों से मानव सभ्यता का एक अभिन्न अंग रहा है। यह न केवल आर्थिक विकास में योगदान देता है बल्कि सांस्कृतिक विरासत को भी संरक्षित करता है। इस उद्योग में महिलाओं की भागीदारी सदियों से रही है। वे न केवल कारीगर के रूप में बल्कि डिजाइनर, उत्पादक और विक्रेता के रूप में भी सक्रिय रूप से शामिल रही हैं। हालाँकि, लैंगिक असमानता के कारण, महिलाओं को अक्सर पुरुषों की तुलना में कम अवसर और कम मान्यता मिलती रही है।

परिचय:

मूंज, एक पारंपरिक भारतीय घास है जो सदियों से हमारे बीच रही है . आज भी गाँवों में अभी गरीब मजदूर जनसँख्या ,किसान और अन्य लोग कच्ची मिट्टी के घर में छावनी के लिए सरपत का उपयोग करते है . हालाँकि सदियों से हस्तशिल्प के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। यह घास न केवल अपनी मजबूती और लचीलेपन के लिए जानी जाती है, बल्कि पर्यावरणीय स्थिरता और सांस्कृतिक विरासत के प्रतीक के रूप में भी महत्वपूर्ण है।

मूंज का इतिहास और सांस्कृतिक महत्व:

टोकरी बनाने कि कला हमारी संस्कृति और दिनचर्या कि जरूरतों कि एक पुरानी परंपरा रही है.प्रकृति ने हमें लगभग हर वस्तु कि प्रचुरता दी है और हमारे देंश के लोगो ने इसे अपनाने में उत्कृष्टता हासिल कि है . उतर प्रदेश कि वर्तमान में

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

आबादी यूरोपीय देश के करीब है . हालांकि टोकरी बनाने कि कला यथा मूंज कि कला , मूल रूप से ग्रामीण महिलाओं के रोजगार और भागीदारी के लिए महत्वपूर्ण हो गया है क्यूंकि शुरू शुरू में इन टोकरियों को बनाने का उद्येश्य भोजन (रोटी) रखने के लिए और शादी विवाह समारोह में उपहार देने लेने के लिए बनाई जाती थी और आज यह वर्तमान में ये कला शहरी घरों में बहुत बड़े पैमाने पर इन उत्पादों कि मांग बढ़ रही है . यह शुरू हुआ 24 जनवरी 2018 ,सूक्ष्म लघु वमध्यम मंत्रालय के द्वारा एक जिला एक उत्पाद योजना के तहत ग्रामीण कलाओ को पूँजी युक्त रोजगार के रूप में परिवर्तित कर दिया है . मूंज उत्पाद को साल 2022 में जीआई टैग दिया गया है . मूंज का उपयोग हस्तशिल्प में भारत में हजारों वर्षों से होता रहा है। प्राचीन भारतीय सभ्यताओं में, मूंज का उपयोग घरों के निर्माण, वस्त्रों और विभिन्न प्रकार के बर्तनों को बनाने के लिए किया जाता था। मूंज हस्तशिल्प के उत्पादों का उपयोग प्राचीन काल से चलता आ रहा है जैसे कि पुरातात्विक साक्ष्यों में पाया गया है कि , सरपत घास और बांस के उत्पाद का दैनिक चर्या में किया जाता रहा है . मूंज को ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में देखे तो मुग़ल काल से यह उत्पाद प्रयागराज के ग्रामीण में हमेशा से ही प्रचलित रहा है . प्रयागराज के नैनी ब्लाक के अंतर्गत महेवा गाँव के नाम से जाना जाने वाला स्थान आज मूंज हस्थ्सिल्प गाँव के नाम से विख्यात हो रहा है . मूंज से बने उत्पादों का उपयोग धार्मिक अनुष्ठानों और सामाजिक आयोजनों में भी किया जाता था। मूंज हस्तशिल्प, भारतीय ग्रामीण जीवन का एक अभिन्न अंग रहा है और यह हमारे देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है। मूंज से बने उत्पाद, जैसे चटाइयाँ, डलियाँ और सजावटी सामान, धार्मिक और सामाजिक आयोजनों में व्यापक रूप से उपयोग किए जाते हैं। विशेष रूप से, कुम्भ मेला, जो प्रत्येक 12 वर्षों में प्रयागराज में आयोजित होता है, मूंज हस्तशिल्प की माँग को बढ़ाता है। इस दौरान तीर्थयात्री और पर्यटक मूंज से बने उत्पादों को स्मृति चिह्न के रूप में खरीदते हैं।मूंज हस्तशिल्प स्थानीय लोक कथाओं और परंपराओं में भी शामिल है। कई गाँवों में, मूंज की बुनाई को एक पारिवारिक कला के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित किया जाता है। यह कला न केवल आर्थिक आत्मनिर्भरता प्रदान करती है, बल्कि सामुदायिक एकता और सांस्कृतिक पहचान को भी मजबूत करती है।

मूंज उत्पाद उत्पादन प्रक्रिया

1. कच्चा माल: नैनी के पास स्थित महेवा ,मदौका ,इन्द्लपुर ,डांडी ,भंडरा ,पिपरसा ,समेत अन्य गावों से लोकल मजदूरों द्वारा अक्टूबर – नवम्बर से लेकर फ़रवरी माह तक खरीदा जाता है. क्यूंकि यह वर्ष में एक बार ही मिलता है इसलिए कारीगरों को बहुत संभाल कर उत्पाद तैयार कि

या जाते है .

[ii]मूंज एक लंबी, मजबूत और लचीली घास है, जो प्रयागराज जिले के नदी किनारों, दलदली क्षेत्रों और बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में उगती है। यह घास पर्यावरण के अनुकूल है और इसे काटने के बाद यह जल्दी पुनर्जनन करती है, जिससे यह एक टिकाऊ संसाधन बन जाता है।

संग्रह और प्रारंभिक प्रसंस्करण

मूंज की कटाई स्थानीय कारीगरों और उनके परिवारों द्वारा की जाती है। कटाई के बाद, घास को सुखाया जाता है ताकि उसमें मौजूद नमी हट जाए और वह बुनाई के लिए उपयुक्त हो जाए। सुखाने की प्रक्रिया में मूंज को धूप में फैलाया जाता है, और इसे बार-बार पलटा जाता है ताकि यह समान रूप से सूख जाए। सूखने के बाद, मूंज को छाँटा जाता है और इसकी लंबाई और मोटाई के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया जाता है।सरपत कि सूखी हुई घास को छोटी छोटी गाँठ बनाया जाता है जिसे , स्थानीय लोग “ बल्ला ” कहा जाता है . फिर इन गांठों को ठन्डे पानी में भिगोया जाता है , जिससे उसका लचीलापन बना रहता है और बल्ला और सरपत को सूखे और नर्म जगह पर रखा जाता है .

रंगाई का तकनीक : महेवा के पूरब और पश्चिम पत्ते में कार्यरत कारीगर गाँव के नुक्कड़ और स्थानीय उपलब्ध कच्चे रंगों , हरा, लाल, बैंगनी , नारंगी ,गुलाबी , और अन्य रंगों के पाउडर को एक गरम पानी में डाला जाता है उसके बाद बल्ला को उस रंग भरे बर्तन में डुबोया जाता है . 30 -40 मिनट तक उबलने के बाद धुप में सुखाया जाता है , इससे सरपत और आकर्षक रंग उभर आता है.

बुनाई की तकनीक :मूंज हस्तशिल्प की बुनाई एक श्रमसाध्य और कुशल प्रक्रिया है। कारीगर विभिन्न प्रकार की बुनाई तकनीकों का उपयोग करते हैं, जिनमें शामिल हैं:

- सर्पिल बुनाई: इस तकनीक में मूंज को सर्पिल आकार में बांधा जाता है ताकि गोल टोकरियाँ या डलियाँ बनाई जा सकें।

- पट्टी बुनाई: इस तकनीक में मूंज की पतली पट्टियों को एक-दूसरे के ऊपर और नीचे बुनकर चटाइयाँ या सपाट सतह वाले उत्पाद बनाए जाते है.

मिश्रित बुनाई: इसमें मूंज को अन्य सामग्रियों, जैसे कपड़े या रस्सी, के साथ मिलाकर जटिल डिज़ाइन बनाए जाते हैं।कारीगर अपने हाथों और साधारण औज़ारों, जैसे चाकू और सुई, का उपयोग करके मूंज को आकार देते हैं। कुछ आधुनिक डिज़ाइनों में रंगीन धागों या प्राकृतिक रंगों का उपयोग करके उत्पादों को और आकर्षक बनाया जाता है. मूंज को उत्पाद में रूपाकार देने के उपकरण अत्यंत ही साधारण हैं और गांव-देहात में आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। मुख्य रूप से दो उपकरणों का प्रयोग होता है। पहला, टकुआ या सूआ और दूसरा, कटर या कैंची। टकुआ पांच-छह इंच लम्बी मोटी सुई या सुआ होता है, जिसके एक हिस्से पर लकड़ी का हत्था लगा होता है। टकुआ और कटर की मदद से ही सिक्की रूपाकृतियों में ढलती है। जैसे- घरों को सजाने का सामान, शीतलपाटी, आभूषण या अन्य छोटे-बड़े सामान रखने के डब्बे आदि। सिक्की के छोटे-बड़े डब्बे का प्रयोग ड्राई-फ्रूट्स, मसाले, फूल पत्ती आदि रखने के काम में होता है।

मूंज हस्तशिल्प की विशेषताएं:

- **पर्यावरणीय स्थिरता:** मूंज एक नवीकरणीय संसाधन है और इसके उत्पादन में कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है। मूंज से बने उत्पाद जैव-अपघटनशील होते हैं और पर्यावरण को कोई नुकसान नहीं पहुंचाते हैं।
- **स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा:** मूंज हस्तशिल्प, ग्रामीण कारीगरों को रोजगार प्रदान करता है और स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करता है।
- **सांस्कृतिक पहचान:** मूंज हस्तशिल्प, भारत की सांस्कृतिक पहचान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है और यह हमारे देश की समृद्ध विरासत को दर्शाता है।
- **बहुमुखी उपयोग:** मूंज का उपयोग विभिन्न प्रकार के उत्पादों को बनाने के लिए किया जा सकता है, जैसे कि चटाइयाँ, दरीयाँ, टोकरी, फर्नीचर, छत और दीवारें।

महिला उद्यमिता :

किसी भी देश के मानव विकास के संसाधन हेतु महिलाओं व पुरुषों की सामान भागीदारी आवश्यक है. वर्तमान समय में भारत में आर्थिक और सामाजिक भागीदारी क्षेत्रों में हो रहे परिवर्तनों से आर्थिक विकास का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है . जोसेफ शुम्पीटर के अनुसार 'उद्यमिता एक नवप्रवर्तनकारी कार्य है जो स्वामित्व की अपेक्षा नेतृत्व कार्य है ". महिला उद्यमी से आशय एक महिला य महिलाओं के समूह से है ,जो किसी प्रकार कि सेवा वस्तु के उत्पादन हेतु उपक्रम कि स्थापना ,संचालन, व नियंत्रण करती है . महिला उद्यमिता महिला सशक्तिकरण का एक माध्यम है . सशक्तिकरण का तात्पर्य किसी व्यक्ति कि

उस क्षमता से होता है ,जिससे उसमें ये योग्यता आ जाती है कि वह अपने जीवन से जुड़े निर्णय स्वयं ले सके . महिला सशक्तिकरण के सन्दर्भ में अपनी निजी स्वंत्रता तथा स्वयं के फैसले लेने के लिए महिलाओं को अधिकार देना ही महिला सशक्तिकरण है .इस प्रकार महिला उद्यमी वो है जो व्यावसायिक उद्यम के बारे में सोचती है इसे शुरू करती है ,उत्पादन के कारको को व्यवस्थित करती है और संयोजित करती है ,उद्यमी कहलाती है . किसी बाज़ार में प्रवेश करने वाली महिला उद्यमियों का एक अच्छा अनुमान उस उद्योग में मौजूदा व्यवसायों के बीच उच्च महिला उद्यम स्वामित्व से लगता है। इसके अलावा, संबंधित उद्योगों (समान श्रम आवश्यकताओं और इनपुट-आउटपुट बाज़ारों वाले) में स्थानीय व्यवसायों में उच्च महिला स्वामित्व, अधिक महिला प्रवेश दर का संकेत देता है। इस प्रकार महिलाओं की आर्थिक भागीदारी के लिए लिंग नेटवर्क स्पष्ट रूप से मायने रखता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि लैंगिक सशक्तिकरण मानव क्षमता को साकार करने और विकास और रोज़गार सृजन के लिए एक मज़बूत मंच तैयार करने में सहायक हो सकता है। महिलाओं को दुसरे लिंग के रूप में मानने का मतलन है विशाल संभावित मानव संसाधनों कि अनदेखी करना और उनकी मौजूदगी को कम आंकना . वर्तमान में महिला उद्यमी कि बढती जनसँख्या के बाजूद भी ,महिला उद्यमिता कि हिस्सेदारी कम ही बढ़ रही है .आमतौर पर यह कहा जाता है कि पुरुषों कि कामयाबी का अधिकाँश श्रेय महिलाओं को यह कहकर दिया जाता है कि कि हर पौरुष कि कामयाबी के पीछे महिला का हाथ होता है परन्तु वुदंबन यह है कि इसी समाज में इन लक्ष्मियों ,महिलाओ को लक्ष्मी यानि पैसा अर्जित ना कर ले , इसके लिए कितने ही सारे ढकोसले य हथकंडे अपनाये जाते . हस्तशिल्प ,भारत कि समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का अहम हिस्सा है . मूंज हस्तशिल्प ना केवल महिला उद्यमी को उभरने में सक्षम है बल्कि रोजगार का प्रमुख स्रोत बन चुकाहै जो कि आर्थिक रूप से महिलाओं को सशक्त कर रहा है .जीवन के सभी पहलुओ मे महिलाओं कि सक्रिय भागीदारी के बिना आर्थिक विकास हासिल नहीं किया जा सकता है . विद्वानों कि आम धारणा है कि महिलाये उद्यमशीलता कि भूमिका मत्वपूर्ण हैं . आर्थिक और सामाजिक विकास में महिलाओ के योगदान का हिस्सा संस्थाओं कि ओर से लैंगिक समानता और लैंगिक समर्थन को बढ़ावा देने पर निर्भर करता है .

मूंज हस्तशिल्प में महिला उद्यमिता का स्वरुप :

आर्थिक स्वंत्रता : हस्तशिल्प के माध्यम से महिलाये अपनी और अपने परिवार कि आर्थिक स्थिति को मजबूत का सकती हैं . आज से 60 साल पहले एक मूंज कि टोकरी का मूल्य 15 रूपए से 50 रूपए ता खरीद कि पड़ती थी वही आज उस टोकरी का मूल्य 250 से लेकर 500 और उससे भी अधिक रुपये में बेंचा जा रहा है. इससे हम अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि स्थानीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बना रहा है . एक जिला एक उत्पाद के ऑफिसियल आंकड़ों को देखे तो यह प्रदर्शित करता है कि महेवा

में रह रही महिलाए आर्थिक रूप से सशक्त हो रही हैं. यह वही गाँव है जिसे कोई नहीं जानता था ,लेकिन आज मूंज और महिलाओं कि कस्तिशल्प के प्रति लगाव के काराव राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पहचान दिला चुका है .

विक्री का माध्यम : महिला बुनकरों ने अपने साक्षत्कार में कहा कि एक दशक वैसे तो मूंज उत्पाद को लोकल मार्किट जैसे कि प्रयागराज के पुराने बाजार चौक में स्थित नीम के पेंड के नीचे लेजाकर बेंचा जाता था , लेकिन आज के समय में मूंज कि विक्री को बढाने के लिए विज्ञापन ,ई – मार्केटिंग,राष्ट्रीय और अन्तर्रष्ट्रीय मेलो , प्रदर्शनीयों में उत्पाद के सबसे ज्यादा विक्री होती थी . इसके अलावा स्थानीय लोगों के द्वारा भी उत्पाद को खरीदा जाता रहा है .सरकर ने इस क्षेत्र में बढ़ोत्तरी हेतू महेवा को " मूंज क्राफ्ट विलेज" और " टूरिज्म विलेज " के रूप में विकास कर रहा है जिससे वुशेष उत्पाद को बेचने के लिए देश -विदेश में स्थापित कराया क्यूंकि वर्तमान समय में विदेशी पर्यटक मूंज उत्पाद को अत्यधिक पसंद कर रहे हैं .

समाज में सम्मान :आज मूंज उत्पाद से जुड़ी महिलाओं ने आत्मसमान से लेकर सांस्कृतिक पहचान को भी बढ़ावा दे रही हैं . लोकल बाजार से लेकर अमेरिका ,आस्ट्रेलिया , सऊदी अरब , इत्यादि देशो में मूंज उत्पाद का विपणन जोरो शोरो से हो रहा हैं. इन्ही कारणों से महेवा कि महिला कारीगरों को आत्मसमान और आत्मनिर्भर बन रही है **.** स्त्रियाँ न केवल प्रकृति को सहेजती हैं बल्कि उसके शोषण के विरोध में आवाज़ भी उठाती हैं।

फोकस समूह साक्षात्कार :महेवा पूरब पट्टी .

निष्कर्ष

भारत का हस्तशिल्प उद्योग न केवल देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है बल्कि लाखों महिलाओं के लिए रोजगार का एक प्रमुख स्रोत भी है। सदियों से भारतीय महिलाएं पारंपरिक हस्तशिल्प कौशल को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करती रही हैं। इस तरह से सरकार एवं स्वयं सहायता समूह को

मिलकर महिलाओं को मूंज हस्तशिल्प में आगे बढ़ने के लिए हर संभव सहायता करनी होगी जैसे कि कम ब्याज पर ऋण देना , नि : शुल्क प्रशिक्षण प्रदान कराना होगा . इससे प्रयागराज हस्तशिल्प पर्यटन के कई सारे रास्ते खुलेंगे और पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण होगा.हस्तशिल्प उद्योग ,मूंज उत्पाद में महिलाओं की भागीदारी न केवल उनके आर्थिक सशक्तिकरण के लिए बल्कि देश की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के लिए भी महत्वपूर्ण है। हालांकि, उन्हें अभी भी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इन चुनौतियों का समाधान करके हम महिलाओं को सशक्त बना सकते हैं और हस्तशिल्प उद्योग को बढ़ावा दे सकते हैं। इसलिए वर्तमान समय में मूंज कारीगरों को और अत्याधुनिक प्रशिक्षण देकर नए कुशल कलाकार के रूप में विकसित किया जा सकता हैं.

सरकारी आंकड़ों और साक्षत्कार से उपलब्ध डाटा के आधार पर जानकरी मिली है कि ,कलाकार अपनी कलाकृतियों की प्रदर्शनी लखनऊ ,अयोध्या , दिल्ली, कोलकाता, मुंबई, चेन्नई, गोवा ,यहाँ तक कि अमेरिका,और सऊदी अरब देशो तक मूंज उत्पाद कि धमक गूँज रही है

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *जाधव, एस., (2020) भारतीय हस्तशिल्प: बढ़ रहे हैं या घट रहे हैं.आईओएसआर.जर्नल ऑफ बिज़नेस एंड मैनेजमेंट.(आईओएसआर-जेबीएम).*
2. *यादव यू.एस., त्रिपाठी, आर., त्रिपाठी एम.ए. वैश्विक हस्तशिल्प सूचकांक: डिजिटल वर्ल्डबैंक और नीति पत्रिका में कारीगरों के संवर्धन पूर्णता और कल्याण के लिए एक अग्रणी दृष्टिकोण और विकासशील रणनीतियाँ .जनवरी 2022 DOI: 10.29228/imcra.18.*
3. *खान, डब्ल्यू.ए., और आमिर, जेड. (2013) उत्तर प्रदेश में कारीगरों की हस्तशिल्प विपणन रणनीतियों और इसके निहितार्थों का अध्ययन। प्रबंधन विज्ञान अनुसंधान पत्रिका, 2(2).*
4. *अग्रहरि, आर.; (2017). लखनऊ में चिकनकारी शिल्प के उत्पादन और विपणन के लिए सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका.*
5. *खुराना, एस., हलीम, ए., लूथरा, एस., हुइसिंह, डी., और मन्नान, बी. (2021)। "अब रीसेट बटन दबाने का समय है:*
6. *भारत की कंपनियों को कोविड-19,जलवायु परिवर्तन और अन्य संकटों के प्रभावों से उबरने में अधिक लचीला और प्रभावी बनने में मदद करना", जर्नल ऑफ क्लीनर प्रोडक्शन, 280(2), 124466।*
7. *जाधव, एस., भारतीय हस्तशिल्प: बढ़ते या घटते हुए का अवलोकन? आईओएसआर जर्नल ऑफ बिजनेस एंड मैनेजमेंट .(आईओएसआर-जेबीएम)।*
8. *खान डब्ल्यू. ए., और आमिर ज़ेड. (2013, फ़रवरी)। उत्तर प्रदेश में कारीगरों की हस्तशिल्प विपणन रणनीतियों का अध्ययन और उसके निहितार्थ। रिसर्च जर्नल ऑफ मैनेजमेंट साइंसेज, 2(2), 23–26।*

ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं की आर्थिक, धार्मिक और निर्णय लेने में भागीदारी का अध्ययन, कुल्लू तहसील, कुल्लू जिला, हिमाचल प्रदेश

डॉ. निरुपोमा करदोंग
सहायक आचार्य
समाजशास्त्र व सामाजिक नृविज्ञान विभाग,
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, देहरा,
गोपीपुर, काँगड़ा- 177101, भारत

साहिल महंत
शोधर्थी
समाजशास्त्र व सामाजिक नृविज्ञान विभाग,
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, देहरा,
गोपीपुर, काँगड़ा- 177101, भारत

सार

इस वर्तमान युग में हम अक्सर महिला सशक्तिकरण, महिला शक्ति और समानता की बात करते है। आज हर कार्य में महिला की भागीदारी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह किसी भी देश के विकास में योगदान देती है। सामुदायिक स्तर पर हमारे समाज की पुरुष प्रधान संरचना ने महिलाओं के विकास और उन्हें पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक और निर्णय लेने से वंचित कर दिया है। आज ग्रामीण महिलाएं अपनी आजीविका के लिए कार्य कर रही है जिस से वे आर्थिक रूप से स्वयं की और अपने परिवार की सहायता कर रही है। उसी के साथ आज महिलाएं आर्थिक और धार्मिक तौर से समाज में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करवा रही है। यह अध्ययन नेउली, जुआनी, बराधा और थरमाण गाँव पर किया गया है। जिसमें इस अध्ययन के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं की आर्थिक और धार्मिक भागीदारी को सामने लाने का प्रयास किया गया है। इस शोध पत्र के द्वारा यह अध्ययन किया गया है की किस प्रकार ग्रामीण महिलाएं निर्णय लेने में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करती है। इस शोध के डाटा को एकत्र करने के लिए प्राथमिक और द्वितीयक दोनों स्त्रोतों का उपयोग किया गया है। डाटा को गैर- सहभागिता अवलोकन विधि और साक्षात्कार पद्धति के साथ सरल यादृच्छिक नमूना करण द्वारा लिया गया है।

संकेतिक शब्दः कुल्लू, महिला, आर्थिक, धार्मिक, निर्णय

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

परिचय

भारत एक ऐसा देश है जहाँ के लोग अपनी भूमि को मातृभूमि के नाम से पुकारते है। जिस देश के लोग अपने देश, अपनी भूमि को माता का दर्जा देते है। उस से यह प्रतीत होता है की भारत में महिलाओं की भूमिका अग्रिम पंक्ति में होगी। प्राचीन समय से आज के वर्तमान समय तक महिलाओं की भूमिकाओं, स्थितियों और परिस्थितियों में कई प्रकार के उतार- चढ़ाव आये है। लड़कियों का विवाह युवा अवस्था में किया जाता था और उस समय उन्हें अपने जीवन साथी को चुनने का स्वतंत्र अधिकार था। परन्तु समय के साथ महिलाओं की स्थिति में बहुत सारे परिवर्तन आये, मध्यकालीन समय में भारतीय महिलाओं की स्थिति में बहुत गिरावट आई। उस समय भारत के कुछ समुदायों में सती प्रथा, बाल विवाह और विधवा को पुनर्विवाह पर रोक उनकी सामाजिक जिन्दगी का हिस्सा बन गयी थी। हमारे समाज के पुरुष प्रधान संरचना ने महिलाओं के विकास प्रभावित किया है। उन्हें समाज, अर्थव्यवस्था और धार्मिक भागीदारी और निर्णय लेने से वंचित किया गया। एक ओर महिलाओं को सशक्त करने, उनकी समानता की बात करते है और दूसरी ओर उन्हें पुरुष के समान अधिकार नहीं दिए जाते आज के वर्तमान समय में पुत्री होने पर पुत्र के समान प्रेम, अधिकार, हक नहीं दिए जाते हर व्यक्ति एक पुत्र की चाह रखता है। स्त्रियों को जन्म से मृत्यु तक पिता, भाई और पति के अधीन बना दिया गया है। आज भी कुछ समाज में लड़की का जन्म परिवार के लिए समस्या बन गया और उसका जन्म लेना अभिशाप माना जाता है। बहुत से स्थानों में लड़कियों की शिक्षा जल्दी ही बंद कर दी जाती है। समाज में अधिकतर लोगों की सोच है की जो उन लड़कियों की शिक्षा का खर्च है उसे बचा कर वो पैसे उनके विवाह में लगा दिए जाए। विवाह के पश्चात उससे गृहस्थी की सारी जिम्मेदारी अच्छी और पूर्ण रूप से निभाने की अपेक्षा की जाती है। इसी तरह की कुछ सामाजिक कुरीतियों ने समाज में महिलाओं की स्थिति को हीन बना दिया।

समय के साथ समाज में महिलाओं की स्थिति को सुधारने को लेकर बहुत अधिक प्रयास किए गये है। जिसके लिए बहुत सारे आन्दोलन किए गये और इसके साथ ही नए- नए कानून बनाए गये। जिस से महिलाओं की स्थिति में सुधार देखने को मिला है। इन प्रयासों के कारण पुरुष प्रधान प्रबल सोच के बावजूद महिलाएं विभिन्न चुनौतियों का सामना करते हुए हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही है और अपनी योग्यता का प्रदर्शन दे रही है।

समस्या प्रक्कथन

ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक और धार्मिक गतिविधियों में भागीदारी सीमित है, जो उनके विकास में बाधा बनती है। इस शोध का उदेश्य ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी का विश्लेषण करना और निर्णय लेने में उनकी भूमिका को समझना है।

साहित्य समीक्षा

देवी (2014) ने अपने शोध पत्र सोसिओ- इकनोमिक स्टेटस ऑफ वोमेन इन इंडिया: एन स्टडी ऑन त्रन्सितिओनल आस्पेक्ट में लिखा है की महिलाओं की परिस्थिति में पहले के मुताबिक कई बदलाव सामने आए है। पहले महिलाओं की भूमिका घर के कामकाज तथा सामाजिक रीति -रिवाजों का पालन करने के लिए ही की जाती थी। लेकिन हाल के वर्षों में दुनिया भर में महिलाओं के जीवन में कई बदलाव आए है। अब महिलाओं को रोकने के लिए ऐसी कोई सामाजिक आर्थिक या कोई अन्य बाधा नहीं है। जिसके कारण अब महिलाएं हर क्षेत्र में अपना लोहा मनवा रही है। सिंह (2019) ने भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति एवं सामाजिक समस्याएं: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन शोध पत्र में लिखा है की कामकाजी महिलाओं पर घर और बाहर दोनों जगह भूमिका का निर्वाह करना होता है। जिस कारण उन पर कार्य का बोझ बढता है जिस से उनके कार्य स्थल और पारिवारिक कार्य प्रभावित होते है। यह दोहरी भूमिका निभना उनकी थकान का मुख्य कारण बनता है। अपने कार्यस्थल में यह महिलाएं असुरक्षा और अनके समस्याओं से जूझती है। अनके महिलाएं बाहर नौकरी कर के आर्थिक स्वतंत्रता और विशिष्ट पहचान बनाती है।

मेहता (2020) ने अपने शोध पत्र डिसिशन-मेकिंग पॉवर एंड सोशल स्टेटस ऑफ वोमेन इन इंडियन सोसाइटी में लिखा है की हाल ही में महिलाओं की पारंपरिक भूमिका में वित्तीय जरूरतों के कारण कुछ बदलाव आये है और समाज में महिलाओं को सशक्त बनाने के प्रयास किए गये है। परन्तु आर्थिक मजबूती के बाद भी परिवार के निर्णय लेने में महिलाओं को स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। उन्हें घरेलू समान, बच्चों की शादी, खाना बनाना के साथ बच्चों की शिक्षा में निर्णय लेने की स्वतंत्रता है। कल्टिया और अन्य (2021) ने वोमेन- डिसिशन मेकिंग एंड एम्पोवेर्मेंट: एन अन्थ्रोपोलोजिकल स्टडी इन सोलन डिस्ट्रिक्ट हिमाचल प्रदेश शोध पत्र में लिखा है की महिला सशक्तिकरण का मतलब महिलाओं को अधिक शक्ति देना नहीं है। बल्कि इसका अर्थ है की उन्हें अपने शर्तों पर जीवन जीने के लिए समान अधिकार देना। इन्होंने अपने शोध में पाया की गाँव की महिलाओं को घरों में निर्णय लेने की भूमिका बहुत अधिक है। परन्तु अगर बात ग्रामीण स्तर पर निर्णय लेने की जाये तो महिलाएं सक्रिय रूप से निर्णय लेने में भागीदार नहीं होती है। यदि महिलाएं पंचायत की बैठकों में शामिल होती है तो वे बिना किसी सुझाव के भागीदार होती है। यदि उनके द्वारा कोई राय या सुझाव दिया भी गया तो उसे भी नजरअंदाज कर दिया जाता है।

भरद्वाज (2021) ने अपने शोध पत्र रोल ऑफ वोमेन इन डिफरेंट फील्ड्स में लिखा है की आज के समाज में महिलाएं हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। वे शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कदम उठा रही है और समाज के बच्चों को शिक्षित कर रही है। रक्षा के क्षेत्र में, बैंकिंग के साथ महिलाएं

आज मेट्रो रेल में भी अपना बहुत योगदान दे रही है। आज के समाज में महिला सशक्तिकरण के लिए जो कदम उठाए जा रहे है वे कदम महिलाओं की प्रगति के लिए लाभकारी सिद्ध हो रहे है। दामोदरन (2021) ने वोमेन इन डिसिशन मेकिंग रोल्स इन इंडिया: एन एनालिटिकल स्टडी में लिखा है की किसी घर में प्राथमिक निर्णय लेना इस बात पर निर्भर करता है की कौन कितना कमाता है। महिलाएं अधिकतर घर के कामकाज में ही व्यस्त होती है जिस कारण वे बाहर जा कर पैसे नहीं कमा पाती। वहीं पुरुष बाहर जा कर पैसे कमाता है जिस वजह से घर के निर्णय पूरी तरह से पुरुष द्वारा ही निर्धारित किया जाता है। इसी तरह अन्य सभी पहलुओं में भी उसकी उपेक्षा की जाती है और उसके निर्णयों को नजरअंदाज किया जाता है।

शर्मा, कौर और शर्मा (2023) ने अपने शोध पत्र वोमेन एम्पोवेर्मेंट थुरुह सेल्फ- हेल्प ग्रुप इन हिमाचल प्रदेश: एन एनालिसिस में लिखा है की स्वयं सहायता समूह मॉडल ऐसी रणनीतियों में से एक है जो महिलाओं के सामाजिक- आर्थिक और मनोवैज्ञानिक हितों को आगे बढ़ाने तथा उन्हें सशक्त बनाने में सबसे सफल है। माइक्रो बिजनेस के विकास के माध्यम से महिलाओं को स्व- सहायता समूहों में संगठित करके और लोगों को आर्थिक गतिविधि में शामिल होने में सक्षम बनाकर एक राष्टव्यापी आर्थिक क्रांति लायी है। जिस से महिलाओं और उनके परिवारों की आर्थिक और सामुदायिक कल्याण के मामले में सफलता बढ़ी है।

अध्ययन के उदेश्य

1. ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक और धार्मिक भागीदारी का विश्लेषण करना।
2. ग्रामीण महिलाओं की निर्णय लेने में भागीदारी का अध्ययन करना।

शोध क्रिया विधि

इस अध्ययन के उदेश्य को पूरा करने के लिए प्राथमिक और द्वितीयक दोनों स्त्रोतों से डाटा एकत्र किया गया है। प्राथमिक डाटा संग्रह के लिए गुणात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है। प्राथमिक डाटा संग्रह के लिए गैर- सहभागिता अवलोकन विधि और असंरचित साक्षात्कार पद्धति का उपयोग किया गया है। इस डाटा संग्रह के लिए 25 नमूनों का चयन किया गया था। जिसमें उत्तरदाता जो महिलाएं है को सरल यादृच्छिक नमूना करण द्वारा लिया गया है द्य उत्तरदाताओं को विभिन्न आयु 18 से 45 वर्ष और 50 से 65 वर्ष समूहों में विभाजित किया गया है। नमूने के तौर पर लिए गए सभी उत्तरदाता विवाहित महिलाएं है। द्वितीयक स्त्रोत के लिए लेख, रिपोर्ट, इन्टरनेट, समाचार पत्र, जर्नल, किताबों और शोध पत्रों का उपयोग किया गया है।

 ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

परिणाम और विचार विमर्श

ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक और धार्मिक भागीदारी

वर्तमान समय में ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं ने हर क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वास्तव में महिलाएं कुछ मामलों में पुरुषों की तुलना में अधिक मेहनती है। जिससे महिलाओं को समान अधिकार, अवसर और संसाधन प्राप्त हो ताकि वे सभी क्षेत्रों में अपनी क्षमता और योगदान को पूरा कर सके। हिमाचल प्रदेश के कुल्लू जिला में 7 तहसीले है जिसमें से यह अध्ययन कुल्लू जिला की कुल्लू तहसील के नेउली, जुआनी, बराधा और थरमाण गाँव पर किया गया है।

आर्थिक भागीदारी

ग्रामीण समाज में महिलाएं अपनी आजीविका को पूरा करने के लिए कार्य करती है। यहाँ महिलाओं को करने के लिए बहुत सारे कार्य है जिसमें पढ़ी-लिखी महिलाएं सरकारी नौकरी करती है और बाकी घरेलू महिलाएं अपने कौशल के अनुसार कार्य करती है। इन कौशल का परिक्षण महिलाओं को शिक्षित संस्थानों में दिए जाते है जैसे ब्यूटीपार्लर आचार बनाना आदि। यह महिलाएं ब्यूटीपार्लर, सलेगिर्ल, पोशाक बनाना, अपना छोटा सा व्यवसाय करना और फैक्टरियों आदि में कार्य करती है। ग्रामीण महिलाओं के इस योगदान को इस बात से अच्छी तरह समझा जा सकता है की यह महिलाएं समाज में अपनी आजीविका के लिए किस तरह की आर्थिक गतिविधियों पर निर्भर रहती है। ग्रामीण क्षेत्रों कृषि की व्यवसाय का मुख्य मार्ग है ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुष और महिला दोनों ही कृषि के क्षेत्र में कार्य करते है। महिलाओं के द्वारा मौसम के अनुसार अलग- अलग प्रकार की सब्जियों और दलों का उत्पादन किया जाता है। जिसमें सबसे पहले महिलाओं द्वारा इन दलों और सब्जियों का घरेलू उपयोग किया जाता है। इसके बाद जो वस्तु अधिक मात्रा में होती है जैसे स्थानीय दालें उसे महिलाओं द्वारा बाजार में राशन की दुकानों में बेच दिया जाता है। इसी के साथ महिलाओं द्वारा सब्जियों को किल्टे (पीठ में उठाया जाने वाली विशेष प्रकार की टोकरी) में डाल कर बाजार में सुबह जा कर शाम तक वहाँ रह कर बेच दिया जाता है। कभी- कभी तो महिलाओं को इन सब्जियों को बेचने के लिए गाँव में घर दृ घर जाना पड़ता है, जिसे बेचने पर इनकी कमाई हो जाती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के साथ पशुपालन का भी बहुत अधिक चलन है। गाँव में पालतू पशुओं, गाय, भेड़, बकरी और भैंस का पालन किया जाता है।इन पशुओं की देखभाल का कार्य मुख्य रूप से महिलाओं द्वारा ही किया जाता है। महिलाएं ही इन पशुओं से सुबह और शाम के समय दूध निकलते है। जिसे इन महिलाओं द्वारा गाँव में उन लोगों बेचा जाता है जिनके पास गाय नहीं होती या फिर डेरी में दे दिया जाता है। इसके साथ यह भी देखा गया है की महिलाओं द्वारा दूध को बड़े से वर्तन में भर कर बाजार

में घर- घर जा कर बेचा जाता है। जिसे बेचने के बदले उन्हें पैसे मिलते है, इन पैसों से यह पशुओं के लिए चारा लेती है और बचे हुए पैसे से स्वयं का गुजरा करती है।

इसी के साथ ग्रामीण स्तर पर यह भी देखा गया है की महिलाओं द्वारा अपने रिश्तेदारों, सम्बन्धियों के घर से भेड़ और बकरी के 1-2 छोटे- छोटे बच्चों को अपने घर लाया जाता है जिसकी इन्हें कोई कीमत नहीं देनी होती। इसका कारण यह है की उन लोगों के पास बहुत अधिक मात्रा में भेड़ और बकरियां होती है। जिसकी वे अच्छे से देखभाल नहीं कर पाते जिसके परिणामस्वरूप यह बच्चे उन लोगों के द्वारा अपनी बेटियों, बहनों को दिए जाते है। जिनकी यह महिलाएं बहुत अच्छे से देखभाल करती है इन्हें चराने के लिए ले जाती है। जब यह बच्चे बड़े हो जाते है तो इसके बाद इन भेड़ और बकरियों को किसी दूसरे व्यक्ति या व्यापारी को अच्छी कीमत पर बेच दिया जाता है। जिसके बाद फिर से महिलाओं द्वारा और भेड़- बकरी के बच्चों को लाया जाता है और यह प्रक्रिया चलती रहती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा उनके नजदीकी गाँव और उसके आस-पास के क्षेत्र में विवाह, शादियों और अन्य घरेलू उत्सवों में चाय बनाने का काम किया जाता है। जिसके लिए उन्हें एक दिन के हिसाब से पैसे मिलते है, जिसे दिहाड़ी कहा जाता है। इसमें महिलाओं के साथ शादी, विवाह के कुछ दिन पहले बात की जाती है ताकि वे शादी वाले दिन समय पर आ सके। इसमें महिलाओं को उन लोगों के घर जाना होता है जिस घर में शादी या विवाह है वहाँ जा कर यह महिलाएं चाय बनाती है इसके बाद यह चाय शादी में आने वाले सभी मेहमानों को दी जाती है। इसके साथ उन्हें दूसरे कार्य भी करने होते है जैसे मेहमानों को पानी, कॉपी, ठंडा देना और यहाँ तक उन्हें उस दौरान रसोई के सारे वर्तन भी धोने होते है। यह काम 3 से 4 दिन तक चलता है जब तक शादी या विवाह खत्म नहीं हो जाता है। इसके बाद इन महिलाओं को इनकी 3 या 4 दिन की दिहाड़ी के अनुसार पैसे मिलते है और साथ शादी वाले घर के लोग इन्हें कुछ उपहार में मिठाई, तोहफे आदि भी देते है।

गाँव में घर में रहकर भी बहुत सी महिलाएं कुल्लुवी पारंपरिक पोशाक बनाती है, जिसे पट्टू कहते है। इसे बनाने के लिए महिलाएं पहले अपने सभी घरेलू कार्य करती है उसके बाद पट्टू बनाने के लिए बैठती है। पट्टू को रच्छ में बनाया जाता है जो लकड़ियों का बना होता है। पट्टू के लिए महिलाओं द्वारा बाजार से पट्टू के धागे लिए जाते है जिसके बाद घर में आ कर उन धागों की सफाई कर के उन्हें रच्छ में लगाया जाता है। पट्टू को बनने में 3 से 5 महीने का समय लगता है। जिसके बाद इन पट्टू को महिलाओं द्वारा बाजार में बेच दिया जाता है या फिर किसी व्यक्ति के आर्डर पर इन्हें उनकी पसंद के अनुसार बनाया जाता है, जिसकी वे अच्छी कीमत देते है। यह काम बहुत थकान वाला होता है साथ ही बढ़ते समय के साथ इसमें एक ध्यान लगाने से आंखे भी खराब हो जाती है।

ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएं बाजार में जाकर धागे की दुकान में जा कर दुकानों के मालिक से धागा लेती है जो उन्हें मुफ्त में दिया जाता है। इसके बदले में यह महिलाएं अपने हाथों से बनाई गई अलग अलग की तरह की जुराबे, मफरल, स्वेटर, आदि बना कर जिस दुकान से समान लिया गया होता है उन्हें जा कर दिया जाता है। जिसके बाद यह समान दुकानदारों द्वारा ग्राहकों को बेचे जाते है। इनसे मिलने वाले पैसों में से आधे पैसे उन महिलाओं को दिए जाते है जिनके द्वारा यह समान तैयार किया जाता है। कुछ ग्रामीण महिलाओं द्वारा बाजार से धागा खरीद कर लाया जाता है और वे घर में यह सब चीजें बनाकर बेचती है। ग्रामीण क्षेत्र की कुछ महिलाओं द्वारा घरों में सिलाई मशीन द्वारा कुल्लुवी टोपी बनाई जाती है जिसे वे अधिक मात्रा में बनाते है। इसके बाद वे इन टोपियों को बाजार की दुकानों में बेचते है और कुछ पति- पत्नी मिल कर स्वयं से दुकान चलाकर इन टोपियों को बेचते है।

आज महिलाएं बाजार मे या बाजारों के नजदीक खुद का ब्यूटी पार्लर चलती है। जहाँ के सारे काम वे स्वयं करती है। इसके साथ ही कई दूसरी लड़कियों और महिलाओं को भी वे अपनी कमाई के अनुसार काम पर रखती है और बहुत सी महिलाओं को यह सभी काम भी सिखाती है। बहुत सी महिलाएं बड़ी- बड़ी दुकानों में सेल्स गर्ल का काम करती है और कुछ अपनी दुकानों को चलती है।
ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएं फैक्टरियों में जा कर काम करने लगी है। जिसके लिए उन्हें सुबह उठ कर जल्दी से घर के सारे काम करने पड़ते है। जिसके बाद वे अपने काम पर जाती है वहाँ भी वे पूरा दिन कम करती है और शाम के समय रात होने से पहले घर वापिस आ जाती है। जिसके बाद उसे घर आ कर फिर से सारे काम करने होते है।

धार्मिक भागीदारी

धार्मिक भागीदारी से अभिप्राय किसी व्यक्ति की धार्मिक गतिविधियों में भाग लेने की प्रक्रिया से है। धार्मिक क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका इस मायने में बहुत बड़ी है हर धार्मिक समारोह में महिलाओं की मौजूदगी किसी न किसी रूप में जरूरी है। ग्रामीण महिलाएं भी धार्मिक गतिविधियों में भाग लेती है। यदि बात धार्मिक पूजा या अनुष्ठानों की हो तो उसमें पति का अपनी पत्नी के साथ बैठना अनिवार्य होता है। क्योंकि हिन्दू धर्म में पत्नी को अर्धांगिनी माना जाता है। यदि पत्नी अपने पति के किसी धार्मिक अनुष्ठान में नहीं बैठती है तो वे पूजा अधूरी मानी जाती है। परन्तु पूजा किसी भी प्रकार की हो पूजा सिर्फ पुरुष पुजारी द्वारा ही करवाई जाती है। इसके साथ ही पूजा के लिए जो भी समान उपयोग में लगता है उसे घर के पुरुष सदस्य द्वारा ही लाया जाता है।

गाँव के विवाह में एक ऐसी धार्मिक रस्म होती है जिसे समुर्त कहा जाता है। यह रस्म वर और वधु दोनों के घर की जाती है। उस रस्म में सिर्फ महिलाएं ही भाग ले सकती है द्य उस रस्म में अपनी खास

रिश्तेदार, बहुओं और विवाहित बेटियों को गोल दायरे में बैठ कर यह रस्म की जाती है। इस रस्म में कोई भी पुरुष भाग नहीं ले सकता।

जब किसी मंदिर में जप- पाठ, हवन या फिर भगवत कथा होती है। तो उसमें भगवत ये अन्य किसी भी प्रकार का हवन करने से पहले कलश यात्रा निकाली जाती है। यह यात्रा भगवत के स्थान से शुरू होती है और उस स्थान तक जाती है जहाँ से जल लाना होता है। जिसमें किसी नदी या पवित्र स्थान से पानी कलश में भर कर लाया जाता है। इस कलश यात्रा में सिर्फ महिलाओं द्वारा ही भाग लिया जाता है। इस यात्रा में पुरुष सम्मिलित होते है परन्तु उनके द्वारा कलश में पानी नहीं लाया जाता।

इसके साथ ही जब किसी मंदिर, किसी के घर या फिर किसी जगह जागरण में भजन- कीर्तन होता है उसमें महिलाओं को जाने के लिए भी अपने घर के बड़ों और पति की अनुमति लेनी पड़ती है। कभी उन्हें अनुमति मिलती है और अभी उन्हें जाने के लिए मना कर दिया जाता है। इसके अलावा जब भी इन जागरणों, भजन दृ कीर्तन में प्रसाद आदि बनता है तो यह प्रसाद पुरुष द्वारा ही बनाया जाता है, इसका वितरण भी पुरुष द्वारा ही किया जाता है।

यहाँ के ग्रामीण समाज में देव परंपरा को बहुत अधिक मान्यता दी जाती है। जिसमें देवी-देवताओं के खास मेले, त्योहारों पर देवी- देवताओं को धूप दिया जाता है अर्थात उनकी पूजा उनके मंदिर से बाहर आने के बाद की जाती है। यह पूजा सिर्फ महिलाओं द्वारा ही की जाती है यदि किसी कारणवश (मासिक धर्म) महिला देवी- देवता को धूप न दे पाए तो उस परिस्थिति में पुरुष धूप दे सकता है। बाकी स्थितियों में पूजा सिर्फ महिलाओं द्वारा ही की जाती है। शोधकर्ता द्वारा पाया गया की यदि घर के मंदिर में पूजा की बात हो तो उसमें महिला और पुरुष दोनों पूजा करते है। परन्तु जब महिला को मासिक धर्म होता है तो उस दौरान महिला को घर के हर एक कमरे में प्रवेश की अनुमति नहीं होती। वो घर में ही एक कमरे में 3 दिन तक रहती है उसी स्थान पर उसे खाना- पानी सब और रहने के लिए दिया जाता है। यदि कोई महिला इस दौरान अलग नहीं रहती तो भी वे महिला रसोई घर में नहीं जा सकती और न ही बना खाना सकती है। इसे के साथ पूजा घर या पूजा के स्थान और सामाजिक तौर पर हो रहे धार्मिक उत्सव में भी महिला को 7 दिन तक जाने की अनुमति नहीं होती है।

ग्रामीण महिलाओं की निर्णय लेने में भागीदारी

महिलाओं की निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदारी लैंगिक समानता को बढ़ावा देने का कार्य करती है। जिसमें महिलाओं के राय और सुझावों को सम्मान दिया जाये और उन्हें सुना जाये, यह महिलाओं के अधिकारों को मजबूती प्रदान करता है।

स्थानीय स्तर पर यह पाया गया है की कोई महिला पंचायत स्तर पर किसी भी पद का चुनाव जीत कर जाती है। यदि वे महिला पढ़ी लिखी और कार्य करने में सक्षम है तो पंचायत के दूसरे सदस्यों द्वारा उनकी राय, सुझावों और निर्णय को सुना जाता है और स्वीकार किया जाता है। शोधकर्ता को अध्ययन क्षेत्र में पाया गया की यदि कोई महिला पढ़ी लिखी नहीं है और वे पंचायत के प्रधान पद के चुनाव भी जीत जाती हो तो उनके पीछे उनके काम उनके पति करते है या फिर वे काम बेटे द्वारा किए जाते है। इनमें से जो भी पढ़ा लिखा होता है यह सारे काम उनके द्वारा किए जाते है इन जीती हुई महिलाओं का कार्य सिर्फ कागजों पर हस्ताक्षर करने का होता है। पंचायत की किसी मीटिंग या अन्य सभा में वे अपना निर्णय और राय भी दे तो किसी भी पुरुष सदस्य के द्वारा वे स्वीकार नहीं किया जाता है। यदि इनका अपना भी कोई निर्णय होता है तो वे निर्णय भी पुरुष सदस्य द्वारा प्रभावित होता है।

ग्रामीण समाज में लोग संयुक्त परिवारों में रहते है। जिसमें यह देखा गया है की घर के कामकाज जैसे खाना बनाने आदि के निर्णय घर की महिलाओं द्वारा ही लिए जाते है। परन्तु यदि घर के बड़े और धन राशी के निर्णय, किसी उत्सव को करवाने के निर्णय आदि हो तो उसमें सिर्फ निर्णय घर के पुरुषों द्वारा ही लिए जाते है और कभी दृ कभी घर की महिलाओं को बातचीत और राय देने के लिए शामिल किया जाता है। यदि बात घर के आर्थिक निर्णय की हो तो घर के सारे आर्थिक निर्णय घर के बड़े पुरुष सदस्य द्वारा लिए जाते हैअ

शोधकर्ता को पाया गया की ग्रामीण क्षेत्र में यदि परिवार एकल परिवार के रूप में रहता है तो उस परिवार में निर्णय दोनों पति पत्नी मिलकर लेते है। इसमें आवश्यक नहीं होता की दोनों हमेशा मिलकर ही निर्णय ले, कभी दोनों एक दूसरे से असहमत भी होते है और फिर अंतिम निर्णय पुरुष द्वारा ही लिया जाता है। परिवार में ससुर की मृत्यु के बाद सरे निर्णय सास और बेटे द्वारा मिलकर लिए जाते है। बच्चों की शिक्षा का निर्णय महिलाओं पर छोड़ दिया जाता है। जिसमें वे बच्चे की शिक्षा सम्बंधित निर्णय लेती है।

यदि किसी परिवार में किसी महिला के पति की मृत्यु हो जाती है और उस परिवार में सिर्फ महिलाएं ही है। तो उस परिवार के सारे निर्णय उस विधवा महिला द्वारा ही लिए जाते है। यदि उस महिला के सास- ससुर जीवित है तो उनसे बात कर के निर्णय लिया जाता है, जिसमें निर्णय सास- ससुर की बातों से प्रभावित होता है। अगर सास- ससुर भी नहीं है तो वे महिला अपने जेठ या देवर से बात कर के निर्णय लेती है। इस परिस्थिति में निर्णय कई बार महिला का भी होता है और कई बार निर्णय में जेठ या देवर की बातों का प्रभाव होता है।

निष्कर्ष

महिलाओं की आर्थिक, धार्मिक भागीदारी के साथ महिलाओं की निर्णय लेने में उनकी भागीदारी समाज के विकास और महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। जिसमें वे घर के कार्य करने से लेकर बच्चों के समाजीकरण करने, अपने बुजुर्गों की सेवा करने तक सारे कार्य स्वयं से पूर्ण रूप से करती है। इसी के साथ महिलाएं महिला मंडलों द्वारा अनके जागरूकता अभियान चला कर दूसरी महिलाओं को अनके कार्य करने के लिए जागरूक कर रही है। आज महिलाएं अपने परिवार को सरकारी नौकरी, निजी नौकरी और घरेलू महिलाएं अपने कौशल के अनुसार कार्य कर के आर्थिक रूप से मजबूत कर रही है। जिससे महिलाएं अपने खर्च के साथ- साथ अपने घर का खर्च भी उठा रही है। भारतीय समाज में महिलाओं की धार्मिक भागीदारी पुरातन समय से है। समाज में अनेक ऐसे पूजा, पाठ और अनुष्ठान है जो पति-पत्नी के बिना पूरे हो ही नहीं सकते है। महिलाओं की निर्णय लेने की प्रक्रिया से इनके अधिकारों को मजबूती मिलती है। आज भी अधिकतर निर्णय चाहे वे सामाजिक, राजनीतिक या फिर पारिवारिक हो पुरुषों के द्वारा ही लिए जाते है। परन्तु समय के साथ बदलते समाज में आज जो महिलाएं अपने निर्णय लेने में सक्षम है उनकी राय और सुझाव को सभी के द्वारा सुना जाता है।

सन्दर्भ सूची

1. *देवी, डॉ. सी. एल., (2014), सोसिओ -इकनोमिक स्टेटस ऑफ वोमेन इन इंडियाः एन स्टडी ऑन त्रन्सितिओनल आस्पेक्ट, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स, वोल 2, इशू 1*
2. *सिंह, डॉ. र. एस., (2019), भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति एवं सामाजिक समस्याएंः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, जर्नल ऑफ रिसर्च इन हुमनितिएस एंड सोशल साइंस, वोल. 7 इशू 4*
3. *मेहता, श., (2020), डिसिशन-मेकिंग पॉवर एंड सोशल स्टेटस ऑफ वोमेन इन इंडियन सोसाइटी, लर्निंग कम्युनिटी, वोल. 11, इशू 1*
4. *कल्टिया, बी. और अन्य., (2021), वोमेन - डिसिशन मेकिंग एंड एम्पोवेर्मेंटः एन अन्थ्रोपोलोजिकल स्टडी इन सोलन डिस्ट्रिक्ट हिमाचल प्रदेश, सीरियल पब्लिकेशन*
5. *भरद्वाज, स., (2021), रोल ऑफ वोमेन इन डिफरेंट फील्ड्स, जर्नल ऑफ इमर्जिंग टेक्नोलॉजीज एंड इनोवेटिव रिसर्च, वोल. 8, इशू 5*
6. *दामोदरन, डॉ. के., (2021). वोमेन इन डिसिशन मेकिंग रोल्स इन इंडियाः एन एनालिटिकल स्टडी, ह्यूमन राईट इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल, वोल 9, इशू 2*
7. *शर्मा, डॉ. श., कौर, डॉ. स. और शर्मा, स., (2023), वोमेन एम्पोवेर्मेंट थुरुह सेल्फ- हेल्प ग्रुप इन हिमाचल प्रदेशः एन एनालिसिस, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स, वोल. 11, इशू 7*

अवलुप्त लोकनाट्य: भाँड यात्रा

मौसुमि दोलइ

प्राक् कथन:

लोकसंस्कृति की ऐतिय्यशाली परम्परा नाट्यशैली भाँड यात्रा। भारतीय लोकनाट्य परम्परा की स्वीय मौलिक बैशिष्ट्य की एक उपादान 'भाँड'। 'भाँड या भण्ड' इस नाट्य शैली की मुख्य नाट्य कलाकार है। वंगाल की मध्यवर्ती प्रदेश की अति जनप्रिय तथा परम्परा की अन्यतम लोकनाट्य भण्डयात्रा या भाँडयात्रा। लोग की दैनन्दिन जीवन की सुख-दु:ख, आनन्द-वेदना प्रतिदिन की अभिज्ञता प्रसूत विषय की हास्य रस की माध्यम से उपस्थित दर्शकको आनन्द दान करना इस नाट्य शैली नथा नाट्य परम्परा की एक वैशिष्ट्य है। किन्तु दु:ख की बात यह है कि इस नाट्यशैली आज पञ्चिम वंगाल से अवलुप्त हो रहा है। पश्चिम वंगाल की मेदिनीपुर जिला इस नाट्य शैली के लिए प्रसिद्ध स्थल था। वर्तमान मे इस नाट्य शैली का अभिनय मेदिनीपुर में बहुत कम देखने की मिलता है। कुछ विद्वान फिर से इस नाट्य शैली में दर्शक को आनन्द देने की प्रयास कर रहा है।

व्याकरणगत दृष्टिसे 'भाँड' शब्द एक तद्भव शब्द है। संस्कृत 'भण्ड' शब्द का रुप है। 'भण्ड' शब्द का अर्थ है कपट और 'भाँड' शब्द का अर्थ है हास्यरसिक तथा विदुषक और 'यात्रा' का अर्थ है 'गमन करना'। संस्कृत 'या' धातु से 'यात्रा' शब्द आया है। समाज में रहने वाले लोग परिवार तथा घर की काम-काज में व्यस्त रहता है। अपने व्यस्त जीवन के वाहर मनोरंजन तथा अपनी प्रतिदिन की जीवनशैली को नाट्यशैली में हास्य-रस तथा सुचारु रुपसे परिवेशन करके दिखायाजाता है। संस्कृत साहित्य में भाँड़ तीव्र बद्धि और हास्य –रस की पात्र है। लेकिन भाँड तथा भण्डयात्रा की भाड़ चरित्र चञ्चल, दुर्वल व्यक्तित्व की लक्षण है।

भाँड़ यात्रा का उत्पत्ति एवं विकाश

भाँड़ यात्रा की विकाश का इतिहास पश्चिम बंगाल की मेदिनीपुर, हुगलि, हावडा, नदिया, दक्षिण चव्विश परगणा, उत्तर चव्विश परगणा प्रभृति जिला में देखने को मिलता है। काश्मीर की भाँडपथर नामक लोकनाट्य से इसकी बहुत मिल पाया जाता है। 'भाँडपथर' की कलाकार नृत्य-गीत, संगीत आदि में पारदर्शी थे। 'भाँडपथर' नाट्य शैली में पौराणिक और सामाजिक नाट्यशैली की कौतुक रस की माध्यम

 ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

से परिवेशन किया जाता है। काश्मीर की 'भाण्डपथर' नाट्यशैली से इसका अर्थात पश्चिम वंगाल की भाँडयात्रा की एक अलग वैशिष्ट्य देखने को मिलता है।

नदिया की भाँड यात्रा:

पश्चिम बंगाल की नदिया जिला भाँड यात्रा में प्रसिद्ध थे। कश्मीर की 'भावइया' की तरह यँहा की भाँड तथा भाँडपथर की तरह यँहा भाँडयात्रा। भाँडयात्रा को यंहा भाँड की नाटक भी कँहा जाता है। यँहा आज भी नाट्यमेला की आयोजन किया जाता है। प्राचीन परम्परा और तीर्थक्षेत्र के लिए प्रसिद्ध यह स्थल में शास्त्रालाप कीर्तन और पुराणो की आलोचना की लिये जाना जाता है। संस्कृति की अन्यतम निदर्शन देखने को मिलता है नदीया जिला में। राजा कृष्णचन्द्र राय की 'गोपाल भाँड' की कहानियाँ बहुतइ लोकप्रिय है। वर्तमान में भाँड़ यात्रा की कहानी यँहा भी कम दिखने को मिलता है।

मेदिनीपुर जिला की भाँडयात्रा:-

मेदिनीपुर भाँडयात्रा तथा इस लोकनाट्य में प्रसिद्ध है। यँहा की इस नाट्यशैली में पौराणिक कथा से लेकर सामाजिक कहानियाँ एवं कौतुकरस से पूर्ण कहानिया दिखाया जाता है। यँहा की भाँडयात्रा में कलाकार की संख्या एक से दो तथा 6-7 और भी बहुत देखने को मिलता है। इस नाट्यशैली में कलाकारो की साज में सादा धोती तथा कोमर में गमछा जैसे कुछ बंधे रहते है। द्वो कलाकार आपस में कौतुकपूर्ण तर्क करते है। परन्तु इस नाट्य शैली का भाषा लोकभाषा होती है। स्थानीय लोकभाषा की व्यवहार भी यँहा देखने को मिलता है। इस नाट्यशैली में वाद्ययन्त्र बांसुरी-ढोल-तवला-हारमोनियम से लेकर और भी कुछ व्यवहार यँहा किया जाता है। विभिन्न देव-देवीओं की नाम लेकर इस नाट्यशैली में गाना भी गाया जाता है। पश्चिम वंगाल में इस यात्र की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। यह मेदिनीपुर का बड़ा ही महत्वपूर्ण सांस्कृतिक आयोजन है। वैष्णव धर्म ग्रन्थो में उपाश्य को रथारुढ़ करके शोभायारा का विधान किया गया है। यात्रा श्रेय आधुनिक रुप से चैतन्य महाप्रभु को दिया जाता है। क्योकि वैष्णव धर्म की साज पोशाक के तरहा यँहा की लोकनाट्य में वेश-भुषा पहले किया जाता था। परन्तु वर्तमान दिन में भाँडयात्रा में काफी कुछ बदलाव आया है। जैसे कि उन्नत स्टेज में वर्तमान दिनों में भाँडयात्रा कि आयोजन किया जाता है। पहले चार कौणे में चार वाँश पुतकर फिर लिफापा लागाकर उस में अर्थात् जमीन में खुले मंचपर ही इस भाँड यात्रा का अभिनय किया जाता था। परन्तु आज भी इस यात्रा का रुचि बहुत ही कम है। इस की चर्चा मेदिनीपुर जिला में बहुत कम दिखने को मिलती है। जो भी चर्चा है वह भी स्टेज में साजधजकर किया जाता है। एक तरह की व्यङ्ग कौतुक की जैसे बताया जाता है। मेदिनीपुर जिले में कुछ खास तरीके से इस भाँडयात्रा को देखने की नहीं मिलता। जो भी है बहभी यात्रा की तरह ही उसकी संलाप को देखने को मिलती है। मेदिनीपु जिला की कुछ प्रसिद्ध शिल्पीओ की नाम इस भाँड यात्रा के प्रसिद्ध है- उनके नाम है- मेदिनीपुर की हातिहलका, सुदामख शैख साइसुद्दिन, मनिर, दालाल, तावारक

गायेन, खुरसेद आलि, शेख साइफुद्दिन, शेख आवदुल आफजल खाँ। मेदिनीपुर की घाटाल में भी इसका अभिनय देखने को मिलता है।

हुगली जिला की अवलुप्त भाँडयात्रा:

पश्चिम बंगाल कौ एक प्रसिद्ध स्थल है हुगली जिला। पारंपरिक लोक कला में प्रसिद्धस्थल माना जाता है हुगलि जिला को। लोक रंगमंच के हिससे के रुप में, अभिनेताओं का एक समुदाय भाँड, ढोल नगाड़ा और सोरनइ (एक लकड़ीकी वांसुरी) लेकर रंग-विरंगी परिधानो में एक गाँव से दुसरे गाँव को यात्रा करते है। उनके नाटक आमतौर पर सामाजिक मुद्दे पर केन्द्रित होता है। और व्यंग्य संगीत और नृत्य के माध्यम से वह राजनीति, समाज और धर्म में समस्याग्रस्त मुद्दो को सामने लाते है। ऐसा माना जाता है भाँडयात्रा की कलाकारो को पास कोइ स्क्रिपट नही होता है जिससे वे प्रदर्शन करते है। सब कुछ उनके मुह से निकला है। भाँड विभिन्न प्रकार के प्रदर्शन करते है। अर्थ और रुपकों की परती के साथ पाथेर के कइ संस्करण है। हुगली जिला की आरामवाग में भाँडयात्रा की आसर बैठता था। इसका अभिनय होता है कौतुक रस पूर्ण और व्यंग प्रधान।

पश्चिमबंगाल में इसका अभिनय का काल:

पश्चिमबंगाल में 'भाँडयात्रा' की कोइ सुनिर्दिष्ट समय में अभिनय नहीं होता था। पौष मास से लेकर वैशाख माह तक खेत से फसल उठने के वाद इसका अभिनय होता है। क्योंकि जात-पात मनोरंजन में कोइ बाध नहीं सजता था। इनदिनों में भी इसका अभिनय कँही कँही देखने को मिलता है। खेत से फसल उठनेके बाद गाँव की लोगो की हाथों में कुछ पयसा आता है, एवं कुछ अवसर का समय भी मिलता था। इसलिये मनोरंजन के अन्यतम साधन केरुप में 'भाँडयात्रा' का अभिनय होता था। भाँडयात्रा की प्रधान अंग डाइस वा जुया खेला होता था। एक को बाद देकर दुसरे के बारेमें सोच भी नहीं जाता था। यात्रा की अभिनय मंच की आशपाश इस खेल चलता था। यात्रा की काम-काज देखने के लिए लोगों की समिति होती थी। उस समिति की लोगों सवकुछ तय करकर यह 'भाँडयात्रा' की अभिनय वैठाते थे। किन्तु भाँडयात्रा की आसर तथा अभिनय विठाने की लिए पयसे की जरुरत होता है। इसलिए डाइस का खेल वह लोग विठाते थे इस में 'भाँडयात्रा' की अभिनय कराने की पयसा आ जाता था। और इसका विपरीत भी देखने को मिलता था। डाइस पार्टी आके कहता था कि 'भाँडयात्रा' की अभिनय वह लोग करायेंगें। फिर पुरा रात डाइस अर्थात् जुयाखेला और नशेली द्रव्य जैसे कि गंजा आदि की सेवन चलता था।

भाँडयात्रा की कलाकार:

'भाँडयात्रा' की कलाकार गाँव की खेती में काम करने वाले लोग तथा साधारण लोग ही होता है। कँही ती 80%-90% लोग मुसलिम सम्प्रदाय की होता था। पश्चिम बंगाल की हरिजन सम्प्रदाय की

लोग इस यात्रा का कालाकार थे। बाद में साधारण और ब्राह्मण सम्प्रदाय की कुछलोग इस यात्रा की कलाकार है। कुछ लोग यात्रा करने की अलावा रोजगार की भावना से भी इस यात्रा की पेशा में आता था। सामाजिक तथा शास्त्रीय ज्ञान इस भाँडयात्रा की कलाकारो अर्जन होता था। इस भाँडयात्रा की दल परिचालन जी करता था उसे ‘उस्ताद्’ के नाम से भी जाना जाता है। इस तरह की ‘उस्ताद्’ का नाम—

शेख आव्दुल लतिफ (उचालन, शेयाव वाजार, वर्धमान)

प्रथात, केरामत, तापस दोलइ (वालि, देओयानगञ्ज, हुगली)

प्रयात शेख इयासिन (गदि, वागनान, हावड़ा)

खुरसेद आलि (पाथरा, मेदिनीपुर)

प्रयात रहिम वक्स (मेदेदा, मेदिनीपुर)

लीलावती, गोलापी, अमुल्य, क्याउरा, हृदय वागदी, राजेन तिउवारी और भी कुछ विद्वान। यहसब ‘उस्ताद्’ दल की परिचालन के अलावा पाठ की रचना भी करते थे। मौखिक गल्प तैयार करके कौन से कलाकार किस संलाप तथा चरित्र में अभिनय करेगा वह वोलते थे। कलाकार ने अभिनय के समय तात्क्षणिक संलाप का भी व्यवहार कता था। कलाकार को हास्यरसपूर्ण कौतुकसे अभिनय की स्टेज भरपुर रहता था। दर्शक भी कौतुकरस का पूर्ण मजे लेते थे। कलाकार की अभिनय और स्मृति असाधारण था।

भाँडयात्रा मे भाँडको ‘रंगदार’ तथा ‘संमदार’ भी कहा जाता है। विचित्र उज्ज्वल वर्ण की पोशाक पहनना इसका मूल वैशिष्ट्य था। रंगदार की साथी महिला होता है। प्रथमपर्याय में पुरुष कलाकार ही स्त्री चरित्र में अभिनय करता था। ऐसे ही एक कलाकार का नाम मनिर दालाल, हातिहलका, और भी मेदिनीपुर जिला की लोग वाद में महिला तथा स्त्री चरित्र को ही रंगदार की साथी की भूमिका में रखा जाता है। अभिनय में इस सत्री कलाकार प्रसंशित थे। परन्तु समाज में इन सबको छौटे नजर से देखा जाता था। क्योंकि वहुतसी कलाकारी पतितालय से होता था। मेदिनीपुर की गौवी, मेदिनी तमलुक की सुवला, पारुल, राधिका, कमला, काञ्चनमाला, मेचेदा की लीलावती एवं उसके लड़की गोलापी भाँडयात्रा की कलाकार थी, लीलावती और गोलापी की खुद की अपना भाँडयात्रा की दल था। लीलावती को शास्त्रज्ञान तथा कण्ठ में सुर मनहारिनी था। भाँडयात्रा की दर्शक मुसलिम सम्प्रदाय के लोग होते थे। स्त्री दर्शक बहुत कम रहता था। मेदिनीपुर में यहदल 3/4 और 20/25 जनका भी होता था। यँहा भी ढोल, सुमेर, तवला, हारमोनियम आदि यन्त्र का व्यवहार किया जाता है। अभिनय होताथा ह्यजाक की आलो में वर्तमान दिनों में इलेकट्रिक में।

भाँडयात्रा की विषय:

भाँडयात्रा की लिखित किताव नही था। श्रुति परम्परा अर्थात् सब मुह से रचित और संरक्षित होता था भाँडयात्रा की विषय। भाँडयात्रा की विषय भावना की दो दिक है, एक लौकिक विषय, दुसरा शास्त्रीय विषय है। लौकिक विषय दुसरा शास्त्रीय विषय है। लौकिक विषय में व्यंग के अलावा सुरुचि और कुरुचि अर्थात् रीति- अरीति के बाहर भी अभिनय की उपस्थापना होता था और शास्त्रीय विषय में मानव समाज की तथा मानव-जीवन की गभीर तत्त्वकथा वर्णन होता था। गानप्रधान है- भाँडयात्रा। तथ्य की विचार से भाँडयात्रा की अभिनय की विषय को चार भागो में वर्णन किया जा सकता है।

पहला: पश्चिम बंगाल में पहला एक भाँडयात्रा की विषय है जँहा भाँड प्रधान पात्र है। जैसे कि ‘पाटशागतोला’, टाकार जोरे वुड़ोर विये, लाउ चिंड़ि, कलाइओयाला, झिङे फुल, गाभीन भुत, घुघुर फाँद, कार पाओना, बौ वदल, कालेर हाओया, नटी लक्ष्मीहारा आदि।

दुसरा: ऐतिहासिक तथा पौराणिक काहिनी के आधार पर रचित पाला या अभिनय जैसे सम्राट आलाउद्दिन, राजा हरिश्चन्द्र, दाता कर्ण, राधाविनोद, मेघवती आदि। एक एक दृश्य के वाद भाँड अपना सङ्गी को स्टेज पर लाकर कौतुकरस से अभिनय को और भी हासि से भर देते थे। अभिनय शुरु से पहले लगभग एकघण्टा से अधिक समय ‘फार्स’ अर्थात् रंग कौतुक किया जाता है।

तीसरा: दो दल एक दुसरे की प्रश्नोत्तर के माध्यम से आसर को कौतुक रस से भरदेता था।

चौथा: गोपाल भाँड की चुटकली हासि मजाक में अभिनय करता है।

अभिनय चड़ा मात्रा में होता था। प्रत्येक कलाकार अपना पाठ को लेकर सक्रिय और सचेतन था। पश्चिम बंगाल में राधाविनोद, राजा हरिश्चन्द्र, जैसे ग्रामीणनाट्य जैसे- लेटोगान भी अभिनय भाँडयात्रा में किया जाता था।

भाडयात्रा का मूल उद्देश्य था दर्शक तथा जनता को कौतुकरस परिवेशन करना। इसलिए प्रत्येक कलाकार इस विषय को लेकर सचेतन तथा सक्रिय था। अभिनय में भी अपना स्थिति दर्शक के मनोरंजन के हिसाव से वदलता था। क्योंकि दर्शक का मन खुश करना उनका उद्देश्य था।

बंगाल की भाँडयात्रा की कुछगान:

कौतुकपूर्ण वार्तालाप को भाँडयात्रा में कहा जाता है- ‘छड़ा काटाकाटि’। जैसेकि- कुछ वांग्ला वाक्य देवनागरी अक्षर मे-

सङ्गिनी:- तोमार मत मानुषके आमि विये करवो ना
आमरा कि या ता मेये।
आमरा कि तेमन मेये सइगो तेमन मेये सइ

आमरा जलेर भितर उनुन केटे भाजते पारि खै।
रंगदार:-तोमरा जलेर भितर उनुन केटे खै भाजते पारो एमन मेये
तोमादेर खोला फासाते आमि जानि
सङ्गिनी:-तोमरा केमन करे खोला फासाते पारो फासाओ।
रंगदार:-छिपनिलाम वड़शि निलाम गेलाम पुकुर घाटे
जोर करे खिँच मेरे दिलाम तोदेर खाला गेल फँसे
तोरा खै भाजबि किसे?- आदि
भाँडयात्रा कि एक गान और उसकी स्वरलिपि
अति साधेर बिये
आज जमि बन्दक दिये
बउ मरणकाले किछु बले गेल ना।
बउ एर हाते छिल चुड़ि
आर भाजतो गरम मुड़ि
शशा दिये मुड़ि खाओया हल ना।
ताल-दादरा
स र स र र र ग ग ग
अ ति सा ०धे र ० वि ये ०
प प प प प प प म सम मप र
आ ज ० ज मि ० व न्दक दि ये ०
र र र र र र प प प र र स
व ० उ म र ण का ले ० कि छु ०
स र र ग ग ग र र र
व ले ० गे ल ० ना ० ०
स स स र र र ग र र ग ग ग
व उ एर हा ते ० छि ल ० चु ड़ि ०
ग ग ग प प प प म म गम गम गर
आ र ० भा ज त ग र म मु ड़ि ०
र व व ग गग व स स स र व
श शा ० दि ये ० मु ड़ि ० खा ओ या
ग ग ग व व र
ह ल ० ना ० ०

उपसंहार:

पश्चिम वंगाल की यह संस्कृति आज अवलुप्त की पर्याय में है। वर्तमान दिन में दो एक दल की नाममात्र भाँडयात्रा की अभिनय देखने को मिलता है। वर्तमान में इसका अभिनय ‘यात्रा’ जैसी में हीता है। भाँडयात्रा की ‘पद रचना’ करने की शिल्पी का भी आज अभाव है। बहुत पुराणी जो भी शिल्पी है वह सव बुड़ापा के कारण इस में और परिश्रम नही करपाते। कुछ विद्वान इस भाँडयात्रा में अभिनय करने वाले कलाकारोको वुड़ापा में ‘भिख’ मांगकर दिन गुजरते देखा है। आधुनिक शिक्षित समाज इस स्थानीय भाषा में रचित भाँडयात्रा से विमुख है। गाँवो में भी नाममात्र से इसका अभिनय होता है। पश्चिम वंगाल में एकसमय भाँडयात्रा वहुत प्रचलन था वो अब अवलुप्त लोक-नाट्य में पर्यवसित है।

सन्दर्भसूची

१. *हिन्दी साहित्य*
२. *भाँड, शब्दकोश,*
३. *काश्मीर की पारंपरिक लोक रंगमंच की तुल्य होती एक लोककला भाँडपाथेर वंगला साहित्य*
४. *भारतेर लोकनाट्य- ध्रुव दास*
५. *वांला ग्रामीण लोकनाट्य ओ आलोचना एवं संग्रह- श्री सनत्कुमार मित्र, सम्पादित।*
६. *शारद संख्या, 2022*

"सार्वजनिक सेवाओं की प्रदायगी के तीसरे माध्यम डोर स्टेप डिलीवरी योजना का राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्लीवासियों पर सामाजिक प्रभाव का अध्ययन"

रामलाल कूड़ी
शोधार्थी, लोक प्रशासन विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय,
कोटा (कोटा विश्वविद्यालय) Email-ramlal.koodi@gmail.com

शोध सारांश:
इस शोध लेख में सार्वजनिक सेवा वितरण के तीसरे माध्यम डोर स्टेप डिलीवरी से राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली क्षेत्रवासियों पर पड़े सामाजिक प्रभाव का अध्ययन की विवेचना की गई है। डोर स्टेप डिलीवरी ऑफ पब्लिक सर्विसेज वर्तमान में भारत सहित कई देशों में सार्वजनिक सेवाओं के वितरण का तीसरा माध्यम है। (प्रथम राजकीय कार्यालय में जाकर, दूसरा ऑनलाइन आवेदन) सार्वजनिक सेवाओं की डोर स्टेप डिलीवरी से अभिप्राय नागरिक के दरवाजे पर राजकीय सेवाओं के ऐसे वितरण से हैं जैसे घर पर पिज्जा डिलीवरी। इस योजना का मुख्य विचार व्यक्तियों के दरवाजे पर प्रमाण पत्र और आधिकारिक दस्तावेज प्रदान करना है। यह प्रक्रिया सेवा वितरण प्रणाली में प्रचलित सभी जटिलताओं से बचाकर लाभार्थियों को कार्यालयी व ऑनलाइन उलझनों से बचाती है और सेवा वितरण की मुख्य धारा में लाती है।

सेंकेताक्षार:
सार्वजनिक सेवा वितरण, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, डोर स्टेप डिलीवरी, डिजिटल प्रशासनिक परिवर्तन, बैक-एंड टीम, एंड्रोइड एप्लीकेशन प्रणाली, प्रशासनिक बुराइयां, प्रशासनिक कार्य संस्कृति, मनोवैज्ञानिक प्रशासनिक दृष्टिकोण।

परिचय

सार्वजनिक सेवा वितरण भारत में हमेशा विवादास्पद विषय रहा है। सेवा प्राप्ति माध्यम के विभिन्न संरचनात्मक-प्रशासनिक प्रक्रियाओं से जटिलता भरे हुए है। एक ही सेवा प्राप्ति के लिए कार्यालयों के

 ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

चक्कर लगाते लगाते काफी धन व समय व्यर्थ हो जाता है। ऑनलाइन सेवा प्राप्ति भी फ्रॉड, डेटासेंध, डेटा दुरूपयोग जैसी संभावनाओं से युक्त होने के कारण सर्वसुलभ नही बन पाया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सार्वजनिक सेवाओं तक पहुँच प्रदान करने में तकनीकी व संस्थागत स्तर पर व्यापक कार्य किया है परंतु गुणवत्ता ,विश्वसनीयता और प्रभावशीलता के मानकों से अभी कोसों दूर है।

सार्वजनिक सेवा वितरण में अभिन्न प्रयोग डोर स्टेप डिलीवरी, शासन में व्याप्त प्रशासनिक दोषों और सेवा वितरण प्राप्ति में निहित जटिलताओं से एक नागरिक को उसके अनुरोध पर सरकारी कार्यालय से परे उसके दरवाजे पर ही वांछित सेवा की प्राप्ति सुनिश्चित करती है। परेशानी-मुक्त, गुणवता के आश्वासन से युक्त, इच्छित टाइम स्लॉट उपलब्ध के आधार पर, समय-कुशलता से सरकारी वितरण प्रणालियों की री-इंजीनियरिंग के द्वारा केन्द्रीकृत मूल्यांकन एवं निगरानी तंत्र के साथ अंतर एजेन्सियों में समन्वय द्वारा सरकारी सेवाओं को नागरिक के दरवाजे पर उपलब्ध कराना ही शासन में डोर स्टेप डिलीवरी का सार्थक पर्याय है।

दिल्ली के पूर्व मुख्यमंत्री श्री अरविन्द केजरीवाल द्वारा 10 सितम्बर 2018 को 40 सार्वजनिक सेवा वितरण में अभिन्न प्रयोग डोर स्टेप डिलीवरी के साथ किया।[12] परियोजना की व्यापक कार्यप्रणाली के लिए मोबाइल सहायक, पर्यवेक्षक तथा कॉल सेन्टर ग्राहक सेवा केन्द्र पेशेवर के साथ सहायक परियोजना प्रबंधक और प्रोजेक्ट मैनेजर के निर्देशन मैं बैकएंड-प्रोसेस अधिकारियों के मानव संसाधन ढांचे के साथ इसकी शुरूआत की गई। प्रचालन कम्पनी द्वारा 1076 नम्बर को सेवा के लिए कॉलिंग नम्बर निर्धारित किया और www.delhid2dportal पर भी सेवा अनुरोध के लिए सॉफ्टवेयर डिजाइन किया गया। लाभार्थी द्वारा सेवा प्राप्ति के लिए 10 चरणीय प्रक्रिया को निर्धारित किया गया।[13]

योजना का मूल्यांकन (वार्षिक)

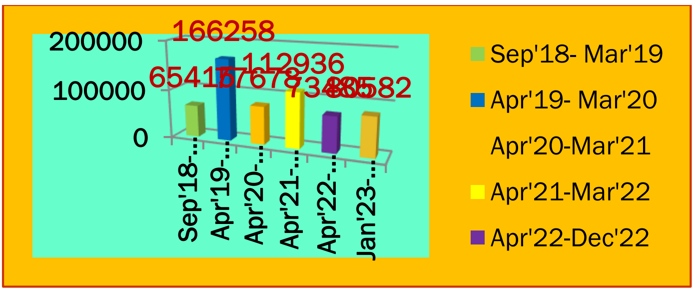

[12] https://aamaadmiparty.org/delhi-cabinet-approves-historic-doorstep-delivery-of-public-services

[13] https://scroll.in/article/885434/doorstep-delivery-of-rations-in-delhi-will-needlessly- drain-public-resources-say-activists

उपरोक्त ग्राफ का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि डोर स्टेप डिलीवरी में औसतः हर माह दस हजार सेवाएँ प्रोसेस हो रही है।[14] पूरी संस्थागत प्रक्रिया में तकनीकीगत, प्रौद्योगिकीगत व प्रचलनात्मक चुनौतियां रही। मांग के अनुरूप मानव संसाधन को तैयार करना, ग्राहक सेवा केन्द्र पेशेवर को सौम्य व्यवहार के लिए मानसिक रूप से सुदृढ करना, बैक-एंड टीम को दिल्ली सरकार के विभागों व फील्ड टीम के साथ तालमेंल स्थापित करना, समन्वयकों व पर्यवेक्षक को आ रही चुनौतियों के अनुरूप मुकाबला करने के लिए तैयार करने जैसे प्रशिक्षण कार्यक्रम सफलतापूर्वक किए।

नई दिल्ली जैसे मेगा सिटी में जहां श्रम का प्रवासी पलायन व आगमन होता रहता है। अनधिकृत झुग्गी-झोपडियों में जहां आबादी का एक बडा हिस्सा रहता है और वो हिस्सा अभी भी डिजिटल शिक्षा के मानकों से कोषो दूर है, जिनके पास अभी भी कीपैड वाला फोन यूज होता है जो एंड्रोइड एप्लीकेशन प्रणाली से अभी भी अज्ञात है, उनके लिए यह योजना वरदान साबित हुई है।

भौगोलिक क्षेत्रवार उपरोक्त आंकड़ों को देखते तो पूर्वी व उतरी-पूर्वी दिल्ली के लोगों ने अधिक इस सेवा प्राप्ति प्रणाली का प्रयोग किया है, जो दिल्ली के साक्षरता व अन्य विकसित मानकों में पिछड़े बहुत इलाके है। सबसे अधिक सेवाओं के लाभ उठाने वाले निवासियों का आंकलन करने पर सीमापुरी 90 प्रतिशत, शाहदरा 87 प्रतिशत, विवेक विहार 87 प्रतिशत और अलीपुर 85 प्रतिशत है, जबकि सबसे कम अनुरोध 29 प्रतिशत कंझावला 43 प्रतिशत महरौली, पंजाबी बाग 49 प्रतिशत व डिफेंस कॉलोनी 55 प्रतिशत रहे।[15] सार्वजनिक सेवाओं की डोरस्टेप डिलीवरी सरकारी संस्थानों और नागरिकों के बीच एक पूर्ण इंटरफ़ेस के रूप में कार्य करने के लिए ऑनलाइन एप्लिकेशन की बेहतर प्रणालियों के साथ-साथ फील्ड मैनपावर एजेंटों, 'मोबाइल सहायकों' को शामिल करने के लिए एक कदम आगे बढ़ गई। अकेले ऑनलाइन आवेदन मोड अक्सर उन नागरिकों तक पहुँच नहीं बना पाएगा जो तकनीकी रूप से सक्षम नहीं हैं। इन नागरिकों को अक्सर भारी रकम चुकानी पड़ती है और बिचौलियों का सहारा लेना पड़ता है। डोरस्टेप डिलीवरी प्रक्रिया में 'मोबाइल सहायकों की भागीदारी यह सुनिश्चित करती है कि नागरिकों को दलालों को भुगतान नहीं करना पड़ता है और वे संस्थागत तंत्र के माध्यम से आवश्यक सहायता प्राप्त करने में सक्षम होते हैं।

इस योजना से निम्न वर्ग का सशक्तिकरण बढ़ने के साथ मध्यम वर्ग के लिए भी ‘‘क्रांतिकारी कदम’’ साबित हुई है जो उन्हें प्रशासनिक कार्यालय दोषों जैसे भ्रष्टाचार, प्रशासनिक कार्य, संस्कृति,

[14] https://www.business-standard.com/article/current-affairs/5-5-mn-applications-for-availing-delhi-s- doorstep-delivery-scheme-till-june-121072400920_1.html

[15] https://indianexpress.com/article/cities/delhi/doorstep-delivery-of-services

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

लेट-लतीफी, भाई-भतीजावाद, पक्षपात, आदि से निजात दिलाती है फलस्वरूप लाभार्थी को अधिक सुविधाएं कम प्रयासों में मिलने लगी और अंतिम लाभ सेवा प्राप्तक को हुआ।

सेवा प्राप्ति (वितरण) की प्रकिया में तीसरे माध्यम के प्रवेश ने इसे ओर जनसामान्य की पहुँच तक विस्तारित किया है और उसे सेवा प्राप्ति के लिए अधिक विकल्प (चैनल) मिलने लगे है, जिससे उसका सशक्तिरण और मजबूत हुआ है। इस योजना का सर्वाधिक प्रयोग पॉश क्षेत्रों के स्थान पर विभिन्न असुरक्षित व संवेदनशील क्षेत्रवासियों ने किया, अतः प्रशासनिक बुराइयों के विरुद्ध यह योजना निम्न एवं पिछड़े वर्ग के लिए सेवा वितरण की खामियों से निपटने के लिए सशक्त हथियार है।

इस योजना ने प्रशासन को अवगत कराया कि वह प्रशासनिक उच्च संभ्रात मानसिकता को त्याग कर जनसेवक के रूप में कृत्यों का निर्वहन करे। वह प्रक्रियागत व संचालनात्मक पद्धतियों को टालने के बजाय निजी क्षेत्र के साथ मिलकर सेवा स्तर समझौता की बेहतर उत्पादकता पर ध्यान दे, उनकी जवाबदेहिता व जिम्मेदारी का आधार अब व्यापक हो गया है। प्रशासनिक विकास व विकास प्रशासन रूपी संरचनात्मक-प्रचलनात्मक सेवा वितरण इस प्रणाली ने विभिन्न दशकों से व्याप्त जनसामान्य की समस्याओं का एक स्तर तक निवारण प्रस्तुत किया है, फलस्वरूप सरकार के समय व धन का सदुपयोग अब विकासात्मक कार्यों पर अधिक केन्द्रित हुआ है। निजी क्षेत्र के कार्य-व्यवहार (Work Culture) का विकास सार्वजनिक क्षेत्र में भी होने लगा है।

डिजिटल प्रशासनिक परिवर्तन (Digital Administrative Change) ने सरकारी कार्यभार व तनाव को एक सीमा तक कम कर दिया गया है। फ़ाइल वर्क का स्थान ऑनलाइन प्रणालियों ने ले लिया है, जिससे कम समय में अधिक कार्यालयी भार कम होने लगा है। वितरण क्षेत्र में निजी क्षेत्र के प्रवेश ने सरकार व प्रशासन की भूमिका में आंशिक परिवर्तन किया है फलस्वरूप अन्तिम लाभ जनता को ही हुआ है। लाभार्थियों के प्रशासनिक हित उसकी पहुँच में आने से समय व धन की बचत के साथ मनोवैज्ञानिक प्रशासनिक दृष्टिकोणों का विकास होने से जागरूकता व आत्म-विश्वास बढा है, वह खुद को तंत्र का हिस्सा मानने लगा है।

सेवा वितरण के प्रथम माध्यम (परम्परागत कार्यालय के भ्रमण) से प्रशासन में विभिन्न दोषों का विकास बढती आबादी व कार्यभार के कारण हुआ फलस्वरूप प्रशासनिक बुराइयों जैसे भ्रष्टाचार, नैतिक-पतन, भाई-भतीजावाद, टेंडर में अपनों को वरीयता, कार्य को टालने की प्रवृतियां आदि के कारण प्रशासनिक-कर्मी अत्यधिक तनाव व कार्यभार से ग्रसित होते गए फलस्वरूप जन-मानस में उनकी छवि ''रक्त-चूषक'' जैसी हो गई जिसमें बिना मुट्ठी गर्म किए कोई काम नही होता, सरकारी बाबू कल्चर का विकास, अधिकारियों में राजनीतिक निकटता के कारण संभ्रातवर्गीय-मानसिकता, जल्द धनवान बनने

की लालसा जैसे परम्परागत दृष्टिकोण विकसित होते गए फलतः ब्यूरोक्रेसी एक अनिवार्य बुराई के रूप में जानी जाने लगी।[16]

डोर स्टेप डिलीवरी जैसी योजनाओं ने प्रशासनिक कार्य संस्कृति को डिजिटल तकनीकी बनाकर जन सामान्य की ओर मोड़ दिया फलस्वरूप सिटिजन चार्टर, सूचना का अधिनियम सेवा स्तर समझौतों, लोक सेवा गारंटी अधिनियमों आदि के क्रमिक विकास ने प्रशासनिक कर्मियों के दृष्टिकोणो व प्रवृतियों में परिवर्तन किया अन्ततः उत्पादकता बढने से सेवा प्राप्ति बेहतर व सीमा-समय मानकों में होने लगी।

प्रशासनिक सेवा प्राप्ति कि बुराईयों का प्रभाव सम्पूर्ण समाज पर अलग-अलग पड़ता है। सक्षम व्यक्ति/वर्ग ऐसी बुराईयों से लड़ पाते है परन्तु समाज का सबसे वंचित वर्ग जैसे वर्द्धजन, महिला, दिव्यांगजन, बच्चे इस व्यवस्था से लड़ नहीं पाते हैं। दूसरे रूप में वर्तमान सार्वजनिक सेवा वितरण व्यवस्था के दोषों का सर्वाधिक प्रभाव इसी वर्ग पर पड़ा है। यह वर्ग ही सरकारी कार्यालयों/ऑनलाइन माध्यम में व्यवस्था का शिकार होता है धक्के खाना, बार-बार चक्कर लगाना, रिश्वत देने के लिए मजबूर होना, खाते की जानकारी के अभाव में जानकारी देने पर अकाउंट से पैसे का कटना (ऑनलाइन फ्राड) आदि का शिकार यही वर्ग होता है।

सार्वजनिक सेवा प्राप्ति व्यवस्था में अभिनव प्रयोग डोर स्टेप डिलीवरी का सर्वाधिक उपयोग इसी वर्ग ने उठाया है। क्षेत्रवार दिल्ली के आंकड़ों पर प्रकाश डालने पर पुरानी और केन्द्रीय दिल्ली, उत्तर दिल्ली और इसके समवर्ती क्षेत्र के निवासियों ने लुटियंस दिल्ली व पॉश दिल्ली की तुलना में इस सेवा का सर्वाधिक उपयोग किया है।

दिल्ली की अप्रवासी आबादी का वृह्त हिस्सा इसी क्षेत्र में आता है, जो उपर-वर्णित राज्यों से मौसमी प्रवास रोजगार के लिए करता है। जैसे श्रमिक, निर्माण श्रमिक, खेतीहर श्रमिक, आजादपुर मंडी के पल्लेदार आदि, उनके पास वैध दस्तावेजों का अभाव होता है। समाज के वंचित वर्ग के लिए यह योजना किसी रामबाण से कम नही है। एक कॉल पर सर्विस बुक होने पर, बाकी जिम्मेदारी मोबाइल सहायक के द्वारा पूर्ण कर ली जाती है, जो उन्हें कार्यालयी बुराईयों व ऑनलाइन उलझनों से बचाती है और सेवा वितरण की मुख्य धारा में लाती है।[17]

चुनौतियां:-

1. सार्वजनिक सेवा वितरण के पारम्पारिक तरीके (सरकारी कार्यालय का दौरा व पोर्टल पर आवेदन) डोर स्टेप डिलीवरी की तुलना में अभी भी अधिक लोकप्रिय बने हुए है।

[16] https://www.deepawali.co.in/doorstep-delivery-scheme-delhi-hindi

[17] https://www.hindustantimes.com/cities/govt-delivered-on-99-5-of-doorstep-service-requests/story

2. डोर स्टेप योजना हेतु प्रशासनिक मशीनरी अपर्याप्त है।
3. वेंडर कम्पनी की मानव संसाधन क्षमता, कार्य प्रणाली और व्यवस्था इस योजना के अनुकूलता हेतु अपर्याप्त है।
4. डोर स्टेप डिलीवरी की सूचीबद्ध सेवा तालिका में सभी विभागों की सभी सेवाएं सम्मिलित नहीं हैं।
5. प्रशासन अभी भी प्रशासनिक कार्य संस्कृति से ग्रसित है।

सुझाव :-

1. सेवा प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों में अपरिचितों की संख्या अधिक है फलस्वरूप वे इस योजना का लाभ नही उठा पा रहे है तथा अभी भी सरकारी कार्यालयों के चक्कर लगा रहे है। डिजिटल साक्षरता व डिजिटल आधारभूत ढांचे तक पहुँच के कारण सेवा प्राप्ति का द्वितिय माध्यम ऑनलाइन उनकी पहुँच से बाहर है। दिल्ली सरकार को इस योजना को फ्लैगशिप स्कीम में शामिल करके सूचना एवं प्रसार मंत्रालय दिल्ली सरकार को व्यापक जनसम्पर्क विभिन्न डिजिटल, प्रिंटमीडिया तथा सोशल मीडिया, नुक्कड-नाटको, दिल्ली मेट्रो व दिल्ली परिवहन बस सेवा (डीटीसी) आदि के माध्यम से प्रचार-प्रसार करना चाहिए, जिससे वंचित वृहत् आबादी इसका लाभ उठा सके।
2. वर्तमान भौतिक (Physical), मानविक (Human Resorce) तथा डिजिटल टेक्नोलोजिकल इन्फ्रास्ट्रक्चर (Digital Technological Infrastructure) इस योजना के लिए अपर्याप्त है।[18] बेहतर सेवा प्राप्ति के लिए उसे मजबूत बनाना चाहिए।
3. यह योजना एक वृहत मेट्रोपोलियन शहर के जनसामान्य का प्रतिनिधित्व करती है, जिसके लिए व्यापक मानव व डिजिटल नम्बर की मांग बेहतर सेवा प्राप्ति हेतु आवश्यक है जो वर्तमान में अपर्याप्त है। सेवा हेतु अधिकृत वेंडर की संख्या को बढ़ाया जाना चाहिए ताकि योजना की प्रभावी दर सुनिश्चित हो
4. वर्तमान सूचीबद्ध सेवा तालिका में अन्य विभागों की ओर अधिक सेवाओं को जोडकर इस योजना के आधार को व्यापक बनाना चाहिए
5. नियमों की पालना न करने वाले प्रशासनिक अधिकारियों के प्रति प्रशासनिक, अनुशासनात्मक व वैधानिक कार्यवाही की जानी चाहिए।

[18] https://oecd-opsi.org/innovations/doorstep-delivery-of-public-services-delhis-model-of-transforming-public-service-delivery/

निष्कर्षत:-

डोरस्टेप डिलीवरी अंतिम छोर के नागरिकों के साथ जुड़ाव सुनिश्चित करके राष्ट्रीय राजधानी (एनसीटी) दिल्ली में अच्छे और उत्तरदायी शासन के लिए एक मजबूत आधार भी बनाती है, खासकर उन लोगों के लिए जिनके पास इंटरनेट तक पहुँच नहीं है या पोर्टल के माध्यम से नेविगेट करने में आईटी साक्षरता के निम्न स्तर के कारण झिझकते हैं। यह अक्सर देखा जाता है कि नागरिकों के लिए सार्वजनिक सेवाओं की डिलीवरी में सुधार के लिए प्रौद्योगिकी और आईटी समाधानों का लाभ उठाया जाता है।

डोर स्टेप डिलवरी योजना में परम्परागत माध्यमों की चुनौतियों को वृहत्त अध्ययन द्वारा समझकर डिजिटल स्वरूप में प्रौद्योगिकी उन्मुक्त उपाय वर्तमान समय की मांग के अनुसार किए गए है, जिससे सेवा प्राप्ति में आने वाली बाधाओं का समयानूकुल तकनीकि निराकरण उपलब्ध हो सका है। इन्हीं सम्मालित प्रयासों के कारण जी.एन.सी.टी. वासियों के सामाजिक आयाम सुदृढ़ हुए है जिससे यह अभिनव प्रयोग उन्हें सेवा प्राप्ति में अग्रिम पंक्ति में रखता है। परम्परागत माध्यमों में आ रही समस्याओं का इस योजना ने तकनीकि, डिजिटल, वैश्विक मांग अनुकूल तथा समयागत उपाय सुझाने तथा व्यवहार में उसे धरातल में उतारने के कारण यह योजना सार्वजनिक सेवा प्राप्ति में भविष्य की एक सुन्दर तस्वीर प्रस्तुत करती है।

दरभंगा जिला के बहेड़ी एवं सदर प्रखंडों में महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण की स्थिति: चुनौतियां एवं संभावनाएं।

स्वाती कुमारी
शोधार्थी
Department of Political Science
Patliputra University, Patna.

सारांश:-
दरभंगा जिले के सदर और बहेड़ी प्रखंड आवास के आधार पर दो अलग-अलग प्रकार के प्रखंड हैं, एक प्रखंड बहेड़ी ग्रामीण है और सदर प्रखंड अर्ध शहरी है।

हमने दोनों प्रखंडों की महिलाओं की आर्थिक स्थिति का अध्ययन, मुलाकात और साक्षात्कार किया है और उनकी आर्थिक स्थिति, पृष्ठभूमि, सरकार द्वारा दिए गए समर्थन और विभिन्न सामाजिक कार्यों की जांच की है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सरकार समय-समय पर महिलाओं की सुरक्षा, सशक्तिकरण और उत्थान के लिए समाज में कई योजनाएं बना रही है और उन्हें लागू कर रही है और उन्हें समाज में समान स्थान दिला रही है। इसे और अधिक प्रभावी बनाने के लिए, सबसे पहले हमें सभी स्तरों पर महिला शिक्षा पर ध्यान देने की आवश्यकता है। और नीचे कुछ तरीके दिए गए हैं जो हमारे समाज में महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण को बढ़ाने के लिए उपयोगी हो सकते हैं।महिलाओं के लिए नए रोजगार के अवसर पैदा करने और महिलाओं की आर्थिक स्थिति में और सुधार लाने की प्रक्रिया को मजबूत करने की आवश्यकता है। साथ ही सामाजिक स्तर पर पुरुषों और महिलाओं के बीच आर्थिक समानता के स्तर में सुधार की भी आवश्यकता है। पाठ्यपुस्तकों और स्कूली पाठ्यक्रम में महिलाओं के प्रति सम्मान पढ़ाया जाना चाहिए। समाज की बदलती ज़रूरतों के अनुसार प्रगतिशील नीतियाँ बनाई जानी चाहिए। प्रभावी कानून बनाए जाने चाहिए और उनका समुचित क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाना चाहिए। पितृसत्तात्मक सोच और लैंगिक भेदभाव जैसी रूढ़िवादी धारणाओं को बदला जाना चाहिए।

उच्च जाति के अधिकांश परिवारों में अभी भी महिलाएं आर्थिक लाभ के लिए कोई भी काम करने के लिए बाहर नहीं जा रही हैं। उनके परिवार के सदस्यों को उन्हें कोई भी बाहरी काम करने की अनुमति नहीं

है, साथ ही वे परिवार के किसी भी बड़े फैसले में भाग नहीं ले रही हैं। लेकिन निम्न जाति के प्रमुख परिवार में, महिलाएं अपने परिवार के लिए कमाई के काम में पूरी तरह से भाग ले रही हैं, और अपने परिवार के कल्याण के लिए किसी भी निर्णय में हिस्सा ले रही हैं।

अतः महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण हमारे समाज का अभिन्न अंग है, और समाज में महिलाओं के लिए पुरुषों का योगदान भी आवश्यक है, क्योंकि जब पुरुष महिलाओं की उपस्थिति का सम्मान करेंगे, तो महिलाओं का जीवन स्तर सुधरेगा और वे अधिक सुरक्षित महसूस करेंगी। इससे दरभंगा ज़िले के बहेड़ी और सदर प्रखंड की महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार आएगा।

प्रस्तावना:-

हम अपने शोध क्षेत्र दरभंगा जिले के बहेड़ी ब्लॉक और सदर ब्लॉक की महिलाओं के साथ किए गए सर्वेक्षण और उनकी आर्थिक पृष्ठभूमि और वर्तमान आर्थिक स्थिति का वर्णन करने जा रहे हैं। सबसे पहले बहेड़ी ब्लॉक जो दरभंगा जिले का एक महत्वपूर्ण ग्रामीण ब्लॉक है, जनगणना-2011 के अनुसार, बहेड़ी ब्लॉक में महिलाओं की कुल जनसंख्या 143303 थी, उस समय बहेड़ी ब्लॉक में कुल कामकाजी महिलाएं 28843 थीं, जो कुल महिला जनसंख्या का 20.10% है। मुख्य रूप से महिलाएं नीचे उल्लिखित माध्यम से कमाई कर रही हैं।

कृषि एवं खेत मजदूरी कार्य - जनगणना-2011 के अनुसार बहेड़ी ब्लॉक की मुख्य रूप से महिलाएं कृषि कार्य के माध्यम से कमाई कर रही थीं, लगभग 64 प्रतिशत महिलाएं इस तरह से काम करके कमाई कर रही थीं। इस क्षेत्र में मुख्य रूप से दो प्रकार के काम होते थे, पहली महिला जिसके पास अपने खेत थे, वे अपने खेत में परिवार के कुछ सदस्यों और मजदूरों के साथ काम कर रही थीं और अपने परिवार के लिए अच्छी रकम कमा रही थीं, लेकिन इस तरह से कमाने वाली महिलाओं की संख्या कम थी। दूसरे प्रकार के खेत में काम करने वाली महिलाएं किसी भी खेत मालिक के यहां दैनिक मजदूरी पर काम कर रही थीं। वर्तमान समय में हमने विभिन्न गांवों में लगभग 200 महिलाओं से मुलाकात की और उनका साक्षात्कार लिया, फिर हमने कृषि के माध्यम से महिलाओं की वर्तमान कमाई की तुलना और जांच की। हमने पाया कि आजकल कृषि क्षेत्र में दैनिक श्रमिक के रूप में महिलाओं की भागीदारी कम हो गई है। इसका मुख्य कारण धीरे-धीरे महिलाओं की शिक्षा का स्तर बढ़ रहा है और महिलाओं के सामाजिक मूल्यों में भी बदलाव आ रहा है। समानांतर रूप से महिलाओं की कमाई के अन्य स्रोत हैं। इसलिए जनगणना -2011 की तुलना में, महिलाएं दैनिक मजदूरी के अलावा अन्य क्षेत्रों में कमाई करने लगी हैं। इसलिए बहेड़ी ब्लॉक में कृषि महिला श्रमिकों का प्रतिशत घट रहा है।कृषि कार्य में मुख्य रूप से निम्न जाति के परिवार की महिलाएं शामिल हैं, लेकिन बहेड़ी ब्लॉक में उच्च जाति की महिलाओं की भागीदारी नगण्य है।

मनरेगा (मनरेगा मजदूर) :- 2011 की जनगणना के अनुसार बहेड़ी ब्लॉक की 12 प्रतिशत महिलाओं को दैनिक मजदूरी मिल रही थी। इस श्रेणी में महिलाएं आम तौर पर सड़क निर्माण, कुआं और तालाब खोदने जैसे काम करती थीं और अपने परिवार के लिए आर्थिक सहायता देती थीं। लेकिन आज जब हम बहेड़ी ब्लॉक की महिलाओं से मिले तो उन्होंने पाया कि वे अभी भी इस योजना के तहत काम कर रही हैं, लेकिन उनकी संख्या कम होती जा रही है। इसका कारण यह है कि महिलाएं स्वयं सहायता समूहों और नई योजनाओं के माध्यम से अन्य क्षेत्रों में काम करने जा रही हैं। बहेड़ी ब्लॉक में महिलाओं की कमाई का तरीका अलग-अलग तरीके से बदल रहा है, इसके अलावा सरकारी आर्थिक योजनाएं महिलाओं के लिए प्रेरक शक्ति बन रही हैं, क्योंकि वे लाभ के बारे में जान रही हैं, वे ईमानदारी से खुद भाग ले रही हैं और आवश्यकतानुसार पैसा कमा रही हैं।

स्व-रोजगार (हस्तकला, बुनाई, सिलाई) :-

हाल ही में बहेड़ी ब्लॉक क्षेत्र के दौरे के दौरान और इस ब्लॉक की महिलाओं के साथ साक्षात्कार के बाद हमने पाया कि हस्तकला कार्य के माध्यम से कमाई करना स्थानीय निवासी महिलाओं के लिए एक अच्छा विकल्प बन गया है। मुख्य अंतर यह है कि कच्चे माल की आसान उपलब्धता, स्वयं सहायता समूह के सदस्यों द्वारा समय-समय पर प्रशिक्षण दिया जाना और सरकारी योजनाओं के माध्यम से भी उन्हें कमाई हो रही है। इस तरीके से महिलाओं को कम समय में अधिकतम कमाई हो रही है। सुधार का मुख्य कारण क्षेत्र के विभिन्न हिस्सों में उत्पादों की ऑनलाइन बिक्री है। इसके माध्यम से उन्हें अधिक मात्रा में धन मिल रहा है और अधिक उत्पादों के लिए अधिक ऑर्डर मिल रहे हैं। इससे बहेड़ी ब्लॉक की महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है।

वर्तमान में बहेड़ी ब्लॉक के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी		
क्षेत्र	**कार्य का प्रकार**	**मुख्य ग्राहक / बाजार**
हस्तकला	मिट्टी की मूर्तियाँ, बांस के उत्पाद, मखाना सजावट और माला।	स्थानीय मेले, होम डिलीवरी, ऑनलाइन ऑर्डर डिलीवरी
बुनाई	सूती चादर, गमछा, ऊनी स्वेटर	होम डिलीवरी, ऑनलाइन ऑर्डर डिलीवरी, स्थानीय मेले
सिलाई	ब्लाउज, पेटीकोट, बच्चों के कपड़े, मास्क	ऑनलाइन ऑर्डर डिलीवरी,स्थानीय मेले, ग्राहक ऑर्डर, होम डिलीवरी,
व्यापार	कपड़े की दुकान, कॉस्मेटिक की दुकान, किराना दुकान, मेडिकल की दुकान,फल और सब्जी की दुकान	स्थानीय बाज़ार और चौक, हाट-बाज़ार

स्रोत:- शोधकर्ता द्वारा लिए गए नमूने से लिया गया डेटा

सरकारी व निजी नौकरी (आशा, आंगनवाड़ी, शिक्षिका) :-

आशा (मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता) आशा कार्यकर्ताओं को राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (एनएचएम) के तहत ग्रामीण स्तर पर स्वास्थ्य मंत्रालय या स्वास्थ्य विभाग द्वारा नियुक्त किया जाता है। इनका मुख्य कार्य समुदाय और स्वास्थ्य सेवाओं के बीच सेतु का काम करना है। बहेड़ी ब्लॉक में आशा कार्यकर्ताओं के साथ मेरी मुलाकात में, मैंने पाया कि सरकार की यह योजना ग्रामीण महिलाओं के लिए बहुत उपयोगी है, सबसे पहले यह महिलाओं के लिए रोजगार पैदा कर रही है, उसके बाद यह ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य के मुद्दे को समझने और उसका इलाज करने के लिए बहुत उपयोगी है, जो अपने पारिवारिक मुद्दों, गरीबी के कारण बाहर नहीं जा रही हैं। क्योंकि शिक्षा के बाद, अच्छा स्वास्थ्य भी महिलाओं के लिए बहुत महत्वपूर्ण कारक है, जब उन्हें उचित शिक्षा मिलेगी, स्वस्थ रहेंगे तो वे सकारात्मक सोच सकती हैं और अपने सशक्तिकरण के लिए काम कर सकती हैं। आशा कार्यकर्ता उम्मीदवार के लिए विवाहित/विधवा/तलाकशुदा महिला को प्राथमिकता दी जाती है, जिसकी आयु **25** से **40** वर्ष के बीच हो। शिक्षा मानदंड न्यूनतम **8**वीं कक्षा उत्तीर्ण है। पिछड़े समूहों (अल्पसंख्यक/एससी/एसटी) के उम्मीदवारों को आशा के रूप में प्राथमिकता दी जाती है। इसलिए यह महिलाओं के लिए बहुत सहायक योजना है, जिससे न केवल नौकरी के अवसर पैदा होते हैं, बल्कि यह घर-घर जाकर महिलाओं को उचित स्वास्थ्य देखभाल भी प्रदान करती है।

आंगनवाड़ी कार्यकर्ता:-

आंगनवाड़ी कार्यकर्ता एकीकृत बाल विकास सेवा **(ICDS)** कार्यक्रम के तहत बच्चों **(0-6** वर्ष**)**, गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली माताओं की पोषण, स्वास्थ्य और शिक्षा की ज़रूरतों को पूरा करती हैं। इसमें बच्चों को प्री-स्कूल शिक्षा प्रदान करना, पूरक पोषण प्रदान करना, स्वास्थ्य जांच में सहायता करना और माताओं को स्वास्थ्य शिक्षा देना शामिल है। मुख्य रूप से बहेड़ी ब्लॉक में यह योजना सुचारू रूप से चल रही है और महिला सशक्तिकरण के समर्थन के साथ-साथ महिलाओं के पालन-पोषण में बदलाव ला रही है।

महिलाओं द्वारा शिक्षण कार्य:- शिक्षित महिलाओं का एक समूह ज्यादातर शिक्षण कार्य में शामिल है, मुख्य रूप से **2** प्रकार के शिक्षण कार्य वे निजी और सरकारी कर रही हैं। निजी शिक्षण कार्य में वे निजी स्कूल में नौकरी कर रही हैं। साथ ही कुछ महिलाएं अतिरिक्त आय प्राप्त करने के लिए छात्रों को ट्यूशन भी करा रही हैं। लेकिन दोनों ब्लॉकों में अच्छे निजी स्कूलों की कम उपलब्धता के कारण नौकरी के अवसर कम हैं। आवश्यक योग्यता के साथ प्रतियोगिता परीक्षा देने के बाद सरकारी स्कूल में नौकरी प्राप्त करना। मेरे द्वारा दोनों ब्लॉकों के गाँव-गाँव के दौरे के अनुसार, प्रत्येक गाँव में महिला सरकारी शिक्षिका हैं। जो छात्रों को ठीक से शिक्षित कर रही हैं और अन्य महिलाओं और लड़कियों को स्कूल में

शामिल होने और उचित शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित कर रही हैं। और अपने परिवार के लिए अच्छी कमाई करने वाली सदस्य बन रही हैं। इस तरह से एक शिक्षण कार्य भी आर्थिक विकास और सशक्तिकरण के लिए महिलाओं के लिए उपयुक्त है।वर्तमान में महिलाओं की संख्या **2011** की जनगणना के अनुसार बढ़ रही है**, 2011** की जनगणना के समय केवल **6** प्रतिशत महिलाएं इस श्रेणी में भाग ले रही थीं**,** लेकिन अब दौरे और डेटा संग्रह के अनुसार बहेड़ी ब्लॉक में शिक्षा क्षेत्र में महिलाओं का प्रतिशत बढ़ रहा है।

स्वयं सहायता समूह (SHG):- स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन और महिला सशक्तिकरण के लिए एक आधारभूत ढाँचे के रूप में कार्य करते हैं। ये अनौपचारिक, महिलाओं द्वारा संचालित समूह हैं, जिनमें आमतौर पर 10-20 ग्रामीण महिलाएँ शामिल होती हैं, हालाँकि कुछ स्रोतों में 5-7 सदस्यों का भी उल्लेख मिलता है। इन समूहों का गठन छोटी-छोटी बचतों को एकत्रित करने और सदस्यों को पारस्परिक सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से किया जाता है, जिसका मुख्य उद्देश्य सूक्ष्म ऋण पर केंद्रित होता है। स्वयं सहायता समूहों का मुख्य उद्देश्य गरीबी कम करना, महिलाओं को सशक्त बनाना और गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों का उत्थान करना है। ये समूह आत्मनिर्भरता विकसित करने, बचत की आदतों को बढ़ावा देने, आय-उत्पादक गतिविधियों को सुगम बनाने और लैंगिक भेदभाव को कम करके सामाजिक-आर्थिक समानता को बढ़ावा देने पर केंद्रित हैं। बिहार ग्रामीण आजीविका संवर्धन समिति (बीआरएलपीएस), जिसे स्थानीय रूप से जीविका के नाम से जाना जाता है, बिहार सरकार के ग्रामीण विकास विभाग के अंतर्गत एक स्वायत्त निकाय है।

हमने बहेड़ी ब्लॉक की सभी पंचायतों का दौरा किया और साक्षात्कार लिए। जिसमें पहले स्तर पर हमने उनकी शिक्षा के स्तर की जांच और चर्चा की और फिर महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए राज्य और केंद्र सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न आर्थिक योजनाओं के बारे में जानकारी और लाभ के स्तर की जांच की। 200 नमूनों में से केवल 30 महिलाएं शिक्षित हैं और 170 महिलाएं निरक्षर हैं, और ये निरक्षर महिलाएं समाचार पत्रों या किसी सरकारी वेब पोर्टल के माध्यम से कोई जानकारी प्राप्त करने में असमर्थ हैं। वे पूरी तरह से अपने परिवार के शिक्षित सदस्यों पर निर्भर हैं। लेकिन वे परिवार के सदस्यों या सरकार द्वारा चलाए जा रहे शाम के स्कूल की मदद से खुद को शिक्षित करने की कोशिश कर रही हैं। अब बहेड़ी ब्लॉक की महिलाएं जमीनी स्तर पर शिक्षा के महत्व को समझ रही हैं और वे खुद को शिक्षित करने के साथ-साथ परिवार और समाज में प्रत्येक रचनात्मक गतिविधियों में भाग लेने का प्रयास कर रही हैं।

इसके अतिरिक्त हमने बहेड़ी ब्लॉक में चल रही महिलाओं की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने वाली सरकारी योजनाओं के बारे में उनसे चर्चा की और जानकारी ली। पाया गया कि केवल 90 महिलाओं को योजनाओं के बारे में जानकारी है और 110 महिलाओं को नहीं है। इस संबंध में औसतन लगभग

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

45% महिलाओं को सरकारी योजनाओं से उचित लाभ मिल रहा है और 55% महिलाओं को उचित लाभ नहीं मिल रहा है। इसलिए प्रत्येक महिला को योजनाओं के बारे में उचित जानकारी देने की आवश्यकता है ताकि वे लाभ उठा सकें और आर्थिक रूप से विकसित हो सकें। इसके लिए सामाजिक और स्थानीय स्तर पर प्रयास करने होंगे। मुख्य रूप से जिला और ब्लॉक स्तर के सरकारी प्रतिनिधियों को उचित जिम्मेदारी लेनी चाहिए और पंचायत और वार्ड स्तर तक जानकारी पहुंचानी चाहिए ताकि वार्ड सदस्य अपने वार्ड की महिलाओं के लिए बैठक बुला सकें और योजनाओं के बारे में उचित जानकारी दे सकें। यह नियमित अंतराल पर जारी रहना चाहिए। इसके अलावा वरिष्ठ प्रबंधन को भी जिला और ब्लॉक स्तर के प्रतिनिधियों के साथ समीक्षा करनी चाहिए। इससे महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण बेहतर होगा।

अब हम दरभंगा ज़िले के एक महत्वपूर्ण अर्ध-शहरी ब्लॉक सदर ब्लॉक के बारे में बता रहे हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार, सदर ब्लॉक में महिलाओं की कुल जनसंख्या 132575 थी। उस समय सदर ब्लॉक में कुल कामकाजी महिलाओं की संख्या 18000 थी, जो कुल महिला जनसंख्या का 13.57% है। मुख्यतः महिलाएँ नीचे दिए गए माध्यमों से कमाई कर रही हैं।

कृषि और खेतिहर मजदूरी :- जनगणना-2011 के अनुसार बहेड़ी प्रखंड की तुलना में सदर प्रखंड में कृषि कार्य के जरिए कम महिलाएं कमाई कर रही थीं, करीब 40 प्रतिशत महिलाएं इस तरह से काम करके कमाई कर रही थीं। इस क्षेत्र में मुख्य रूप से दो तरह के काम थे, पहली महिला जिनके पास अपने खेत थे वे अपने खेत में परिवार के कुछ सदस्यों और मजदूरों के साथ काम कर रही थीं और अपने परिवार के लिए अच्छी रकम कमा रही थीं लेकिन इस तरह से कमाई करने वाली महिलाओं की संख्या कम थी। दूसरे प्रकार के खेत में काम करने वाली महिलाएं किसी भी खेत मालिक के यहां दैनिक मजदूरी पर काम कर रही थीं। इस श्रेणी में महिलाएं पहली विधि से कम कमा रही थीं। लेकिन महिलाओं की भागीदारी पहली श्रेणी की तुलना में संख्या में अधिक थी। उस समय महिलाओं को कड़ी मेहनत के अनुसार अच्छी मजदूरी नहीं मिल रही थी लेकिन अन्य स्रोतों में कम अवसर के कारण प्रमुख महिलाएं कृषि में शामिल थीं। वर्तमान में हमने सदर प्रखंड के विभिन्न गांवों में लगभग 200 महिलाओं से मुलाकात की और उनका साक्षात्कार लिया इसके समानांतर, महिलाओं के पास कमाई के अन्य स्रोत भी हैं। इसलिए, जनगणना-2011 की तुलना में, महिलाएं दिहाड़ी के अलावा अन्य क्षेत्रों में भी कमाई करने लगी हैं। इसलिए, सदर प्रखंड में कृषि महिला श्रमिकों का प्रतिशत घट रहा है। वे कृषि कार्य छोड़कर कमाई के अन्य तरीकों में खुद को लगा रही हैं और दिन-प्रतिदिन आर्थिक रूप से सशक्त हो रही हैं। उनके लिए एक प्रमुख लाभकारी कारण यह है कि सदर ब्लॉक अर्ध शहरी है और इसकी सीमा दरभंगा शहर से सटी है, इसलिए तुलनात्मक रूप से सदर ब्लॉक में कई महिलाओं को अतिरिक्त लाभ और संसाधन मिल रहे

हैं। और महिलाएं धीरे-धीरे आर्थिक रूप से सशक्त हो रही हैं।कृषि कार्य में मुख्य रूप से निम्न जाति के परिवार की महिलाएं शामिल हैं, लेकिन सदर ब्लॉक में उच्च जाति की महिलाओं की भागीदारी बहेड़ी ब्लॉक से अधिक है।

मनरेगा (मनरेगा मजदूर) :- 2011 की जनगणना के अनुसार, सदर प्रखंड में लगभग 19 प्रतिशत महिलाएँ दैनिक मज़दूरी प्राप्त कर रही थीं। इस वर्ग की महिलाएँ आमतौर पर सड़क निर्माण, कुएँ और तालाब खोदने जैसे काम करती थीं और अपने परिवारों को आर्थिक सहायता प्रदान करती थीं। लेकिन आज जब हम सदर प्रखंड की महिलाओं से मिले, तो पाया कि वे अभी भी इस योजना के तहत काम कर रही हैं, लेकिन उनकी संख्या घट रही है। इसका कारण यह है कि महिलाएँ स्वयं सहायता समूहों और केंद्र सरकार व राज्य सरकार की नई योजनाओं के माध्यम से अन्य क्षेत्रों में काम करने जा रही हैं। इसलिए मनरेगा योजना में सदर प्रखंड की महिलाओं की भागीदारी दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है। लेकिन अभी भी कुछ अशिक्षित महिलाएँ, जिनके पास कोई कौशल नहीं है, मनरेगा योजनाओं में काम कर रही हैं और अपने परिवार के लिए कमाई कर रही हैं और उनका पालन-पोषण कर रही हैं।

स्व-रोजगार (हस्तकला, बुनाई, सिलाई) ,घरेलू कामगार महिलाएं:- जनगणना-2011 के अनुसार, दरभंगा जिले के सदर प्रखंड में महिलाएं पारंपरिक कौशल (जैसे हस्तशिल्प, बुनाई, सिलाई) के माध्यम से स्वरोजगार की ओर तेजी से बढ़ रही थीं, लेकिन प्रशिक्षण की कमी और योजनाओं के उचित क्रियान्वयन के अभाव में महिलाओं तक इन तरीकों का उतना प्रभाव नहीं पड़ रहा था जितना उन्हें चाहिए। लेकिन आजकल ये तरीके सदर प्रखंड की महिलाओं के लिए कमाई का एक बड़ा जरिया बन रहे हैं। इससे न केवल उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है, बल्कि वे सामाजिक और राजनीतिक रूप से भी सशक्त हो रही हैं। महिलाओं के लिए घर बैठे कमाई का यह एक आसान तरीका है और उन्हें सरकारी योजनाओं और स्थानीय स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से कच्चा माल भी मिल रहा है। महिलाएं आसानी से उत्पाद बनाकर स्थानीय बाजार में बेच रही हैं क्योंकि जिला शहर सदर प्रखंड की सीमा से सटा हुआ है, इसलिए बिक्री के लिए अधिक शहरी बाजार उपलब्ध हैं।

हाल ही में सदर प्रखंड क्षेत्र के दौरे और इस प्रखंड की महिलाओं से बातचीत के दौरान, हमने पाया कि हस्तशिल्प के काम से कमाई स्थानीय महिलाओं के लिए एक अच्छा विकल्प बन गया है। मुख्य अंतर यह है कि वे कच्चे माल की आसान उपलब्धता, स्वयं सहायता समूह की सदस्यों द्वारा समय-समय पर दिए जाने वाले प्रशिक्षण और सरकारी योजनाओं के माध्यम से कमाई कर रही हैं। इस तरह, महिलाएँ कम समय में अधिकतम कमाई कर रही हैं। इस सुधार का मुख्य कारण क्षेत्र के विभिन्न हिस्सों में उत्पादों की ऑनलाइन बिक्री है। इससे उन्हें अधिक धन और अधिक उत्पादों के लिए अधिक ऑर्डर मिल रहे हैं। इससे सदर प्रखंड की महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है। जनगणना 2011 के समय

लगभग 24 प्रतिशत आय अर्जित करने वाली महिलाएं इस श्रेणी में आती थीं, लेकिन अब महिलाओं की संख्या बढ़कर 35 प्रतिशत हो गई है, जिसके पीछे मुख्य कारण बेहतर कौशल विकास और शिक्षा के स्तर में सुधार, विभिन्न सरकारी महिला आर्थिक विकास योजनाओं का समर्थन है।

सरकारी व निजी नौकरी (आशा, आंगनवाड़ी, शिक्षिका):-

1. **आशा (मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता)** - इनका मुख्य कार्य समुदाय और स्वास्थ्य सेवाओं के बीच सेतु का काम करना है। इसमें स्वास्थ्य समस्याओं की जानकारी देना, गर्भवती महिलाओं की देखभाल, टीकाकरण, परिवार नियोजन और लोगों को सरकारी स्वास्थ्य कार्यक्रमों के बारे में जागरूक करना शामिल है। सदर ब्लॉक में आशा कार्यकर्ताओं के साथ मेरी बैठक में, मैंने पाया कि सरकार की यह योजना ग्रामीण महिलाओं के लिए बहुत उपयोगी है, सबसे पहले यह महिलाओं के लिए रोजगार पैदा कर रही है, इसके बाद यह उन ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य के मुद्दे को समझने और उनका इलाज करने में बहुत उपयोगी है जो अपने पारिवारिक मुद्दों, गरीबी के कारण बाहर नहीं जा रही हैं। क्योंकि शिक्षा के बाद, अच्छा स्वास्थ्य भी महिलाओं के लिए बहुत महत्वपूर्ण कारक है, जब उन्हें उचित शिक्षा मिलेगी, स्वस्थ रहेंगे तो वे सकारात्मक सोच सकते हैं और अपने सशक्तिकरण के लिए काम कर सकते हैं।

2. **आँगनवाड़ी कार्यकर्ता:-**
   आँगनवाड़ी कार्यकर्ता एकीकृत बाल विकास सेवा (ICDS) कार्यक्रम के अंतर्गत बच्चों (0-6 वर्ष), गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली माताओं की पोषण, स्वास्थ्य और शिक्षा संबंधी ज़रूरतों को पूरा करती हैं। इसमें बच्चों को स्कूल-पूर्व शिक्षा प्रदान करना, पूरक पोषण प्रदान करना, स्वास्थ्य जाँच में सहायता करना और माताओं को स्वास्थ्य शिक्षा देना शामिल है। आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को पूर्ण सरकारी कर्मचारी का दर्जा प्राप्त नहीं है, लेकिन वे सरकारी योजनाओं के तहत काम करती हैं और मानदेय प्राप्त करती हैं। आवेदक उसी राजस्व गाँव या वार्ड का मूल निवासी होना चाहिए जिसके लिए आँगनवाड़ी केंद्र आवेदन कर रहा है।

3. **महिलाओं द्वारा शिक्षण कार्य:-** शिक्षित महिलाओं का एक समूह मुख्यतः शिक्षण कार्य में संलग्न है, मुख्यतः दो प्रकार के शिक्षण कार्य वे निजी और सरकारी कर रही हैं। निजी शिक्षण कार्य में वे निजी स्कूल में नौकरी कर रही हैं। साथ ही, कुछ महिलाएँ अतिरिक्त आय प्राप्त करने के लिए छात्रों को ट्यूशन भी पढ़ा रही हैं। लेकिन दोनों ब्लॉकों में अच्छे निजी स्कूलों की उपलब्धता कम होने के कारण नौकरी के अवसर कम हैं। आवश्यक योग्यता के साथ प्रतियोगी परीक्षा देने के बाद सरकारी स्कूल में नौकरी प्राप्त करना। सदर ब्लॉक के मेरे गाँव-गाँव के दौरे के अनुसार, प्रत्येक गाँव में महिला

सरकारी शिक्षिका हैं। जो छात्रों को उचित शिक्षा प्रदान कर रही हैं और अन्य महिलाओं और लड़कियों को स्कूल में शामिल होने और उचित शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित कर रही हैं। और अपने परिवार के लिए अच्छी कमाई करने वाली सदस्य बन रही हैं। इस तरह आर्थिक विकास और सशक्तिकरण के लिए शिक्षण कार्य भी महिलाओं के लिए उपयुक्त है। वर्तमान में 2011 की जनगणना के अनुसार महिलाओं की संख्या बढ़ रही है, 2011 की जनगणना के समय केवल 6 प्रतिशत महिलाएं इस श्रेणी में भाग ले रही थीं, लेकिन अब दौरे और डेटा संग्रह के अनुसार सदर ब्लॉक में शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं का प्रतिशत बढ़ रहा है। इसके अलावा सदर ब्लॉक में महिलाएं निजी शिक्षण कार्य कर रही हैं क्योंकि बहुत सारे निजी स्कूल उपलब्ध हैं। दरभंगा शहर में कई शॉपिंग मॉल उपलब्ध हैं, इसलिए सदर ब्लॉक की महिलाएं सेल्स एग्जीक्यूटिव के रूप में भी काम कर रही हैं। इसलिए बहेड़ी ब्लॉक की तुलना में सदर ब्लॉक में महिलाओं के लिए अतिरिक्त नौकरी के अवसर अधिक हैं।

4. स्वयं सहायता समूह (SHG):-

स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन और महिला सशक्तीकरण के लिए एक बुनियादी ढांचे के रूप में काम करते हैं। ये अनौपचारिक, महिलाओं द्वारा संचालित समूह हैं, जिनमें आमतौर पर 10-20 ग्रामीण महिलाएं शामिल होती हैं, हालांकि कुछ स्रोतों में 5-7 सदस्यों का भी उल्लेख है। सदर और बहेड़ी ब्लॉकों में, ज़िले में जीविका मॉडल का मज़बूत कार्यान्वयन देखने को मिलता है, जिसका प्रमाण पर्याप्त ज़िला-स्तरीय वित्तीय संपर्क और निरंतर स्वयं सहायता समूहों का गठन है। समर्पित ब्लॉक-स्तरीय इकाइयों और पदाधिकारियों की मज़बूत उपस्थिति इन विशिष्ट क्षेत्रों में जीविका की संचालनात्मक गहराई और प्रतिबद्धता को और रेखांकित करती है। यह महिलाओं की वित्तीय सहायता प्रणाली का एक अभिन्न अंग है और यह महिलाओं को स्वयं सहायता समूह (SHG) सदस्य के रूप में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित कर रहा है।

हमने सदर प्रखंड की सभी पंचायतों का दौरा किया और साक्षात्कार लिए। सबसे पहले हमने उनकी शिक्षा के स्तर की जाँच की और चर्चा की, फिर महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए राज्य और केंद्र सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न आर्थिक योजनाओं के बारे में उनके ज्ञान और लाभों के स्तर की जाँच की। महिलाओं की साक्षरता दर बहेड़ी प्रखंड से सदर प्रखंड से बेहतर है। मेरे अनुसार, 200 नमूनों में से 85 महिलाएँ शिक्षित हैं और 115 महिलाएँ निरक्षर हैं। ये निरक्षर महिलाएँ समाचार पत्रों या किसी सरकारी वेब पोर्टल के माध्यम से कोई जानकारी प्राप्त करने में असमर्थ हैं। वे पूरी तरह से अपने शिक्षित परिवार के सदस्यों पर निर्भर हैं। लेकिन वे परिवार के सदस्यों या सरकार द्वारा संचालित शाम के स्कूल की मदद से खुद को शिक्षित करने का प्रयास कर रही हैं। अब

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

सदर प्रखंड की महिलाएँ जमीनी स्तर पर शिक्षा के महत्व को समझ रही हैं और वे खुद को शिक्षित करने के साथ-साथ परिवार और समाज में प्रत्येक रचनात्मक गतिविधियों में भाग लेने का प्रयास कर रही हैं।

इसके अतिरिक्त, हमने महिलाओं की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए सदर प्रखंड में चल रही सरकारी योजनाओं के बारे में उनसे चर्चा की और जानकारी ली। पाया गया कि 120 महिलाओं को योजनाओं की जानकारी है और 80 महिलाओं को नहीं। इस संबंध में, औसतन लगभग 60% महिलाओं को सरकारी योजनाओं का उचित लाभ मिल रहा है और 40% महिलाओं को उचित लाभ नहीं मिल रहा है। इसलिए, प्रत्येक महिला को योजनाओं की उचित जानकारी देने की आवश्यकता है ताकि वे लाभ उठा सकें और आर्थिक रूप से विकसित हो सकें। इसके लिए सामाजिक और स्थानीय स्तर पर प्रयास करने होंगे। मुख्य रूप से जिला और ब्लॉक स्तर के सरकारी प्रतिनिधियों को उचित जिम्मेदारी लेनी चाहिए और पंचायत और वार्ड स्तर तक जानकारी पहुँचानी चाहिए ताकि वार्ड सदस्य अपने वार्ड की महिलाओं के लिए बैठकें बुला सकें और योजनाओं की उचित जानकारी दे सकें। यह नियमित अंतराल पर जारी रहना चाहिए। इसके अलावा, वरिष्ठ प्रबंधन को जिला और ब्लॉक स्तर के प्रतिनिधियों के साथ भी समीक्षा करनी चाहिए। इससे महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण बेहतर होगा।

शोध के उद्देश्य-

1. निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी का अध्ययन करना।
2. दरभंगा जिले के बहेड़ी और सदर प्रखंड में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में महिलाओं की बदलती भूमिका का अध्ययन करना।
3. अर्ध-शहरी और ग्रामीण प्रखंड क्षेत्रों में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति का पता लगाना।

शोध विधि-

प्रस्तुत शोध विधि वर्णनात्मक है। शोध विधि में प्रयुक्त आँकड़े क्षेत्रीय कार्य, महिलाओं से मुलाकात और साक्षात्कार, पत्रिकाओं, पुस्तकों, पत्रिकाओं और इंटरनेट से लिए गए हैं।

निष्कर्ष:-

सदर और बहेड़ी ब्लॉक की महिलाओं की आर्थिक पृष्ठभूमि शुरुआत में समृद्ध नहीं थी। हालाँकि कमाई के कई तरीके उपलब्ध थे, लेकिन महिलाओं की भागीदारी अच्छे स्तर तक नहीं थी। केवल कुछ ही महिलाएँ इन तरीकों से कमाई कर रही थीं, जैसे कृषि, मनरेगा योजना कार्यकर्ता, हस्तशिल्प, शिक्षण

कार्य (सरकारी और निजी स्कूल शिक्षिका के रूप में), स्वयं सहायता समूहों में भागीदारी आदि। अब महिलाएँ अपने परिवार की कामकाजी सदस्य हैं जो अलग-अलग तरीकों से अपना और परिवार का खर्च चलाती हैं। इसलिए आजकल महिलाएँ आर्थिक रूप से अधिक सशक्त हो रही हैं और इससे उन्हें आत्मविश्वास मिलता है और परिवार और समाज में उनकी कद्र होती है। अधिक सशक्तीकरण के लिए सरकारी सहायता और परिवार का सहयोग, अधिक शिक्षा। ये भविष्य के नेतृत्व और समाज में पुरुषों और महिलाओं के लिए समान स्थिति के लिए बुनियादी कदम हैं।

संदर्भ :-

1. *Ministry of Women and Child Development. (2021–2022). वार्षिक प्रतिवेदन 2021–22 [Annual report]. भारत सरकार.*
2. *Kumari, Swati. (2023–2025). बहेड़ी एवं सदर प्रखंड की महिलाओं की बैठक एवं साक्षात्कार के आंकड़े [Unpublished raw data].*
3. *District Election Office, Darbhanga. (2021). Darbhanga district report [Government report]. Government of Bihar.*
4. *Department of Social Welfare, Bihar. (2021–2022). Annual report 2021–22 [Government report]. Government of Bihar.*
5. *Sharma, R. (2016). Mahila sashaktikaran: Swaroop aur aayam [Women's empowerment: Forms and dimensions]. Rawat Publications.*

माधव कौशिक की कहानियों में संवेदना के विविध पक्ष

सौरभ सिंह
शोधार्थी हिंदी–विभाग
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल (केंद्रीय) विश्वविद्यालय श्रीनगर, (गढ़वाल),

साहित्य संवेदनाओं का पुंज है, संवेदनाएं साहित्य के चरित्र और उसकी आत्मा को स्पष्ट करती है। साहित्य मानव जीवन और समाज का एक ऐसा चित्रण है जिसमें संवेदनाओं के माध्यम से पाठकों का साधारणीकरण होता है। वस्तुत संवेदना शब्द से तात्पर्य– सहानुभूति व हमदर्दी से है। संवेदना ही मानव के अंतर्मन की सर्वाधिक पवित्र भावना है। सहानुभूति के साथ कहे गए शब्द भले ही किसी व्यक्ति के कष्ट का निवारण न करें पर उसके मन को राहत अवश्य देते हैं। कष्ट में व्यक्ति जब किसी दूसरे व्यक्ति को देखता है तो उसका मन और अधिक भाव–विह्वल हो उठता है। निश्चय ही संवेदना हमें आत्मीयता के घनिष्ठ बंधन में बाँधती है और साहित्य से बढ़कर किसी अन्य तत्त्व द्वारा इसकी संप्रेषणीयता होना असंभव है। डॉ. सुरेश सिन्हा के शब्दों में– "**साहित्य संवेदना से अभिप्राय है वह अनुभूति–प्रवणता, जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रभावों को ग्रहण करने की क्षमता से पूरित होती है। इसका अर्थ यह भी होता है कि कोई साहित्य किन भावनाओं की प्रतीति हमें करा सकने में समर्थ होता है। भावनाओं के ये स्तर विविध होते हैं। वह आधुनिक बोध भी हो सकता है या मानव–अस्तित्व की बुनियादी विशेषताएँ भी। वह व्यक्ति–स्वातंत्र्य की भावना भी हो सकता है या यथार्थ के नए तत्त्वों की अन्विति भी। संवेदना का धरातल चाहे जो हो, अभिव्यक्ति उसे साहित्य के माध्यम से ही मिलती है। नई अनुभूति, नई भाषिक अर्थवत्ता, अनुभवों का नया संयोजन तथा मानव–संबंधों के परिवर्तन की सूक्ष्म परख आदि से ही साहित्य की संवेदना व्यंजित होती है।**[19]" अतः साहित्य में संवेदना का अर्थ भावों के द्वारा व्यक्त की गई अनुभूतियों से है, साहित्य द्वारा रचनाकार करुणा, भय, प्रेम, निराशा, कुंठा, क्रोध आदि भावों से पाठक का साधारणीकरण करता है। साहित्य प्रमुखतः संवेदनाओं का लिखित रूप होता है, बिना संवेदनाओं के साहित्य का कोई औचित्य नही है क्योंकि संवेदनाओं से ही साहित्य का पोषण होता है। साधारण जन की संवेदनाएं भी साहित्य

[19] सिन्हा डॉ. सुरेश, हिंदी उपन्यास, पृ० सं०–57

की पोषक होती है। साहित्य और संवेदनाओं के अंतरसंबंध को समझने के लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन उपयुक्त होगा– ''**प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चितवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चितवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।**[20]'' अर्थात किसी भी देश का साहित्य उस दौर के समाज में निवास करने वाले विभिन्न वर्गों की संवेदनाओं का ही प्रतिफलन होता है और संवेदनाओं का रूप और स्तर समय के साथ परिवर्तित भी होता है जिसे कवि समकाल के साथ ग्रहण कर साहित्य के माध्यम से प्रतिपादित करता है।

साहित्यबोध के इस प्रांगण पर माधव कौशिक एक शीर्ष रचनाकार के दायित्व का निर्वहन करते हैं, जिनकी लेखनी ने साहित्य को विविध विधाओं से सुसज्जित किया है। जैसा कि बाबू गुलाबराय ने लिखा है – **"एक अच्छा साहित्यकार अपने युग का मुख और मस्तिष्क होता है। मस्तिष्क में जो विचार उठते हैं, वही मुख उच्चरित करता है। युग में जो आवाज उठती है, साहित्यकार उसी को प्रतिध्वनित करता है।[21]"** इस परिप्रेक्ष्य में माधव कौशिक का रचना संसार अभिव्यक्ति के सम्पूर्ण संस्कारों से पोषित है। एक प्रतिष्ठित गज़लकार होने के साथ–साथ उन्होंने कविता, नवगीत, खंडकाव्य, नाटक, कहानी आदि विधाओं के अद्‌भुत कलेवर साहित्य को दिए हैं। उन्होंने जिन पात्रों को रचा है, वे समाज के सामने परिवर्तन और आत्मावलोकन की चुनौतियों को दरपेश करती मनुष्य की चेतना है। यह सबसे गंभीर संदेश है कि उनका लेखन मनुष्य और उसकी मनुष्यता को परिभाषित करता है। राग–रंग के विषयों को अथवा अभाव और अवसाद की संवेदना को दोनों ही सतहों पर उनकी पक्षधरता जीवित रही है।

समकालीन साहित्य के संदर्भ में माधव कौशिक एक ऐसे रचनाकार हैं, जिनकी संवेदनाओं में साहित्य स्वयं यात्रा करता है। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, भारतीय मूल्यों के पक्षधर और अभावग्रस्त आदमी के हिस्से में एक उजाले की तरह उनकी कलम गतिमान है। विगत पाँच दशकों से साहित्य के आंगन में उनकी आहट आश्चर्यचकित करती है। मूलतः गजलकार के रूप में विख्यात रचनाकार माधव कौशिक जी ने काव्य की विविध विधाओं पर जैसे– कविता, नवगीत, खंडकाव्य, गजल, बाल साहित्य, अनूदित साहित्य पर लेखनी चलाई है। गद्य साहित्य की दृष्टि से देखें तो कहानी तथा नाटक उनके प्रिय विषय रहे हैं। अपने संपूर्ण व्यक्तित्व में उन्होंने अपने

---

20 शुक्ल आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, 2021, पृ० सं०–भूमिका

21 मिलिंद सत्य प्रकाश, साहित्य समालोचन, सूर्य प्रकाशन, नई सड़क नई दिल्ली, 1962, पृ० सं०–09

समय और समाज को पूरी आश्वस्ति के साथ चित्रित किया है। समकालीन साहित्य की विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं को यदि एक प्लेटफॉर्म पर देखना हो तो विवेच्य रचनाकार माधव कौशिक का साहित्य उसका दर्पण है। माधव कौशिक की कहानियों के विषय अपने आस–पास की घटनाओं पर आश्रित हैं। वे अपनी बात कहने के लिए किसी अयथार्थ व काल्पनिक दुनिया का सहारा नहीं लेते बल्कि यथार्थ के धरातल पर जो कुछ भी घट रहा होता है उसे ही वे अपनी सीधी–सपाट भाषा में बड़ी ही गंभीरता और संजीदगी से दर्ज करते हैं। माधव कौशिक का साहित्य अपने युग के महत्वपूर्ण प्रश्नों एवं समस्याओं को लेकर मुखरित होता है, जिसमें वे स्वयं जूझते हुए दिखाई पड़ते हैं। उनकी कहानियों में समकालीन जीवन–स्थितियों का सूक्ष्मता से अंकन किया गया है। माधव कौशिक की कहानियों में आतंकवाद व सांप्रदायिकता से उत्पन्न तनाव, उपभोक्तावादी अपसंस्कृति के कारण संयुक्त परिवारों का टूटन है तो दूसरी ओर उत्तर–आधुनिक युग में अनेक स्तरों पर होने वाले संबंध विच्छेद जैसी समस्याओं के चित्रण के साथ संवेदना के विविध स्तर दिखाई देते हैं। अपनी कहानियों के माध्यम से वे वैश्वीकरण के दौर में उत्पन्न तमाम जटिलताओं एवं निराशा के बाद भी श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों को स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हैं। कहानीकार माधव कौशिक ने अपनी कहानियों में संवेदना के विविध रूपों को दर्शाया है– अमीर–ग़रीब, बच्चा–बूढ़ा, शिक्षित–अशिक्षित आदि संपूर्ण समाज उनकी कहानियों में प्रतिबिंबित हो उठा है। माधव कौशिक की कहानियों का फलक बड़ा व्यापक है, उन्होंने भारतीय समाज के निम्न मध्यम वर्ग की संवेदनाओं को बड़ी ही मार्मिकता से प्रस्तुत किया है। माधव कौशिक की अधिकांश कहानियों में संवेदना को उजागर करने वाले आधारों में मुख्य रूप से राजनीतिक और सामाजिक कारण ही रहे हैं।

राजनीति समाज को प्रत्यक्षरूप से प्रभावित करती है और राजनीति से व्यक्ति प्रत्यक्ष संवेदना ग्रहण करता है। माधव कौशिक की कहानियों में 1990 के दशक के बाद की राजनीति में आए परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं जिसका अंकन वे मुख्य रूप से 'दंगल' एवं 'अभियान' कहानी में करते हैं। देश की राजनीति में सभी राजनीतिक दलों द्वारा चुनाव जीतने के लिए किस प्रकार षड्यंत्रों को रचा जाता है उस पर भी माधव कौशिक अपनी पैनी नजर बनाए रखते हैं। 'दंगल' कहानी में यह दिखाया गया है कि राजनीतिक दलों द्वारा चुनाव में कैसे धन एवं संस्थाओं का दुरुपयोग होता है। कहानी में लेखक बदलू राम के माध्यम से चुनावी खर्च का विवरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि **''जानते हो, पूरे डेढ़ हजार करोड़ का खर्च आएगा इस इलेक्शन पर[22]''** और अंत में किस प्रकार से उस धन की वसूली आम जनता से की जाती है। उस पर कहानी में रमलू

---

22 वही, पृ० सं०–27

अपनी प्रतिक्रिया देते हुए कहता है **"डेढ़ हजार करोड़ लगाकर भी अगर देश को इन हरामियों से छुटकारा मिले तो भी सौदा ज्यादा महंगा नहीं है, मगर निकलेगा तो हमसे ही..........। निकलता तो आम जनता से ही है। चुनाव नहीं होते तो भी निकलता।[23]"** उन्होंने प्रमुख रूप से राजनीति को ही समाज में उत्पन्न सभी अव्यवस्थाओं का मूल कारण माना है। राजनीति ही किसी भी देश की दशा और दिशा को निर्धारित करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उनकी 'अभियान' कहानी में मंत्री जी जब चुनाव नतीजों को अपने प्रतिकूल पाते हैं तो वे अपने सहयोगी लाला रामदीन से कहते है कि **"बापू के सिद्धांत के विपरीत थोड़ा–सा चलना पड़ें तो कोई बुराई नहीं; एक बार स्थगित होने के बाद कुछ समय बाद फिर मतदान होगा; यही हालात उस समय भी रहे तो.. हम फिर इसी को दोहरा देंगे जब तक हमारी विजय निश्चित नहीं हो जाती।[24]"** इस प्रकार माधव कौशिक विचारधारा विहीन राजनीति को समाज की दुर्गति का कारण ठहराते हैं। जोकि, व्यक्तिगत लाभ और सत्ता में बने रहने की लालसा के कारण ही पूरे समाज को आग की भट्टी में झोंकने का काम कर रही है। इसी प्रकार 'दंगल' कहानी में सभी राजनीतिक दल स्वामी अखंड़ानन्द को चुनाव मैदान में उतारकर उनकी लोकप्रियता का लाभ उठाना चाहते थे। जिसके लिए स्वामी जी को राजनीतिक दलों द्वारा कभी देश की एकता और अखंडता का भय दिखाकर तो कभी संसद में जाने का लालच देकर चुनाव मैदान में उतारने का भरसक प्रयास किया गया। किन्तु जब स्वामी जी पर भय और लालच के दोनों ही दांव नहीं चल पाते हैं तो अंत में उनके समाज–सेवा के आश्रमों पर सरकारी संस्थाओं के द्वारा भ्रष्टाचार के झूठे आरोप लगा दिए जाते हैं। जिस पर स्वामी जी को अंत में हार माननी पड़ती हैं– **"स्वामी जी... वास्तव में इस पूरे क्षेत्र में उन्हें कोई स्वच्छ और सही छवि का नेता नहीं मिल रहा। सभी दलों के अधिकतर नेताओं की कारगुजारियाँ अच्छी नहीं है। उनकी इस धूमिल छवि के कारण लोग उन्हें वोट देने भी तैयार नहीं हैं। इसीलिए तो ये आपके पीछे पड़े हैं।[25]"**

माधव कौशिक समकाल में उपजी समस्याओं का हल ऐतिहासिक पात्रों और उनकी वैचारिकता के आधार पर ढूंढने का प्रयास करते हैं। नैतिकता के सबसे बड़े पैरोकार, सत्य के लिए जहर का घूंट पीने वाले यूनानी दार्शनिक सुकरात भी उनकी कहानियों के पात्र बनते हैं। सुकरात के चरित्र को आधार बनाकर उन्होंने 'सुकरात नहीं मरता'

23 वही, पृ० सं०–27
24 कौशिक माधव, माधव कौशिक की प्रतिनिधि कहानियाँ, यश पब्लिशर्स एंड़ डिस्ट्रिब्यूटर्स, शाहदरा नई दिल्ली, 2019, पृ० सं०–47
25 वही, पृ० सं०–33

कहानी लिखी है। कहानी में उमेश व मोलड दास उर्फ एम.डी जैसे पात्रों के माध्यम से बेरोजगारी की समस्या का चित्रण करते हुए कहते हैं **''सुनो, ये पढ़ाई–लिखाई सब कूड़ा, एकदम कबाड़। डिग्री लेकर बाहर आओगे तो कोई टके की भी नहीं पूछेगा। सब सिफारिश है, घूस है घूस। साले, जितने अच्छे हलवाई थे, सब अफसर हो गए और अच्छे अफसर बन सकने वाले हलवाई बन बैठे। साले....हरामी.... माँ के यार.... ।[26]''** भाषा में विद्रोह के स्वर के साथ कहानी में एम.डी बेरोजगार युवाओं को जागृत करने का प्रयत्न करते हुए कहता है कि ऐसी शिक्षा का कोई लाभ नहीं जब चयन की सम्पूर्ण प्रक्रिया में ही कोई पारदर्शिता न हो। व्यवस्था कैसे किसी योग्य व्यक्ति को रोजगार की पंक्ति से बाहर कर उसके स्थान पर अपने प्रिय या व्यवस्था में बैठे हुए लोगों की चापलूसी करने वालों को तरजीह देती है। बेरोजगारी की समस्या आधुनिक समय में कैसे व्यक्तिगत एवं पारिवारिक संबंधों में नकारात्मक परिवर्तन ला रही है। इसका चित्रण उनकी 'विकल्प' कहानी में देखने को मिलता है। कहानी में बेकारी की समस्या से जूझते हुए 'संजू' का चित्रण किया गया है। जब संजू, रामू के नौकरी लगने की खबर सुनता है तो वह मन ही मन कुढ़ने लगता है। वह चाहता है कि उसके पिता रामेश्वर दयाल भी उसकी नौकरी के लिए किसी से सिफारिश करें। किन्तु पिता रामेश्वर दयाल एक नैतिक व्यक्ति हैं जिनके अपने कुछ आदर्श और सिद्धांत हैं, जिनका पालन वे अपने अब तक के जीवन में करते आए हैं। इन्हीं आदर्शवादी सिद्धांतों के कारण पिता रामेश्वर दयाल और बेटे संजू के संबंधों में एक अनकहा सा तनाव खिंच जाता है। संजू को पिता रामेश्वर दयाल का इस तरह नैतिक और आदर्शवादी बने रहना उचित नहीं लगता, जिस कारण उनके प्रति उसके मन में रोष उत्पन्न हो जाता है। जब संजू हर संभव तरीके से पिता के सामने अपना विरोध प्रकट करता है तो मास्टर रामेश्वर दयाल कहते है कि– ''**संजू की माँ, मैं सब समझता हूं, मगर लाचार हूं। कुछ नहीं कर सकता। तुम्हारे सामने वह बोल तो पड़ा। मैंने तो उसका चेहरा पढ़ा है। कहते हुए आदमी काफी कुछ लोक–लिहाज की वजह से कह नहीं पाता है। मगर मुझे सब पता है वह क्या–क्या सोचता है, उसके मन में कैसे–कैसे विचार उठते रहते हैं।[27]''** इस प्रकार वे पात्रों के मनोविश्लेषण से वर्तमान की तमाम समस्याओं और उनसे उपजी संवेदनाओं का कथाभूमि में प्रसार करते हैं। यही मनोवैज्ञानिकता माधव कौशिक की कहानियाँ– 'निहत्थे' और 'ताबीज' में मानवता के प्रति संवेदनहीनता के रूप में दिखती है। उनकी कहानियों में शहरों के युगीन परिस्थितियों के कारण आयी उच्छृंखलता तथा उससे प्रभावित जन–जीवन का एक

---

[26] वही, पृ० सं०–10

[27] वही, पृ० सं०–51

यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। कहानियों में परिवेश में व्याप्त आतंकवाद और सांप्रदायिकता, शहरों के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करते हुए दिखाई पड़ते हैं। 'ताबीज' कहानी में 'रमई काका' जो कभी हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रतीक हुआ करते थे और जिन्होंने देश–बंटवारे के समय अपनी जान की बाजी लगाकर एक लाठी के दम पर पूरे गाँव के गाँव को सुरक्षित किया था। आज उनका ही पोता कल्लू इस ऐतिहासिक नगर को लहू–लुहान करने में लगा हुआ है। कल्लू जिसे कभी मस्जिद के ही मौलवी ने नया जीवन दिया था। वही कल्लू आज मस्जिद को आग के हवाले कर मानवता के सीने मैं खंजर गोदने का काम कर रहा है। जिसको देख रमई काका का खून खौल उठता, उनका मन होता कि कल्लू का गला घोंट दें किन्तु बुढ़ापे की लाचारी के सामने उनकी भावनाएँ रेत की तरह भुरभुरा जाती थी।

माधव कौशिक ने अपनी कहानियों में हीन भावना से पीड़ित पात्रों का चित्रण बखूबी किया है। उनके पात्रों में जो हीनता का बोध है वह मुख्यतः भाषा के आधार पर या अपने पारिवारिक परिवेश को लेकर है। कहानी 'सन्नाटे के विरुद्ध' में बाबू पन्नालाल का छोटा बेटा अवध पिता और उनके घर को पुरातन मान बैठा है जिस कारण उसे अपने आधुनिक विचारों के आगे अब वह सब कमतर लगने लगा है। घर की स्थिति को देखकर वह पिता को कोसते हुए कहता है– **''क्या घर है? न ढंग का किचन, न बाथरुम और न लैट्रिन। सिर्फ बाबा–आदम के जमाने के चार कमरे हैं। इस पर भी उनकी बरसों से न मरम्मत, न रंग रोगन।**[28]'' ठीक उसी प्रकार भाषाई स्तर पर हीनता का बोध उनकी 'वेटिंग लिस्ट' कहानी के पात्र रीमा में भी दिखाई पड़ता है। जहां रीमा अपने बेटे बिट्टू के स्कूल जाने के लिए फिक्रमंद तो है साथ ही उसे इस बात का एहसास भी है कि बिट्टू का दाखिला आस–पास के बच्चों की तरह ही किसी अंग्रेजी स्कूल में हो। जिसके लिए वे प्रशांत से हठपूर्वक कहती है **''सारे सैक्टर के बच्चे इंग्लिश स्कूल में पढ़ते हैं। हम ही क्यों भेजें हिंदी में? हम भी अपने बेटे को अंग्रेजी पढ़ाएंगे। हिंदी में तो बस हिंदी ही है।**[29]'' जब प्रशांत उसका उत्तर देते हुए कहता है कि **''हम भी हिंदी स्कूलों में पढ़ें हैं।**[30]'' तो रीमा, प्रशांत को तंज कसते हुए कहती **''फिर कौन से अफसर बन गए? रह गए न क्लर्क के क्लर्क। फ्री में पढ़े हो तो नौकरी भी फ्री जैसी ही मिली न। मैं कहती हूं जितना गुड़ डालोगे, उतना ही**

[28] वही, पृ० सं०–74
[29] वही, पृ० सं०–71
[30] वही, पृ० सं०–71

मीठा होगा।[31]'' इस प्रकार माधव कौशिक जी भाषा–अभिव्यक्ति और पात्र–संवाद के माध्यम से भी अपने साहित्य में संवेदनाओं को चरमस्तर पर पहुंचाते हैं।

माधव कौशिक ने अपनी कहानियों में तत्कालीन भारतीय समाज की लगभग हर संवेदना को उठाया है। समाज में व्याप्त सभी विसंगतियों पर माधव कौशिक की लेखकीय दृष्टि एकसमान रूप से पड़ती है वह चाहें 'विकल्प' कहानी में वर्णित बेरोजगारी का मसला हो, 'सन्नाटे के विरुद्ध' कहानी में वृद्धावस्था में अकेलेपन से लड़ने का, 'ठीक उसी वक्त' कहानी में प्रसव वेदना और कर्फ्यू से उत्पन्न मानसिक तनाव, 'वेटिंग लिस्ट' कहानी में शिक्षा के व्यावसायीकरण, 'काल देवता' कहानी में महानगरीय तटस्थता एवं पीढ़ीगत अंतराल तथा 'निहत्थे' एवं 'ताबीज' कहानी में सांप्रदायिकता एवं आतंकवाद आदि। इसी प्रकार 'निहत्थे' कहानी में माधव कौशिक आतंकवाद की समस्या से त्रस्त मनुष्य की मनोदशा का चित्रण करते हैं। कहानी में शोभा शहर के बिगड़ते हुए माहौल को देख रमेश को नौकरी से छुट्टी लेने, नौकरी छोड़ने व शहर को छोड़ने के लिए कहती है। जिस पर रमेश कहता कि **''तुम समझती क्यों नहीं शोभा, आदमी अपना घर–बार, अपना शहर छोड़कर आखिर कहाँ जा सकता है?[32]''** आगे कहानी में लेखक वर्मा जी माध्यम से यह संकेत करते हैं कि कैसा समय आ गया है। जब व्यक्ति अपने ही शहर में सुरक्षित नहीं है और वह जान बचाने के लिए इधर उधर मारा फिर रहा है। **''भाई जान बची रहेगी तो सौ तरह के काम मिल जाएंगे। यहाँ तो कब किसका पैगाम आ जाए, कुछ पता नहीं। मेरी मानो तो तुम भी कोई बंदोबस्त कर लो[33]''**

हिंदी साहित्य में 20वीं सदी के अंतिम दशक में नारी विमर्श प्रमुख रूप से मुखरित हुआ। माधव कौशिक अपनी कहानियों में नारी, अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती हुई दिखाई पड़ती है। उनकी कहानियों की स्त्री दमन को सहन नहीं करती बल्कि उसका विरोध भी करती हैं। उनकी 'ऑफिसर्ज क्लब' कहानी में मिस सविता अग्निहोत्री क्लब में चल रहे 'ब्यूटी ऑफ द मंथ' जैसे स्त्री देह का वस्तुकरण आदि आयोजनों का विरोध करती है। मिस सविता, मल्होत्रा के माध्यम से समाज में स्त्री देह के प्रति जो सुंदर–असुंदर का दृष्टिकोण है उस पर सवाल खड़े करते हुए कहती है **''एक महिला का सम्मान करने के लिए पता नहीं क्यों, आप दूसरी महिलाओं का अपमान करते हैं। हर महिला अपनी तरह से सुंदर होती है। मगर इसका मेजरमेंट आपके**

---

31 वही, पृ० सं०–71
32 वही, पृ० सं०–35
33 वही, पृ० सं०–35

पास नहीं है।[34]'' मिस सविता समाज की इस कुत्सित मानसिकता के विरोध के साथ ही वह महिला अधिकारों की बात को आगे बढ़ाते हुए कहती है क्या **''मल्होत्रा साहब ने अपनी पत्नी को कभी यह अधिकार नहीं दिया कि वह किसी 'मिस्टर स्मार्ट का चयन करें।[35]''** पुरुषों को प्राप्त चयन की स्वतंत्रता के समान ही वह महिलाओं से कहती है कि **''मैं सभी महिलाओं से अपील करूंगी कि वे खुलकर अपनी पसंद और नापसंदगी का इजहार कर सकती हैं।[36]''** इस प्रकार माधव कौशिक स्त्री अधिकारों और उनकी स्वतंत्रता की बात मिस सविता जैसे पात्रों के द्वारा करते हैं।

माधव कौशिक की कहानियों की दुनिया घर–परिवार, गाँव, महानगरों की ओर पलायन कर चुके लोग जैसे विषयों के इर्द–गिर्द ही रहती है। 'काल देवता' कहानी में अभिषेक पिता मास्टर बिहारी लाल की मृत्यु पर कई वर्षों बाद गाँव आ रहा है। वह पिता मास्टर बिहारी लाल को मन ही मन पुरातनपंथी मान बैठा था। जहां अभिषेक को महानगरीय तटस्थता और निरपेक्षता ने संवेदना शून्य बना दिया; वहीं पिता की मृत्यु के दस दिन बाद भी जब आने वालों की संख्या में कोई कमी नहीं होती, गाँव के लोगों में पिता के प्रति प्रेम और सम्मान के भाव को देख वह आश्चर्य में पड़ जाता है। अंत में वह निर्णय कर लेता है कि अब गाँव में रहकर ही अपना जीवन व्यतीत करेगा। इसी प्रकार 'सन्नाटे के विरुद्ध' कहानी में पन्नालाल महानगरीय परिवेश में परिवार के होते हुए भी वृद्धावस्था में अकेलेपन की समस्या से जूझ रहे हैं। पन्नालाल ने पत्नी की मृत्यु के बाद से अपना सम्पूर्ण जीवन जिन बच्चों की परवरिश में लगा दिया वही बच्चे उन्हें आज इस घर में अकेले छोड़ कर चले गए हैं। पन्नालाल, पत्नी को याद करते हुए कहते हैं– **''गोमती की मां...जिन बच्चों के लिए हमने अपना जीवन होम कर दिया, वे ही आज हमें छोड़कर चले गए हैं। मुनीश दो बरस पहले चला गया था। उसका जाना जायज़ था। बाहर नौकरी करता है न। मैंने उसका बुरा नहीं माना। मगर अवध तो दिल्ली में रहेगा उसे पुराने घर से नफ़रत हो गई है। तुम्हीं बताओ गोमती की मां.... मैं क्या करूं.... कहां जाऊं.....? मुझे भी अपने पास बुला लो.. .[37].''** वृद्धों की समस्या वर्तमान समय की एक ज्वलंत समस्या है जो लेखक की चेतना और चिंतन का प्रमुख विषय है। इसीप्रकार परिवार में संबंद्ध विच्छेद, पारिवारिक सदस्याओं के बीच रिश्तों की आत्मीयता का क्षय, तनाव भी उनकी कहानियों की प्रमुख संवदेना के बिन्दु है जैसे 'क्षितिज' कहानी मंजुला और मनु के बीच एक खालीपन को

---

[34] वही, पृ० सं०–42
[35]वही, पृ० सं०–42
[36]वही, पृ० सं०–42
[37]वही, पृ० सं०–75

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

लेकर चलने वाली कहानी है, जिसमें वे संबंधों में रहकर भी किसी सीमा में बंधकर ही रह जाते हैं। वे दोनों उसका अतिक्रमण तो करना चाहते हैं किन्तु उनके बीच कुछ ऐसा रहस्यमय है जो उन्हें यह करने की इजाजत नहीं देता। जिस पर मनु कहता है **''जब हम एक–दूसरे को इतना चाहते हैं, इतना प्यार करते हैं, फिर भी हमारे पास शब्द क्यों नहीं हैं? वही दस–बारह वाक्य हैं, जिन्हें हम दोहराते रहे हैं। उन प्रश्नों को करते हुए मैं तुम्हारे जवाबों से पहले से परिचित होता हूं। निश्चित दायरे से मेरा अर्थ, निश्चित सीमा और सीमाओं के अतिक्रमण से मेरा अभिप्राय यह बिलकुल नहीं था.... |[38]''**

इसप्रकार माधव कौशिक की रचनाएँ आधुनिक समाज की जटिलताओं और मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है। उनकी कहानियां समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं, जैसे आतंकवाद, सांप्रदायिकता, बेरोजगारी और राजनीतिक भ्रष्टाचार को उजागर करते हैं। उनके साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संदर्भों का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। कौशिक की रचनाओं में पात्रों की संवेदनाएँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं जहां पात्र समाज की विडंबनाओं और त्रासदियों को ऐसी अभिव्यक्ति देते हैं कि पाठक के भीतर संवेदनाओं का प्रस्फुटन हो उठे। उनकी कहानियां व्यक्ति के आंतरिक संघर्ष, उसके दर्द और उसकी खोज की प्रक्रिया को सामने लेकर आती है। अभियान, दंगल, विकल्प, निहत्थे, और ताबीज जैसी कहानियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि माधव कौशिक अपने समय और समाज की संवेदनाओं को सही रूप से व्यक्त करने में सक्षम हैं। जैसे कि साहित्य में संवेदनाएँ केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि यह समाज और संस्कृति के परिवर्तन के साथ जुड़ी होती हैं। माधव कौशिक की कहानियों में भी भावनाओं के अतिरिक्त समाज और संस्कृति के हर पक्ष से संवेदनाओं का जन्म होता है। उनकी कहानियों में समाज की आधी आबादी अर्थात, नारी को लेकर, नारी विमर्श का भी प्रमुख स्थान है। उनकी कहानियों में नारी अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। ऑफिसर्ज क्लब कहानी में मिस सविता द्वारा स्त्री देह के वस्तुवादी दृष्टिकोण के खिलाफ आवाज उठाना, और समाज में महिला अधिकारों की बात करना, उनकी रचनाओं में नारी की स्वतंत्रता और समानता की ओर एक मजबूत कदम है। माधव कौशिक का साहित्य न केवल समाज के विभिन्न तबकों की संवेदनाओं को प्रस्तुत करता है, बल्कि यह व्यक्ति की अंतर्आत्मा से उपजे विचारों और संघर्षों का परिणाम है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि माधव कौशिक के

[38]वही, पृ० सं०–59

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

साहित्य में संवेदनाओं का उच्चतम स्तर देखने को मिलता है। उनके पात्रों के माध्यम से हम समाज की विभिन्न समस्याओं और उन समस्याओं से जूझते हुए व्यक्तियों की संवेदनाओं को महसूस कर सकते हैं। उनके लेखन में जीवन के विविध पहलुओं, सामाजिक परिवर्तनों और मानवीय मूल्यों की गहरी समझ है, जो उन्हें समकालीन साहित्य के महत्वपूर्ण रचनाकारों में स्थान दिलाती है

रवांई के लोक गीतों में परिलक्षित भारतीय ज्ञान परंपरा

प्रमोद प्रसाद
शोध-छात्र,हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा-विभाग
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल उत्तराखण्ड

शोध सार

रवांई क्षेत्र, उत्तराखंड के उत्तरकाशी जनपद में स्थित है, यह क्षेत्र अपनी समृद्ध लोक संस्कृति और परंपरागत ज्ञान परंपरा के लिए जाना जाता है। इस क्षेत्र के लोक गीत न केवल सांस्कृतिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि इनमें भारतीय ज्ञान परंपरा की गहन अभिव्यक्ति भी दृष्टिगोचर होती है। रवांई के लोक गीतों में धार्मिक आस्थाएँ, सामाजिक मूल्यों, पर्यावरण चेतना, पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियाँ, कृषि जीवन तथा आचार-विचार की स्थायी छवियाँ उभरकर सामने आती हैं।

इन गीतों में ऋग्वैदिक युग से चली आ रही प्रकृति पूजन की भावना, देवता और मानव के संबंधों की लोकभाष्य व्याख्याएँ, तथा नैतिक शिक्षाएँ अंतर्निहित होती हैं।स्थानीय लोक देवता महासू, सोमेश्वर, राजा रघुनाथ तथा अन्य देवी देवताओं के स्तुति गीतों में केवल भक्ति ही नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना, न्याय व्यवस्था और मानव अधिकारों की अवधारणाएँ भी प्रकट होती हैं। इसके अतिरिक्त, इन गीतों में वर्णित कृषि चक्र, ऋतु परिवर्तन और लोक मान्यताओं से संबंधित भारतीय परंपरागत विज्ञान और दर्शन का प्रतिबिंब प्रस्तुत होता है।

यह शोध पत्र रवांई के लोक गीतों का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित करता है कि ये गीत केवल सांस्कृतिक धरोहर नहीं हैं, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा के जीवंत स्रोत भी हैं। लोक साहित्य के इस स्वरूप में निहित ज्ञान को आधुनिक संदर्भों में पुनः समझना और संरक्षित करना वर्तमान समय की मांग है।

बीज शब्द : रवांई लोक गीत, भारतीय ज्ञान परंपरा, लोक संस्कृति, पारंपरिक ज्ञान, उत्तराखंड लोक साहित्य

प्रस्तावना

लोक गीत किसी भी समाज की सांस्कृतिक पहचान और परंपरा का अभिन्न हिस्सा होते हैं। ये गीत न केवल मनोरंजन का साधन होते हैं, बल्कि समाज की ऐतिहासिक, धार्मिक, नैतिक और सामाजिक धरोहर को संजोने का भी कार्य करते हैं। रवांई क्षेत्र के लोक गीत विशेष रूप से भारतीय ज्ञान परंपरा, पर्यावरण, प्रेम, वीरता, आध्यात्मिकता को अभिव्यक्त करने वाले होते हैं। रवांई क्षेत्र उत्तराखंड के उत्तरकाशी जनपद में स्थित है, जहाँ की सांस्कृतिक विरासत अत्यंत समृद्ध एवं विशिष्ट है। इस क्षेत्र के लोक गीत केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा के जीवंत दस्तावेज भी हैं। ये गीत भारतीय समाज के ऐतिहासिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक एवं दार्शनिक मूल्यों को प्रतिबिंबित करते हैं। यह क्षेत्र सुदूर पर्वतीय अंचल है, जो अपनी विशिष्ट भौगोलिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पहचान के लिए प्रसिद्ध है। रवांई क्षेत्र टौंस नदी के किनारे बसा हुआ है- "स्कन्दपुराण के केदारखंड में तमसा नदी का उलेख है संभवतः स्कन्द पुराण में वर्णित तमसा नदी ही वर्तमान टौन्स नदी है।"[1] रवांई अंचल चारों ओर से सुरम्य दृश्यों एवं गगनचुंबी ऊँचे-ऊँचे पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा है, जो इसकी प्राकृतिक सुंदरता में चार चाँद लगाते हैं। रवांई क्षेत्र सांस्कृतिक विविधता का धनी क्षेत्र रहा है। यंहा का लोक जीवन आज भी अपनी लोकसंस्कृति के रंगों से रंगा नजर आता है यहाँ की आंचलिक सांस्कृतिक परंपरा अति समृद्ध व सम्पन्न रही है ऋषि-मुनियों की तपस्या, साधना व चिंतन द्वारा यहाँ भारतीय ज्ञान परंपरा के अंकुर प्रस्फुटित होते रहे हैं।

लोक गीतों में भारतीय ज्ञान परंपरा की विशेषताएँ

भारतीय ज्ञान परंपरा की अनेक विशेषताएं लोकगीतों में पायी जाती है, जो मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होती रहती हैं। लोकगीत न केवल मनुष्य के मनोरंजन के साधन हैं बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक ज्ञान के भंडार होते हें जो किसी भी समाज के मूल्यों,लोकविश्वासों रीति-रिवाजों और प्राचीन महत्वपूर्ण पारंपरिक ज्ञान को दर्शाते हैं।

लोकगीत समुदायों के प्राचीन इतिहास, संस्कृति और ज्ञान को पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित रखते हैं। इन्ही लोकगीतों में पर्यावरण को संरक्षित रखने के संदेश समाहित होते हैं कई लोकगीत प्रकृति और पर्यावरण के महत्व पर अधिक बल देते हैं भारतीय संस्कृति के कई लोकगीत आध्यात्मिक और दार्शनिक बिचारों को भी व्यक्त करते हैं जो भारतीय ज्ञान परंपरा का एक आभिन्न और महत्वपूर्ण पहलू है।

भारतीय ज्ञान परंपरा प्राचीन वेदों, पुराणों, उपनिषदों, लोक कथाओं और आचार संहिताओं से प्रभावित रही है रवांई के लोक गीतों में यह परंपरा विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती है।

आध्यात्मिक और धार्मिक चेतना

रवांई के लोक गीतों में शिव, पार्वती, राम, कृष्ण, स्थानीय देवी-देवताओं एवं लोक नायकों की गाथाएँ सुनाई जाती हैं। भक्ति रस से ओतप्रोत ये गीत लोगों को धार्मिक आस्था और नैतिकता का संदेश देते हैं। भगवान श्री कृष्ण के स्वरूप के रूप में लोक विख्यात स्थानीय लोक देवता का वर्णन लोक गीतों में इस प्रकार मिलता है-

“डांडा का नगेलू, नाग डांडा को बसेलू,
कृष्णजन रूप रैयो नगेलू।
भेंट लेकी आया हम्बी यमुनाजी को पाणी
धूप दीप यूलूनाग आटा घी की माणी।
झूठ त्वेम क्या लगाण, हामू सांची लाण।”[2]

साक्षात दुर्गा स्वरूप माता भद्रकाली की महिमा को परिलक्षित करते हुवे रवांई के प्रसिद्ध लेखक दिनेश रावत ने अपनी पुस्तक ‘रवांई के देवालय एवं देव गाथाओं’ में भद्रकाली की महिमा को इस लोक गीत के माध्यम से उजागर किया है-

“गिऊँ-जौ की उमी रे माए,
गिऊँ-जौ की उमी ए देवी माई भद्रकाली,
गिऊँ-जौ की उमी जन्मभूमि ए देवी माई भद्रकाली,
तेरी जन्मभूमि ए।। माया ओडार रे माए,
पुंडेलू डाक ए देवी माई भद्रकाली,
पुंडेलू डाक ए। तेख उपजी भद्रकाली”[3]

महासू शिव की उत्पति का लोकगीतों में

“नाले रे ठुढुवा, बाई बासली काई
देवा रघुनाथ बाई बासली काई
कुल्लु न उठी रई हनोली आई
मोड़ मोड़ाई बाई केड़ी मोड़ाई
देव रघुनाथ बाई केड़ी मोड़ाई
सून तैर छतिर चांदी तेर ढोल
तेर सुणी रघुनाथ आसीर बोल
देव रघुनाथ बाई आसीर बोल

अनोली न चली रई सिरांई आई
कैड़ी-कैड़ाई बाई मोड़ी-मोड़ाई
सिरांई न चली रई भसना आई
रई भसना आई, तई चिमटा बणाई
भसना चली रई, सिसाल आई
गैर न पुजेल्या दुई तेर थान
देवा रघुनाथ दुई तेर थान"[4]

प्रकति और पर्यावरण से जुड़ी ज्ञान परंपरा

इन गीतों में नदियों, पहाड़ों, वृक्षों और पशु-पक्षियों के प्रति आदर व्यक्त किया जाता है। यह भारतीय पारंपरिक इकोलॉजी (पारिस्थितिकीय संतुलन) और प्रकृति संरक्षण की अवधारणा को दर्शाता है रवांई में पीपल के पेड़ को विशेष महत्व दिया जाता है। चूकी पीपल का पेड़ आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दोनों रूपों में प्रकृति के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है आध्यात्मिक रूप से लोकआस्था है की इसे भगवान विष्णु का स्वरूप माना जाता है और इसमे त्रिदेवों (ब्रह्म,विष्णु,महेश का वास माना जाता है,वैज्ञानिक रूप में पीपल का पेड़ 24 घंटे ऑक्सीजन प्रदान करता है तथा कार्बनडाईऑक्साइड को अवशोषित करता है। जो इसके महत्व को और भी अधिक बनाता है। इस लोक गीत में पीपल के प्रति सम्मानपूर्ण उद्गार इन शब्दों में व्यक्त हुए हैं-

"पीपल देव जै जैकार
तू रोग मार गर्गों की हार
पीपल देव जै-जै कार
तू विष्णु रूप जै जै कार
त्वेम लोक दूध चार
पीपल देव जै-जैकार।।"[5]

प्रकृति के आभूषण हमारे पेड़ पौधे जिनकी उपस्थिति के कारण हमारी पृथ्वी पर वातावरण का संतुलन बना रहता है इस लोक गीत में उन्ही पेड़ पौधों के कटान के कारण मनुष्य को होने वाले भारी नुकसान का वर्णन किया गया है-

न काटा न काटा तुम डाली न काटा दीदा डाली न काटा
सेरों मा साटी,गड़लयों मा पाली,सब यूं का वै छ होणी
हरी खेती अर हैसंदों बुरांस यू रौंत्याली डाँडों मा रखा हरयाली।"[5]

सामाजिक और नैतिक शिक्षा

लोक गीतों में सामाजिक सद्भाव, पारिवारिक मूल्य, नारी सम्मान, परोपकार और न्याय जैसे विषय प्रमुखता से दिखते हैं। उदाहरण के लिए, विवाह गीतों में स्त्री-पुरुष संबंधों की मर्यादा, प्रेम और सम्मान का भाव झलकता है।

इतिहास एवं लोक नायक

रवांई के वीरगाथात्मक लोक गीतों में ऐतिहासिक नायकों और योद्धाओं की गाथाएँ सुनाई जाती हैं। ये गीत पीढ़ी-दर-पीढ़ी वीरता, आत्मसम्मान और बलिदान की परंपरा को संजोकर रखते हैं महाभारत के प्रसिद्ध योद्धा सुर्यपुत्र कर्ण की महिमा को इस लोक गीत में उजागर किया गया है-

"चांदी की जंजीरा देवा, सती राजाकर्ण
चांदी की जंजीरा देवा, सती राजाकर्ण
बडो भलों शुभ रे देवा सती राजाकर्ण
देवरा थाना मंदिरा रे देवा, सती राजाकर्ण
दुद्ध बाण्यों मेवा रे देवा, सती राजाकर्ण
एक राजा कर्ण देवा सती राजाकर्ण
देजो साथी तेरो कौसर देवा,
सती राजाकर्ण डंडू मारी थ्यारी रे देवा सती राजाकर्ण
तेरी राजा कर्ण देवा सती राजाकर्ण
देव जानी की त्यारी रे देवा सती राजाकर्ण"[6]

रवांई क्षेत्र में हुवे मुगल आक्रमण एवं ऊनके प्रति रवांई के लोगों की वीरता को लोक गीतों के माध्यम से सँजोकर रहा गया है इस लोक गीत में रवांई क्षेत्र में हुवे मुगलों के आक्रमण तथा ऊनके इतिहास का वर्णन मिलता है-

"दूणी रहा पावटेनद्रा मुगली आई
दुण लेई पावटेरी मुगले खाई
दूण राखी पावटेरी तम्बू छतरिये छाई
आई रआ मुंगोल ला बहुच्छा की थोड़ा
मोड़े रे मोड़ाइला मारे खेड़ी मोड़ाई
नौलाख रे हाथी चलं छः लाख घोड़े
झामन्दी रही न काखड़ी,
माडू झामन्दी टाट चल तेरे मुसाफिर के चेलके से कांट

राजा मुगील ला मरली धूम गज-गज मारी उड़ घोडे रे सूम ।।
आई रआ राजा मुगील लाटूटी न लाश आदमी के अन्न टापीना, घोड़ी के रे घास"[7]

कृषि, मौसम और पारंपरिक विज्ञान

लोक गीतों में कृषि जीवन, मौसम के बदलाव और पारंपरिक ज्ञान का समावेश होता है। फसलों की बुआई, कटाई और त्योहारों से जुड़े गीत ग्रामीण समाज की परंपरागत ज्ञान प्रणाली को दर्शाते हैं बसंत के आगमन पर खेतों में प्रारंभ हुई जुताई के समय मनुष्य तथा पशुओं को अपने-अपने कर्तव्यों का स्मरण कराता हुआ यह लोक गीत पूरे रवांई में लोक प्रचलित है-

"ही गाया की उमाड़ी गेल्या गाया की उमाड़ी
नेडा,नेडि आई गेल्या क्यारया की रोपड़ी
हिट बलदा सरासर रे बौड़ी गे फागुणा"[8]

फसलों की बुआई कटाई के समय रोमांचकारी माहोल को परिलक्षित करता हुआ यह लोक गीत कृषि कार्य करती हुई महिलाओं के अंदर जोश भरने का कार्य करता है-

"उपले सेराईं पाचयों बालूरया धाना
दात्री छुणकी ले नाज काटंद सेरी ले
असूज कार्तिक ले दाईं गाडंद घरोंद"[9]

भौगोलिक संरचना

रवांई क्षेत्र की भौगोलिक संरचना अत्यंत विविधतापूर्ण है। यहाँ की पर्वत श्रृंखलाएँ, घाटियों, नदियों और घने वन इसे एक अद्वितीय स्थल बनाते हैं। क्षेत्र की प्रमुख नदी टाँस है, जो यहाँ की कृषि और जनजीवन का मुख्य आधार है। पर्वतीय ढलानों पर सीढ़ीनुमा खेत और घने जंगल इसकी भौगोलिक विशेषताओं में शामिल हैं रवांई में विश्व प्रसिद्ध हरकीदून,केदारकांठा बुग्याल स्थित है जो रवांई की भौगोलिक सुंदरता के साथ-साथ क्षेत्र की विरासत के रूप में भी प्रसिद्ध है हरकीदून की सुंदरता को इस लोक गीत में सँजोया गया है-

मेरो हरकीदूना है पहाड़ू को पियारों
चोंखंडा हीवे को चांगशील चैयों"[10]

सांस्कृतिक धरोहर-

रवांई की संस्कृति अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण है। यहाँ के लोकगीत, नृत्य, त्योहार और परंपराएँ इस क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान को दर्शाते हैं। विशेष रूप से, यहाँ के लोकगीतों में भारतीय ज्ञान परंपरा की गहरी झलक मिलती है, जो धार्मिक, सामाजिक और नैतिक मूल्यों को संप्रेषित करते हैं-

 ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

"कोद की बातिर मेरी बिजू मा बंठिया,
कोद की बातिर मेरी बिजू मा बंठिया
नेडा नेडी आईगी मेरी बिजू मा बंठिया,
डांडा की जातिर मेरी बिजू मा बंठिया।
बजी जालू बाणू मेरी बिजू मा बंठिया,
बजी जालू बाणू मेरी बिजू मा बंठिया,
डांडा की जातिर मेरी बिजूमा बंठिया"[11]

मेले और लोक नृत्य रवांई की संस्कृति की अनूठी पहचान होते हैं ये अपने सांस्कृतिक गौरव को संरक्षित करके पीढ़ी-दर पीढ़ी स्थानतरित करते हैं-

"साठियों पानशाहियों रात बियाणी,
मासू क ओलंदी रात बियाणी।
उठो छोरो नन्याणों रात बियाणी,
मासू क औलंदी रात बियाणी ।।"[12]

आर्थिक जीवन:

रवांई क्षेत्र की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि, पशुपालन और वानिकी पर निर्भर है। पर्वतीय ढलानों पर सीढ़ीनुमा खेतों में धान, गेहूँ, मक्का आदि की खेती की जाती है। इसके अतिरिक्त, पशुपालन और वनों से प्राप्त उत्पाद भी यहाँ के लोगों की आजीविका के महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

रामू बल कपास की पूणी,
रामू बल खरसूनी गांव रामू बल नौराता की सूंणी
रामू बल परात की घाली,
रामू बल नौराता की सूंणी
रामू बल दीऊ दीने बाली,
रामू बल कुखड़ा की बाती,
रामू बल दिऊ देणू बाली
रामू बल गेहूँ भी बिना हाथी रामू बल रणाईनी भेई"[13]

समृद्ध भाषा और वेशभूषा-

रवांई क्षेत्र के लोग मुख्यतः गढ़वाली भाषा की एक उपबोली बोलते हैं, जो उनकी सांस्कृतिक पहचान का हिस्सा है। यहाँ की पारंपरिक वेशभूषा में पुरुषों के लिए चूड़ीदार पायजामा, कुर्ता और सिर पर टोपी,

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

जबकि महिलाओं के लिए घाघरा, चोली और आभूषण शामिल हैं, जो उनकी सांस्कृतिक धरोहर को प्रदर्शित करते हैं-

"भेना रतीराम मुकू लाणू ढाँटू भेना रतीरामा झम।
रंग-बिरंगो लाणो भेना रती रामा
, मुकू लाणो ढॉटू भेना रतीराम झम।
कालि घघरी लाल मगजी भेना रती राम
मुकू लाणो तैई, भेना रतीराम झम,
हाथै लाई रूमेला भेना रतीराम
मुकू लाणो आफू भेना रती राम झम।
मगौज मं आणो मुकू सौव लाणो भेना रतीराम झम"[14]

पर्यटनः-

रवांई क्षेत्र की प्राकृतिक सुंदरता, सांस्कृतिक विविधता और शांत वातावरण इसे एक आकर्षक पर्यटन स्थल बनाते हैं। यहाँ की हरी-भरी घाटियाँ, ऊँचे पर्वत, बहती नदियाँ और घने जंगल पर्यटकों को मंत्रमुग्ध कर देते हैं।

इसके अतिरिक्त, यहाँ के लोक त्योहार, मेलों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेकर पर्यटक इस क्षेत्र की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर का अनुभव कर सकते हैं।-

"ये केदारी कांठा फूल्यो, रंग विरंगा फूल ।।
नन्दन बन स्यो लग्यो, रंग-विरंगा फूल ।।
देबू कु रौ वासू तख, रंग विरंगा फूल ।।
इन्द्र पुंरी स्यो लगद रंग-विरंगा फूल"[15]

विवाह संस्कार के गीत-

"पैलो फेरो फेरे कन्या, कन्या छ क्वारी
दूसरो फेरो फेरे कन्या छ क्वारी
तीसरो फेरो फेरे कन्या छ क्वारी
चौथे फेरो फेरे कन्या छ क्वारी
पांचो फेरो फेरे कन्या बै बाबू की प्यारी
छटो फेरो फेरे कन्या सासार की त्यारी
सातों फेरो फेरे कन्या वे तुके तुम्हारी
सात सौत मैन शीली पीसी आले शीली पीसी आले"[16]

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

कर्म फल पर आधारित गीत-

नौ बैणी मातरी ऐ पड़ि बारों बैणी भराड़ी,
क्वै मातरी बैठी रौ काम्यों का पाः ।।
क्वै मातरी बैठी रौ आँखू का हाः ।।
ल्वैई पीरौ तू सिकार खै।
त्यूँ जोड़ी बैलो जीतू ड़बी रौ ।।
भयूँ कुटुम्ब तैरो मल्ला की क्यारी रैगे।
बौलू न होन्दू जीतू त नाशः न हून्दो।"[17]

संक्षेप में, रवाईं क्षेत्र अपनी प्राकृतिक सुंदरता, समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और ऐतिहासिक महत्व के कारण उत्तराखंड के प्रमुख क्षेत्रों में से एक है। यहाँ की परंपराएँ, लोकगीत और जीवनशैली भारतीय संस्कृति की गहरी जड़ों को प्रदर्शित करते हैं, जो इसे एक विशिष्ट पहचान प्रदान करते हैं।

लोक गीतों का महत्व

1. **सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण**
   लोक गीतों के माध्यम से प्राचीन परंपराएँ, रीति-रिवाज, और सामाजिक मूल्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ते हैं। ये गीत किसी समुदाय की सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने में सहायक होते हैं।

2. **सामाजिक एकता का प्रतीक**
   लोक गीत समुदाय को एकजुट करने का कार्य करते हैं। त्योहारों, विवाह, उत्सवों और धार्मिक अनुष्ठानों के दौरान गाए जाने वाले गीत सामूहिकता और भाईचारे की भावना को प्रबल करते हैं मनुष्य को एकता,भाईचारे की भावना का संदेश इस प्रकार रवांई के लोक गीतों में मिलता है-
   हँसी बोलाणो,बाँटी कै खाणु,बाटुडो कोय न भाई लाणो;
   चार दींन मानछड़ों,मरेय त अंधागोर जाणो"18

3. **ऐतिहासिक और वीरगाथात्मक महत्व**
   कई लोक गीत ऐतिहासिक घटनाओं और वीरता की गाथाओं को संजोकर रखते हैं। ये गीत समाज को अपने पूर्वजों के बलिदान और संघर्षों से अवगत कराते हैं, जिससे युवाओं में राष्ट्रप्रेम और आत्मसम्मान की भावना विकसित होती है।

4. **आध्यात्मिक एवं धार्मिक संदेश**
   लोक गीतों में देवी-देवताओं, भक्ति, आस्था और अध्यात्म का वर्णन होता है। ये गीत धार्मिक भावनाओं को प्रकट करने के साथ-साथ नैतिक शिक्षा का भी माध्यम होते हैं।

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

5. पर्यावरण और प्रकृति संरक्षण का संदेश

कई लोक गीत प्रकृति प्रेम, पर्यावरण संरक्षण और पारिस्थितिक संतुलन की महत्ता को दर्शाते हैं। पर्वत, नदियाँ, जंगल, और पशु-पक्षियों के प्रति सम्मान को इन गीतों में अभिव्यक्त किया जाता है।

6. शिक्षा और नैतिक -मूल्य

लोक गीतों में नैतिकता, परोपकार, दया, सत्य और धर्म जैसे मूल्यों को दर्शाया जाता है। ये गीत समाज को सदाचार और सद्भाव की ओर प्रेरित करते हैं।

7. मनोरंजन का प्रमुख साधन-

विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले लोक गीत आनंद और उल्लास का संचार करते हैं। ये गीत नृत्य और संगीत के साथ मिलकर उत्सवों को और भी जीवंत बना देते हैं।

रवांई क्षेत्र के लोक गीतों में भारतीय ज्ञान परंपरा की अभिव्यक्ति को और गहराई से समझने के लिए निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देना आवश्यक है:

1. लोकगाथाओं में ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भ

रवांई के लोक गीतों में प्राचीन कथाओं, उपाख्यानों और ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश होता है, जो भारतीय लोकगाथा परंपरा का हिस्सा हैं। ये गीत न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि समाज के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक ज्ञान के संवाहक भी हैं। इनमें स्थानीय नायकों, देवी-देवताओं और महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन मिलता है, जो समाज की सांस्कृतिक धरोहर को संजोए रखते हैं।

2. पारंपरिक ज्ञान और पर्यावरण संरक्षण

रवांई के लोक गीतों में पारंपरिक ज्ञान और पर्यावरण संरक्षण के संदेश निहित हैं। इन गीतों में प्रकृति के साथ सामंजस्य, जैव विविधता का सम्मान और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के महत्व को दर्शाया गया है। यह पारंपरिक ज्ञान वनों और जैव विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

3. **सामाजिक संरचना और नैतिक मूल्यों का प्रतिबिंब-**

लोक गीतों में समाज की संरचना, रीति-रिवाज, और नैतिक मूल्यों का स्पष्ट चित्रण होता है। ये गीत सामाजिक एकता, पारिवारिक संबंधों, और नैतिक आचरण के महत्व को उजागर करते हैं, जो भारतीय समाज की मूलभूत विशेषताएँ हैं। इनके माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी नैतिक शिक्षा का संचार होता है।

4. शिक्षा और सांस्कृतिक पहचान-

रवांई के लोक गीत शिक्षा का भी माध्यम हैं, जो समुदाय की सांस्कृतिक पहचान को मजबूत करते हैं। इन गीतों के माध्यम से पारंपरिक ज्ञान, जीवन कौशल, और सांस्कृतिक मूल्यों का हस्तांतरण होता है, जो समुदाय की सामाजिक-शैक्षिक समावेशन में सहायक है।

निष्कर्ष

रवांई के लोक गीत केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा के वाहक हैं। इनमें धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक और नैतिक मूल्यों की गहरी छाप मिलती है। इन गीतों का संरक्षण और अध्ययन भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर को संजोने में सहायक सिद्ध हो सकता है। लोक गीत केवल संगीत का एक रूप नहीं हैं, बल्कि वे समाज की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और नैतिक धरोहर के वाहक हैं। इनका संरक्षण और प्रचार-प्रसार समाज की सांस्कृतिक समृद्धि को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। रवांई के लोक गीत भारतीय ज्ञान परंपरा के महत्वपूर्ण वाहक हैं। इनमें निहित पारंपरिक ज्ञान, सांस्कृतिक मूल्य, और नैतिक शिक्षाएँ समाज के विकास और सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन गीतों का अध्ययन और संरक्षण भारतीय संस्कृति की गहरी समझ और उसकी समृद्धि को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। इन गीतों का अध्ययन और संरक्षण भारतीय संस्कृति की गहरी समझ और उसकी समृद्धि को बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. *रवांई क्षेत्र के देवालय एवं देवगाथाएं, दिनेश रावत, पेज नो.28*
2. *सीमांत जनपद उत्तरकाशी इतिहास और समाज- डा दिनेश चंद्र बलूनी, पेज,150*
3. *सीमांत जनपद उत्तरकाशी इतिहास और समाज- डा दिनेश चंद्र बलूनी,पेज,204*
4. *उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक धरोहर,डॉ जगदीश प्रसाद नौडियाल,पेज.175*
5. *गढ़वाली लोकगीत,गोविंद चातक पेज. नो. 21*
6. *सीमांत जनपद उत्तरकाशी इतिहास और समाज- डा दिनेश चंद्र बलूनी,पेज,201*
7. *सीमांत जनपद उत्तरकाशी इतिहास एवं समाज डॉ दिनेश चंद्र बलूनी, पेज,200*
8. *साक्षात्कार, श्री महेंद्र सिंह चौहान,(लोकगायक) रवांई घाटी दिनांक. 03/07/2025 ग्राम ढ़काड़ा उम्र 50 वर्ष*
9. *साक्षात्कार,श्री अनिल बेसारी लोकगायक ग्राम,पुरोला उम्र 40 वर्ष दिनांक. 04/06/2025*
10. *साक्षात्कार,श्री देवी प्रसाद उनियाल, ग्राम कोटगाँव उम्र 73 वर्ष दिनांक.04/07/2025*
11. *रवांई क्षेत्र के लोक देवता एवं लोकोत्सव,दिनेश सिंह रावत पेज 159*

12. उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर, डॉ जगदीश प्रसाद नौडियाल पेज 243
13. उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर, डॉ जगदीश प्रसाद नौडियाल पेज 238
14. रवांई क्षेत्र के लोक साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ जगदीश प्रसाद नौडियाल पेज. 173
15. रवांई क्षेत्र के लोक साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, जगदीश प्रसाद नौडियाल पेज. 144
16. रवांई क्षेत्र के लोक साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ.जगदीश प्रसाद नौडियाल पेज.156
17. गढ़वाली लोकगीत,गोविंद चातक पेज० 251

इंस्टाग्राम इंफ्लुएंसर्स का विश्लेषण: कोटा के शीर्ष पेजों की सामाजिक-आर्थिक भूमिका

रीना दाधीच
शोधार्थी
पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, निवाई

डॉ.मीनाक्षी दाधीच
सहायक प्रोफेसर
मनोविज्ञान, जेसीआरसी विश्वविद्यालय, जयपुर

शोधसार

कोटा, राजस्थान, जो पारंपरिक रूप से शिक्षा नगरी के रूप में जाना जाता है, अब डिजिटल मार्केटिंग और सोशल मीडिया ब्रांडिंग के क्षेत्र में भी तेजी से उभर रहा है। इंस्टाग्राम जैसे प्लेटफॉर्म्स ने स्थानीय व्यवसायों और व्यक्तियों को अपनी पहचान स्थापित करने का नया मंच दिया है। इस शोध का उद्देश्य कोटा में इंस्टाग्राम पेजों की वृद्धि और स्थानीय इंफ्लुएंसर्स की भूमिका का विश्लेषण करना है, जिसमें मीडिया और मनोविज्ञान दोनों के दृष्टिकोण को शामिल किया गया है। कोटा के माइक्रो-इंफ्लुएंसर्स अपने अनुयायियों के साथ व्यक्तिगत और भावनात्मक जुड़ाव रखते हैं, जिससे उनकी सिफारिशें अधिक प्रामाणिक और प्रभावशाली मानी जाती हैं। आंकड़ों के अनुसार, कई प्रमुख इंस्टाग्राम इंफ्लुएंसर्स के 70-80% फॉलोअर्स स्थानीय स्तर पर केंद्रित हैं, जिससे हाइपर-लोकल ब्रांडिंग और टार्गेटेड मार्केटिंग संभव हो पाती है। ये इंफ्लुएंसर्स स्थानीय संस्कृति, भाषा और रुचियों को समझते हैं, जिससे उनका कंटेंट और अभियानों की विश्वसनीयता बढ़ती है। ब्रांड्स प्रायोजित पोस्ट, व्यक्तिगत कहानियां, ब्रांडेड हैशटैग और स्थानीय इवेंट्स जैसी रणनीतियों से इन इंफ्लुएंसर्स के साथ सहयोग करते हैं, जिससे ब्रांड की पहुंच और उपभोक्ताओं के साथ भावनात्मक संबंध मजबूत होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, जब उपभोक्ता अपने पसंदीदा स्थानीय इंफ्लुएंसर को किसी उत्पाद का उपयोग करते देखते हैं, तो उनके मन में उस ब्रांड के प्रति विश्वास और अपनापन बढ़ता है-यह ‘सोशल प्रूफ’ सिद्धांत पर आधारित है।

हालांकि, इस क्षेत्र में फेक फॉलोअर्स की पहचान, कंटेंट की प्रामाणिकता और पारदर्शिता जैसी चुनौतियां भी हैं। फिर भी, कोटा में इंस्टाग्राम इंफ्लुएंसर्स की भूमिका स्थानीय ब्रांडिंग और डिजिटल इकोनॉमी को नई दिशा दे रही है।

मुख्य शब्द: इंस्टाग्राम इंफ्लुएंसर, स्थानीय ब्रांडिंग, डिजिटल मार्केटिंग, हाइपर-लोकल मार्केटिंग

परिचय:

डिजिटल युग में सोशल मीडिया एक प्रभावशाली उपकरण बन चुका है, जिसने न केवल व्यक्तिगत अभिव्यक्ति का मंच प्रदान किया है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण बदलाव लाए हैं। कोटा, जो पारंपरिक रूप से शैक्षणिक हब के रूप में जाना जाता है, अब इंस्टाग्राम जैसे प्लेटफॉर्म पर उभरते हुए डिजिटल इन्फ्लुएंसर्स की एक नई पीढ़ी को देख रहा है। ये इन्फ्लुएंसर्स न केवल स्थानीय संस्कृति और व्यवसायों को बढ़ावा दे रहे हैं, बल्कि युवाओं के लिए नए करियर विकल्प भी प्रस्तुत कर रहे हैं।

साहित्य समीक्षा (Review of Literature)

इंस्टाग्राम और अन्य सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स पर इंफ्लुएंसर्स का प्रभाव तेजी से बढ़ रहा है, जो उपभोक्ता व्यवहार, ब्रांड निष्ठा और खरीद निर्णयों को गहराई से प्रभावित करता है। **Rajshree Shekhawat (2024)** के अध्ययन **"The Role of Instagram Influencers in Shaping Consumer Behaviour: Exploring Buying Decisions, Brand Loyalty, and Consumer Preferences"** में यह स्पष्ट किया गया है कि विश्वसनीयता, प्रामाणिकता और अनुयायियों के साथ भावनात्मक जुड़ाव उपभोक्ताओं के निर्णयों को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक हैं। उनके निष्कर्ष बताते हैं कि इंस्टाग्राम इंफ्लुएंसर्स न केवल खरीदारी के निर्णयों को प्रभावित करते हैं, बल्कि ब्रांड के प्रति दीर्घकालिक निष्ठा भी उत्पन्न करते हैं। **Sheikh & Jain (2024) के शोध "A Study on Impact of Social Media Influencers: How Trustworthy Are Social Media Influencers, and How Can Brands Build Genuine Connections with Their Audience through Influencer Marketing"** में सोशल मीडिया इंफ्लुएंसर्स की विश्वसनीयता पर विशेष ध्यान दिया गया है। उनका निष्कर्ष है कि पारदर्शिता, ईमानदारी और निरंतरता उपभोक्ता विश्वास के स्तंभ हैं, और ब्रांडों को विश्वसनीय इंफ्लुएंसर्स के साथ जुड़ाव बढ़ाने की रणनीतियां अपनानी चाहिए ताकि उपभोक्ताओं के साथ स्थायी संबंध बन सकें। **Han & Balabanis (2023)** के मेटा-विश्लेषण **"Meta-analysis of social media influencer impact: Key antecedents and theoretical foundations"** में पाया गया कि स्रोत विश्वसनीयता सिद्धांत

उपभोक्ता दृष्टिकोण और व्यवहार में बदलाव को समझाने में सबसे प्रभावी है। विश्वसनीयता, भरोसेमंदता और विशेषज्ञता जैसे कारक सोशल मीडिया इंफ्लुएंसर्स की प्रभावशीलता के प्रमुख पूर्वसर्ग हैं। **Angraini (2023) के साहित्य समीक्षा अध्ययन "Social media marketing influencer: Literature review on promotional strategies using the influence of social media celebrities"** में सोशल मीडिया सेलिब्रिटी इंफ्लुएंसर्स की प्रचार रणनीतियों की प्रभावशीलता पर प्रकाश डाला गया है। यह अध्ययन दर्शाता है कि प्रभावशाली व्यक्तियों की प्रामाणिकता और अनुयायियों के साथ जुड़ाव प्रचार की सफलता के लिए आवश्यक हैं। **Sahnoun, Mourad, Ben & Fan (2023)** के व्यवस्थित समीक्षा अध्ययन **"Social media influence analysis techniques: Systematic literature review"** में सोशल मीडिया प्रभाव विश्लेषण के लिए उपयोग की जाने वाली तकनीकों का विश्लेषण किया गया है। उन्होंने ग्राफ आधारित मॉडल, सोशल नेटवर्क विश्लेषण तथा प्रभाव, पहुंच और स्थायित्व को प्रभावी अभियानों के लिए आवश्यक बताया है। इन सभी अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि सोशल मीडिया इंफ्लुएंसर्स की प्रभावशीलता केवल फॉलोअर संख्या पर निर्भर नहीं करती, बल्कि उनकी विश्वसनीयता, प्रामाणिकता, सामाजिक जुड़ाव और कंटेंट की गुणवत्ता पर अधिक निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त, उपभोक्ता और ब्रांड के बीच पारदर्शिता और विश्वास की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह साहित्य समीक्षा इंस्टाग्राम इंफ्लुएंसर्स के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव को समझने के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करती है, जो कोटा के संदर्भ में किए जाने वाले अध्ययन के लिए प्रासंगिक है।

शोध अंतर (Research Gap)

वर्तमान साहित्य की समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि सोशल मीडिया, विशेषकर इंस्टाग्राम इंफ्लुएंसर्स के प्रभावों पर व्यापक अध्ययन हुए हैं, किन्तु कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों में अनुसंधान की कमी विद्यमान है, जिन्हें वर्तमान अध्ययन में संबोधित किया जाना आवश्यक है।

प्रथम, अधिकांश शोध राष्ट्रीय या वैश्विक स्तर पर केंद्रित हैं, जबकि क्षेत्रीय और स्थानीय संदर्भों में इंस्टाग्राम इंफ्लुएंसर्स की सामाजिक-आर्थिक भूमिका पर सीमित अध्ययन उपलब्ध हैं। विशेषकर छोटे शहरों एवं कस्बों जैसे कोटा में इंफ्लुएंसर्स के प्रभाव का विश्लेषण अपर्याप्त है, जिससे स्थानीय सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवेश में उनकी भूमिका को समझने में बाधा आती है।

द्वितीय, फॉलोअर संख्या के अलावा अनुयायियों के डेमोग्राफिक प्रोफाइल, जैसे आयु, लिंग, सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं उपभोक्ता व्यवहार पर गहन और व्यवस्थित डेटा का अभाव है। इससे यह ज्ञात करना कठिन होता है कि विभिन्न उपभोक्ता समूहों पर इंफ्लुएंसर्स का प्रभाव किस प्रकार भिन्न होता है।

तृतीय, सोशल मीडिया इंफ्लुएंसर्स के सामाजिक जागरूकता, आर्थिक प्रोत्साहन और स्थानीय व्यवसायों पर प्रभाव के मात्रात्मक मापन के लिए मानकीकृत मॉडल विकसित नहीं हुए हैं। इससे प्रभाव की व्यापकता और गहराई का सटीक आकलन करना चुनौतीपूर्ण रहता है।
चतुर्थ, अधिकांश अध्ययन अल्पकालिक प्रभावों पर केन्द्रित हैं, जबकि इंस्टाग्राम इंफ्लुएंसर्स की दीर्घकालिक प्रभावशीलता, विशेषकर उपभोक्ता व्यवहार और ब्रांड निष्ठा पर उनके प्रभाव का अध्ययन सीमित है।

पंचम, विश्वसनीयता और ट्रस्ट निर्माण के कारकों पर शोध उपलब्ध है, किन्तु विभिन्न सामाजिक-आर्थिक समूहों में ट्रस्ट निर्माण की प्रक्रिया और उसके उपभोक्ता व्यवहार पर प्रभाव की व्यापक समझ अभी विकसित नहीं हुई है।

अंततः, कंटेंट की गुणवत्ता, एंगेजमेंट रेट, और अनुयायियों के साथ संवाद की भूमिका पर सीमित शोध है, जबकि ये कारक प्रभावशीलता निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त, सोशल मीडिया इंफ्लुएंसर्स के नकारात्मक प्रभाव, जैसे गलत सूचना का प्रसार, उपभोक्ता भ्रम और सामाजिक असामाजिक व्यवहार के जोखिमों पर भी पर्याप्त अध्ययन नहीं हुआ है।

उद्देश्य

कोटा के प्रमुख इंस्टाग्राम इंफ्लुएंसर्स के सामाजिक और आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण करना।
स्थानीय समुदाय और व्यवसायों पर इन इंफ्लुएंसर्स की भूमिका एवं प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना।

परिकल्पना (Hypothesis)

कोटा के इंस्टाग्राम इंफ्लुएंसर्स के फॉलोअर संख्या के अनुसार उनका सामाजिक और आर्थिक प्रभाव समानुपाती होगा।
जिन इंस्टाग्राम पेजों के फॉलोअर अधिक हैं, वे स्थानीय युवाओं और व्यवसायों पर अधिक प्रभावशाली होंगे।

अनुसंधान पद्धति (Research Methodology)

अनुसंधान की प्रकृति

यह अध्ययन **मात्रात्मक (Quantitative) अनुसंधान पद्धति** पर आधारित है, जिसमें कोटा के प्रमुख इंस्टाग्राम पेजों के सार्वजनिक डेटा का सांख्यिकीय एवं ग्राफिकल विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य इन पेजों की लोकप्रियता, श्रेणीगत विविधता और सामाजिक-आर्थिक प्रभाव का आंकलन करना है।

नमूना चयन (Sampling Technique)
प्रकार: उद्देश्यपूर्ण नमूना चयन (Purposive Sampling)

विवरण: कोटा के वे इंस्टाग्राम पेज चयनित किए गए जिनकी फॉलोअर्स संख्या सर्वाधिक है और जो विभिन्न श्रेणियों (जैसे Community, Food, Individual Influencer, Photography/Culture, Blog) का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुल 13 पेजों का चयन किया गया।

डेटा संग्रह (Data Collection)
स्रोत: इंस्टाग्राम के सार्वजनिक प्रोफाइल

तत्व:
प्रत्येक पेज का नाम, हैंडल, श्रेणी और फॉलोअर्स की संख्या (हजारों में)
पेजों की श्रेणी का निर्धारण उनकी विषयवस्तु के आधार पर किया गया

डेटा विश्लेषण (Data Analysis)

वर्णनात्मक सांख्यिकी (Descriptive Statistics):
प्रत्येक पेज और श्रेणी के फॉलोअर्स की संख्या का संकलन

ग्राफिकल विश्लेषण (Graphical Analysis):
बार ग्राफ 1: "Instagram Influencers from Kota by Follower Count" – प्रत्येक पेज के फॉलोअर्स की तुलना
बार ग्राफ 2: "Followers by Category - Kota Instagram Influencers" – श्रेणीवार कुल फॉलोअर्स की तुलना

तुलनात्मक विश्लेषण:
किस श्रेणी या पेज का प्रभाव सबसे अधिक है, इसका विश्लेषण
श्रेणीगत वितरण से सामाजिक-आर्थिक प्रभाव की संभावनाओं का अनुमान

अध्ययन के चर (Variables)
स्वतंत्र चर (Independent Variables):
इंस्टाग्राम पेज का नाम/हैंडल
पेज की श्रेणी

निर्भर चर (Dependent Variable):
फॉलोअर्स की संख्या (हजारों में)

उपयोग किए गए टूल्स (Tools Used)

डेटा संग्रह के लिए इंस्टाग्राम

डेटा विश्लेषण और ग्राफ बनाने के लिए Microsoft Excel या Google Sheets

ग्राफिकल प्रस्तुति के लिए बार चार्ट

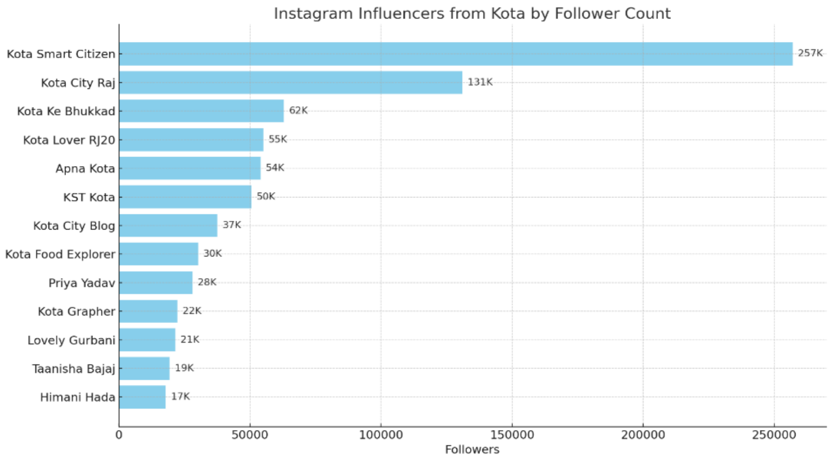

ग्राफ 1

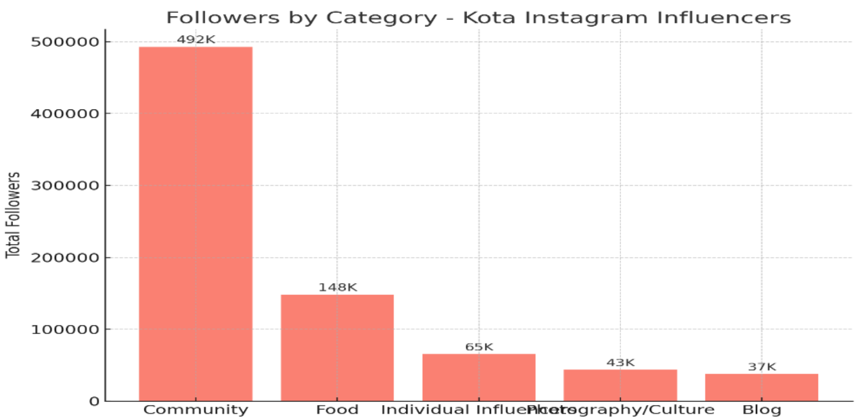

ग्राफ 2

डेटा व्याख्या एवं निष्कर्ष (Interpretation of Data and Findings)

1. पेजवार फॉलोअर्स वितरण का विश्लेषण

कोटा के प्रमुख इंस्टाग्राम पेजों के फॉलोअर्स की संख्या में उल्लेखनीय भिन्नता देखी गई। "Kota Smart Citizen" (@kota_smart_citizen) ने 257 हजार फॉलोअर्स के साथ सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त की है, जो अन्य पेजों की तुलना में उसकी व्यापक पहुंच को दर्शाता है। कुल 13 चयनित पेजों के संयुक्त फॉलोअर्स की संख्या लगभग 8.37 लाख है, जो कोटा के डिजिटल प्रभाव की व्यापकता का परिचायक है। इस प्रकार, फॉलोअर्स की संख्या के आधार पर पेजों की प्रभावशीलता में विविधता स्पष्ट होती है, जो संभवतः उनके कंटेंट की गुणवत्ता, विश्वसनीयता एवं अनुयायी जुड़ाव पर निर्भर करती है।

2. श्रेणीवार फॉलोअर्स वितरण का विश्लेषण

श्रेणीगत विभाजन से पता चलता है कि "Community" श्रेणी के पेजों के पास कुल फॉलोअर्स का लगभग 59% हिस्सा है, जो स्थानीय सामाजिक एवं सामुदायिक मुद्दों पर केंद्रित पेजों की प्रभावशीलता को दर्शाता है। इसके पश्चात "Food" श्रेणी 148 हजार फॉलोअर्स के साथ दूसरी प्रमुख श्रेणी है, जो स्थानीय खान-पान संस्कृति एवं व्यवसायों के लिए एक प्रभावी मंच प्रदान करती है। अन्य श्रेणियां जैसे "Individual Influencer", "Photography/Culture" एवं "Blog" अपेक्षाकृत कम फॉलोअर्स के साथ विशिष्ट दर्शक वर्ग को आकर्षित करती हैं। यह विविधता कोटा के डिजिटल इकोसिस्टम की बहुआयामी प्रकृति को परिलक्षित करती है।

3. परिकल्पनाओं का परीक्षण

परिकल्पना 1: कोटा के इंस्टाग्राम इंफ्लुएंसर्स के फॉलोअर्स संख्या के अनुसार उनका सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव समानुपाती होगा।

प्राप्त डेटा इस परिकल्पना का समर्थन करता है, क्योंकि अधिक फॉलोअर्स वाले पेजों का प्रभाव क्षेत्र व्यापक प्रतीत होता है।

परिकल्पना 2: जिन इंस्टाग्राम पेजों के फॉलोअर्स अधिक हैं, वे स्थानीय युवाओं एवं व्यवसायों पर अधिक प्रभावशाली होंगे।

स्थानीय दर्शकों की उच्च प्रतिशतता इस परिकल्पना को पुष्ट करती है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि ये पेज स्थानीय समुदाय एवं व्यवसायों तक प्रभावी रूप से पहुँचते हैं।

शोध की सीमाएं (Limitations)

डेटा का सीमित दायरा: अध्ययन केवल सार्वजनिक रूप से उपलब्ध इंस्टाग्राम पेजों के फॉलोअर्स संख्या और श्रेणी तक सीमित है; अनुयायी व्यवहार, जुड़ाव की गुणवत्ता एवं कंटेंट प्रभावशीलता का समावेश नहीं है।

गुणात्मक विश्लेषण का अभाव: प्रत्यक्ष साक्षात्कार या सर्वेक्षण न होने के कारण सामाजिक या मनोवैज्ञानिक पहलुओं का गहन अध्ययन नहीं किया गया।

समयबद्धता: सोशल मीडिया पेजों के फॉलोअर्स संख्या और प्रभाव समय के साथ परिवर्तित होते रहते हैं; वर्तमान अध्ययन एक निश्चित अवधि के डेटा पर आधारित है।

अन्य प्लेटफॉर्म्स का अभाव: केवल इंस्टाग्राम का अध्ययन किया गया है, जबकि अन्य सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स जैसे फेसबुक, ट्विटर, यूट्यूब आदि पर भी प्रभाव हो सकता है।

फॉलोअर्स की गुणवत्ता: फॉलोअर्स की संख्या मात्रात्मक संकेतक है, किन्तु उनकी सक्रियता, विश्वसनीयता एवं वास्तविक जुड़ाव को मापना इस अध्ययन में सम्मिलित नहीं है।

निष्कर्ष (Conclusion)

कोटा के इंस्टाग्राम इंफ्लुएंसर्स ने स्थानीय सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि उच्च फॉलोअर संख्या वाले पेज न केवल स्थानीय युवाओं और व्यवसायों तक प्रभावी पहुंच रखते हैं, बल्कि वे सामाजिक जागरूकता, सांस्कृतिक संवाद और आर्थिक गतिविधियों को भी सक्रिय रूप से प्रभावित करते हैं। विशेषकर सामुदायिक और खाद्य श्रेणियों के पेजों की व्यापक पहुंच ने स्थानीय समुदाय के साथ गहरा जुड़ाव स्थापित किया है, जिससे सामाजिक समरसता और आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से, सोशल मीडिया इंफ्लुएंसर्स का प्रभाव अनुयायियों के आत्म-संवर्धन और सामाजिक पहचान की आवश्यकता को पूरा करता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एरिक एरिक्सन के अनुसार, युवाओं में पहचान की खोज (Identity Formation) एक महत्वपूर्ण विकासात्मक चरण है, जिसमें वे अपने सामाजिक समूहों के साथ जुड़ाव महसूस करते हैं। इंस्टाग्राम इंफ्लुएंसर्स इस प्रक्रिया में मार्गदर्शक की भूमिका निभाते हैं, जो अनुयायियों को समान रुचि और मूल्य साझा करने वाले समुदाय का हिस्सा बनाते हैं (Erikson, 1968)। इसके अलावा, सोशल मीडिया पर प्रभावशाली व्यक्तियों की विश्वसनीयता और प्रामाणिकता अनुयायियों के निर्णय निर्माण और व्यवहार परिवर्तन में निर्णायक होती है। इस प्रकार, कोटा के इंस्टाग्राम इंफ्लुएंसर्स न केवल डिजिटल मार्केटिंग के माध्यम से आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देते हैं, बल्कि सामाजिक और

मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी युवाओं और समुदायों के जीवन में सकारात्मक बदलाव लाने में सहायक हैं। भविष्य में, इनके प्रभाव की गहन समझ के लिए गुणात्मक अध्ययन और दीर्घकालिक विश्लेषण आवश्यक होगा, जिससे सामाजिक-आर्थिक विकास के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक पहचान के पहलुओं पर भी प्रकाश डाला जा सके।

सन्दर्भ (references)

1. *Rajshree Shekhawat. (2024). The Role of Instagram Influencers in Shaping Consumer Behavior: Exploring Buying Decisions, Brand Loyalty, and Consumer Preferences. European Economic Letters (EEL), 14(4), 470–476. Retrieved from https://eelet.org.uk/index.php/journal/article/view/2139 Vol. 14 No. 4 (2024)*
2. *Sheikh, S., & Jain, N. (2024). A study on impact of social media influencers: How trustworthy are social media influencers, and how can brands build genuine connections with their audience through influencer marketing. International Journal of Management and Commerce Innovations, 12(2), 178 181. https://www.sdmimd.ac.in/marketingconference2024/papers/IMC2459.pdf*
3. *Han, J., & Balabanis, G. (2023). Meta‑analysis of social media influencer impact: Key antecedents and theoretical foundations. Psychology & Marketing, 40(12), 394–426. https://doi.org/10.1002/mar.21927*
4. *Angraini, N. (2023). Social media marketing influencer: Literature review on promotional strategies using the influence of social media celebrities. International Journal of Economic Research and Financial Accounting, 1(4). https://doi.org/10.55227/ijerfa.v1i4.42*
5. *Sahnoun, Y., Mourad, A., Ben, L., & Fan, X. (2023). Social media influence analysis techniques: Systematic literature review. CEUR Workshop Proceedings, 3067, 85-104. https://ceur-ws.org/Vol-3067/paper10.pdf*
6. *Erikson, E. H. (1968). Identity: Youth and crisis. W. W. Norton & Company.*

A Study on the Procedural Method of the Criminal Justice System: Special Emphasis on Bail Provision

Kumkum
Research scholar.
Department of Law, Shyam University, Dausa, Rajasthan

Dr. Phool Chand Saini
Supervisor
Department of Law, Shyam University, Dausa, Rajasthan

Abstract

The criminal justice system is a framework of legal institutions and procedures designed to manage crime, enforce laws, and ensure justice. Among the pivotal elements of this system is the concept of bail, which functions at the intersection of individual liberty and the interests of justice. This paper explores the procedural workings of the criminal justice system, focusing particularly on the role, rationale, and implications of bail provisions. Drawing from statutory frameworks, judicial precedents, and comparative legal systems, the research analyses how bail serves as a protective mechanism for accused persons while also confronting challenges related to misuse, inequity, and reform needs.

Key word: Bail, Judicial Process, liberty, **Criminal Justice System,** Fair Trial

1. Introduction

The criminal justice system is structured to uphold the rule of law, ensure public safety, and deliver justice. Procedurally, it operates through various stages: investigation, arrest, bail, trial, and sentencing. Bail, a critical aspect within this process, ensures the accused's liberty without impeding judicial processes. However, the application of bail provisions often raises concerns about access to justice, discretion, and uniformity. This paper investigates the procedural

mechanics of the criminal justice system, with special emphasis on bail—its legal basis, challenges, and need for reform.

2. Objectives of the Study

1. To understand the procedural framework of the criminal justice system.
2. To analyze the legal provisions governing bail.
3. To examine judicial interpretations and their impact on bail practices.
4. To explore socio-legal challenges in bail jurisprudence.
5. To suggest reforms for a more equitable bail system.

3. Methodology

This research employs a doctrinal legal methodology, relying on statutes, judicial decisions, legal commentaries, and academic articles. Comparative analysis is also incorporated, using examples from jurisdictions such as the United States, the United Kingdom, and India to highlight differences and similarities in bail procedures.

5. The Procedural Method of the Criminal Justice System

4.1 Stages of Criminal Procedure

The criminal process broadly includes:

- **Investigation**: Conducted by police after receiving information about a cognizable offence.
- **Filing of FIR**: First Information Report is registered under Section 154 of the CrPC (Code of Criminal Procedure, 1973, India).
- **Arrest**: Upon reasonable suspicion, the police may arrest the accused (Sections 41–60A CrPC).
- **Bail Hearing**: The accused can seek release pending investigation or trial.
- **Charge Sheet Filing**: Police file a report under Section 173 CrPC.
- **Trial**: Includes framing of charges, examination of witnesses, and arguments.
- **Judgment and Sentencing**: Based on facts and applicable law.

- **Appeal**: Right to appeal lies with the aggrieved party.

4.2 Principles Governing Criminal Procedure

4.2.1. Presumption of Innocence

The principle of *presumption of innocence* means that an individual accused of a crime is considered innocent until proven guilty beyond a reasonable doubt in a court of law.

Legal Basis:

- Enshrined in Article 11(1) of the Universal Declaration of Human Rights.
- Reflected in Article 14(2) of the International Covenant on Civil and Political Rights (ICCPR).
- Implicit in Article 21 of the Indian Constitution (Right to Life and Personal Liberty).

Significance:

- The burden of proof lies on the prosecution.
- The accused does not have to prove their innocence.
- Courts must give the benefit of doubt to the accused in cases of uncertainty.

Example:

If a person is arrested for theft, they cannot be treated or portrayed as a criminal unless and until the prosecution provides sufficient evidence in court that proves guilt.

4.2.2 Fair Trial

A *fair trial* means a judicial proceeding that is conducted impartially, competently, and without bias, ensuring that all parties have an equal opportunity to present their case.

Components of a Fair Trial:

- Right to be heard (audi alteram partem).
- Right to legal representation.
- Right to a public trial.

- Right to a competent, independent, and impartial tribunal.
- Right to examine witnesses and present evidence.

Legal Basis:

- Article 21 of the Indian Constitution.
- Article 14 and 20 (protection in respect of conviction for offences).
- Internationally in Article 6 of the European Convention on Human Rights.

Significance:

- Prevents arbitrary or biased proceedings.
- Ensures justice is not only done but seen to be done.
- Upholds public confidence in the legal system.

Example:

If an accused is denied access to legal aid or is not given sufficient time to prepare their defense, it amounts to a denial of a fair trial.

4.2.3. Due Process

Due process is a legal requirement that the state must respect all the legal rights owed to a person. It ensures laws are applied fairly and justly.

Types:

- Substantive Due Process: Ensures the law itself is fair and not arbitrary.
- Procedural Due Process: Ensures fair and proper procedures are followed before depriving a person of life, liberty, or property.

Legal Basis:

- Recognized under Article 21 of the Indian Constitution (interpreted expansively by the Supreme Court).
- Fundamental to the Fifth and Fourteenth Amendments of the U.S. Constitution.

Significance:

- Protects individuals against abuse of power by the state.
- Ensures transparency and accountability in legal procedures.

Example:

A person cannot be imprisoned without a legal trial, and if a law authorizing such detention exists without procedural safeguards, it violates due process.

4.2.4. Proportionality in Sentencing

The principle of *proportionality* means that the punishment for a crime should be commensurate with the severity of the offence committed.

Legal Basis:

- A part of the doctrine of fairness under Article 14 and 21 of the Indian Constitution.
- Internationally recognized in human rights law and jurisprudence of various constitutional courts.

Significance:

- Prevents excessive or cruel punishment.
- Maintains public confidence in the justice system.
- Encourages rehabilitation and prevents retributive excess.

Judicial Pronouncements:

- In Bachan Singh v. State of Punjab (1980), the Supreme Court of India held that the death penalty should be imposed only in the "rarest of rare" cases, thus emphasizing proportionality.

Example:

A life sentence for a petty theft would be grossly disproportionate and hence unconstitutional under this principle.

5. Bail: Legal Provisions and Jurisprudence

Bail is a critical aspect of criminal procedure, safeguarding the accused's right to liberty while ensuring their presence during investigation and trial. The concept and procedure of bail have traditionally been governed by the **Code of Criminal Procedure, 1973 (CrPC)**. However, with the introduction of the **Bharatiya Nagarik Suraksha Sanhita, 2023 (BNSS)**—part of India's overhaul of colonial-

era criminal laws—bail procedures have undergone both structural and procedural changes.

This section compares the **old (CrPC)** and **new (BNSS)** frameworks of bail, highlighting continuities, reforms, and evolving jurisprudence.

5.1 Bail Under the Code of Criminal Procedure, 1973 (Old Law)

1. Classification of Offences

Under the CrPC, offences were classified into:

- **Bailable offences**: Bail is a matter of right (Section 436).
- **Non-bailable offences**: Bail is discretionary (Section 437, 439).

2. Types of Bail

1. **Regular Bail** – Sections 436, 437 (Magistrate); Section 439 (High Court/Sessions).
2. **Anticipatory Bail** – Section 438 (for protection before arrest).
3. **Interim Bail** – Temporary relief until a final decision on bail.

3. Guiding Principles (Jurisprudence)

- *Bail is the rule, jail is the exception*: **State of Rajasthan v. Balchand (1977)**.
- *Personal liberty prioritized unless compelling reasons exist*: **Sanjay Chandra v. CBI (2011)**.
- *Anticipatory bail is a constitutional protection against abuse of power*: **Gurbaksh Singh Sibbia v. State of Punjab (1980)**.

5.2. Bail Under the Bharatiya Nagarik Suraksha Sanhita, 2023 (New Law)

1. Codification and Restructuring

BNSS retains the basic structure of bail law but renumbers and refines several provisions:

- **Section 480 of BNSS**: Corresponds to Section 436 (bailable offences).
- **Section 481**: Corresponds to Section 437 (non-bailable offences by Magistrate).

- **Section 482**: Corresponds to Section 438 (anticipatory bail).
- **Section 483**: Corresponds to Section 439 (High Court and Sessions Court bail powers).

2. New Provisions and Reforms

- **Digitization and Transparency**: Emphasis on e-filing and digital tracking of bail applications to reduce procedural delays.
- **Presumption in Favour of Bail for Minor Offences**: For offences punishable with up to 3 years, there is a more liberal approach towards granting bail.
- **Timeline for Filing Bail Orders**: BNSS encourages time-bound decisions on bail, especially in cases of women, children, or elderly accused.
- **Increased Use of Technology**: Provisions allow for virtual bail hearings, improving accessibility.

5.3. Key Differences Between CrPC and BNSS on Bail

Aspect	CrPC (1973)	BNSS (2023)
Section Numbers	436–439	480–483
Terminology	British-era vocabulary	Indianized legal language
Anticipatory Bail	Section 438	Section 482
Procedural Clarity	Often ambiguous	More structured and detailed
Use of Technology	Limited	Emphasis on digital and virtual procedures
Presumptive Bail for Petty Offences	No clear provision	Liberalized for offences < 3 years
Victim Participation	Indirect	Clearer rights for victims in bail hearings

The transition from CrPC to BNSS represents a significant legislative update in India's criminal justice landscape. While bail continues to function as a safeguard of personal liberty, the new law introduces refinements aimed at improving accessibility, transparency, and procedural efficiency. However, meaningful change depends not just on statutory reform but on consistent judicial interpretation, proper infrastructure, and enforcement at the grassroots.

6. Judicial Trends

The judiciary plays a central role in interpreting procedural criminal laws and ensuring that legal provisions related to arrest, detention, investigation, and bail align with constitutional mandates. Particularly in the context of bail, the Indian judiciary has laid down numerous principles to preserve the right to personal liberty under Article 21 of the Constitution.

Through evolving jurisprudence, courts have not only defined the scope and limits of statutory bail provisions under both the CrPC and now the BNSS, but also addressed gaps in the legislative framework, ensuring a balance between liberty and the interests of justice.

6. Landmark Judicial Pronouncements on Bail and Criminal Procedure

6.1 Judicial approach

(a) State of Rajasthan v. Balchand (1977)

- Doctrine Established: "Bail is the rule, jail is the exception."
- The Supreme Court emphasized that the denial of bail should not be punitive and pre-trial detention must be justified with cogent reasons.

(b) Gudikanti Narasimhulu v. Public Prosecutor (1978)

- Justice V.R. Krishna Iyer laid down humanistic guidelines for granting bail.
- The judgment emphasized that bail decisions must consider the social justice dimension and not just the seriousness of the offence.
- Quote: "The issue of bail touches on the deepest chords of human liberty."

(c) Gurbaksh Singh Sibbia v. State of Punjab (1980)

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

- A landmark ruling on anticipatory bail.
- The court held that anticipatory bail is not extraordinary and should be granted based on objective satisfaction of possible misuse of arrest powers.
- It discouraged mechanically denying bail based on seriousness of the offence.

(d) Hussainara Khatoon v. State of Bihar (1979)

- Issue: Thousands of under trial prisoners in Bihar were languishing in jail for periods longer than the maximum sentence for their alleged offence.
- The Supreme Court ruled that this was a violation of Article 21 and established the right to speedy trial as part of fundamental rights.
- Resulted in significant reforms in under trial management and bail policy.

(e) Sanjay Chandra v. CBI (2011)

- The SC held that detaining an accused merely because the investigation is not over or because the crime is serious, without sufficient risk assessment, violates Article 21.
- The court highlighted that bail cannot be refused as a form of indirect punishment or pre-trial conviction.

(f) Arnab Manoranjan Goswami v. State of Maharashtra (2020)

- The Supreme Court intervened directly to grant bail, reiterating that constitutional courts must protect liberty when procedural violations occur.
- It cautioned against the growing trend of denial of bail as default in politically or socially sensitive cases.

(g) Satender Kumar Antil v. CBI (2022)

- The Court provided a detailed roadmap for granting bail in different stages of investigation and trial, recommending strict compliance with Sections 41 and 41A of CrPC.

- It stressed that arrest must not be mechanical and that bail applications must consider the necessity of custodial interrogation.

(h) In Re Policy Strategy for Grant of Bail (2022, Suo Moto)

- The Supreme Court took note of under trial overcrowding and issued guidelines for a more liberal and uniform bail policy, directing lower courts to avoid excessive and unjustified detention.

6.2. Procedural Safeguards Strengthened Through Judicial Review

a. Right to Legal Representation

- Khatri v. State of Bihar (1981): Legal aid is part of fair trial; bail hearings must not be conducted without informing the accused of their right to legal representation.

b. Delay in Trial

- In numerous cases, courts have held that prolonged delay in trials is a valid ground for grant of bail, especially in non-heinous or compoundable offences.

c. Gender and Vulnerability-Based Considerations

- Courts have often granted preferential bail to women, juveniles, and the elderly, citing humanitarian grounds.

6.3. Judicial Caution on Misuse of Bail Provisions

a. Denial in Heinous or Influential Cases

- Courts have also exercised restraint in granting bail in cases of:
    - Terrorism
    - Sexual violence
    - Influence over witnesses
- E.g., in National Investigation Agency v. Zahoor Ahmad Shah Watali (2019), the SC emphasized caution in granting bail in terrorism-related cases under UAPA, where a prima facie case is enough to deny bail.

b. Bail Revocation

- Courts have upheld that bail can be revoked if:

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

- o The accused misuses liberty,
- o Tampers with evidence,
- o Threatens witnesses, or
- o Violates bail conditions.

6.4. Post-BNSS Context: Judicial Directions on Continuity

Since the Bharatiya Nagarik Suraksha Sanhita, 2023 (BNSS) is structurally similar to the CrPC, the judiciary has started interpreting new provisions in light of prior bail jurisprudence.

- In early post-BNSS orders, High Courts have reiterated that old precedent still governs the discretion of courts.
- There is increasing emphasis on video-conferencing, electronic bail bonds, and digitized filing, which are being judicially encouraged in line with BNSS goals.

6.5 Summary of Judicial Trends

Trend	Implication
Bail is not punishment	Bail cannot be denied merely due to seriousness of allegations.
Bail as a right	Especially in bailable and non-heinous offences, liberty must be prioritized.
Discretion must be guided	Judicial discretion must align with constitutional values and avoid arbitrariness.
Speedy trial = just bail	Courts factor in trial delays while deciding on continued detention.
Victim's right vs. accused's liberty	Courts attempt to balance both, especially in violent crimes.

7. Conclusion

The procedural method of the criminal justice system plays a crucial role in ensuring that justice is administered fairly, efficiently, and in accordance with constitutional principles. Among the multiple stages and safeguards embedded in this system, **bail** occupies a pivotal position—acting as a bridge between the accused's right to personal liberty and the state's interest in ensuring the effective administration of justice.

This study highlights how the criminal procedure framework, particularly in India, has evolved through statutory enactments, judicial interpretations, and recent legislative reforms. Under the **Code of Criminal Procedure, 1973**, bail was governed by a blend of legal standards and judicial discretion, often criticized for inconsistency and socio-economic bias. The transition to the **Bharatiya Nagarik Suraksha Sanhita, 2023**, while maintaining the core concepts of bail, introduces greater clarity, digitization, and structured timelines—reflecting an attempt to modernize and humanize the criminal process.

Judicial pronouncements have significantly contributed to shaping bail jurisprudence, consistently reiterating that **"bail is the rule, jail is the exception."** The Supreme Court and High Courts have emphasized the importance of safeguarding personal liberty, preventing arbitrary arrests, and reducing the burden of under trial detention. Despite this, challenges persist, including misuse of discretion, procedural delays, and the disproportionate impact on marginalized populations.

The procedural justice framework must continue to evolve with a focus on:

- Codified and uniform bail guidelines,
- Sensitization of law enforcement and judiciary,
- Expanded legal aid,
- Technology-driven transparency,
- And greater judicial accountability.

Ultimately, the effectiveness of the criminal justice system lies not only in convicting the guilty but in **upholding the dignity and liberty of every individual**, especially those yet to be proven guilty. A balanced, fair, and constitutionally sound approach to bail is essential to achieving that ideal.

Bibliography

Primary Sources

1. *Code of Criminal Procedure, 1973* ***(India).***
2. *Bharatiya Nagarik Suraksha Sanhita, 2023* ***(India).***
3. *The Constitution of India****, 1950.***
4. *Universal Declaration of Human Rights****, 1948.***
5. *International Covenant on Civil and Political Rights (ICCPR)****, 1966.***

Landmark Cases

1. *State of Rajasthan v. Balchand, AIR 1977 SC 2447.*
2. *Gudikanti Narasimhulu v. Public Prosecutor, (1978) 1 SCC 240.*
3. *Gurbaksh Singh Sibbia v. State of Punjab, (1980) 2 SCC 565.*
4. *Hussainara Khatoon v. State of Bihar, AIR 1979 SC 1360.*
5. *Sanjay Chandra v. CBI, (2012) 1 SCC 40.*
6. *Arnab Manoranjan Goswami v. State of Maharashtra, (2021) 2 SCC 427.*
7. *Satender Kumar Antil v. CBI, (2022) 10 SCC 51.*
8. *NIA v. Zahoor Ahmad Shah Watali, (2019) 5 SCC 1.*

Books and Commentaries

1. *Ratanlal & Dhirajlal. The Code of Criminal Procedure. LexisNexis, 24th Ed.*
2. *K.D. Gaur. Criminal Law: Cases and Materials. Eastern Book Company, 2020.*
3. *Kelkar, R.V. Lectures on Criminal Procedure. Eastern Book Company, 6th Ed.*
4. *Justice V.R. Krishna Iyer. Law and the Poor. Deep & Deep Publications.*

5. *Prof. N.V. Paranjape. Criminal Procedure Code. Central Law Agency, 2023.*

Journal Articles and Reports

1. *Law Commission of India, Report No. 268: Amendments to Criminal Procedure Code (Bail Reform), 2017.*
2. *Human Rights Watch, Pre-Trial Detention and Rights of the Accused in India, 2019.*
3. *National Crime Records Bureau (NCRB), Prison Statistics India, Annual Reports (2020–2023).*
4. *Jain, M.P. "Right to Bail: Changing Dimensions under Indian Law", Journal of Indian Law and Society, Vol.*

Beyond Boundaries: Human Rights as the Compass for Global Migration Governance

Afzal Ahamad
Department of Political Science and Human Rights, Jamia Hamdard University

Shahanshah Khan
Department of Political Science, Aligarh Muslim University

Introduction

Global migration governance sits at the intersection of state sovereignty, international cooperation, and human dignity. In recent decades, human rights norms—especially principles like non-refoulement, non-discrimination, and the protection of migrant worker rights—have increasingly influenced how states conceptualize and implement migration policy and oversight mechanisms. Global migration governance represents a complex and dynamic interplay of state sovereignty, international cooperation, and the imperative to uphold human dignity. As global migration flows have intensified, driven by factors such as conflict, economic disparity, environmental changes, and globalization, the need for coherent and principled governance frameworks has become increasingly urgent. At the heart of this governance lies a tension: states seek to maintain control over their borders and migration policies, while international norms and human rights principles demand protections for migrants, regardless of their status. Over recent decades, human rights norms—most notably the principle of non-refoulement, the commitment to non-discrimination, and the safeguarding of migrant workers' rights—have significantly shaped the discourse and practice of migration governance. These norms challenge states to balance their sovereign authority with obligations to protect vulnerable populations, creating a multifaceted landscape of legal frameworks, institutional mechanisms, and global cooperative efforts.

This paper explores how legal frameworks, institutional mechanisms, and evolving global compacts shape migration governance, emphasizing the interplay between human rights norms and state authority. It explores the role of international legal frameworks, such as conventions and treaties, in establishing standards for migrant protection. It also analyzes the institutional

mechanisms—ranging from United Nations agencies to regional bodies—that facilitate or enforce these standards. Furthermore, the paper considers the impact of global compacts, such as the Global Compact for Safe, Orderly, and Regular Migration, in fostering cooperation and dialogue among states, civil society, and other stakeholders. By delving into these dimensions, the paper highlights the delicate balance between respecting state sovereignty and advancing universal human rights, offering insights into how these competing priorities shape the governance of migration in an increasingly interconnected world.

1. Theoretical and Legal Foundations of Human-Rights Based Migration Governance

1.1 Core Human Rights Principles

Human rights law applies universally and indivisibly across populations, regardless of nationality. States are bound not only to refrain from violating rights but also to proactively protect and fulfill them through equitable, nondiscriminatory policies. These norms are enshrined in key international instruments such as the ICCPR, ICESCR, CEDAW, CRC, and the Migrant Workers Convention.

1.2 Foundational Human Rights Instruments

Though not legally binding, the Universal Declaration of Human Rights sets the moral and normative baseline for subsequent treaties like the ICCPR and ICESCR, which carry binding force in many jurisdictions. The International Convention on the Protection of the Rights of All Migrant Workers and Members of their Families offers a comprehensive, migrant-specific rights framework, seeking to uphold equality of treatment and protect fundamental rights—even of irregular migrants.

1.3 The Principle of Non-Refoulement

Central to ethical migration governance is non-refoulement, a customary international law obligation preventing states from deporting individuals to places where their lives or freedoms are at serious risk. This principle imposes a binding duty even on states not party to the Refugee Convention, reflecting its status among the most fundamental tenets of international law.

2. Institutional Frameworks and Governance Architecture

2.1 Multi-Level Governance and Norm Diffusion

Global migration governance operates across multiple intersecting layers—national, regional, and global—mediated by both hard and soft law instruments. Alongside these, non-state stakeholders, including migrant-led groups and businesses, increasingly contribute to norm-setting and implementation.

2.2 Global Compacts on Migration

The Global Compact for Safe, Orderly and Regular Migration (GCM), adopted by the United Nations in December 2018, represents a milestone in codifying non-binding commitments around humane migration governance. It emphasizes inclusive, rights-based approaches while accommodating state sovereignty and flexibility.

2.3 Rights-Based Approaches and Capacity Building

The International Organization for Migration (IOM) has placed a rights-based approach at the core of its Strategic Plan (2024–2028), emphasizing that all migration policies should respect, protect, and fulfill migrant rights, while providing capacity-building and legislative guidance to states.

3. Case Studies: Human Rights Norms in Action

3.1 The Mediterranean and the Hirsi Jamaa Ruling

In Hirsi Jamaa and Others v. Italy, the European Court of Human Rights affirmed that Italy bore responsibility under the ECHR for migrants intercepted at sea, affirming their human rights protections even beyond territorial limits.

3.2 Challenges and Pushbacks in EU Policy

Recent developments signal rising tensions between human rights norms and migration control. Greece, for example, suspended asylum applications from North Africa, prompting concerns from human rights groups and scrutiny by the EU of potential violations. Simultaneously, critics have condemned the EU's financial support to North African nations that carry out pushbacks in the desert, highlighting indirect complicity in rights abuses.

3.3 The ECHR at the Center of Migration Debates

Several European states have challenged the ECHR's authority, arguing that its legal interpretations limit their ability to control immigration and deport offenders. The Council of Europe, however, has defended the Court's independence and its role in safeguarding agreed-upon values.

4. Human Rights Norms – Principles and Challenges in Migration Governance

4.1 Non-Refoulement as a Cornerstone

The principle of non-refoulement—enshrined in Article 33 of the 1951 Refugee Convention and recognized as jus cogens—forbids states from returning individuals to territories where they face threats to life or freedom (Goodwin-Gill & McAdam, 2021). Its scope has expanded through

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

international jurisprudence, including the Hirsi Jamaa case, to cover maritime interceptions and indirect returns via third countries.

Challenge: Despite its binding nature, states employ "informal" measures—like safe third country agreements—to bypass obligations, raising concerns over constructive refoulement.

4.2 The Right to Seek Asylum and Fair Procedures

Article 14 of the Universal Declaration of Human Rights recognizes the right to seek asylum, while the 1951 Refugee Convention establishes a framework for determining refugee status (UNHCR, 2010).

Challenge: Asylum systems face backlogs and restrictive procedural barriers. For example, the U.S. "metering" policy has limited asylum processing at ports of entry, which courts have found to contravene statutory protections (Human Rights First, 2022).

4.3 Freedom from Arbitrary Detention

International law—especially the ICCPR (Art. 9) and regional human rights instruments—prohibits arbitrary detention.

Case: In A. v. Australia (HRC, 1997), the UN Human Rights Committee found prolonged immigration detention without judicial review to be unlawful.

Challenge: States often justify detention as an administrative necessity, but this risks normalizing deprivation of liberty for migration-related reasons (Flynn, 2017).

4.4 Socio-Economic Rights of Migrants

The ICESCR guarantees rights to work, education, and health for "all individuals" within a state's jurisdiction, irrespective of legal status (Committee on Economic, Social and Cultural Rights, General Comment No. 20).

Challenge: Migrants, especially those with irregular status, face systemic exclusion. In Gulf states, for example, kafala sponsorship systems tie migrant workers to employers, creating vulnerabilities to exploitation (ILO, 2020)

4.5 Balancing Security and Rights

Governments frequently frame migration in security terms—focusing on border control, counter-terrorism, and crime prevention—often sidelining human rights.

Example: Australia's "Operation Sovereign Borders" has faced criticism from the UN for intercepting boats and transferring asylum seekers to offshore facilities in Papua New Guinea and Nauru, where rights abuses have been documented (Amnesty International, 2016).

Challenge: The securitization of migration can erode trust in institutions, normalize deterrence-based policies, and undermine global rights commitments.

5. Case Studies: Human Rights Norms in Practice

5.1 European Union – Legal Obligations and Policy Tensions

5.1.1 The Dublin Regulation and Burden-Sharing

The Dublin III Regulation assigns responsibility for examining asylum claims to the first EU member state of entry (European Parliament, 2020). While intended to streamline procedures, it has concentrated asylum processing on frontline states like Greece and Italy. The European Court of Human Rights (ECHR) has intervened in cases such as M.S.S. v. Belgium and Greece (2011), finding rights violations in inadequate reception conditions in Greece.

5.1.2 Pushbacks and Externalization

Reports by Human Rights Watch and Amnesty International document instances of EU-supported pushbacks at land and sea borders, particularly in the Aegean and Central Mediterranean (HRW, 2022). The EU's cooperation with Libya, aimed at stemming irregular migration, has been criticized for indirectly facilitating arbitrary detention and abuse of migrants by Libyan authorities (UN, 2021).

5.2 United States – Border Control and Rights Protection

5.2.1 Enforcement and Due Process

U.S. border governance has increasingly emphasized deterrence, with measures such as Title 42 expulsions during the COVID-19 pandemic. This policy, based on public health grounds, led to the summary removal of migrants without access to asylum procedures (American Immigration Council, 2022).

5.2.2 Family Separation and Detention Practices

The 2018 "zero tolerance" policy resulted in widespread family separations, prompting condemnation by the UN High Commissioner for Human Rights as a violation of the best interests of the child principle under the CRC (OHCHR, 2018). While the Biden administration has ended this policy, legal challenges over migrant detention conditions continue.

5.3 The Rohingya Crisis – Statelessness and Protection Gaps

5.3.1 Background and Human Rights Implications

The Rohingya, a Muslim minority from Myanmar's Rakhine State, have faced systematic persecution, culminating in the 2017 military crackdown described by the UN as a "textbook example of ethnic cleansing" (UNHCR, 2018). Most fled to Bangladesh, which hosts over 900,000 Rohingya refugees in camps like Cox's Bazar.

5.3.2 Statelessness as a Barrier to Rights

Without citizenship, Rohingya refugees lack legal identity and face barriers to education, work, and freedom of movement. Bangladesh, while not a signatory to the 1951 Refugee Convention, has provided refuge but resists long-term integration. Human rights norms particularly non-discrimination and the right to life remain central to advocacy efforts.

5.4 Syrian Refugee Response – Rights under Strain

5.4.1 Regional Hosting and Legal Protections

Turkey hosts the largest number of Syrian refugees under its temporary protection regime (UNHCR, 2023). While granting access to basic services, the system imposes geographic restrictions and limits access to formal employment. Lebanon and Jordan face similar challenges, with humanitarian aid filling gaps left by overstretched state systems.

5.4.2 International Burden-Sharing

The Global Compact on Refugees (2018) emphasizes equitable responsibility-sharing, yet funding shortfalls and uneven political will have hampered its implementation. This illustrates a key tension: global norms affirm refugee rights, but operational realities often leave them under-protected.

6. Norm Implementation and Compliance Mechanisms

6.1 Treaty Bodies and Monitoring Mechanisms

Human rights norms in migration governance are anchored in legally binding treaties monitored by UN treaty bodies. The Human Rights Committee oversees compliance with the ICCPR, reviewing periodic state reports and issuing General Comments on detention, due process, and non-discrimination.

The Committee on the Protection of the Rights of All Migrant Workers (CMW) reviews implementation of the Migrant Workers Convention, though its influence is limited by the fact that many major migrant-receiving countries have not ratified the treaty (OHCHR, 2023).

These bodies rely on state reporting, shadow reports from civil society, and individual complaint procedures to identify rights violations. However, their recommendations are non-binding, creating a gap between normative authority and enforcement power.

6.2 Regional Human Rights Courts and Commissions

Regional systems provide stronger, often binding mechanisms:

European Court of Human Rights (ECHR): Through cases like Hirsi Jamaa and M.S.S., the Court has extended human rights protections beyond borders, reinforcing the extraterritorial

application of non-refoulement (ECHR, 2011). Inter-American Court of Human Rights: Recognizes migrants' rights regardless of legal status, emphasizing the principle of equality and non-discrimination (e.g., Advisory Opinion OC-18/03).

African Commission on Human and Peoples' Rights: Addresses migration-related abuses, especially in contexts of mass displacement and expulsion (ACHPR, 2022) These courts' rulings can compel changes in domestic law, but states sometimes resist compliance when migration intersects with politically sensitive security concerns.

6.3 Soft Law and Political Commitments

Many key developments in migration governance are shaped by soft law instruments such as the Global Compact for Migration (GCM) and the Global Compact on Refugees (GCR).While non-binding, they serve as frameworks for cooperation, information-sharing, and norm diffusion. They provide benchmarks for civil society advocacy and peer accountability through review forums (UN, 2018).

The GCM's Objective 7, for instance, explicitly calls for addressing and reducing vulnerabilities in migration through human rights-based approaches.

6.4 Civil Society and Transnational Advocacy Networks

Non-governmental actors—ranging from grassroots migrant associations to global NGOs like Amnesty International—play a critical role in naming and shaming rights violators and pressuring for policy reform (Keck & Sikkink, 1998).

Civil society actors produce shadow reports to treaty bodies, document abuses, and litigate landmark cases. In the EU, strategic litigation by NGOs has led to suspension of returns to countries deemed unsafe for asylum seekers.

However, these organizations face resource constraints and political pushback, especially in states that view migration primarily as a sovereignty issue.

6.5 National-Level Implementation Challenges

Even where human rights norms are formally incorporated into domestic law, implementation gaps persist:

Capacity limitations: Weak legal aid systems, overcrowded courts, and insufficient border infrastructure undermine procedural guarantees.

Political resistance: Populist narratives framing migrants as security threats can erode political will to comply with human rights standards.

Legal loopholes: States may use "informal" agreements with transit countries to avoid direct responsibility for rights protection, as seen in EU-Libya cooperation.

7. Key Debates and Critiques

7.1 Universality vs. Cultural Relativism

Human rights norms in migration governance are built on the principle of universality—that all individuals, regardless of nationality or legal status, are entitled to the same fundamental protections (Donnelly, 2013). Supporters of universality argue that rights are rooted in inherent human dignity and cannot be compromised by political or cultural contexts.

Cultural relativist perspectives contend that migration governance must be sensitive to local traditions, societal norms, and security priorities, especially in culturally diverse regions such as the Gulf or Southeast Asia.

Tension: When international norms are perceived as externally imposed, states may resist ratification or dilute implementation—seen in the reluctance of several Middle Eastern countries to sign the Migrant Workers Convention.

7.2 Humanitarian Imperative vs. State Sovereignty

Migration governance inherently balances state sovereignty—the right to control borders and determine who enters—with the humanitarian imperative to protect those in need.

Sovereignty advocates argue that states must retain discretion over migration flows to preserve national security and social stability.

Humanitarian advocates counter that sovereignty must be exercised in line with binding international law, including non-refoulement and non-discrimination obligations (Betts, 2011).

Example: Australia’s offshore processing policy demonstrates the friction between strict border control measures and the humanitarian duty to ensure safety and dignity for asylum seekers.

7.3 Securitization of Migration

Migration is increasingly framed in security terms, with discourse focusing on irregular migration, terrorism, and border crime. This securitization can:

Justify extraordinary measures such as militarized borders and prolonged detention (Bigo, 2002). Undermine humanitarian narratives by casting migrants primarily as threats rather than rights-holders.

Case: In the United States post-9/11, migration control agencies were integrated into the Department of Homeland Security, institutionalizing the security framing of migration policy.

7.4 Politicization of Refugee Protection

Refugee protection can be instrumentalized for domestic political gain. Politicians may:

Use refugee arrivals to mobilize nationalist or anti-immigrant sentiment.

Frame international commitments as burdens imposed by foreign institutions. Example: In Hungary, the 2015 refugee crisis was politicized through national referendums and campaigns portraying EU asylum quotas as threats to sovereignty and cultural identity (Kallius, 2016).

7.5 Norm Fatigue and Implementation Gaps

Repeated reaffirmations of human rights norms, without effective enforcement, risk creating "norm fatigue"—where states commit in principle but disengage in practice. Underfunded asylum systems, inadequate monitoring, and geopolitical crises (e.g., Ukraine war) can strain compliance. Civil society warns that without stronger enforcement mechanisms, the legitimacy of global migration governance will erode.

8. Emerging Trends and Future Directions

8.1 Climate Change and Displacement

The growing impacts of climate change—rising sea levels, desertification, extreme weather events—are projected to displace tens of millions in the coming decades (IPCC, 2022). Current international law does not formally recognize climate refugees. The 1951 Refugee Convention applies only to persecution on specific grounds (race, religion, nationality, political opinion, or membership of a particular social group).

Initiatives such as the Platform on Disaster Displacement and the Nansen Initiative advocate expanding protection frameworks to address climate-induced migration (McAdam, 2020). Future Direction: Develop a binding legal instrument or interpretive guidance integrating climate-related risks into refugee and human rights protection regimes.

8.2 Digital Borders and Surveillance Technologies

Technological tools—biometric databases, facial recognition, AI risk-profiling are transforming migration governance (Molnar, 2020).
Advantages: Enhance identity verification, speed up asylum processing, improve coordination across states Risks: Potential for discrimination, mass surveillance, and violations of privacy rights under ICCPR Article 17 Example: The EU's Entry/Exit System (EES) will log biometric data of all non-EU travelers, raising concerns over proportionality and data protection safeguards.

8.3 Evolving Role of Cities and Local Authorities

Cities are emerging as frontline actors in migration governance.
Urban areas like Barcelona, Toronto, and São Paulo have adopted inclusive policies—offering municipal ID cards, access to public services, and sanctuary measures.Networks such as the

Global Mayors Migration Council advocate embedding human rights principles into local governance (GMCM, 2023).

Future Direction: Strengthen city-to-city cooperation, with funding mechanisms to implement rights-based local integration policies.

8.4 Regional Migration Frameworks and South–South Cooperation

While much of the migration governance discourse centers on North–South dynamics, South–South migration constitutes nearly 40% of all global migration (IOM, 2023).

Regional organizations like ECOWAS and MERCOSUR provide free movement regimes with built-in human rights protections. These frameworks can offer more context-sensitive, culturally attuned approaches to rights protection, potentially bypassing geopolitical deadlocks in global governance.

8.5 Toward Stronger Accountability Mechanisms

To close the persistent implementation gap: Integrate human rights impact assessments into all migration agreements. Enhance peer review processes within the Global Compact frameworks. Increase funding for independent monitoring bodies and legal aid programs for migrants.

Future Direction: Shift from reliance on soft-law commitments toward hybrid systems combining political cooperation with binding enforcement elements.

9. Conclusion

Human rights norms have become an indispensable—yet contested—pillar of global migration governance. Over the past several decades, the expansion of legal frameworks, the activism of transnational advocacy networks, and the proliferation of soft-law commitments like the Global Compact for Migration have embedded principles such as non-refoulement, non-discrimination, and due process into the normative core of migration policy. These norms offer a vital counterbalance to state sovereignty, reminding governments that migration management is not solely a matter of border control but also a matter of safeguarding dignity, life, and liberty.

The case studies examined—ranging from EU pushback practices in the Mediterranean to U.S. border enforcement, the plight of the Rohingya, and the Syrian refugee response—demonstrate the gap between norm recognition and norm implementation. While international and regional human rights bodies have succeeded in setting legal precedents, enforcement remains uneven, especially when compliance challenges intersect with domestic political pressures, security concerns, or resource constraints.

Looking ahead, several trends will shape the future of rights-based migration governance:

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

Climate change will expand the boundaries of who requires protection. Digital borders and surveillance technologies will test the balance between security and privacy. Local governments and South–South migration frameworks will gain influence, offering new models for rights-based inclusion.

Policy recommendations include:

1. Legal innovation — Develop binding or interpretive instruments to protect climate-displaced persons.
2. Accountability enhancement — Pair soft-law frameworks with enforceable peer review and monitoring mechanisms.
3. Local empowerment — Provide funding and technical support for city-level rights-based integration strategies.
4. Technological safeguards — Mandate privacy and anti-discrimination audits for all migration-related digital systems.

Ultimately, human rights norms function as both moral compass and legal framework for migration governance. They do not eliminate political conflict over migration, but they set minimum standards of treatment that should guide policy in moments of crisis as well as in times of stability. The challenge for the coming decades is to transform these principles from aspirational rhetoric into lived realities for the millions of people whose mobility will define the 21st century.

References

1. *Amnesty International. (2016). Island of despair: Australia's "processing" of refugees on Nauru. Amnesty International. https://www.amnesty.org/en/documents/asa34/4818/2016/en/*
2. *American Immigration Council. (2022). A guide to Title 42 expulsions at the border. American Immigration Council. https://www.americanimmigrationcouncil.org/research/overview-title-42-expulsions*
3. *Bigo, D. (2002). Security and immigration: Toward a critique of the governmentality of unease. Alternatives: Global, Local, Political, 27(1), 63–92. https://doi.org/10.1177/03043754020270S105*
4. *Betts, A. (2011). Protection by persuasion: International cooperation in the refugee regime. Cornell University Press. https://www.cornellpress.cornell.edu/book/9780801477595/protection-by-persuasion/*

5. *Committee on Economic, Social and Cultural Rights. (2009). General comment No. 20: Non-discrimination in economic, social and cultural rights (Art. 2, para. 2). UN Doc. E/C.12/GC/20. https://www.ohchr.org/en/documents/general-comments-and-recommendations/general-comment-no-20-non-discrimination-economic-social*
6. *Donnelly, J. (2013). Universal human rights in theory and practice (3rd ed.). Cornell University Press. https://www.cornellpress.cornell.edu/book/9780801477700/universal-human-rights-in-theory-and-practice/*
7. *European Court of Human Rights. (2011). Case of Hirsi Jamaa and Others v. Italy (Application no. 27765/09). https://hudoc.echr.coe.int/eng?i=001-109231*
8. *European Parliament. (2020). Asylum policy: Fact sheets on the European Union. https://www.europarl.europa.eu/factsheets/en/sheet/151/asylum-policy*
9. *Flynn, M. (2017). Global detention project: Immigration detention and the rule of law. Global Detention Project. https://www.globaldetentionproject.org*
10. *Goodwin-Gill, G. S., & McAdam, J. (2021). The refugee in international law (4th ed.). Oxford University Press. https://doi.org/10.1093/law/9780198808572.001.0001*
11. *Human Rights First. (2022). Metering and asylum at the border. Human Rights First. https://humanrightsfirst.org/library/metering-and-asylum*
12. *Human Rights Watch. (2022). Illegal pushbacks at EU borders. Human Rights Watch. https://www.hrw.org/report/2022/06/23/illegal-pushbacks-eu-borders*
13. *International Labour Organization. (2020). Reforming the kafala sponsorship system. ILO. https://www.ilo.org/global/about-the-ilo/newsroom/news/WCMS_733218/lang--en/index.htm*
14. *International Organization for Migration. (2023). World migration report 2024. IOM. https://worldmigrationreport.iom.int/*
15. *Keck, M. E., & Sikkink, K. (1998). Activists beyond borders: Advocacy networks in international politics. Cornell University Press. https://press.princeton.edu/books/paperback/9780801484562/activists-beyond-borders*
16. *Kallius, A., Monterescu, D., & Rajaram, P. K. (2016). Immobilizing mobility: Border ethnography, illiberal democracy, and the politics of the "refugee crisis" in Hungary. American Ethnologist, 43(1), 25–37. https://doi.org/10.1111/amet.12260*
17. *McAdam, J. (2020). Climate change and displacement: Multidisciplinary perspectives. Bloomsbury Publishing. https://www.cambridge.org/core/books/climate-change-and-displacement/*

18. *Molnar, P. (2020). Technological testing grounds: Migration management experiments and reflections from the ground up. Big Data & Society, 7(2), 1–13. https://doi.org/10.1177/2053951720906116*
19. *Office of the High Commissioner for Human Rights. (2018). UN human rights chief deplores separation of migrant children from parents in US. OHCHR. https://www.ohchr.org/en/statements/2018/06/un-human-rights-chief-deplores-separation-migrant-children-parents-us*
20. *Office of the High Commissioner for Human Rights. (2023). Committee on the Protection of the Rights of All Migrant Workers and Members of Their Families. OHCHR. https://www.ohchr.org/en/treaty-bodies/cmw*
21. *United Nations. (2018). Global compact for safe, orderly and regular migration. United Nations. https://refugeesmigrants.un.org/*
22. *United Nations High Commissioner for Refugees. (2010). Refugee protection and mixed migration: A 10-point plan of action. UNHCR. https://www.unhcr.org/publications/refugee-protection-and-mixed-migration*
23. *United Nations High Commissioner for Refugees. (2018). Rohingya crisis explained. UNHCR. https://www.unhcr.org/news/stories/2018/3/5aa783d14/rohingya-crisis-explained.html*
24. *United Nations High Commissioner for Refugees. (2023). Syrian refugees in Türkiye. UNHCR. https://www.unhcr.org/tr/en/syrian-refugees-in-turkiye*

A Study on the Usage of Cashless Transactions and Digital Payment Systems among MSMEs in Nagpur City

Shivesh Hargode
Research Scholar
Place for Higher Learning & Research,
C.P.& Berar E.S. College, Tulsibag,
Mahal, Nagpur

Dr. Medha Kanetkar
Principal
Shri Niketan Arts Commerce
College, Reshimbag, Nagpur

Abstract

The rise of digital payment systems has revolutionized financial transactions across various business sectors, including Micro, Small, and Medium Enterprises (MSMEs). This study explores the adoption and impact of cashless transactions among MSMEs in Nagpur City. It aims to identify the key factors driving digital payment adoption, analyze the benefits and challenges faced by MSMEs. Through a combination of surveys and secondary data analysis, the study highlights the growing dependence on digital payments and their implications for business efficiency, financial transparency, and economic growth. The findings provide insights into how digital payment systems can further be optimized to support MSME development in Nagpur.

Keywords: Cashless Transactions, Digital Payment Systems, MSMEs, Digital Adoption, Economic Growth.

Introduction

The digital revolution has significantly influenced the financial landscape worldwide, with cashless transactions becoming an essential component of modern economies. In India, the rise of digital payment systems has been accelerated by

government initiatives such as Digital India, demonetization in 2016, and the implementation of Goods and Services Tax (GST). These measures have encouraged businesses, especially Micro, Small, and Medium Enterprises (MSMEs), to adopt digital payment methods for greater financial transparency and efficiency.

Nagpur City, one of Maharashtra’s rapidly developing urban centers, has seen a surge in digital payment adoption among MSMEs. The transition to cashless transactions has been driven by various factors, including convenience, speed, reduced dependency on cash, and increased customer preference for digital modes of payment. However, despite these advantages, many MSMEs still face challenges such as limited access to digital infrastructure, cybersecurity risks, and reluctance from cash-dependent customers.

This study aims to assess the extent of digital payment adoption among MSMEs in Nagpur, analyze the benefits and challenges they encounter, and evaluate the role of government policies in facilitating a cashless economy. Understanding these factors is crucial for devising strategies to improve digital financial inclusion and support the growth of MSMEs in the city.

Literature Review

Digital Payment Adoption among MSMEs

Several studies highlight the growing inclination of MSMEs toward digital payment systems (Agarwal & Chatterjee, 2020; Gupta et al., 2021). Digital transactions, including UPI, mobile wallets, and card payments, have been widely accepted due to their ease of use and enhanced security (Rathore, 2019). MSMEs in urban areas, including cities like Nagpur, show a higher adoption rate than their rural counterparts (Sharma & Kumar, 2020).

Benefits of Cashless Transactions for MSMEs

Cashless transactions offer multiple advantages, such as increased financial

transparency, reduced transaction costs, and improved record-keeping (Patel & Desai, 2020). A study conducted by Narayanan (2019) suggests that MSMEs using digital payments experience improved business efficiency and customer satisfaction. Additionally, cashless transactions minimize the risks associated with cash handling, such as theft and counterfeit currency issues (Kumar & Rao, 2021).

Challenges in Cashless Payment Adoption

Despite the benefits, MSMEs face challenges such as high transaction fees, lack of technical knowledge, cybersecurity risks, and internet connectivity issues (Verma & Kapoor, 2021). A study on Nagpur MSMEs by Saxena (2022) identifies concerns over digital fraud and reluctance to transition due to traditional cash-based business models. Additionally, the lack of trust in digital payment systems and resistance from customers contribute to slow adoption (Shukla & Mehta, 2020).

Objectives of the Study

- To examine the level of cashless transaction adoption among MSMEs in Nagpur.
- To assess the impact of digital transactions on business operations.

Research Methodology

Research Design

By using secondary data this study employs a descriptive research design. Secondary data from government reports and financial studies were analyzed.

Data Collection

Secondary Data: Reports from RBI, MSME Ministry, and industry publications.

Results and Discussion

Adoption of Digital Payments

- 85% of MSMEs reported using at least one digital payment method.

- UPI and mobile wallets were the most preferred due to their ease of use and low transaction costs.
- Retail and service-based MSMEs showed higher adoption rates compared to manufacturing units.

Modes of Digital Transactions by MSME's

1. Credit Card
2. Debit Card
3. Bharat QR Code
4. Bharat Interface for Money (BHIM)
5. Mobile Wallets
6. Net Banking
7. Prepaid Cards
8. National electronics Fund Transfer (NEFT)
9. Real Time Gross Settlements (RTGS)
10. Unified Payments interface (UPI)
11. Immediate Payments Service (IMPs)
12. BHIM Aadhaar
13. National Automated Clearing House (NACH)
14. Aadhaar Payment Bridge System (APBS)
15. National Financial Switch (NFS)
16. National Electronics Toll Collection (NETC)
17. Bharat Bill Payments System (BBPS)

Benefits of Cashless Transactions

Faster transactions and improved customer satisfaction.

Cashless payments significantly reduce the time required for transactions compared to traditional cash payments. Whether using credit/debit cards, mobile wallets, or online banking, digital payments are processed within seconds. This leads to:

- **Shorter waiting times** – Businesses can serve more customers in less time, improving overall efficiency.
- **Greater convenience** – Customers do not need to carry cash, count change, or deal with cash shortages.
- **Seamless transactions** – Many digital payment systems integrate with e-commerce platforms, enabling one-click purchases.

Better financial tracking and tax compliance.

Digital transactions leave an electronic record, making financial management easier for individuals, businesses, and governments. Benefits include:

- **Accurate expense tracking** – Users can monitor their spending through banking apps and statements.
- **Easier budgeting** – Digital payment apps categorize expenses, helping users plan their finances.
- **Improved tax compliance** – Businesses with digital records can maintain proper financial documentation, reducing errors and tax evasion risks.
- **Transparency and accountability** – Governments can track digital transactions more effectively, reducing illegal financial activities.

Reduction in cash-handling risks and theft.

Handling physical cash comes with risks such as theft, mismanagement, and counterfeit money. Cashless transactions help in:

- **Minimizing theft** – Businesses and individuals do not need to store large amounts of cash, reducing robbery risks.
- **Lower operational costs** – Cash management (counting, storing, and depositing) requires time and security measures, which digital transactions eliminate.
- **Preventing counterfeit currency** – Digital transactions eliminate the risks of dealing with fake banknotes.
- **Enhanced security** – Many digital payment systems use encryption, authentication, and fraud protection mechanisms to safeguard transactions.

Challenges Faced by MSMEs

- Technical issues and network failures.
- Lack of awareness and digital literacy among small business owners.
- Resistance from customers preferring cash transactions.
- Cybersecurity threats and fraud concerns.

Conclusion and Recommendations

The study concludes that digital payment systems have significantly transformed MSME operations in Nagpur, offering efficiency and financial transparency. However, challenges such as infrastructure limitations, security concerns, and customer reluctance need to be addressed.

Recommendations

- **Enhancing Digital Literacy:** Training programs for MSME owners to improve their understanding of digital transactions.
- **Infrastructure Development:** Strengthening internet connectivity and payment gateways in urban and semi-urban areas.
- **Government Incentives:** Offering tax benefits or reduced transaction fees for MSMEs using digital payments.
- **Security Measures:** Implementing stronger cybersecurity protocols to prevent fraud.

References

1. *Government reports on MSME digitalization.*
2. *RBI and financial institution reports on digital payments.*
3. *Research papers and case studies on cashless transactions in India.*
4. *Cueto, L. J., Frisnedi, A. F. D., Collera, R. B., Batac, K. I. T., &Agaton, C. B. (2022). Digital Innovations in MSMEs during economic disruptions: Experiences and challenges of young entrepreneurs. Administrative Sciences, 12(1), 8-17.*

5. *https://www.financialexpress.com/industry/sme/msme-fin-as-govt-pushes-for-digital-payments-heres-how-active-msme-ministry-is-in-transacting-digitally/2440752/*
6. *Teoh, W. M. Y., Chong, S. C., Lin, B., & Chua, J. W. (2013). Factors affecting consumers' perception of electronic payment: an empirical analysis. Internet Research, 23(4), 465-485. doi:10.1108/IntR-09-2012-0199*

Smart Phone Agriculture Apps: The Future of Indian Farming

Prof Shirish M. Sutar
Assistant Professor
Shrikrishndas Jajoo Gramin Seva
Mahavidyalaya, Pipri-Wardha

Abstract:
Agriculture is crucial for India, it supports nearly 45% of the population and is the backbone of the economy. Now, Smart Phone apps designed for farming are bringing big changes. These apps are helping farmers work smarter, learn better, sell their crops easily, and earn more. This article explores how these apps have grown, their impact on farming, the challenges they face, and what the future holds-using real examples, government initiatives, and global best practices. Farming in India has many struggles-small landholdings, dependence on rain, and limited access to expert advice, modern markets, and tools to improve yields. But as more rural Indians get Smart Phone and internet, digital farming solutions are emerging. By 2024, big amount of small farmers owned a mobile phone, and some are using farming apps. These apps help farmers in many ways, Real-time weather updates, Expert farming advices, Soil health checks, Crop disease and pest diagnosis, Market prices and online selling, Loans, insurance, and financial services. Popular apps include MahaVistar Ai, MP Kisan, BharatAgri, AgriApp, Crop Doctor, mKisan, e-NAM, and AgriMarket. By providing quick information and easy access to services, these apps help even less-educated or marginalized farmers. The government is playing a big role in this change. Programs like the

Digital Agriculture Mission (2024) and the India Digital Agriculture Council are building digital tools for farmers, including big farm databases (AgriStack) and real-time information systems. But challenges remain, Not all farmers have Smart Phones or internet, Many lack digital skills or can't afford technology,

Introduction

Agriculture is the heart of India’s economy, providing jobs for nearly half the population however, farmers face big challenges such as, low yields, wasted resources, meager supply chains, and weather risks. Small farmers struggle the most, they often can’t get good advice, loans, quality seeds, or fair prices for their crops.

But Smart Phones are changing the game. By 2022, rural India had over 400 million mobile users, and farming apps are now giving farmers instant advice, market links, and weather updates, breaking distance and social barriers.

We focus on:

- What farming apps exist
- How these apps help farmers
- Challenges face while using these apps
- The future of digital farming in India

Smartphone Agriculture Apps and Indian Farming

Types of Farming Apps

- **Advisory Apps**: Provide crop tips, disease alerts, weather forecasts, and best farming practices.
- **Market Apps:** Show live prices; connect farmers to buyers (e.g., e-NAM, AgriMarket).
- **E-commerce Apps**: Let farmers buy seeds, fertilizers, and equipment online at fair prices.

- **Service Apps**: Help farmers get loans, insurance, and government schemes easily.

Indian Smartphone Agriculture Apps and their Key Features

App Name	Key Features	Language Support
AGMARKNET	Govt. portal for agricultural marketing connects markets and state boards.	Multilingual
Meghdoot	Weather forecasts, agro-advisories by IMD/IITM/ICAR.	Multilingual
PMFBY (Pradhan Mantri Fasal Bima Yojana)	Crop insurance scheme, integrates stakeholders.	Hindi, English, regional
e-NAM	Pan-India electronic trading for agricultural commodities.	Multilingual
Kisanbandi	Direct farmer-to-consumer e-marketplace, price setting by farmers.	Multilingual
e-Sahamathi (Karnataka)	Connects farmers with retailers (e.g., Big Basket, Reliance Fresh).	Kannada, English, Hindi
Arka Bagwani (ICAR-IIHR)	Horticulture technologies, research updates.	English, Kannada, Hindi

App Name	Key Features	Language Support
Mango Cultivation (II HR)	Guides on mango farming, pest/disease management.	English + regional
Papaya Cultivation (II HR)	Crop production, disease/pest management for papaya.	English + regional
Bele Darshak Karnataka	Tracks crop sowing, irrigation data for Karnataka farms.	Kannada, English
Krishi Yantradhaare Driver (Karnataka)	Custom Hire Service Centre (CHSC) for farm machinery rentals.	Multi-language
BHOOMI_MRTC (Karnataka)	Land records (RTC), property details.	Kannada, English
Cashew India	Comprehensive cashew farming guide, e-marketplace, expert chat.	11 languages Multilingual
Farm Calculators	Calculates seed/fertilizer/pesticide quantities for precision farming.	Multilingual
Crop Doctor	Diagnoses crop diseases/nutrient deficiencies, provides solutions.	English, Hindi
Soil Test Methods	Guides on soil testing procedures for nutrient management.	Multilingual

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

App Name	Key Features	Language Support
Kisan Suvidha	Live APMC auctions, price trends, SES records for farmers/brokers.	Hindi + regional
Pashu Poshan (NDD B)	Dairy farming best practices.	Multilingual
Kayaka Mitra	MGNREGA job applications for farmers/laborers.	Multilingual
Krushik	KVK Baramati & Microsoft AI-driven crop monitoring, irrigation alerts, pest predictions	English, Marathi
Digital Sheti Shala	AI chatbot, farming tutorials, crop advisories Integrated with MahaVISTAAR ai	English, Marathi
Kisan e-Mitra	AI chatbot for PM-KISAN scheme queries	Multilingual

Key Features

1. **AI & Weather Advisory**
   - Real-time weather alerts.
   - AI-driven pest/disease predictions.
   - Crop-specific irrigation advice.

2. **Government Schemes**
   - Subsidy applications (e.g., solar pumps, seeds).
   - Fraud prevention in seed distribution.

3. **Market Linkages**
   - Daily APMC prices.
   - Direct buyer-seller connections.

4. **Precision Farming**
   - Satellite-based field monitoring.
   - Pest surveillance for cotton/sugarcane.

Prominent uses across these Apps

- **Real-time weather & mandi price updates** to help optimize selling and sowing decisions.
- **Crop and pest diagnostics**: Snap a photo and receive instant disease/pest identification, with treatment advice.
- **Expert advisories:** Direct connect to agri. experts and interactive Q&A for personalized farming solutions.
- **Output tracking & e-marketplace:** Buy genuine agri. inputs, sell produce, and track orders.
- **Government scheme integration:** Track subsidies, receive scheme notifications, and use calculators for insurance and benefits.
- **Multilingual support & simple User Interface:** Most apps offer information in multiple Indian languages and are designed for easy rural adoption.
- **Precision agriculture:** Some platforms employ satellite/GPS tools and AI for personalized crop recommendations.

These apps have become crucial digital tools for Indian farmers, helping them increase productivity, minimize losses, access verified agri.-inputs, and participate in transparent market

Popular Indian farming apps: MAHA VISTAR ai, MP Kisan, BharatAgri, AgriApp, Crop Doctor, Kisan Suvidha, eNAM, mKisan, Agrisetu, Rythu, CropIn SmartFarm.

How These Apps Help Farmers

- **Better Knowledge -** Apps fill gaps left by traditional advice systems. Farmers get personalized tips based on their location and crops, often in local languages with videos.
- **Higher Productivity-** Farmers make smarter choices on planting, fertilizing, and water use.
- **Fairer Prices & Market Access-** Apps like e-NAM connect 1,400+ markets, cutting out middlemen. Online selling helps farmers earn more.
- **Easy Loans & Insurance-** Farmers can apply for financial help with less paperwork.

Benefits:

- Crop yields increase
- Lower costs and reduced waste
- Better prices and improvement in selling yield
- Easier access to loans and insurance.

The government is playing a big role in this change. Programs like the Digital Agriculture Mission (2024) and the India Digital Agriculture Council are building digital tools for farmers, including big farm databases (AgriStack) and real-time information systems. But challenges remains, not all farmers have Smart Phones or internet, many lack digital skills or can't afford technology, Women and disadvantaged groups may face cultural barriers,

Farmers' data privacy and app compatibility need attention. For long-term success, strong partnerships are needed between app developers, farming experts, financial services, and the government. The future of Indian farming is smart, connected, and data-driven. To make the most of these apps, India must invest in better internet, farmer training, user-friendly app designs, and supportive policies.

Challenges

- Digital gap - Many farmers lack Smart Phones, internet, or digital skills—especially women and marginalized groups.
- Sustainability - Some apps rely on free services rather than long-term business models.
- Data Privacy - Strong policies are needed.
- Training & Policies - Farmers need better training, and apps need clear rules to work smoothly.

Smart Phone farming apps are transforming Indian agriculture-making it smarter, more profitable, and inclusive. With more farmers using Smart Phones, better training, and strong policies, farming is shifting from old methods to data-driven, tech-powered solutions. But challenges like internet access, digital literacy, and data security must be fixed. Success depends on teamwork between the government, tech companies, banks, and farmers.

The future of Indian farming is here-powered by Smart Phones apps that turn technology into real benefits for millions.

Reference Books:

1. ***Varshney, M.*** *(2025). Agricultural Engineers and Indian Agriculture. Indian Council of Agricultural Research.*
2. ***Momin, S., & Dwivedi, S. K.*** *(2024). Farmer Producer Organizations (FPOs): A Scheme for Transforming the Agricultural Sector of India. APJMT Publications.*

3. ***Manage.***gov.in, *https://www.manage.gov.in/fpoacademy/portalsapps.asp*
4. ***Bais, P., & Bahadur, P. S.*** *(2023). Agriculture in Indian Economy and Contribution of Science and Technology. Asian Journal of Applied Science and Technology.*
5. ***Parihar, S.*** *(2023). Commercialization of Indian Agriculture: The Role of Technology. Journal of Scientific and Engineering Research.*
6. ***Upendra, R. S., Umesh, I. M., Varma, R. B. R., & Basavaprasad, B.*** *(2020). Technology in Indian Agriculture: A Review. Indonesian Journal of Electrical Engineering and Computer Science.*
7. ***Hamisu, K., Auwalu, S. Y., Lawan, A. I., Mohammed, H. S., & Sriker, G. R.*** *(2024). The Use of Technology by Women in Agriculture Including Mobile Apps, Precision Farming, and Agritech. IGI Global. 13*
8. ***Rai, P.*** *(2013). The Indian State and the Micropolitics of Food Entitlements. Ohio University Press. 14*
9. ***Government of India.*** *(2024). Digital Agriculture Mission: Policy Framework for Smart Farming. Ministry of Agriculture & Farmers Welfare.*
10. ***Indian Council of Agricultural Research (ICAR).*** *(2024). AgriStack: Digital Infrastructure for Indian Farmers. ICAR Publications.*
11. ***National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD).*** *(2023). Fintech and Agri-Lending: Digital Solutions for Indian Farmers. NABARD Research.*

"स्त्री के बिना अधूरा समाज और शौषण की विडंबना"

श्रुतिकीर्ति शुक्ला
शोध-छात्र
हिन्दी साहित्य विभागए अवधेश प्रताप सिंह विश्व विद्यालय रीवा (म.प्र.).

शीर्षक - स्त्री की वेदना

यह "स्त्री की वेदना'' की कहानी स्वलिखित है। परन्तु इस कहानी का प्रेरणा स्त्रोत मनोविश्लेशण वाद के अनुयायी जेनेन्द्र कुमार के दर्जन भर उपन्यास हैं। जिन उपन्यासों में कहीं न कहीं उनके सभी उपन्यासों में 'स्त्री की वेदना' की गूंज सुनाई दे रही है। विवशता है, लाचारी है, तो कहीं इस पुरूष वादी क्रूर समाज में स्वतंत्र होने की भीख मांगती दिखाई दे रही है।

अगर जैनेन्द्र जी की 'मृणाल' समाज में पति से प्रताणित होकर वैश्या बनने पर मजबूर होती है तो वहीं 'कल्याणी' असरानी की गुलामी की जंजीर को कभी तोड़ हीं नहीं पाती 'असरानी' बीच चौराहे में पूरी भीड़ के सामने 'कल्याणी' को पीटता है और कल्याणी की मेहनत की तनख्वाह खुद उठाकर उसे विवस कर देता है और एक दम अपने गुलाम रहने के लिए उसे लाचार कर देता है जैनेन्द्र जी ने इस समस्या को गंभीर रूप से चित्रित किया है।

डॉ. एन टी गामीत के अनुसार ''कल्याणी के कमाये हुए पैसे पर भी उसका अधिकार नहीं है।''

असरानी समझता है कल्याणी जो भी है मतलब पत्नी, डाक्टर स्त्री यह सब उसकी मेहरबानी से है। उसने उससे शादी की है मांने उस पर मालकियत प्राप्त की है। भारतीय स्त्री की पराधीनता की इससे और कठिन समस्या क्या हो सकती है।

जैनेन्द्र जी के अनुसार डॉ. असरानी कहता है। ''सब कुछ मेरी बदौलत तुम यहां रहती हो मेरे अधीन तुम्हारा जीवन है।'' जैनेन्द्र जी के इन उप के पात्र मृणाल, कल्याणी, बसुन्धरा के जीवन से ओत्र-प्रोत ये यह एक 'स्त्री की वेदना कहानी शुरूआत होती है जिसके पात्र सुनीता और प्रशान्त हैं।

डॉ. एन. टी. गामीत - जैनेन्द्र के उपन्यासों में सामाजिक समस्याएं
- जैनेन्द्र और कल्याणी

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

शीर्षक- स्त्री की वेदना-

तुम यहां आओगी तो बीच चौराहे में पेट्रोड डाल कर जला दूंगा। ये शब्द किसी और के नहीं बल्कि उसके पति के ही थे। और जिस वक्त वह उसे बोल रहा था उस वक्त सुनीता जिंदगी और मौत के बीच झूल रही थी वह अस्पताल में भर्ती थी क्योंकि वह अपने पेट में पल रहे बच्चे को खोई थी वो भी उसी पति प्रशांत के कहने पर क्योंकि प्रशांत उस बच्चे से खुश नहीं था वह नहीं चाहता था कि हमें कोई बच्चा हो। इसलिए जिस दिन से उसे मालुम हुआ था। कि उसकी पत्नी सुनीता मॉ बनने वाली है। उसी दिन से बच्चे के न रहने को इस दुनिया में न आने देने की जिद करने लगा। उस बच्चे को चार महीने का होते-होत सुनीता को क्या कुछ नहीं झेलना पड़ा था और वह कारण ढूढ रहीं थी अपने ऊपर हो रहे शोषण का उसे लग रहा था कि मेरे पति किसी बात से नाराज है बस उसी नाराजगी में वो ये सब कर रहे हैं वह सारा दिन पति के नाराजगी का कारण खोजने के दिमाग में जोर डालती थी पर उसे कहीं भी अपनी ऐसी कोई गलती समझ में नहीं आ रही थी।

एक दिन सुनीता प्रसांत से पूंछ ही बैठी कि आप मेरे से क्यों नाराज हैं। मुझे तो कोई गलती याद नहीं आ रही आप ही बता दीजिये कि मै कब, कहॉ और क्या गलती कर दी है। तब प्रशांत जेब से एक दवा का पैकेट निकालते हुए कहने लगा कि मेरी नाराजगी का कारण तुम और तुम्हारा ये मनहूस बच्चा है। जिस दिन तुम इसे खत्म कर दोगी मै खुश हो जाउंगा पति के यह शब्द सुनते ही सुनीता के ऑखों के सामने अंधेरा सा छा गया वह फूट-फूट कर रोने लगी उसी निर्दयी पति के सामने गिड़गिड़ाने लगी कि ऐसा मत ये तो मेरा सपना था इसे लेकर इन चार महीनों में कितने अरमान सजा डाली अभी से इसे अपनी जिंदगी का सहारा समझने लगी घी अखिर इस बच्चे की क्या गलती है आप इसे क्यों मारना चाहते हो। वह अपने पति के पैर पकड़कर यह सवाल कर-कर के रो रही थी और वह हैवान उसे दूर फेंक कर झिड़क कर यह बोलते हुए चला गया कि मेरे सामने ये सब नाटक करने की जरूरत नही है जितना बोल रहा हूं उतना सुनो तुम्हें इस बच्चे को खत्म करना ही होगा जिस दिन तुम इसे खत्म कर दोगी। उसीदिन मै खुश हो जाउंगा। और दोराबा से मै तुम्हें स्वीकार कर लूंगा आखिर कार सुनीता क्या करती अगर वह अकेले बच्चे को पैदा कर भी लेती तो उसे जालिम दुनिया में एक अबला को अकेले पालना बहुत मुश्किल था वह कहॉ जाती सुनीता इन सब हालातों के डर से आखिर दबा खा ही लेती है और वह बहुत बीमार हो जाती है।

जब वह बीमार पड़ जाती है तब प्रशांत सुनीता को उसके मायके भेज देता है। मायके वाले किसी तरह उस की दवा करवाते है मायके वालो के बहुत बुलवाने पर जाता है और इलाहाबाद शहर की सबसे मंहगी प्राइवेट अस्पताल में भर्ती कराके बहाने कर के खुद गॉव भाग जाता है मायके वाले गरीबी को बेहाली से परेशान उसके बाद उस प्राइवेट अस्पताल का बिल का भुगतान उस बूढ़े पिता के उपर जो

कभी ऐसी अस्पताल देखा तब न हो फिर किसी तरह सुनीता ठीक हो जाती वह सभी बातों से अन्जान नादान सोचने लगी। प्रशांत तो इस बच्चे के कारण नाराज थे अब तो बच्चा नहीं रहा अब तो प्रशांत की नाराजगी दूर हो गई होगी। कोई बात नहीं प्रशांत खुश रहेगा तो दूसरा बच्चा कर लेंगे रही होगी कोई बात शायद इतने जल्दी नहीं चाहते रहे होंगे अभी विवाह का पहला वर्ष था। कोई बात नहीं मै बाद तें कारण पूंछ लूंगी और वह पअने मन को समझाकर बड़े खुशी से फोन की आकर मुझे घर ले चले।

हेलो प्रशांत अब तो आपकी जिद मैने पूरी कर दी अब वह बच्चा नहीं रहा अब आप खुश हो ना मुझे कल अस्पताल से छुट्टी मिल रही है आप आ जाओ आकर मुझे ले चलो मै बहुत तकलीफ मे हूं मुझे आपके प्यार और सहारे की जरूरत है। तब फोन पर ऐसा जबाव आया कि सुनीता के पैरों तले जमीन ही खिसक गई। फोन काट बेवकूफ औरत दुबारा मेरे पास फोन करने की जुर्रत मत करना अगर मुझे तुम्हें अपने पास रखना ही होता तो मूर्ख मै उस बच्चे को क्यों मारता हा हा हा तू तो पढ़ लिख कर मूर्ख है तू मेरा प्लान समझ ही नहीं पाई मै तो अपने विवाह का सबूत मिटाने के लिए बच्चे को दुनिया में नहीं आने दिया। तुम्हें याद नहीं कि मैने तेरे साथ विवाह होने के सारे वीडियो-फोटो तक जला दिये सबूत मिटाने के लिए ही तो जलाया था। अब तुमसे मेरा कोई वास्ता नहीं मुझे तलाक चाहिए।

स्त्री की वेदना कहानी का यह भाग चित्रित करते समय जैनेन्द्र जी के अनाम स्वामी उपन्यास के कुमार साहब और रानी वसुधरा का चित्र उभर कर सामने आ जाता है कुमार साहब एक जमीदार हैं दुनिया उन्हें राजा साहब कहती है। दुनिया उन्हें राजा साहब कहती है वसुन्धरा उसकी पत्नी है। जो भी है है तो रानी साहिबा परन्तु एक दिन कुमार साहब ऐसा रौद्र रूप धारण करते हैं और वसुन्धरा को हुक्म देते है डॉ. एन.टी गामित के अनुसार '' मेरे यहां से इसी वक्त निकल जाओ'' मै देखती रही और उनके मुख से गंदी -गंदी गालियां सुनती रही .... रात इन्ही कपड़ों मे निकल गई, बिना टिकट, तीसरे दर्जे में बैढ कर मांगती तांगती यहां चली आई''

मतलब पुरूष के हांथो स्त्री एक कठपुतली है जो उसे जैसा चाहे नचा सकता है। स्त्री उसके लिए माने वह गुड़िया है, जिसके साथ कामक्रीड़ा की मन बहलाया जब जी भरा तो फिर तोड़ मरोड़ दिया इस उपन्यास में एक ख्याति प्राप्त उपाध्याय जी विद्यान है। समाज में उन्हों ने खूब नाम कमाया है वसुन्धरा से उनका प्रेम होता है परन्तु कुमार साहब से वसुन्धरा की शादी हो गई थी। जब कुमार वसुन्धरा को घर से निकाल देता है तब वह आश्रम की ओट लेती है। उपाध्याय उसे इलाहाबाद ले जाना चाहता है। लेकिन उससे पहले उसे एक होटल में लेकर ठहरता है और उसी रात जहर की सुई देकर मौत के घाट उतार देता है ''अनाम स्वामी से कहता है जहर की सुई देकर मैने मारा है मेरा विवाह हुआ था'' पढ़ा लिखा समाज में प्रतिष्ठित रानी शंकर उपाध्याय एक नहीं दो-दो स्त्रियों को जहर की सुई देकर हत्या करता है। स्त्री मानो कुछ है ही नहीं जब जी किया मसल दिया। बसुधरा कितनी विकल, निर्बल, असहाय स्त्री है जिसे एक

पुरूष जो उसका पति है कोई भी कारण न होते हुए भी घर से निकाल देता है और दूसरा पुरूष जो विवाह पूर्व प्रेमी है उसकी निर्मम हत्या ही कर देता है। पुरूषों के हांथो भारतीय स्त्री बराबर छली जाती रही। पुरूष की पूरी श्रद्धा व भक्ति से वह सेवा करती रहे फिर भी पुरूष का प्रेम व अपना अधिकार वह प्राप्त नहीं कर पाई।

स्त्री की वेदना कहानी में भी सुनीता का पति प्रशान्त बार-बार जान से मारने की धमकी देता है उसे अपशब्दों से जलील करता है स्त्री उसके लिए पैर की जूती के बराबर है। वह स्वयं कहता है स्त्री मेरे लिए पैर की जूती है जब आवश्यकता पडे पहल लो और जब आवश्यकता खत्म हो जाय उतार कर बाहर फेंक दो कल्याणी की तरह सुनीता भी पति के प्रेम में बंधी हुई अपने पति प्रशांत का विरोध नहीं कर पाती उसे विवाह के पूर्व प्रेम की याद दिलाती हुई कहती है।

सुनीता के कुछ समझ में नहीं आ रहा था वह पागल सी हो रही थी नहीं आप ऐसा मेरे साथ नहीं कर सकते आप तो मुझे पसंद करके शादी किये थे न ये मजाक करने का वक्त नहीं है आप तो केवल गुस्सा थे न आप तो मेरे बिन रह नहीं सकते आप मुझे बहुत प्यार करते हो न आपको याद है शादी के पहले 2-2 घंटे बात किया करते थे आपका परिवार मुझे बहुत पसंद करता है। बहुत प्यार करता है बड़े मजाकिया हो ऐसी नाजुक हालातों में ऐसा मजाक नहीं किया करते। आपको पता है न कि मै आपसे कितना प्यार करती हूं मुझे आपकी दूरी कतई बर्दाश्त नहीं है। वैसे ही अभी गंभीर हालत से गुजरी हूं अभी मुझे कुछ हो जाता तो एक काम करो आप मत आओ मै गाड़ी बुक करके आ जाऊॅगी वो सब सुनता रहा और अंत में बोला बेवकूफ मै कोई मजाक नहीं कर रहा मै भी देखता हूं तुम कैसे आती हो मै तुम यहां आओगी तो मै बीच चौराहे में खड़ी करके पेट्रोल डाल कर जिंदा जला दूंगा।

फिर भी सुनीता प्रशांत की धमकियों से नहीं डरी वह माता-पिता को लाख मना करने पर भी सीधे अस्पताल से ही गाड़ी बुक कर जा धमकी वही जल्लाद प्रशांत के घर वहां प्रशांत उसे तरह-तरह की यातनाये देने लगा वह असहाय अबला अकेले कहां तक लड़ती वहां जो भी थे सब प्रशांत के ही रिस्तेदार प्रशांत के ही पक्षधर थे सुनीता का वहां दूर-दूर तक कोई रिश्तेदार नहीं था जिससे सुनीता मदत ले सके। वह मौत को गले लगाये हुए अकेले ही लड़े जा रही थी। उसके पति से कोई बात तक नहीं करने दे रहा था और न ही प्रशांत बात करने को तैयार था घर वालों को भी सुनीता की मदद करने को बात करने को मना कर दिया था सीधे धमकी भरे स्वर में कि जो कोई उसकी मदत करेगा तो मेरा मरा हुआ मुह देखेगा।

वह बार-बार पती से सवाल करती रही गिड़गिड़ाती रही कि मेरी गलती क्या है। आखिर कार सुनीता एक दिन पता चल ही गया कि मेरी किस गलती से प्रशांत नाराज नहीं बल्कि यह सब उनकी

मंझली भाभी के कहने से ही हो रहा था। पहले वे वजह प्रशांत का मुझ पर नाराज होना फिर बच्चे को खत्म करना फिर प्रशांत द्वारा मारने की धमकी देना अंत तक तलाक की बात करना यह सब शादी के एक साल के अन्दर ही हो रहा था। अभी शादी का सालगिरह भी नही आया था उसी दिन उसे उस घटना का भी पता चलता है जब शादी की पहली रात को दूध में बेहाशी की दवा मिलायी गई थी वह कांण्ड भी मझली भाभी ने ही रचा था।

उस दिन सुनीता बिल्कुल थक चुकी थी हार चुकी थी उसकी ऑखों के सामने अंधेरा सा छा रहा था वह तिलमिना रही थी पर कुछ कर नहीं सकती थी क्योंकि वह अकेली थी उसकी मदद करने वाला वहां कोई भी नहीं था अंत में होना क्या था वही हुआ जो सदियो से अक्सर शोषित नारियों के साथ होता चला आया है।

यह स्वलिखित स्त्री वेदना की कहानी कहीं न कहीं जैनेन्द्र जी के त्याग पत्र के मृणाल पात्र की कहानी को दोहरा रही है बस मृणाल में और सुनीता में अन्तर इतना है। कि वह मर्यादा की डेहरी को लॉघ कर गंदी गलियों में जीवन यापन करती हुई दम तोड़ देती है और सुनीता मर्यादा को न तोड़ते हुये इस दुनिया को ही लॉघ जाती है। यह त्यागपत्र उपन्यास जैनेन्द्र जी की सामाजिक दृष्टि को चित्रित करती है ’मृणाल’ समाज के क्रूर छाया के भीतर जीवन यापन करती हुई दम तोड़ देती है। समाज के क्रूर हॉथों में दया का कोई स्थान नहीं है वस्तुतः जैनेन्द्र जी ने समाज के तिरस्कृत तथा नितांत अवहेलनीय पक्षों को अपनी हार्दिकता के संस्पर्श से उभारने का प्रयास किया है ’मृणाल’ अपनी व्यथा के अन्तर में छिपाये हुए प्रतिष्ठित समाज की दृष्टि से दूर चली जाती है। वह स्वयं टूट सकती है किन्तु समाज में स्वयं को लेकर क्रांति करना उसे स्वीकार नहीं है।

जैनेन्द्र- ’’समाज को तोड़ना-फोड़ना नहीं चाहती हॅू समाज टूटा कि फिर किसके भीतर भेजेंगे’’

मृणाल अपने प्रेम को सार्थकता प्रदान करती है इसी ’मृणाल’ की तरह सुनीता प्रेम की पीड़ा को लिये हुए ही वह अपने जीवन की इह लीला को समाप्त करती है।

डॉ. एन. टी. गामीत - जैनेन्द्र के उपन्यासों में सामाजिक समस्याएं
- जैनेन्द्र और कल्याणी
जैनेन्द्र- त्यागपत्र
जैनेन्द्र- अनाम स्वामी

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

1. जैनेन्द्र कुमार परख' 1929 ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई।
2. जैनेन्द्र कुमार 'सुनीता' 1935 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।
3. जैनेन्द्र कुमार त्यागपत्र' 1937 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।
4. जैनेन्द्र कुमार कल्याणी' 1939 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।
5. जैनेन्द्र कुमार विवर्त' 1953 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।
6. जैनेन्द्र कुमार 'सुखदा' 1953 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।
7. जैनेन्द्र कुमार 'व्यतीत' 1953 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।
8. जैनेन्द्र कुमार 'जयवर्धन' 1956 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।
9. जैनेन्द्र कुमार 'मुक्तिबोध' 1965 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।
10. जैनेन्द्र कुमार 'अनन्तर' 1968 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।
11. जैनेन्द्र कुमार 'अनामस्वामी' 1974 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।
12. जैनेन्द्र कुमार 'दशार्क' 1985 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।

सहायक ग्रथ

1. *जैनेन्द्र कमार, "साहित का श्रेय और प्रेय" पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।*
2. *डॉ. जगदीश पाण्डेय, "कहानीकार जैनेन्द्रः अभिज्ञान और उपलब्धि", पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।*
3. *डॉ देवराज उपाध्याय, " जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोविज्ञान अध्ययन, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।*
4. *डॉ. नीरजा राजकुमार "समाज मनोविज्ञान के सन्दर्भ में जैनेन्द्र का कथा साहित्य" सूर्य प्रकाशन दिल्ली।*
5. *परमानन्द श्रीवास्तव, "जैनेन्द्र के उपन्यास" लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।*
6. *डॉ. विमल सहस्त्र बुद्धे, "हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोविज्ञानकि विश्लेषण"।*
7. *डॉ. दिग्विजय कुमार शर्मा, "जैनेन्द्र के साहित्य में नारी"।*
8. *यादव मंजू "वर्तमान स्त्री का सच"।*
9. *डॉ. त्रिभुवन सिंह, "हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग"।*
10. *डॉ. गजानन शर्मा, "प्राचीन साहित्य में नारी"।*
11. *डॉ. मधुरेश, "कहानीकार जैनेन्द्र कुमार पुनर्विचार" नई दिल्ली।*

12. प्रभा खेतान, "स्त्री उपेक्षिता" नई दिल्ली वाणी प्रकाशन।
13. सिंह मीनाक्षी निशांत, "महिला सशक्तीकरण का सच" नई दिल्ली ओमेगा पब्लिकेशन।
14. डॉ. तिवारी कामिनी, "प्रभा खेतान के साहित्य में नारी विमर्श", कानपुर, विद्या प्रकाशन।
15. डॉ. गर्ग, "साठोतरी हिन्दी उपन्यासों में स्त्री" नई दिल्ली सार्थक प्रकाशन ।
16. डॉ. ज्योति, "अमर हिन्दी उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दष्टि", कानपुर अन्नपूर्णा प्रकाशन ।
17. डॉ. घोरपडे, छाया देवी, " नारी जीवन मूल्य" कानपुर विद्या प्रकाशन
18. डॉ. चिरंजीलाल पाराशर, "नारी और समाज" नेशनल पब्लिशर्स।
19. रामदरश मिश्र, "हिन्दी उपन्यासः एक अंतर्यात्रा" राजकमल प्रकाशन ।
20. शशिगुप्त, "प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासः नए नैतिक मूल्य" राधा पिब्लकेशन ।
21. नार्मल एल. मन, "मनोविज्ञान" राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली।
22. ममता शुक्ला, "मन्नू भंडारी के कथा साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन" जवाहर पुस्तकालय, मथुरा।

शब्दकोश

1. श्रीनवल जी नालन्दाः हिन्दी विशाल शब्द सागर।
2. डॉ. रामस्वरूप रसिकेशः आदर्श हिंदी संस्कृत कोश।
3. डॉ. शिव प्रसाद शास्त्रीः मानक हिन्दी- हिन्दी कोश।
4. सूर्यकांत : संस्कृत-हिन्दी-इंग्लिश कोश।

पत्र-पत्रिकाएँ

1. साक्षात्कार, मार्च 2025
2. अक्षर पर्व, नवम्बर 2008
3. आजकल, मार्च 2008
4. हंस, मार्च 2012
5. शोधक, मई-अगस्त 2010
6. दैनिक जागरण, जून 2010
7. दैनिक भास्कर, सितम्बर 2019

हिमालय की गोद में: भारतीय ज्ञान परंपरा और यात्रा साहित्य का समन्वय

सोनिया बहुगुणा
शोध-छात्रा, हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा-विभाग
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल(केन्द्रीय) विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल उत्तराखंड

शोध सार-
यह शोध पत्र हिमालय की गोद में भारतीय ज्ञान परम्परा और यात्रा साहित्य का समन्वय का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। वेदों की सनातन धारा से प्रारंभ होकर आधुनिक वैचारिक चेतना तक प्रवाहित ज्ञान की परम्परा अपने भीतर धर्म, दर्शन, कला और विज्ञान को समाहित करते हुए मानव और प्रकृति के बीच संतुलन और आत्मिक उन्नति पर बल देती है। हिमालय न केवल भारतीय ज्ञान परम्परा का जीवंत प्रतीक है बल्कि वर्तमान समय में भी साहित्यिक, आध्यात्मिक और पर्यावरणीय चेतना के संवाहक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। शोध में हिमालय और प्रकृति, हिमालय और सभ्यता, दर्शन, आध्यात्म, संस्कृति आदि रूपों का अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द- भारतीय ज्ञान परंपरा, हिमालय, यात्रा-साहित्य, आध्यात्म, प्रकृति, दर्शन, सांस्कृतिक चेतना।

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परंपरा से आशय ज्ञान की उस समृद्ध परंपरा से है जिसने वेद, उपनिषद, पुराण, दर्शन, योग, आयुर्वेद और ज्योतिष के माध्यम से निरंतर विकसित होकर मानव जाति के लिए मार्ग प्रशस्त किया। ज्ञान की यह परम्परा जहां पल्लवित हुई उसका केंद्र है-हिमालय। यह केवल परम्परा नहीं धरोहर है, जिसमें ज्ञान की धारा निर्बाध रूप से बहकर सम्पूर्ण विश्व को सिंचित कर रही है। "श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः। ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥''[1] प्राचीन काल से ही ज्ञान को मानव जीवन का आधार मानकर उसे अंधेरे से रोशनी की ओर ले जाने वाली दिव्य शक्ति कहा है। ऋषि-मुनियों ने इसी ज्ञान की प्राप्ति हेतु हिमालय की गुफाओं में कठोर तपस्या कर अपने आत्मबल से ज्ञान का वास्तविक अर्थ जानकार उसे मोक्ष प्राप्ति का साधन कहा। भारतीय परंपरा में ज्ञान का उद्देश्य जीविका अर्जन नहीं बल्कि मनुष्य को अंतर्मुखी की ओर अग्रसर कर उसका चरित्र निर्माण करना व जीवन जीने

 ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

की कला सिखाना है। हिमालय की गोद में बसे तपोवन, आश्रम और ऋषि परम्परा आज भी मानवीय मूल्यों व आत्मिक विकास का मार्ग दिखाते है। भारतीय ज्ञान परम्परा का उद्देश्य अनुभव व प्रयोग को महत्व देकर धर्म, सत्य, करुणा, अहिंसा जैसे नैतिक मूल्यों की स्थापना कर मानव जीवन को सत्व गुण बनाना है। समग्र रूप से इसने आध्यात्मिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक सभी पक्षों पर चिंतन की परंपरा का विकास किया जिसके मूल में मानव कल्याण की भावना निहित है।

"अस्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः,
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्यां इव मानदण्डः।"[2]

हिमालय पृथ्वी पर प्रकृति की अनमोल धरोहर है, इसके बिना भारत की संकल्पना करना भी असंभव है। इसने अपने अंचल में न केवल सभ्यताओं, जीवनदायिनी नदियों को जन्म दिया, बल्कि जीव-जंतुओं, औषधीय पौधों, वनस्पतियों को भी संरक्षण प्रदान किया। हिमालय में ही सबसे पहले वेदों की ऋचाएं गूंजी, दार्शनिक चिंतन का विस्तार हुआ, ध्यान व योग की परम्पराओ का विकास हुआ। यहाँ की शांति, नीरवता और दिव्यता ने साधकों को आत्मबोध और सार्वभौमिक सत्य की ओर प्रेरित किया। काका कालेलकर के शब्दों में-हिमालय में जाकर, उसको मन में धारण करने की शक्ति जिसमे है उसी ने जीवन पर विजय प्राप्त की है। हिमालय की विशालता केवल भौतिक ऊंचाई नहीं, बल्कि उसके ब्रह्मबोध का प्रतीक है। बर्फ से ढँकी चोटियाँ शीतलता का और उसका मौन समाधि में लीन होना धैर्य, वैराग्य और अडिगता का संदेश देती है। यह प्राकृतिक सौंदर्य, आध्यात्मिकता, सांस्कृतिक विरासत और दार्शनिक ज्ञान का अद्भुत संगम स्थल है।"सत्य ही है हिमालय अदृश्य को दृश्यवान करने की क्षमता तथा दृष्टिपटल पर अंकित को सूक्ष्मता प्रदान कर विलोपित करने की अदम्य प्रतिभा रखता है। दार्शनिक हिमालय के सूक्ष्मतम स्वरूप से लेकर वृहदकार काया की व्याख्या करने में स्वयं को असक्षम पाते हैं। पर्यावरणविद हिमालय को पारिस्थितिकी संतुलन का मेरुदंड मानते हैं। साहित्यकार अपनी दृष्टि से देखते हुए भिन्न भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। किसी को हिमालय का सौंदर्यरूप मोहित सम्मोहित करता है तो कोई मंत्र मुग्ध है इसके दिव्य स्वरूप से, कोई हिमालय के सम्मोहन में बिंधा हुआ जड़वत बना है तो कोई स्थितिप्रज्ञ है तो कोई संज्ञाशून्य हो सर्वज्ञ हो जाता है। ना जाने हिमालय अपने स्वरूप में क्या क्या दिखाता है।"[3]

हिमालय और यात्रा साहित्य-

प्राचीन काल से ही हिमालय मानव जाति का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर साहित्यिक संवेदना का केंद्र बना हुआ है। वैदिक काल में अनेक ऋषि-मुनियों, तपस्वियों ने हिमालय की ओर प्रस्थान कर इसके शांत और पवित्र वातावरण में ज्ञान की प्राप्ति कर वेदों, पुराणों और उपनिषदों की रचना की। यह पर्वत अनेक युगों का मूक साक्षी बना है और आज भी अपने भीतर अनेक रहस्यों को छिपाए ज्ञान की परंपरा

को सुरक्षित रखे हुए है। हिमालय का नैसर्गिक सौन्दर्य, आध्यात्मिक महिमा, दार्शनिक चिंतन और सांस्कृतिक संपदा ने साहित्यकारों, साधकों और तीर्थयात्रियों को यहाँ की यात्रा करने के लिए प्रेरित किया। यात्रा साहित्य पाठकों के लिए एक सेतु का कार्य कर उन्हें वहाँ की प्रकृति, संस्कृति, दर्शन और अनुभूतियों से जोड़ता है। साहित्य के माध्यम से हिमालय के भौगोलिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, ऐतिहासिक पक्षों को अभिव्यक्ति मिलती रही है, किन्तु आधुनिक यात्रा-साहित्य में अब उसके बदलते स्वरूप, पर्यावरणीय असंतुलन और जैवविविधता के संकटों की चर्चा गंभीरता से होने लगी है।"हिमालय आदिकाल से ही लोगों कि जिज्ञासा, प्रेरणा, श्रद्धा-भक्ति तथा विश्वास का प्रतीक रहा है। प्राचीन काल से ही अनेक प्रकृति प्रेमी, चित्रकार, वनस्पति शास्त्री, चिकित्सक, कवि, लेखक तथा दार्शनिक हिमालय की विभिन्न उपत्यकायों में आते रहे हैं। यहाँ के दिव्य एवं अनुपम सौंदर्य से पुलकित एवं अभिभूत होकर उन्होंने हिमालय का यशोगान अपनी-अपनी दृष्टि से किया भी है। निसंदेह हिमालय एक दिव्य पुंज है। इसे सचेतन भी कहा गया है।''[4]

यात्रा साहित्य के माध्यम से हिमालय अत्यंत सजीव और बहुआयामी रूप में प्रकट होता है। लेखक इन दृश्यों का न केवल वर्णन करते हैं, बल्कि उनके भीतर छिपी रहस्यमयता, मौन और आध्यात्मिक ऊर्जा को अनुभव कर पाठकों को उसमें सहभागी बनाता है। हिमालय की यात्रा से प्रभावित होकर अपने मन में सिंचित अनुभूतियों को लेखनी के द्वारा अभिव्यक्त कर उसके प्रति कृतज्ञता और समर्पण का भाव रखते हुए आत्मिक ऋण से मुक्त होने का प्रयास किया। "भारतीय धर्म एवं संस्कृति में नदी, पर्वत, सूर्य, चाँद, वृक्ष ,वायु, नाग, हाथी सभी को देव स्वरूप माना जाता है। महा हिमालय को सिर्फ मिट्टी-पतथर या हिम का एक ऊँचा ढेर ही नहीं माना गया, अपितु उसे "देवात्मा" कि महान पदवी से संबोधित किया गया है। नगाधिराज हिमालय जितना अपार और सुंदर है उतना ही विस्तृत और मोहक हिमालय साहित्य भी है। युग-युगों से लाखों मनुष्य इसके चरणों में अपनी लिखित, मौखिक और मूक श्रद्धांजलियाँ अर्पित करने आते हैं।''[5]

हिमालय और प्रकृति -

प्रकृति और मानव का संबंध चिरकाल से है। यह संबंध अत्यंत गहरा, संवेदनात्मक और परस्पर आश्रित है। प्रकृति मात्र भौतिक वस्तु नहीं, अपितु मानव को शांति, प्रेरणा और चिंतन की दिशा भी देती है। प्रकृति को जीवित सत्ता मानते हुए हमारे पूर्वजों ने इससे रागात्मक संबंध स्थापित कर जीवन के रहस्यों को समझकर आत्मिक उन्नति का मार्ग प्राप्त किया। भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रकृति को पूजनीय माना गया है। यह परम्परा प्रकृति और मनुष्य के बीच सामंजस्य को महत्व देती है, इसमें प्रकृति को जननी, नदियों को माँ, वनों को देवताओ का निवास और पर्वतों को ऋषियों की तपस्थली मानकर इन्हें श्रद्धा और सम्मान के भाव से देखा गया है। हिमालय की संस्कृति भी इसी भावना को आगे बढ़ाती है और बताती

है कि मानव न तो प्रकृति का स्वामी है और न ही शोषक वह केवल उसका एक भाग है। इसलिए यदि हम प्रकृति के प्रति कृतज्ञता और उत्तरदायित्व का भाव रखेंगे तभी हमारा जीवन भी संतुलित, शांत और समृद्ध होगा। आज हमें आधुनिक विज्ञान के साथ पारंपरिक ज्ञान को जोड़कर ऐसी ठोस नीति अपनानी होगी जिससे हिमालय की रक्षा कर सके। हालांकि समय के साथ आज न केवल हिमालयी क्षेत्र अपितु सम्पूर्ण विश्व में जब जलवायु परिवर्तन, पारिस्थितिकी तंत्र का असंतुलन, पर्यावरण संकट जैसी जटिल समस्याएं बढ़ती जा रहा है तब भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रकृति के प्रति जो दृष्टिकोण है उसका अपनाया जाना अत्यंत प्रासंगिक हो गया है। "जिन पूर्वजों से हमें धर्म, दर्शन, साहित्य, नीति आदि के रूप में महत्वपूर्ण भाग प्राप्त हुआ है उसके प्राकृतिक परिवेश के भी हम उत्तराधिकारी है। उनके पर्वत, वन, मारू, समुद्र, ऋतुए आदि प्राकृतिक नियम से कुछ परिवर्तित अवश्य हो गए है परंतु तत्वत: उनकी स्थिति पूर्ववत है और उनसे हमारे रागात्मक संबंध संस्कारजन्य ही नहीं स्वार्जित भी रहते है।''[6]

हिमालय में ईश्वरीय अनुभव-

हिमालय अपने नाम-'हिम' अर्थात बर्फ और 'आलय' अर्थात आवास के अनुसार ही शुद्धता, निर्मलता और स्थिरता का प्रतीक है और जो भी इससे जुड़ाव महसूस करता है उसका भी आत्म-परिवर्तन हो जाता है। हिमालय को देवताओ का निवास स्थान कहा जाता है। श्वेताश्वतरोपनिषद के मतानुसार, संसार को सुख पहुंचाने वाले परमेश्वर उस पर्वत अर्थात हिमालय पर निवास करते है और उस हिमालय की रक्षा करते है। यहाँ ईश्वर के दर्शन साक्षात रूप से होते है, उस दिव्य आनंद की प्राप्ति केवल वही कर सकता है जिसका मन सभी स्वार्थों से ऊपर उठकर शांत, पवित्र और श्रधामय हो। कथित है कि पवित्र स्थान पर ही पवित्र विचार उत्पन्न होते है पर उन्हें अनुभव करने के लिए अवकाश के क्षण आवश्यक है। भोग और भौतिक सुखों को ही जीवन का उद्देश्य मानने वाले इस गूढ रहस्य को नहीं समझ सकते है, इसके लिए भारतीय दर्शन और सनातन मूल्यों की समझ होना आवश्यक है।"जड़वादी लोग जिन हिमकूटों को भौतिक समझते है, जिनकी तुषार संहति की सुंदरता को भौतिक सुंदरता समझते है तथा उससे उत्पन्न होने वाले आनंद को भौतिक आनंद समझते है, उन्हीं हिमकूटों में मैंने ईश्वरीय रूप का, उसी दिव्य सौंदर्य में मैंने ईश्वरीय आनंद का अनुभव किया।''[7]

हिमालय और दर्शन-

भारतीय ज्ञान परम्परा केवल ग्रंथों, सिद्धांतों और विचारों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसे जीवन के व्यवहारिक पक्ष में भी समाहित किया गया। हिमालय न केवल भौगोलिक संरचना के रूप में, बल्कि वह भारतीय संस्कृति, दर्शन और मानवतावादी चिंतन का भी प्रतीक है। इतिहास में जब भी भारत की सांस्कृतिक विरासत की बात होती है, तो हिमालय नाम स्वत: ही सामने आ जाता है। इन पर्वतों के शिखरों पर आज भी प्राचीन भारतीय सभ्यताओं और मान्यताओं की झलक मिलती है। वेदों-उपनिषदों

में पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और आकाश को पाँच मूल तत्वों के रूप में प्रतिष्ठित कर सृष्टि और मानव जीवन का आधार माना गया है। भारतीय दृष्टिकोण में प्रकृति के साथ रिश्ता केवल उपयोगितावादी नहीं, अपितु भावात्मक और आध्यात्मिक भी है। इसकी शरण में जो भी आता है वह न केवल उन्हे शरण देता है वरन एक विशिष्टता भी प्रदान करता है। भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुसार व्यक्ति के जीवन का उद्देश्य अपने संकीर्ण दायरे को छोड़कर ब्रह्मांड के व्यापक सत्य को जानना है, यह व्यष्टि से समष्टि की ओर जाने की यात्रा है। हिमालय इस यात्रा को पूर्ण करने का साधन है। यहाँ आकार व्यक्ति के चिंतन दायरे का विस्तार होता है जिससे वह आत्मिक और आध्यात्मिक ऊँचाइयों को भी छूता है। इस अवस्था में पहुंचकर मनुष्य साधारण से दिव्य हो जाता है। "हिमालय पर्वत भारतीय पुरातन चिंतन का ही जनक नहीं, अपितु भारतीय विविध जन संस्कृतियों एवं विश्वासों से जुड़ा एक ऐसा केंद्र बिन्दु है, जहां गौरवमयी प्राच्य भारतीय सांस्कृतिक, सामाजिक व आध्यात्मिक गाथाएं यहां के प्रत्येक रुपहले शिखरों के मध्य अनादिकाल से ही बिखरी पड़ी है। हिमालय पर्वत एवं इससे जुड़ा भारतीय दर्शन विश्व मानवीय चिंतन एवं मानवीय विकास का आदर्श रहा है। अपने स्वच्छ उन्नत शिखरों कि भांति सदैव इस पर्वतराज ने मानवीय जीवन मूल्यों को संरक्षण देकर भारतीय गौरव गाथाओं को विश्व का सिरमौर बनने में अविस्मरणीय सहयोग दिया है। विश्व इतिहास के पृष्ठों में भारतीय संस्कृति एवं जीवन दर्शन का परिचायक यही हिमालय पर्वत माना जाता रहा है। वास्तव में भारतीय सांस्कृतिक विशेषताओं कि भूत-भविष्य एवं वर्तमान की झाँकिया इन पर्वत हिम शिखरों के मध्य आदम समाजों एवं जनमानस के बीच आज भी देखी जा सकती है। इस विस्तृत हिम शिखरों के मध्य बिखरे पड़े प्राच्य भारतीय संस्कृतियों के रुपहले पर्दे खुद-ब-खुद अपना गौरवमयी इतिहास का बोध कराते है।"[8]

हिमालय और सभ्यता-

मानव सभ्यता का इतिहास अत्यंत प्राचीन है इसके आरंभिक चरण हिमालय और उसकी गोद से निकलने वाली पवित्र नदियों के तट है। यहीं वे क्षेत्र है जहां प्रारम्भिक भाषा, धर्म, समाज और संस्कृति की संरचना हुई। विश्व का सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद है इसी ग्रंथ से भारतीय ज्ञान परंपरा की शुरुआत मानी जाती है। इसमें हिमालय के पर्वतों को युग-युग तक खड़े योगक्षेम वहन करने वाले पूर्वज कहा गया है। हिमालय न केवल भारतीय सभ्यताओ और जातियों का मूल रहा है, अपितु अन्य अनेक जातियों को भी प्रभावित करता रहा है। "एंटकिसन के अनुसार, ऋग्वेद काल से ही मानवी सभ्यता का विकास हुआ है। केवल आर्य ही नहीं अपितु एशिया की अन्य जातियों का उद्गम स्थान भी हिमालय ही है।"[9]

हिमालय अनेक जनजातीय सभ्यताओं और समाजों का उद्गम स्थल रहा है। इन समाजों की परंपराए, रीति-रिवाज और जीवन शैली भारतीय सांस्कृतिक विरासत की जीवंत अभिव्यक्ति हैं। हिमालय के लोक जीवन में भारत की प्राचीन सभ्यता के तत्व निहित है। इस सांस्कृतिक विरासत को केवल ऐतिहासिक

दृष्टि से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोण से भी समझना आवश्यक है। यंहा की जीवन प्रणाली में प्रकृति, धर्म और आध्यात्म का गहरा सामंजस्य दिखाई देता है। आज सम्पूर्ण विश्व हिमालयी समाज कि इस रहस्यमयी और अमूल्य धरोहर को जानने और समझने के लिए इसकी ओर आकर्षित हो रहा है। यह धरोहर न केवल भारतीय संस्कृति की पहचान है, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए प्रेरणा स्रोत भी है। ''हिमालयी समाज सप्तवर्णी सुंदर जनजातीय समाज रहा है, जहां लोक परम्परायें ही सभ्यताओं की कहानी स्वयं कहते है। जनजातीय एवं आदिवासियों के मध्य प्रचलित लोक परम्परायें एवं अनछुहे रहस्य जिज्ञासुओं को किसी मूक सभ्यता की तरफ आकर्षित करते है।''[10]

हिमालय और संस्कृति-

''संस्कृति किसी देश या जाति की आत्मा होती है। उसका सृजन संस्कारों के समाहार से होता है। यह उदात्त गणों का पुंज है। मानव समाज को विशिष्टता प्रदान करने वाले संस्कारों का संकलन है, जिनके सहारे मानव अपने सामूहिक या सामाजिक जीवन आदर्शो का सृजन करता है। यद्यपि संस्कृति कालक्रमानुसार परिवर्तित परिवर्धित होती रहती है तथापि यह शाश्वत प्रवहमान रहती है।''[11] ''अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् द्य उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्''।[12] हिमालय भारत की आत्मा का प्रतीक है। इसकी संस्कृति भी इसी की तरह विशिष्ट और व्यापक है जो समग्रता, सह-अस्तित्व के दृष्टिकोण पर आधारित है। यह केवल पर्वतीय क्षेत्र की ही नहीं, बल्कि समूचे भारत की संस्कृति की आधारशिला है। भारत जैसे विविधता से भरे राष्ट्र में, जहां परम्पराएं, रीति-रिवाज और जीवन शैली अलग-अलग हो सकती है लेकिन उनके मूल में आत्मबोध, प्रकृति से जुड़ाव और कल्याण की भावना उन्हें जोड़ती है। हिमालय को केवल पर्यटन स्थल के रूप में न देखकर भारतीय ज्ञान परम्परा में आत्मचिंतन का केंद्र माना गया है जहां मनुष्य का स्वयं से साक्षात्कार होते हुए वह अपने चित्त कि समस्त वासनाओ को शांत करता है। ''हिमालय पर्वत में बिखरा सांस्कृतिक रहस्य शब्दों में वर्णित नहीं किया जा सकता, इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की महानता एवं प्राकृतिक स्वरूप के कारण यह संस्कृति प्रत्येक भौतिक भोगवादी खोजी व्यक्ति के लिये एक अनबूझ पहेली बनी रहती है। बिना भारतीय दर्शन व इतिहास के अध्ययन के इस संस्कृति को समझा नहीं जा सकता। यहाँ की परंपराए रहस्य एवं रीति-रिवाज कदम-कदम पर बदलते रहते है, मगर अपने मूल मौलिक अस्तित्व से कभी बाहर नहीं गये।''[13]

हजारों वर्षों के अनुभव, ज्ञान, धर्म, कला, साहित्य और दर्शन से विकसित हुई परंपरा भारतीय संस्कृति है। यह संस्कृति अनेकता में एकता के भाव को समाहित करती है। पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित होकर मनुष्य ने अपनी मूल संस्कृति और सनातन मूल्यों को भूला दिया। इससे उसने भौतिक सुविधाएं तो प्राप्त की, लेकिन मानसिक और आत्मिक रूप से वह अस्थिर हो गया। आज उसने अनुभव किया कि सफलता

वही सार्थक है जो बाहरी प्रगति और आंतरिक शुद्धता के सामंजस्य से प्राप्त हो, इसलिए वह धीरे-धीरे फिर से अपनी सनातन और शाश्वत संस्कृति की ओर लौट रहा है।

हिमालय और आध्यात्म -

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज, अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।[14]

हिमालय भारतीय आध्यात्मिक चेतना का प्रतीक है, आध्यात्म व्यक्ति का मन बाहरी संसार से हटाकर उसके भीतरी अस्तित्व से जोड़ता है। आत्मा की खोज और ब्रह्म से एकत्व की अनुभूति ही इसका मूल संदेश है। यह केवल पाषाणयुक्त पर्वत नहीं, बल्कि जीवंत प्रयोगशाला है जहां ऋषि-मुनियों, तपस्वियों ने कठोर साधना कर दिव्य व परम सत्ता का अनुभव किया और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति कर योग, आध्यात्म की परंपराओ का विकास किया। पृथ्वी के उस पवित्र भू-भाग पर जहां देवताओ के साक्षात विराजमान होने का अनुभव हुआ, तपस्वियों ने आत्मबोध और समाधि की अवस्था प्राप्त की, वही स्थान आज धार्मिक और पवित्र तीर्थस्थलों के रूप में मान्य है, जो मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग प्रदान करते है। "नि:संदेह भारतीय संस्कृति कि विकास यात्रा में हिमालय का विशेष स्थान रहा है। ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त से ज्ञात होता है की गगनचुंबी शिखर वाला 'हिमवत' वैदिक ऋषियों के लिए देवी प्रेरणा का स्त्रोत था। इसे वे परम सत्ता की महिमा मानते थे। कश्मीर से असम तक देवल, अगस्त्य, नारायण, कपिल, जमदग्नि, विश्वामित्र, वशिष्ठ, भारद्वाज आदि ऋषियों के आश्रमों की स्मृति आज भी हिमालय में जीवित है। हिमालय के वैदिक आश्रम ही आज तीर्थ और धाम के रूप में प्रसिद्ध हैं और युगों से भारतीय संस्कृति के केंद्र माने जाते हैं।"[15]

निष्कर्ष-

भारतीय ज्ञान परम्परा और हिमालयी यात्रा एक दूसरे के पूरक है। जहाँ भारतीय ज्ञान परम्परा हिमालय को आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महिमामंडित करती है, वही हिमालयी यात्रा साहित्य इस महिमा को जीवंत अनुभवों, वर्णनों और सांस्कृतिक आख्यानों के माध्यम से समाज तक पहुँचाता है। समग्र रूप से हिमालय में विकसित हुई दर्शन, आध्यात्म और संस्कृति की जड़े आज भी जीवित हैं और भविष्य के लिए भी मार्ग प्रशस्त करती रहेगी।

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

आधार/संदर्भ ग्रंथ-

1. *भगवद गीता- अध्याय 4, श्लोक 39*
2. *कुमारसंभव, महाकवि कालिदास (1/1)*
3. *हिमालय में पथारोहण- हिमालय, जैसा मैंने देखा, नीरज नैथानी, पृ.सं.21*
4. *केदार हिमालय के पथ पर- भूमिका, डॉ.राजेश कुमार जैन*
5. *मोक्षदाता श्री बदरीनाथ, डॉ.राजेश कुमार जैन, पृ.सं.41*
6. *हिमालय (सम्पादन) महादेवी वर्मा, पृ.सं.13*
7. *कैलाश पर्वत की महिमा-आलेख, कमला रत्नम (नवनीत)1983, पृ.सं.37*
8. *सांस्कृतिक विकास का संगम हिमालय, जीवन जोशी, पृ.सं.20*
9. *तपोवनभूमि गढ़वाल-प्रथम संस्करण 1989,शिवानंद नौटियाल, पृ.सं. 29*
10. *सांस्कृतिक विकास का संगम हिमालय- लेखकीय वक्तव्य, जीवन जोशी*
11. *उत्तराखंड हिमालय- भाषा, संस्कृति एवं पर्यटन, डॉ. सत्यानंद बडोनी, पृ.सं.7*
12. *महोपनिषद- अध्याय 4, श्लोक 71*
13. *सांस्कृतिक विकास का संगम हिमालय, जीवन जोशी, पृ.सं.15*
14. *भगवद गीता- अध्याय 18, श्लोक 66*
15. *मोक्षदाता श्री बदरीनाथ, डॉ.राजेश कुमार जैन, पृ.सं. 43*

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

द्वितीय भाषा शिक्षण में समाजभाषाविज्ञान का महत्व

डॉ. शावेज़ ख़ान

सारांश

समाजभाषाविज्ञान केवल भाषाविज्ञान विषय की एक शाखा नहीं अपितु भाषा के सामाजिक परिप्रेक्ष्य एवं महत्व को गंभीरता और सूक्ष्मता के साथ अध्ययन करने का एक सशक्त माध्यम है। भाषा के उच्चारण में निरंतर परिवर्तन आते रहते हैं। नए उच्चारण लगातार रचे जाते रहते हैं। भाषा सीखने वाला बच्चा विशेष रूप से ऐसे उच्चारण बनाने और प्रस्तुत करने में सक्रिय होता है जिन्हें उसने पहले कभी नही सुना होता। वयस्कों के साथ, नई परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं या नई वस्तुओं का वर्णन करना पड़ता है, इसलिए भाषा-प्रयोगकर्ता नए भाव और नए वाक्य बनाने के लिए अपने भाषाई संसाधनों का उपयोग करते हैं। वहीं द्वितीय भाषा शिक्षण के समय जिन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए उनमें भाषा के निजी स्वरूप और लोकल एरिया में होने वाले प्रयोग को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। बर्नस्टीन के 'कोड सिद्धांत' और लैबोव की 'परिवर्तनशील अवधारणा' के परिणामस्वरूप समाजभाषाविज्ञान में नवीन पद्धतिगत उपकरण और सैद्धांतिक और व्यावहारिक अंतर्दृष्टि प्राप्त हो सकीं। बेसिल बर्नस्टीन समाजभाषाविज्ञान के अध्ययन में सुप्रसिद्ध हैं और उनके भाषा कोड सिद्धांत ने सामाजिक वर्ग, परिवार और अर्थ के पुनरुत्पादन के बीच संबंधों की जाँच की। इसके अलावा, यह भाषा और समाज के बीच संबंधों की प्रकृति को बेहतर ढंग से समझने में मदद करता है।

मुख्य कुंजियाँ: समाजभाषाविज्ञान, कोड, परिवर्तनशीलता, सेकंड लैङ्ग्वेज वेरिएशन, एल 1- एल 2, संस्कृति, शिक्षण

प्रस्तावना

भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं होती है बल्कि मनुष्य द्वारा की जाने वाली विभिन्न गतिविधियों का प्रमुख माध्यम भी होती है जो मनुष्य की भाषा में सतत् रूप से परंपरा और ज्ञान को विकसित करती है और मनुष्य को अलग-अलग पहलुओं में अपने संज्ञानात्मक कौशल विकसित करने में सहयोग प्रदान करती है। भाषा का अनुभव, प्रकृति, परिवर्तनशीलता और निर्भरता के सामाजिक निर्धारकों के माध्यम से प्राप्त होता है । लगभग सभी भाषाएँ प्रकृति और उपयोग की दृष्टि से भिन्न होती हैं, लेकिन उनका

उपयोग मुख्यतः दैनिक संचार के लिए किया जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक भाषा में, समय-समय पर कई संशोधन और नए शब्दों का निर्माण धीरे-धीरे होता रहता है, और इन्हें भाषा अधिगम से संबंधित कक्षा में पढ़ाया जाना चाहिए क्योंकि भाषा और समाज आपस में गहराई से जुड़े हुए हैं।

इस बिंदु की प्रासंगिकता को सिद्ध करने हेतु जॉर्ज यूल ने सटीक रूप से लिखा है कि ‘यह सभी भाषाओं की एक विशेषता है कि “नए उच्चारण लगातार रचे जाते रहते हैं। भाषा सीखने वाला बच्चा विशेष रूप से ऐसे उच्चारण बनाने और प्रस्तुत करने में सक्रिय होता है जिन्हें उसने पहले कभी नही सुना होता। वयस्कों के साथ, नई परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं या नई वस्तुओं का वर्णन करना पड़ता है, इसलिए भाषा-प्रयोगकर्ता नए भाव और नए वाक्य बनाने के लिए अपने भाषाई संसाधनों का उपयोग करते हैं” (पृ-23)

भाषा शिक्षा को संबंधित स्थानीय आवश्यकताओं और सांस्कृतिक पहलुओं पर केंद्रित किया जाना चाहिए, क्योंकि औपचारिक भाषा शिक्षण और अधिगम छात्रों को केवल औपचारिक अधिगम का अनुभव प्रदान करता है, जब वे समाज में आते हैं, तो उन्हें अपने संचार में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। औपचारिक भाषा अधिगम के माध्यम से छात्रों को L1 या L2 में अच्छी स्वायत्तता प्राप्त होगी, लेकिन वास्तविक जीवन में भाषा का उपयोग औपचारिक अधिगम के साथ उसी के उपयोग से भिन्न होगा।

समाजभाषाविज्ञान अध्ययन का एक विशिष्ट क्षेत्र है, जो 20वीं शताब्दी के दौरान विकसित हुआ था, और, 'समाजभाषाविज्ञान' शब्द का पहली बार भाषाविज्ञान में प्रयोग यूजीन निडा ने अपने 'मॉर्फोलॉजी' के दूसरे संस्करण (1949) में किया था। कई भाषाविदों और शिक्षाविदों ने कहा है कि समाजभाषाविज्ञान भाषा क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है जो व्यावहारिकता और संदर्भगत स्थिति का वर्णन करता है। मिरियम मेयरहॉफ परिभाषित करती हैं: 'समाजभाषाविज्ञान एक बहुत व्यापक क्षेत्र है, और इसका उपयोग भाषा के अध्ययन के कई अलग-अलग तरीकों का वर्णन करने के लिए किया जा सकता है' (पृ-1)। समाजभाषाविज्ञान का क्षेत्र शुरू में 1960 के दशक में जाना गया और ब्रिटेन में बेसिल बर्नस्टीन और अमेरिका में विलियम लैबोव जैसे भाषाविदों ने इसकी शुरुआत की। बर्नस्टीन के 'कोड सिद्धांत' और लैबोव की 'परिवर्तनशील अवधारणा' के परिणामस्वरूप समाजभाषाविज्ञान में नवीन पद्धतिगत उपकरण और सैद्धांतिक और व्यावहारिक अंतर्दृष्टि प्राप्त हो सकीं। बेसिल बर्नस्टीन समाजभाषाविज्ञान के अध्ययन में सुप्रसिद्ध हैं और उनके भाषा कोड सिद्धांत ने सामाजिक वर्ग, परिवार और अर्थ के पुनरुत्पादन के बीच संबंधों की जाँच की। इसके अलावा, यह भाषा और समाज के बीच संबंधों की प्रकृति को बेहतर ढंग से समझने में मदद करता है। तदनुसार, पीटर ट्रुडगिल ने समाजभाषाविज्ञान को सही ढंग से परिभाषित किया है: 'यह भाषाविज्ञान का वह भाग है जो भाषा को एक सामाजिक और सांस्कृतिक घटना के रूप में देखता

है। यह भाषा और समाज के क्षेत्र की पड़ताल करता है और इसका सामाजिक विज्ञानों, विशेष रूप से सामाजिक मनोविज्ञान, मानव विज्ञान, मानव भूगोल और समाजशास्त्र से घनिष्ठ संबंध है (32)। इस प्रकार, कई पहलुओं में यह सिद्ध होता है कि भाषा और समाज आपस में गहराई से जुड़े हुए हैं और क्रमशः भाषा विभिन्न संदर्भों में संस्कृति का विवरण देती है और संस्कृति को भाषा के माध्यम से भी देखा जाता है।

भाषा और समाज

भाषा समाज में अपरिहार्य भूमिकाएँ निभाती है और दोनों का संबंध व्यापक रूप से निहित होता है। प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन भाषा में परिवर्तन लाता है जो सामाजिक मूल्यों को अपने मानदंड में समाहित करता है। इसी प्रकार भाषा और समाज का एक पारस्परिक संबंध होता है: भाषा सामाजिक अंतःक्रियाओं को निर्धारित करती है और सामाजिक संबंध भाषा का निर्माण करते हैं। समाजभाषाविज्ञान सांस्कृतिक मानदंडों और भिन्न संदर्भों में समाज के प्रभाव, भाषा के प्रयोग के तरीके और समाज पर भाषा के प्रभाव का अध्ययन करता है। इस बिंदु पर प्रासंगिक जॉर्ज यूल टिप्पणी करते हैं: ‘एक वाणी समुदाय लोगों का एक समूह है जो भाषा के प्रयोग के संबंध में मानदंडों, नियमों और अपेक्षाओं का एक समूह साझा करते हैं’ (पृ-239)

भाषा के बिना मानव समाज का अध्ययन करना बहुत कठिन है और समाज के बिना किसी भी भाषा के इतिहास का मूल्यांकन करना संभव नहीं है। अंतःक्रियावादी समाजभाषाविज्ञान मुख्यतः इस बात में रुचि रखता है कि भाषा का प्रयोग सामाजिक प्रक्रियाओं के बारे में क्या बता सकता है और इसलिए एक केंद्रीय चिंता भाषा के प्रयोग का सामाजिक अर्थ है। मैक आइवर और चार्ल्स का मानना है: 'मनुष्य का समाज के साथ संबंध इतना घनिष्ठ और घनिष्ठ है कि उसे उस वातावरण से अलग करना बहुत मुश्किल है जिसमें वह पैदा हुआ, पला-बढ़ा और एक मनुष्य के रूप में विकसित हुआ' (पृ-45)। भाषा एक व्यक्ति के रूप में और एक सामाजिक समूह के प्रतीक के रूप में उसकी पहचान का केंद्र है। किसी विशेष भाषाई विविधता का प्रयोग यह पहचान कराता है कि प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष सामाजिक समूह से संबंधित है। यह मानव संस्कृति का मांस और रक्त है। डेविड क्रिस्टल ने व्यक्त किया है: 'भाषा किसी व्यक्ति के इतिहास का भंडार है। यह उनकी पहचान है। गाथाओं, लोककथाओं, गीतों, अनुष्ठानों, कहावतों और कई अन्य प्रथाओं के रूप में मौखिक साक्ष्य हमें अपनी दुनिया का एक अनूठा दृष्टिकोण और साहित्य का एक अनूठा सिद्धांत प्रदान करते हैं’ (पृ-20)।

अमेरिकी भाषाविद् विलियम लैबोव को मात्रात्मक समाजभाषावैज्ञानिक विशेषज्ञता हेतु जाना जाता है, जिसे मुख्यतः भाषाई विविधता और परिवर्तन के अध्ययन से संबंधित स्वीकार किया गया है। इसके अतिरिक्त, उनकी भिन्न परिकल्पना का उद्देश्य सामाजिक कारकों की भागीदारी से उत्पन्न सभी भाषाई

विविधताओं की व्याख्या करने के रूप में समझा गया है। उनका यह महत्वपूर्ण अध्ययन भाषाई विविधताओं के सामाजिक निर्धारकों और सामाजिक संरचना के साथ उनके सहसंबंधों की प्रासंगिकता को दर्शाता है। इस संदर्भ में आर ए हडसन का विचार है कि 'चूँकि वाणी (स्पष्टतः) सामाजिक व्यवहार है, इसलिए समाज के संदर्भ के बिना इसका अध्ययन करना, एक साथी के व्यवहार को दूसरे साथी के व्यवहार से जोड़े बिना प्रेमालाप व्यवहार का अध्ययन करने जैसा होगा' (पृ-3)। उनके विचारों के अनुसार, भाषा को स्थानीय भाषा, बोली, इडियोलेक्ट, प्रवचन, रजिस्टर, सामाजिक भाषा, स्लैंग, टोपोलेक्ट या क्षेत्रीय बोली के रूप में वर्गीकृत किया गया है। इसलिए, भाषा के लिए पाठ्यक्रम तैयार करते समय, इन विशेषताओं को पाठ्यक्रम में शामिल करने पर विशेष ध्यान दिया चाहिए।

समाजभाषाविद् विभिन्न प्रकारों के एक समूह में अंतर करते हैं जो भाषाई विविधता के अधिकांश कारकों को समाहित करता है। सबसे सामान्य अंतर व्यक्ति में भिन्नता, तथाकथित 'आइडियोलेक्ट्स', सामाजिक कारकों से संबंधित भिन्नता, सामाजिक-भाषा, क्षेत्रीय भिन्नता, बोलियों और कार्यात्मक पहलुओं के कारण भिन्नता, तथाकथित 'रजिस्टर' या 'शैलियाँ' के बीच है। जॉर्ज यूल ने ठीक ही कहा है: 'वक्ता के लिंग के अनुसार भिन्नता हाल के कई शोधों का विषय रही है। बोली सर्वेक्षणों से एक सामान्य निष्कर्ष यह है कि महिला वक्ता समान सामान्य सामाजिक पृष्ठभूमि वाले पुरुष वक्ताओं की तुलना में अधिक प्रतिष्ठित रूपों का उपयोग करती हैं' (पृ-242)। समाजभाषाविद् क्षेत्रीय भिन्नता की तुलना में भाषा में सामाजिक भिन्नता का अध्ययन करने में अधिक रुचि रखते हैं। हालाँकि, भाषा में सामाजिक भिन्नता के अध्ययन में प्रयुक्त विभिन्न प्रक्रियाओं को समझना क्षेत्रीय भिन्नता के अध्ययन से ही विकसित हुआ है। डेविड क्रिस्टल बिल्कुल सही कहते हैं: 'भाषा किसी व्यक्ति के इतिहास का भंडार है। यह उनकी पहचान है।' गाथाओं, लोककथाओं, गीतों, अनुष्ठानों, कहावतों और कई अन्य प्रथाओं के रूप में मौखिक साक्ष्य हमें हमारी दुनिया का एक अनूठा दृष्टिकोण और साहित्य का एक अनूठा संग्रह प्रदान करते हैं' (पृ-20)।

भाषा और शिक्षा

चूँकि भाषा संचार के लिए प्राथमिक और अनिवार्य है, इसलिए शैक्षिक व्यवस्था में भाषा छात्रों के विचारों और ज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसी प्रकार, शैक्षिक कार्यक्रम और नीतियाँ अक्सर भाषा सीखने को सुगम बनाने के लिए पाठ्यक्रम और निर्देश पर ज़ोर देती हैं। कक्षा में सीखना मुख्य रूप से संबंधित समाज की भाषा और संस्कृति के माध्यम से पूरा होता है। चूँकि भाषा और संस्कृति एक-दूसरे को बहुत प्रभावित करते हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए नैन्सी एच. हॉर्नबर्गर और सैंड्राली मैके लिखते हैं: 'कई मायनों में, भाषा और संस्कृति के बीच का संबंध शिक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

दुनिया भर की कक्षाओं में विविध भाषा और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले छात्रों और शिक्षकों की संख्या बढ़ती जा रही है' (पृ-455)।

मातृभाषा के अलावा अन्य भाषाओं का प्रयोग दुनिया भर में एक प्रमुख चलन बन गया है। लोग विदेश में शिक्षा, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और अपनी यात्रा के लिए विदेशी भाषा सीखना शुरू करते हैं। इसलिए, दूसरी और विदेशी भाषा की शिक्षा शानदार हो जाती है। मोटे तौर पर, विदेशी भाषा शिक्षण के दो लक्ष्य हैं। सबसे पहले, कक्षा की सुलभता को मज़बूत करना और छात्रों को उनकी स्थानीय ज़रूरतों और प्रासंगिक उद्देश्यों के संदर्भ में औपचारिक गुणों को सीखने में मदद करना है।भाषा शिक्षण, शिक्षक द्वारा भाषा को परिघटना के साथ शिक्षार्थियों तक रूपांतरित करने की प्रक्रिया है और जिसमें भाषा के सभी पहलुओं को प्राप्त किया जाता है। यह भाषा के सभी पहलुओं जैसे सामाजिक, सांस्कृतिक, शब्दावली, वाक्यविन्यास आदि की व्याख्या कर सकता है। समाज और संस्कृति से संबंधित भाषा शिक्षण का अध्ययन समाजभाषाविज्ञान में किया जाता है। इस दृष्टिकोण से संबंधित, जॉर्ज यूल दर्शाते हैं: 'संस्कृति की परिभाषा 'सामाजिक रूप से अर्जित ज्ञान' के रूप में है। सांस्कृतिक संचरण की प्रक्रिया को देखते हुए जिसके द्वारा भाषाएँ अर्जित की जाती हैं' (पृ-246)। यह भाषा का विश्लेषण उनके पुरुषत्व और जातीयता से संबंधित करता है; इसलिए, भाषा उपयोगकर्ता इसे उचित तरीके से लागू कर सकते हैं। सीखने को समझने और बढ़ावा देने के लिए, इसमें न केवल शिक्षक शामिल हैं, बल्कि सहकर्मी और अन्य लोग, जैसे प्रशासक और बाहरी समुदाय के लोग भी शामिल हैं।

समाजभाषाविज्ञान का क्षेत्र मुख्यतः व्यावहारिकता के अध्ययन पर केंद्रित है। होम्स समाजभाषाविज्ञान को 'भाषा और समाज के बीच संबंध' (1) के अध्ययन के रूप में परिभाषित करते हैं। यह अनुसंधान का एक अंतःविषय क्षेत्र है जो भाषा और समाजशास्त्र के अध्ययन के माध्यम से संस्कृति से दृढ़ता से जुड़ा हुआ है। समाजभाषाविज्ञान अनुसंधान का एक व्यापक क्षेत्र है, इसलिए यह जानना महत्वपूर्ण है कि समाजभाषाविज्ञान क्या है। ऐसे कई भाषाविद् हैं जिन्होंने समाजभाषाविज्ञान को अपनी समझ और शोध के लिए प्रासंगिक रूप से परिभाषित किया है: स्पोल्स्की (2010) के अनुसार, 'समाजभाषाविज्ञान भाषा और समाज के बीच संबंध, भाषा की विविधता और भाषा के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन है', हडसन (1996) 'भाषा और वर्ग, आयु, लिंग और जातीयता जैसे सामाजिक कारकों के बीच संबंधों का अध्ययन', और बेल (1976) 'मानवशास्त्रीय भाषाविज्ञान की एक शाखा जो इस बात की जाँच करती है कि भाषा और संस्कृति कैसे संबंधित हैं, और विभिन्न सामाजिक संदर्भों में भाषा का उपयोग कैसे किया जाता है'। फिशमैन ने समाजभाषाविज्ञान को भाषा की विविधताओं, कार्यों और वक्ता के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया। उनके अनुसार, वे भाषा समाज में परिवर्तनशील, परस्पर क्रियाशील और संशोधित होते हैं। ग्रिम्पर्ज़ (1971) के अनुसार, भाषा और समाज के बीच चार प्रकार के संबंध हैं जो

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

इस प्रकार हैं: (क) भाषा समाज को निर्धारित करती है; (ख) सामाजिक-सांस्कृतिक भाषा को निर्धारित करते हैं; (ग) सामाजिक तथ्यों और भाषा के बीच सह-प्रसरण; (घ) भाषा और समाज का निर्धारण, संस्कृति, अमूर्त संरचना या जैविक प्रकृति जैसे अन्य कारकों द्वारा होता है। समाजभाषाविज्ञान एक ऐसा विषय है जो समाजशास्त्र को भाषाविज्ञान से जोड़ता है, और यह भाषा के प्रयोग जैसे कब, कहाँ और कैसे पर ध्यान केंद्रित करता है। विभिन्न समाजभाषाविदों ने समाजभाषाविज्ञान की बेहतर समझ के लिए विभिन्न पहलुओं पर विचार व्यक्त किए हैं। गम्पर्ज़ (1971) ने कहा है: 'समाजभाषाविज्ञान सामाजिक संरचना और भाषाई संरचना के बीच सहसंबंधों को खोजने और होने वाले किसी भी परिवर्तन का अवलोकन करने का एक प्रयास है' (पृ-223)। पीटर ट्रुडगिल ने इस बात पर ज़ोर दिया कि समाजभाषाविज्ञान अनुसंधान भाषा का उसके सामाजिक संदर्भ में अध्ययन करके मानव भाषा की प्रकृति को बेहतर ढंग से समझने में मदद करता है। यह भाषा और समाज के बीच संबंधों की प्रकृति की भी बेहतर समझ प्रदान करता है। वह समाजभाषाविज्ञान को आगे इस प्रकार परिभाषित करते हैं: 'समाजभाषाविज्ञान... भाषाविज्ञान का वह भाग है जो भाषा से एक सामाजिक और सांस्कृतिक घटना के रूप में संबंधित है। यह भाषा और समाज के क्षेत्र का अन्वेषण करता है और सामाजिक विज्ञानों, विशेष रूप से सामाजिक मनोविज्ञान, नृविज्ञान, मानव भूगोल और समाजशास्त्र के साथ इसका घनिष्ठ संबंध है' (पृ- 32)। ये ऐसे क्षेत्र भी हैं जो परिकल्पना निर्माण, तार्किक अनुमान और सांख्यिकीय परीक्षण जैसी वैज्ञानिक विधियों के लिए सबसे अधिक संवेदनशील हैं।

निष्कर्ष

यद्यपि समाजभाषाविज्ञान भाषा और समाज, भाषा भिन्नता और भाषा के दृष्टिकोण के बीच संबंधों का अध्ययन है। हडसन ने इसे भाषा और वर्ग, आयु, लिंग और जातीयता जैसे सामाजिक कारकों के बीच संबंधों के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया है। जबकि बेल ने कहा कि यह मानवशास्त्रीय भाषाविज्ञान की एक शाखा है जो इस बात की जाँच करती है कि भाषा और संस्कृति कैसे संबंधित हैं और विभिन्न सामाजिक संदर्भों में भाषा का उपयोग कैसे किया जाता है। वहीं डेविड क्रिस्टल अपनी पुस्तक लैङ्ग्वेज डैथ में भाषा की मृत्यु के द्वारा पूरी एक सभ्यता की मृत्यु हो जाने जैसे गंभीर विषय की ओर ध्यान खींचते हैं जो भाषा के सामाजिक पक्ष की गंभीरता से अवगत काराता है। समाजभाषाविज्ञान समाज के सभी पहलुओं, जिनमें सांस्कृतिक मानदंड, अपेक्षाएँ और संदर्भ शामिल हैं, का भाषा के उपयोग के तरीके पर प्रभाव का अध्ययन है। समाजभाषाविज्ञान, भाषा अर्जन के सिद्धांत और व्यावहारिकता की विशेषताओं को समझते हुए, यह स्पष्ट रूप से बताता है कि समाज और भाषा अलग नहीं हैं, बल्कि दोनों भाषा शिक्षा में अधिक प्रभाव डालते हैं। विशेष रूप से द्वितीय भाषा शिक्षा में, भविष्य में नीति, पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या तैयार करते समय इस पत्र में चर्चा किए गए कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। भाषा

शिक्षा समाजशास्त्रीय पहलुओं से अधिक प्रासंगिक होनी चाहिए जिससे छात्र संचार संबंधी बाधाओं का आसानी से सामना कर सकें और उन्हें समझ सकें।

संदर्भ:-

1. *यूल, जियोर्ज. (1996), दि स्टडी ऑफ लैड्ग्वेज, (2 सं). कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस: यू के.*
2. *मिरियम, मेयरहोफ़्फ़. (2006), इंटरोड्यूसिंग सोशियोलिङ्गुइस्टिक्स. राउटलेज: न्यू यॉर्क.*
3. *ट्रड्गिल, पीटर. (2000), सोशियोलिङ्गुइस्टिक्स: ऐन इंट्रोडक्शन टू लैड्ग्वेज एंड सोसाइटी. इंगलेंड: पेंगुइन बुक्स.*
4. *क्रिस्टल, डेविड. (2003), इंग्लिश एज़ ए ग्लोबल लैड्ग्वेज.(2 सं), कैंब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस: यू के.*
5. *हडसन, आर,ए. (1996). सोशियोलिङ्गुइस्टिक्स. कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस: यू के.*
6. *होर्न्बेर्गर नैन्सी एच, डॉ.सैंड्रा ली म्क्केय. (1996), सोशियोलिङ्गुइस्टिक्स एंड लैड्ग्वेज टीचिंग. कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस: यू एस ए.*
7. *होम्स, जे. (1992), एन इंट्रोड्क्शन टू सोशियोलिङ्गुइस्टिक्स. लंदन: लोंगमेन.*
8. *गंपर्ज़, जे,जे. (1971), लैड्ग्वेज इन सोशल ग्रुप्स. स्टैनफोर्ड, सीए: स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस.*

उत्तराखण्ड गढ़वाल में केदारघाटी कौथिग परंपरा का अनुशीलन

प्रियंका
शोध-छात्रा, हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा-विभाग
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय,
श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड

शोध सार-

देवभूमि उत्तराखंड गढ़वाल की केदारघाटी जहां अपने प्राकृतिक सौंदर्य एंव भौगोलिक विस्तार के लिए विश्वप्रसिद्ध है। वही भगवान शिव के बारह ज्योतिलिंगों की धार्मिक महिमा आध्यामिक चितंन वैदिक काल से विख्यात है। केदारघाटी की कौथिग परंपरा में यहां की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आध्यामिक एवं आर्थिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण ही नहीं है, अपितु यहां की लोकपरंपराओं, कलाओं, जनजीवन, सामूहिक चेतना, आस्था, विश्वास, मान्यताओं के प्रतीक भी है। कौथिग जैसी स्थानीय परपराओं द्वारा हमारे लोकमूल्यों, नैतिक व्यवहार, रीति-रिवाज और भाषा-बोली को अपने आने वाले समय में संरक्षित रखा जा सकता है। कौथिग परम्परा स्थानीय समाज को एक सूत्र में बांधने के साथ-साथ आपसी सौहार्द, भाई-चारा, ऊंच-नीच, जाति-पाति का भाव समाप्त करती है। कौथिग परंम्परा एक सांस्कृतिक जीवंतता होने के साथ अपने धर्म के प्रति आस्था तथा स्थानीय देवी देवताओं के प्रति विश्वास, नृत्य, कला संगीत, स्थानीय व्यंजनों, हस्तशिल्प स्वरोजगार को महत्व देती है। इस शोध का उद्देश्य कौथिग के माध्यम से समस्त परंपराओं को समझना तथा अपने जीवन में आत्मसात कर भविष्य में आने वाली नयी पीढ़ी अपनी संस्कृति को विलुप्त होने से बचा सकती है।

बीज शब्द- लोक संस्कृति, केदारघाटी, सामाजिक आयोजन, स्थानीय उत्पाद, कौथिग परंपरा,आध्यात्मिक चितंन, लोकनृत्य, हस्तशिल्प।

उत्तराखंड का परिचय-

प्राचीन काल से संस्कृत में उत्तराखंड को उत्तरी भूभाग के नाम से जाना जाता है। उत्तराखंड दो भागों केदारखंड (गढ़वाल) तथा मानसखंड (कुमांऊ) के संयुक्त क्षेत्र से मिलकर बना है। साहित्यिक दृष्टि से उत्तराखंड शब्द का प्रयोग 11वीं-12वीं शताब्दी से मिलता है। गढ़वाल के राज्य आश्रित अनेक कवियों

के द्वारा अपने काव्य में उत्तराखंड शब्द का प्रयोग किया गया है। देश में वाहय आक्रमण के समय उत्तर प्रदेश सरकार ने कुछ सीमांत जनपदों को मिलाकर उत्तराखंड मंडल का निर्माण किया। जिसे बाद में पर्वतीय भूभाग के 13 जनपदों को मिलाकर उत्तराखंड राज्य का नाम दिया गया। तत्पश्चात उत्तरांचल बनने के बाद यहां की सरकार ने 1 जनवरी, 2007 को इस प्रदेश का नाम बदलकर उत्तराखंड कर दिया। इस संदर्भ में यह कथन दृष्टव्य है-"उत्तरांचल शब्द के लिए उत्तराखंड का प्रयोग सबसे पहले 11वीं सदी में गोरखनाथ की कविता में मिलता है। इसके बाद गढ़वाल नरेश प्रद्युम्न शाह के दरबारी कवि पंडित दुर्गादत्त रूडोला ने अपने ग्रंथ 'दशमीकृतम' में उत्तराखंड शब्द का प्रयोग किया गया है। 1926 में पंडित शालिग्राम वैष्णव ने 'उत्तराखंड रहस्य' नामक पुस्तक में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। 1962 ईसवी में चीनी आक्रमण के समय उत्तर प्रदेश ने कुमांऊ व गढ़वाल के उत्तरी सीमांत तहसीलों को मिलाकर 'उत्तराखंड मंडल' निर्मित किया, जो बाद में 'उत्तराखंड विकास विभाग' के नाम से जाना जाने लगा। 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से उत्तर प्रदेश के पर्वतीय भूभाग के लिए उत्तराखंड शब्द प्रचलन में आया।" (1)

गढ़वाल शब्द की उत्पत्ति के संदर्भ में एक मान्यता यहां के पर्वतीय क्षेत्र के पहाड़ी किलों से है, जिसे गढ़ कहा जाता है। गढ़ उस समय छोटे-छोटे राज्य हुआ करते थे। पंडित हरिकृष्ण रतूड़ी के अनुसार-" गढ़ शब्द उन पहाड़ी किलों को बोधक है, जो किले पर्वतों की चोटियों पर अधिकता से पाये जाते हैं। किले पूर्व काल में छोटे-छोटे ठकुरी राजाओं, सरदारों और थोकदारों के थे। उन राजाओं व सरदारों के राज्य विभाग भी पृथक-पृथक थे। जो अब परगनों व पट्टियों के नाम से विख्यात हैं। जब पंवार वंशज महाराजा अजयपाल ने गढ़वाल के ठकुरी राजाओं को विजय करके उनके राज्यों को एक साथ मिलाकर सुविस्तीर्ण राज्य स्थापित किया तब इस प्रदेश का नाम अधिगढ़ होने के कारण गढ़वाल रखा।" (2)

उत्तराखंड में विभिन्न जातियां पाई जाती है। जहां एक ओर गढ़ शब्द का अर्थ यहां के छोटे-छोटे किलों से है, वहीं दूसरी ओर विभिन्न जातियों में प्रयुक्त 'वाला' प्रत्यय एक क्षेत्र विशेष या स्थान का बोधक है। जिसके कारण यह क्षेत्र गढ़वाल कहलाया। इस संदर्भ में यह कथन परिलक्षित है-"गढ़वाल सादृश्य के अन्य शब्दों से प्रतीत होता है कि गढ़वाल नाम गढ़ों से सम्बंधित है। यथा-डांग से डंगवाल, सेम से सेमवाल, बड़ेथ से बड़थ्वाल, नोटी से नौटियाल, थापली से थपलियाल, बेली से बेलवाल तथा ओंणी से उनियाल आदि। गढ़वाली से प्राय: जाति वाचक प्रत्यय वाल, वाला तथा याल रूप में उपलब्ध होते हैं। इन दोनों में वाल या वाला सम्बंध का द्योतक है और याल समूहार्थ का। अतरू गढ़ों से सम्बंधित या गढ़ों का प्रदेश ही गढ़वाल कहा गया है।" (3)

उत्तराखंड गढ़वाल की लोक संस्कृति का स्वरूप-

संस्कृति एक ऐसी अवधारणा है जो मानवीय समाज में होने वाले सामाजिक व्यवहार, उचित-अनुचित तथा अच्छे संस्कारों का ज्ञान कराती है। संस्कृति को मानव अपने पूर्वजों के द्वारा परंपराओं व रीति-रिवाजों के माध्यम से स्वयं अर्जित करता है जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांरित होती रहती है। इस संदर्भ में संस्कृति यह उक्ति सर्वथा समीचीन है कि "संस्कारैः आत्मधर्मादिभिरः जीवनम् संस्कारोति इति संस्कृति" - अर्थात मानवीय संस्कारों के द्वारा जो आत्मधर्म के माध्यम से जीवन को संस्कारित करता है वह संस्कृति है। (4)

लोक संस्कृति तथा समाज का आत्मीय सम्बंध होता है। लोक संस्कृति समाज के विभिन्न संस्कारों तथा वहां की लोक परंपरा का अभिन्न अंग होती है। ग्रामीण जीवन में लोक संस्कृति विभिन्न रीति-रिवाजों, धर्म, दर्शन, कला, नृत्य, आचार-विचार आदि व्यवहारों में दिखाई देती है। संस्कृति मनुष्य को उत्कृष्ट, बेहतरीन तथा जीवन उपयोगी शिक्षा देकर उसे श्रेष्ठ बनाती है-"सामाजिक संदर्भ में संस्कृति के अंर्तगत सामूहिक आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान, कला, धर्म, दर्शन आदि समाविष्ट होने के कारण इसे सामूहिक-बौद्धिक प्रयास भी कहा जा सकता है। किसी भी समाज में संस्कृति के विभिन्न तत्त्वों की जितनी उपलब्धता होगी वह समाज सांस्कृतिक दृष्टि से श्रेष्ठ व समृद्ध माना जायेगा।" (5)

संस्कृति समाज की उत्कृष्ठ व बेहतरीन स्थिति है जो मनुष्य को अनेक प्रकार से जीवन उपयोग शिक्षा एवं व्यवहारिक ज्ञान देती है। मानव समाज के सभी मान्यताओं, मूल्यों, कलाओं, ज्ञान एवं विभिन्न क्रिया कलापों से परिचित कराती है-"सम्यक प्रकारेण विरोधिभावान अपास्य सम्भावान् जीवनोपयोगिनः करोति इति संस्कृति" अर्थात संस्कृति वह है जो मानवता के विकृत करने वाले भावों को निरस्त करके उनके स्थान पर जीवनोपयोगी भावों को प्रतिस्थापित करती है। (6)

कौथिग परंपरा का स्वरूप-

लोक संस्कृति व मानव जीवन का अटूट संबंध है। लोक संस्कृति मनुष्य जीवन का वह प्रतिबिंब है जो समय-समय पर समाज में कई प्रकार की परंपराओं, विश्वास, कलाओं, रीति-रिवाजों का अनुभव कराती है। मेले हमारी लोक संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। जिनके माध्यम से आपसी सौहार्द, बंधुत्व तथा एकता की भावना को बल मिलता है। मेले हमारी संपन्नता, खुशहाली, धन-वैभव व सभ्यता के प्रतीक हैं। जिससे हमें अपनी प्राचीन सभ्यता एवं लोक संस्कृति को जीवन पर्यंत संजोकर रखने में प्रोत्साहन मिलता है। इस संदर्भ में यह कथन दर्शाता है कि-"किसी भी क्षेत्र की संस्कृति का पता उस क्षेत्र में आयोजित होने वाले मेलों, परंपराओं एवं त्यौहारों से चलता है। संस्कृति समाज को भूत, वर्तमान और भविष्य से जोड़कर रखती है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। संस्कृति मूर्त होती है। जीवन के विभिन्न रूपों का मिश्रण ही हमारी संस्कृति है। संस्कृति हमारा पीछा जन्म-जन्मांतर तक करती है। त्यौहार

एवं मेले किसी भी समाज के लोक जीवन के अभिन्न अंग हैं। इनके मूल में धार्मिक व मनोरंजन की भावना काम करती है।"(7)

उत्तराखंड की संस्कृति यहां के मेलों में विशेष रूप से दिखाई देती है। मेलों को यहां के स्थानीय भाषा में अनेक नाम से जाना जाता है। कुमांऊ में मेलों को कौतिक तथा गढ़वाल में कौथिग कहा जाता है। देवभूमि उत्तराखंड को युग-युगों से अपने कल-कल निदान से पवित्र करने वाली यहां की सदा नीरा नदियों के तट तथा पर्वतीय क्षेत्रों के अंचल में बसे यहां के पौराणिक देव स्थलों पर इन मेलों का आयोजन किया जाता है। मेले यहां की सांस्कृतिक विरासत को दर्शाते हैं। इन मेलों का आयोजन निश्चित समय, स्थान के अनुसार किया जाता है। मेलों में सभी ग्रामीण एवं क्षेत्रवासी बड़े हर्ष-उल्लास एवं विभिन्न पारंपरिक पोशाकों एवं श्रृंगार के साथ अनेक प्रकार के स्थानीय पकवानों का आनंद लेते हैं। वर्तमान समय में यह मेले अपने धार्मिक, सांस्कृतिक स्वरूप के साथ-साथ स्थानीय स्वरोजगार, खेलकूद, मनोरंजन आदि का प्रदर्शन भी करते हैं -"उत्तराखंड में आयोजित होने वाले अधिकांश मेले धार्मिक हैं, जो प्रायरू मंदिरों व नदियों के तट पर लगते हैं। नये वस्त्र, आभूषणों में सज-धजकर आबाल-वृद्ध सब उल्लास और उमंग के साथ मेलों में जाते हैं। इनमें लोग धर्म, भावना, आमोद-प्रमोद और वर्षभर की खरीद-फरोख्त के लिए एकत्रित होते हैं। उत्तराखंड के स्थानीय भाषा में मेलों को कौतिक, कौथिग, थौल या म्याल कहा जाता है। यह मेले निश्चित तिथि तथा नियत स्थानों पर आयोजित होते हैं।" (8)

पौराणिक काल से मेले लोक जीवन का रंगमंच रहा है। जिससे वह अपने जीवन की लोक कलाओं, परंपराओं, मान्यताओं, नृत्य-गीत तथा स्थानीय खाद्य पदार्थों को प्रस्तुत करते हैं। उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में जटिल भौगोलिक परिस्थितियों के कारण यहां यातायात तथा सुख-सुविधाओं का अभाव होने पर भी यहां के मेलों में आपसी सौहार्द, भाईचारा तथा सामूहिक एकता की भावना दिखाई देती है। जिसके मूल में यहां की लोक परंपराओं की छवि दृष्टिगत होती है। इन क्षेत्रों में आयोजित होने वाले अधिकांश मेले धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं व्यापारिक हैं तथा क्षेत्रीय देवी-देवताओं में अटूट आस्था का प्रतीक होते हैं -"मेले लोक जीवन व लोक संस्कृति के रंगस्थल होते हैं। इसमें धर्म, संस्कृति, साहित्य, व्यावसायिकता, कला, मनोरंजन, लोक नृत्य, लोग गीत आदि का समन्वित रूप परिलक्षित होता है। दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों में बसे हुये लोगों को मेले में मिलने का अवसर मिलता है। पर्वतीय क्षेत्रों में यातायात की कमी के कारण इन मेलों का विशेष महत्व है। संपूर्ण रंवाई क्षेत्र में विभिन्न स्थानों में धार्मिक, सांस्कृतिक व व्यापारिक मेले आयोजित होते हैं।"(9)

केदारघाटी कौथिग परंपरा का परिचय एवं विवेचन

केदारखंड में भगवान शिव का पवित्र तीर्थ स्थल केदारनाथ विद्यमान है। केदार भगवान शिव के द्वादश ज्योर्तिलिंगों में से एक है। गढ़वाल का अधिकांश भाग भगवान शिव को समर्पित है। जिसे

केदारघाटी के नाम से जाना जाता है। यहां होने वाले अधिकांश उत्सव, मेले, थौले, कौथिग सभी भगवान शिव से सम्बंधित हैं। जिनका उल्लेख पौराणिक ग्रंथों से प्राप्त होता है-“पौराणिक मत में कुमांऊ कुर्मपृष्ठ और गढ़वाल केदारखंड नाम से प्रसिद्ध है। इस कारण कि केदारनाथ द्वादश ज्योर्तिलिंगों में से इस देश का स्वामी माना जाता है। इसी से इस देश का नाम केदारखंड जगत प्रसिद्ध है।”(10)

केदारघाटी में आयोजित होने वाले अधिकांश मेले यहां के प्रमुख नदी तटों, घाट तथा प्रमुख पवित्र कुंडों के संगम पर आयोजित किये जाते हैं। यह मेले स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना तथा धार्मिक आस्था से सम्बद्ध होते हैं। मेलों में यहां की पारंपरिक वेशभूषा के साथ सामूहिक नृत्य-गान एवं लोक वाद्य यंत्रों का प्रदर्शन किया जाता है। मेलों में खेल, मनोरंजन तथा साज-सज्जा इत्यादि का सामान बिक्री किया जाता है-“मेले एवं उत्सव किसी भी समाज की सांस्कृतिक गतिशीलता के द्योतक होते हैं। मेले सांस्कृतिक प्रतीकों, बोली, भाषा, रीति-रिवाजों के आदान-प्रदान के माध्यम भी होते हैं।” (11)

जाख मेला जाखधार-

देव भूमि उत्तराखंड में पौराणिक काल से ही प्राचीन जातियों यज्ञ, गंधर्व, किरात, किन्नर, नाग आदि का अपना समृद्ध इतिहास रहा है। इन सभी जातियों ने यहां की समृद्ध परंपरा में अपने धार्मिक मान्यताओं, सामाजिक संरचना तथा संस्कृति को जीवंत रूप देने में अहम भूमिका निभाई है। रूद्रप्रयाग जनपद के गुप्तकाशी से पांच किमी की दूरी पर जाख देवता का प्रसिद्ध मंदिर है। निवृत आकाश तले यह मंदिर अपनी प्राकृतिक छटा से आच्छादित यज्ञ देवता की मूर्ति को समर्पित है, जो यहां भगवान शिव के शिवलिंग के रूप में पूजित है। यहां वैशाख माह की संक्राति अर्थात 14 अप्रैल को विशाल मेला लगता है। जिसका प्रमुख आकर्षण जाख देवता द्वारा प्रदर्शित किया जाने वाला अग्नि नृत्य है। किंवदती यह है कि यह मेला 11वीं शताब्दी से हमेशा चला आ रहा है। मेले के दिन भव्य देव यात्रा का आयोजन किया जाता है, जो भ्यक्त गांव से कोठेड़ा होते हुए देवशाला गांव पहुंचती है। देव यात्रा में डोली के साथ-साथ वाद्य यंत्रों और नृतकों का होना उसे उत्सवमयी एवं दर्शनीय बनाता है-“संक्राति की संध्या के समय गाजे-बाजों के साथ पूजा संपन्न की जाती है। उसके पश्चात लकड़ियों के ढेर पर अग्नि प्रज्वलित की जाती है। अगले दिन समस्त काष्ठ जलकर अंगारों के ढेर में परिवर्तित हो जाता है। जब जाख देवता अपने पश्वा पर अवतरित होता है, तो वह इस भारत के द्वादश ज्योर्तिलिंगों में एक प्रमुख ज्योर्तिलिंग केदारनाथ है, जो कि उत्तराखंड के रूद्रप्रयाग जनपद में तीर्थ के रूप में अवस्थित है। वैसे तो केदानाथ में वर्षभर भक्तों की आवाजाही बनी रहती है, किंतु यहां लगने वाले अन्नकूट के मेले के अवसर पर श्रद्धालुओं की संख्या विशेष रूप से बढ़ जाती है। यह अन्नकूट का मेला प्रतिवर्ष रक्षा बंधन के पावन अवसर पर दो दिन तक आयोजित किया जाता है। अन्नकूट मेला अन्न का वह पर्व है। जिसमें नई फसल की प्राप्ति का आभार प्रकट किया जाता है। अन्नकूट मेले को स्थानीय भाषा में भतूज उत्सव कहा जाता है-“इस अवसर पर

भगवान शिव के निमित्त चावलों का भात बनाकर भोग के रूप में अर्पित किया जाता है। संपूर्ण शिवलिंग को भात से ढक दिया जाता है। पूजा के पश्चात कौथिगेरों को यह भात प्रसाद के रूप में बांटा जाता है। शिवलिंग पर बेल पत्र व ब्रहम कमल भी अर्पित किये जाते हैं।” (13)

हरियाली वामन द्वादशी का मेला त्रियुगीनारायण - केदारनाथ यात्रा के पवित्र मार्ग में स्थित यह प्रमुख तीर्थस्थल भगवान विष्णु के वामन अवतार को समर्पित है। प्राकृतिक छटा से परिपूर्ण यह स्थान भगवान शिव तथा माता पार्वती के विवाह स्थल के रूप में भी जाना जाता है। यहां लगने वाला हरियाली वामन द्वादशी का मेला भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि से द्वादशी तिथि के सांय तक चलता है। अष्टमी के दिन गांव की महिलाएं साज श्रृंगार कर भगवान वामन को हरियाली अर्पित कर भक्ति भाव से पूजा-अर्चना करती हैं। अंत में हरियाली को प्रसाद के रूप में वितरित किया जाता है। एकादशी की संध्या में भगवान नारायण व भैरवनाथ की मूर्तियों को डोली में विराजमान कर दर्शन किया जाता है। निरूसंतान दंपत्ति श्रद्धाभाव से दीप प्रज्वलित कर रात्रि में खड़े रहकर संतान की कामना करते हैं। इस पर्व की दिव्यता में कई भक्तजन साक्षी बनते हैं-“सितंबर में वामन द्वादशी के दिन यहां पर भव्य मेला आयोजित किया जाता है। इससे चार दिन पूर्व हरियाली भेंट की जाती है। मेले के पूर्व संध्या पर संतानहीन दंपत्ति रात भर जलते हुए दीये को हाथ में लेकर जागरण करते हैं। उत्सव के रूप में मेले के दिन भगवान नारायण की डोली को फूलों से सजाकर भक्तों के दर्शन के लिए मंदिर से बाहर लाया जाता है।” (14)

कोटेश्वर मेला

रूद्रप्रयाग शहर से तीन किमी की दूरी पर अलकनंदा नदी के तट पर कोटेश्वर महादेव की गुफा स्थित है। यह गुफा अपने अद्भुत प्राकृतिक सौंदर्य और भगवान शिव की तपस्थली होने के कारण कई श्रद्धालुओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार-“इस गुफा के अंदर स्थित पत्थर का शिवलिंग, पार्वती, गणेश जी की प्रतिमाओं को स्वयंभू माना जाता है। मान्यता यह भी है कि भगवान शिव ने भस्मासुर राक्षस को वरदान दिया था कि वह जिस के सिर पर हाथ रख देगा, तो जलकर भस्म हो जायेगा। वरदान पाकर भस्मासुर स्वयं शिव के सर पर हाथ रखने के लिए आया तो भगवान शिव ने इस गुफा में छिपकर अपनी जान बचाई थी। केदारनाथ व बद्रीनाथ जाने वाले यात्री यहां पर दर्शन के लिए अवश्य आते हैं।” (15) शिवरात्रि के दिन यहां पर भव्य मेला लगता है। जिसमें इस क्षेत्र के अन्य श्रद्धालु पूजा-अर्चना कर यहां की सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक क्रिया-कलापों में सहभागी बनकर सुख-समृद्धि एवं शांति की कामना करते हैं।

निष्कर्ष-

केदारघाटी में आयोजित होने वाले कौथिग सांस्कृतिक प्रतीक ही नहीं अपितु यहां की सामाजिक परम्पराओं ग्रामीण जीवनशैली, लोक-परंपराओं का संरक्षण, लोकमूल्यों, लोक कलाओं का प्रचार-प्रसार, स्थानीय खान-पान स्थानीय उत्पाद,हस्तशिल्प तथा सामूहिकता की भावना, आर्थिक व्यवस्था को बनाये रखने में सहयोग प्रदान करता हैं। आधुनिकता के इस दौर जहां एकांकीपन का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। वहीं कौथिग के माध्यम से अपने संस्कृति आपसी बधुत्व, संयुक्त परिवार की अवधारणा, सामूहिक कार्यक्रम के विविध आयामों को एकजुट बनाती है। कौथिग गढ़वाली संस्कृति की आत्मा है। जो उसे अपनी सांस्कृतिक जड़ो को जुड़ने का कार्य करती है।

संदर्भ सूची

1-देव सिंह पोखरिया-उत्तराखण्ड लोकसंस्कृति और साहित्य पृ सं.02
2-पं. हरिकृष्ण रतूड़ी (सं. डॉ० यशवंत सिंह कठोच) गढ़वाल की इतिहास पृ.सं.01
3-डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा-गढ़वाल में हिन्दी साहित्य का उद्भव एवं विकास पृ.सं.07
4-डॉ. शिवप्रसाद नौटियाल-गढ़वाल के लोक नृत्य गीत पृ.सं.29
5-डॉ. दिनेश चंद्र पुरोहित-उत्तराखंड की धार्मिक संस्कृति पृ.सं.67
6- प्रो. डी. डी शर्मा-उत्तराखण्ड का लोक जीवन एवं संस्कृति पृ.सं. 185
7-माधव सिंह नेगी-जनपद रूद्रप्रयाग रू एक नजर पृ.सं. 42
8- देवसिंह पोखरिया-उत्तराखंड लोक संस्कृति व साहित्य पृ.सं.146
9- दिनेश सिंह रावत-रंवाई क्षेत्र के लोक देवता व लोकोत्सव पृ. सं.126
10-पं.हरिकृष्ण रतूड़ी (संपादक डॉ. यशवंत सिंह कठोच-गढ़वाल का इतिहास पृ.सं.4
11- राकेश मोहन कंडारी-उत्तराखण्ड के मेले एवं लोकोत्सव पृ सं.11
12-डॉ. दिनेश चंद्र बलूनी-जनपद रुद्रप्रयागरूइतिहास व संस्कति पृ.सं. 151
13-डॉ. दिनेश चंद्र बलूनी (पूर्वोक्त)-पृ.सं. 156
14-डॉ. दिनेश चंद्र बलूनी (पूर्वोक्त) पृ.सं.159
15-डॉ. पूरनसिहं मेहता-उत्तराखण्ड के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा आर्थिक मेले पृ.सं. 187

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

भारत सरकार की राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के सामाजिक विश्लेषण का अध्ययन

लक्ष्मी गोयल
शोध छात्रा, शिक्षा विभाग,
महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल
विश्वविद्यालय उत्तराखंड

डॉ अंजू चौधरी
सहायक प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग
एस एस वी पीजी कॉलेज हापुड

सारांश

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को भारत सरकार द्वारा 34 वर्षों के बाद एक नये दृष्टिकोण के साथ लागू किया गया, जिसका उद्देश्य शिक्षा को समावेशी, समानतामूलक, बहुभाषिक, तकनीक-समर्थित और नैतिक मूल्यों पर आधारित बनाना है। यह शोधपत्र नीति के सामाजिक पक्ष का विश्लेषण करता है, विशेषकर यह कि यह नीति समाज के विविध वर्गों—जैसे निम्न वर्ग, ग्रामीण समुदाय, महिलाएं, अल्पसंख्यक एवं वंचित समूहों—पर क्या प्रभाव डालती है। शोध हेतु उत्तर प्रदेश के हापुड़ क्षेत्र से 100 उत्तरदाताओं (शिक्षक, अभिभावक, सेवा क्षेत्र व व्यवसायी) से प्राथमिक डाटा एकत्र किया गया। परिणामों से ज्ञात हुआ कि अधिकांश लोगों को नीति की समग्र जानकारी नहीं है, किन्तु वे इसके सामाजिक उद्देश्यों से सहमत हैं। वे नीति के बहुभाषिक शिक्षा, लैंगिक समानता, नैतिक शिक्षा, और समावेशन जैसे पहलुओं को प्रासंगिक मानते हैं, परन्तु इसके प्रभावी क्रियान्वयन को लेकर शंकित हैं। यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि नीति को सामाजिक स्तर पर सफल बनाना है, तो इसके लिए जमीनी प्रशिक्षण, सामुदायिक भागीदारी, और सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं को समझते हुए कार्य योजना बनानी होगी। यह शोधपत्र हापुड़ क्षेत्र के लोगों की प्रतिक्रियाओं, अनुभवों एवं सामाजिक प्रभावों के आधार पर भारत सरकार की राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों का सामाजिक विश्लेषण करता है।

कुंजी शब्द: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, सामाजिक विश्लेषण, हापुड़, प्राथमिक आँकड़े, समावेशी शिक्षा, सामाजिक समानता, बहुभाषिकता, नीति क्रियान्वयन, शिक्षा और समाज।

प्रस्तावना

शिक्षा किसी भी समाज के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विकास की नींव होती है। भारत में समय-समय पर शिक्षा संबंधी नीतियों को संशोधित एवं लागू किया गया है, जिससे शिक्षा को समावेशी, गुणवत्तापूर्ण और सार्वभौमिक बनाया जा सके। वर्ष 2020 में लाई गई *नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020)* भारतीय शिक्षा प्रणाली में एक ऐतिहासिक परिवर्तन का प्रयास है, जो न केवल पाठ्यक्रम में सुधार की बात करती है, बल्कि सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता और समावेशन जैसे पहलुओं पर भी ज़ोर देती है। **शर्मा (2019)** ने भारत की शिक्षा नीति 1986 और 1992 के प्रभावों का अध्ययन करते हुए पाया कि ग्रामीण भारत में उच्च शिक्षा की पहुँच अभी भी सीमित है। **सिंह और चौधरी (2021)** ने नई शिक्षा नीति 2020 के सामाजिक प्रभाव का विश्लेषण करते हुए बताया कि यह नीति समाज के सभी वर्गों को समान अवसर प्रदान करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

गुप्ता (2022) ने शिक्षकों की भूमिकाओं में आए बदलाव का अध्ययन किया और बताया कि NEP 2020 शिक्षकों को केंद्र में रखती है तथा उनके प्रशिक्षण को प्राथमिकता देती है। **मित्तल (2023)** ने हापुड़ जिले में एक सीमित सर्वेक्षण कर यह संकेत दिया कि ग्रामीण विद्यालयों में आवश्यक ढांचागत सुविधाओं की कमी नई शिक्षा नीति के क्रियान्वयन में बाधा बन सकती है।

साहित्य समीक्षा

वर्मा (2018) ने अपने शोध "शिक्षा नीति और सामाजिक परिवर्तन" में भारत की शिक्षा नीतियों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का अध्ययन किया। उन्होंने बताया कि 1968, 1986 और 1992 की नीतियाँ सामाजिक समानता की दिशा में अग्रसर थीं, किंतु व्यावहारिक रूप से यह लक्ष्य तब तक अधूरा रहा जब तक समावेशन के ठोस उपाय नहीं किए गए। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि शिक्षा नीतियाँ तभी सफल हो सकती हैं जब उनकी पहुंच ग्रामीण क्षेत्रों और पिछड़े वर्गों तक सुनिश्चित की जाए। वर्मा ने अपनी पद्धति में द्वितीयक स्रोतों का उपयोग कर नीति दस्तावेज़ों, सरकारी रिपोर्टों और सामाजिक सर्वेक्षणों का विश्लेषण किया। उन्होंने सुझाव दिया कि नई शिक्षा नीति को तभी प्रभावी माना जा सकता है जब उसमें जमीनी स्तर पर सामाजिक असमानताओं को संबोधित करने की स्पष्ट रणनीति हो।

शालिनी मिश्रा (2020) ने "NEP 2020: एक सामाजिक विश्लेषण" नामक लेख में नई शिक्षा नीति को सामाजिक संदर्भ में व्याख्यायित किया। उन्होंने विशेष रूप से इस बात पर बल दिया कि किस प्रकार यह नीति सामाजिक वर्गों, लैंगिक समानता और आर्थिक भिन्नताओं को ध्यान में रखती है। उन्होंने प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित सर्वेक्षण किया जिसमें उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश के कुल 200 प्रतिभागियों से बातचीत की गई। अध्ययन में यह पाया गया कि नीति के सिद्धांतों की जानकारी लोगों को नहीं है, लेकिन उनके द्वारा अनुभव की जाने वाली समस्याएँ जैसे शिक्षक की कमी, आधारभूत ढांचा

और पाठ्यक्रम का बोझ, NEP 2020 के माध्यम से संबोधित किए जा सकते हैं। उन्होंने सुझाव दिया कि नीति की सफलता के लिए जनसहभागिता आवश्यक है।

डॉ. कमलेश यादव (2021) ने "ग्रामीण भारत में शिक्षा और नीति का व्यवहारिक प्रभाव" विषय पर शोध करते हुए उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों में एक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। उन्होंने पाया कि नीति बनाते समय ग्रामीण भारत की आवश्यकताओं की कल्पना तो की जाती है, परंतु उनका कार्यान्वयन बाधित रहता है। उन्होंने 150 शिक्षकों और 100 छात्रों से विस्तृत साक्षात्कार लिए, जिनमें यह तथ्य सामने आया कि प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षक अनुपात, तकनीकी संसाधनों की उपलब्धता और अभिभावकों की भागीदारी बहुत सीमित है। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि जब तक पंचायत स्तर पर शिक्षा योजनाओं को समुदाय के साथ जोड़ा नहीं जाता, तब तक नीति केवल कागज़ी दस्तावेज़ ही रहेगी।

तिवारी एवं जैन (2022) ने मिलकर "NEP 2020: बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव" नामक शोध में यह विश्लेषण किया कि किस प्रकार यह नीति बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति को बदलने की क्षमता रखती है। उन्होंने बुंदेलखंड और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में 10 विद्यालयों में अध्ययन किया और पाया कि NEP 2020 में मातृभाषा आधारित प्रारंभिक शिक्षा और डिजिटल साक्षरता जैसे प्रस्ताव ग्रामीण बालिकाओं की शिक्षा में एक सकारात्मक परिवर्तन ला सकते हैं। हालांकि, उन्होंने यह भी बताया कि बाल विवाह, घरेलू कार्य का दबाव और सामाजिक वर्जनाएँ अब भी बालिकाओं की शिक्षा में बाधा बनी हुई हैं। उन्होंने सिफारिश की कि शिक्षा नीति में सामाजिक मुद्दों को संबोधित करने वाले प्रावधानों को व्यवहारिक रूप दिया जाए।

आनंद कुमार (2023) ने हाल ही में "शिक्षा नीति और सामाजिक समानता: एक समुदाय-आधारित अध्ययन" किया, जिसमें उन्होंने विशेष रूप से पिछड़े वर्गों (SC/ST/OBC) की शिक्षा में नई नीति की भूमिका का मूल्यांकन किया। उन्होंने उत्तर प्रदेश के हापुड़, मुरादाबाद, और अलीगढ़ ज़िलों में फील्ड वर्क किया और पाया कि सामाजिक न्याय की दिशा में नीति की भावना तो सराहनीय है, परंतु जातीय भेदभाव, संसाधनों की असमानता और विद्यालयों की गुणवत्ता जैसी चुनौतियाँ अब भी प्रासंगिक हैं। उन्होंने सुझाव दिया कि शिक्षा नीति को सामाजिक चेतना से जोड़ते हुए समुदाय-आधारित शिक्षा मॉडल को अपनाना चाहिए।

डॉ. रेखा चौहान (2021) अपने शोध *"राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और शिक्षण पेशे की सामाजिक छवि"* में डॉ. रेखा चौहान ने शिक्षा नीति और शिक्षकों की सामाजिक स्थिति के अंतर्संबंधों का विश्लेषण किया। उनका उद्देश्य था जानना कि क्या NEP 2020 शिक्षकों को अधिक स्वायत्तता और सामाजिक मान्यता दिला पाएगी। उन्होंने दिल्ली और उत्तर प्रदेश के चयनित जिलों (जिसमें हापुड़ भी शामिल था)

से 120 शिक्षकों से साक्षात्कार लिए। अध्ययन में यह पाया गया कि NEP शिक्षकों की भूमिका को केंद्र में रखती है, लेकिन नीतिगत परिवर्तनों के लिए प्रशासनिक ढांचे में लचीलापन और प्रशिक्षण तंत्र में सुधार की आवश्यकता है। शिक्षकों ने बताया कि जब तक उन्हें प्रशिक्षण, संसाधन और सामाजिक सहयोग नहीं मिलेगा, तब तक वे नीतिगत बदलावों को कार्यान्वित नहीं कर पाएंगे।

अमरनाथ मिश्रा (2022) "NEP 2020 और ग्रामीण युवाओं की आकांक्षाएं" नामक अपने शोधपत्र में मिश्रा ने यह विश्लेषण किया कि नई शिक्षा नीति कैसे ग्रामीण युवाओं की शैक्षणिक और व्यावसायिक आकांक्षाओं को प्रभावित कर रही है। उन्होंने 18 से 25 वर्ष की आयु के 200 युवाओं से प्रश्नावली के माध्यम से डेटा एकत्र किया। हापुड़, बिजनौर और बुलंदशहर जिलों के युवाओं को शामिल किया गया। उन्होंने पाया कि युवा NEP के मल्टीपल एंट्री-एग्जिट, कौशल विकास और डिजिटल शिक्षा जैसे प्रावधानों को लेकर आशावान हैं, लेकिन जमीनी स्तर पर प्रशिक्षण केन्द्रों, डिजिटल संसाधनों और मार्गदर्शन की भारी कमी है। मिश्रा ने यह भी सुझाया कि नीति के प्रचार-प्रसार के लिए सोशल मीडिया और युवाओं की भाषा में संवाद ज़रूरी है।

प्रो. राजीव शुक्ल (2023) का शोध "राष्ट्रीय शिक्षा नीति और सामाजिक न्याय की चुनौतियाँ" विशेष रूप से पिछड़े और हाशिए पर खड़े समुदायों की शिक्षा पर केंद्रित था। उन्होंने अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अल्पसंख्यक समुदायों से संबंधित 250 अभिभावकों, छात्रों और शिक्षकों से वार्ता की। अध्ययन के निष्कर्षों से ज्ञात हुआ कि NEP 2020 में समावेशन की दिशा में कई सकारात्मक प्रस्ताव हैं, जैसे – मातृभाषा में शिक्षा, समावेशी पाठ्यक्रम, और बाल केंद्रित शिक्षा। परंतु व्यवहार में सामाजिक भेदभाव, भाषाई चुनौतियाँ और जागरूकता की कमी बाधा बन रही हैं। प्रो. शुक्ल ने निष्कर्ष निकाला कि यदि स्थानीय निकायों को शिक्षकीय अधिकार और बजट नियंत्रण दिया जाए, तो नीति का लाभ वंचित वर्गों तक अधिक प्रभावी रूप से पहुँच सकता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों का सामाजिक प्रभाव जानना।
2. हापुड़ क्षेत्र में नई शिक्षा नीति की समझ और स्वीकार्यता का मूल्यांकन करना।
3. सामाजिक वर्ग, जाति, लिंग एवं आर्थिक स्थिति के अनुसार नीति की पहुँच एवं प्रभाव का विश्लेषण करना।

परिकल्पना

1. नई शिक्षा नीति 2020 समाज के सभी वर्गों में समान रूप से प्रभावी नहीं है।
2. हापुड़ क्षेत्र के ग्रामीण इलाकों में NEP की जानकारी सीमित है।

3. नीति का सामाजिक प्रभाव शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार तथा समावेशन के रूप में देखा जा सकता है।

अध्ययन क्षेत्र: हापुड़ जिला, उत्तर प्रदेश

हापुड़ एक अर्ध-शहरी और ग्रामीण क्षेत्र है, जहाँ पर शिक्षा व्यवस्था विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक आयामों से प्रभावित होती है। इस क्षेत्र को चुनने का उद्देश्य यह समझना है कि नीति का व्यवहारिक प्रभाव ज़मीनी स्तर पर क्या है।

अनुसंधान पद्धति वर्णनात्मक

प्राथमिक आंकड़े संग्रह विधियाँ:

प्रश्नावली (Questionnaire), साक्षात्कार (Interview), समूह चर्चा (Focus Group Discussion)

- **नमूना आकार**: 100 प्रतिभागी (50 ग्रामीण, 50 अर्ध-शहरी)
- **प्रतिभागियों की श्रेणियाँ**:
  विद्यार्थी (कक्षा 9–12), शिक्षक, अभिभावक, स्कूल प्रबंधन समिति के सदस्य
- **नमूना चयन विधि**: सरल यादृच्छिक नमूना विधि (Simple Random Sampling)

अध्ययन का महत्त्व

यह अध्ययन इस बात की समझ विकसित करता है कि क्या राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ वास्तव में समाज के विभिन्न वर्गों तक पहुँच रही हैं या नहीं। यह शिक्षकों, नीति निर्माताओं, शोधार्थियों और सरकारी अधिकारियों को जमीनी स्तर की समस्याओं को समझने में मदद करता है।

सीमाएँ

- अध्ययन केवल हापुड़ क्षेत्र तक सीमित है।
- सीमित नमूना आकार के कारण निष्कर्ष पूरे देश पर लागू नहीं हो सकते।
- प्रतिभागियों की समझ एवं रुचि पर आधारित उत्तरों में विविधता।

आंकड़ों की प्रस्तुति एवं विश्लेषण

क्या आपको नई शिक्षा नीति के बारे में जानकारी है?

वर्ग	हाँ (%)	नहीं (%)
छात्र	38%	62%
शिक्षक	72%	28%
अभिभावक	31%	69%

विश्लेषण: यह स्पष्ट है कि अधिकांश विद्यार्थियों और अभिभावकों को NEP 2020 की जानकारी नहीं है, जबकि शिक्षकों को अपेक्षाकृत अधिक जानकारी है। इससे पता चलता है कि नीति की जानकारी का प्रसार असमान है।

क्या नई शिक्षा नीति समाज में समानता को बढ़ावा देती है?

वर्ग	हाँ (%)	नहीं/पक्का नहीं (%)
छात्र	51%	49%
शिक्षक	68%	32%
अभिभावक	43%	57%

विश्लेषण: नीति को लेकर सकारात्मक रुझान तो है, लेकिन लोगों की समझ अभी भी सीमित है। विशेष रूप से अभिभावकों के बीच जागरूकता की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

हापुड़ क्षेत्र के ग्रामीण एवं अर्ध-शहरी क्षेत्र में रहने वाले अधिकांश छात्र (62%) और अभिभावक (69%) नई शिक्षा नीति 2020 के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं रखते। नीति की अवधारणाएं जैसे "मल्टीपल एंट्री एग्जिट", "स्कूल कॉम्प्लेक्स", और "मातृभाषा में शिक्षा" उनके लिए नई और अस्पष्ट हैं। यह स्पष्ट करता है कि सरकार द्वारा की गई नीति की घोषणाएं जमीनी स्तर पर आम जन तक ठीक से नहीं पहुँच पाई हैं।

अधिकांश शिक्षकों (72%) ने माना कि नई शिक्षा नीति उनके पेशे को अधिक सम्मानजनक और उत्तरदायित्वपूर्ण बनाती है, परंतु वे यह भी मानते हैं कि इसके कार्यान्वयन के लिए प्रशिक्षण और संसाधनों की भारी आवश्यकता है। प्रशिक्षण की अनुपलब्धता, पाठ्यक्रम में भ्रम, और तकनीकी साधनों की कमी उनके सामने बड़ी चुनौतियाँ हैं।

अनुसूचित जाति, जनजाति और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के छात्रों तक नई शिक्षा नीति की पहुँच तुलनात्मक रूप से कम है। सर्वे में शामिल 45% दलित परिवारों ने माना कि उनके बच्चों को शिक्षा में मिलने वाले अवसर अब भी सीमित हैं, और वे डिजिटल शिक्षा या नई पाठ्यविधियों से तालमेल नहीं बिठा पा रहे हैं।

NEP 2020 में डिजिटल शिक्षा को प्राथमिकता दी गई है, लेकिन हापुड़ के ग्रामीण क्षेत्रों में 61% परिवारों के पास न तो स्मार्टफोन है और न ही इंटरनेट की सुचारू सुविधा। इससे डिजिटल शिक्षा और ऑनलाइन मूल्यांकन जैसे नवाचारों का लाभ इन क्षेत्रों तक नहीं पहुँच पा रहा है।

अभिभावकों का एक बड़ा वर्ग (लगभग 57%) इस विचार से सहमत है कि प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में होनी चाहिए, परंतु उच्च शिक्षा और प्रतियोगी परीक्षाओं की अंग्रेज़ी-प्रधान प्रकृति के कारण उनमें भ्रम की स्थिति है।

शहरी और निजी विद्यालयों में नीति के कुछ प्रावधान जैसे बाल केंद्रित शिक्षा, गतिविधि आधारित अधिगम, और मूल्यांकन में लचीलापन लागू किया जा रहा है, परंतु सरकारी और ग्रामीण विद्यालय अभी भी पुरानी पद्धतियों पर निर्भर हैं। दिव्यांग छात्रों के लिए विशेष सामग्री, प्रशिक्षित शिक्षक और समर्पित कार्यक्रमों की अनुपस्थिति पाई गई। सर्वे में 11 विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के परिवारों ने बताया कि उन्हें विद्यालय में समुचित सहयोग नहीं मिल रहा, जबकि NEP समावेशन की बात करती है।

उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों (कक्षा 11–12) में शिक्षा के प्रति रुचि और विविध कैरियर विकल्पों को लेकर जागरूकता तो बढ़ी है, लेकिन व्यावसायिक शिक्षा, कौशल विकास केंद्र, और मार्गदर्शन की पर्याप्त व्यवस्था न होने के कारण वे अपने लक्ष्यों तक नहीं पहुँच पा रहे।

कुछ अभिभावकों और शिक्षकों ने चिंता जताई कि नीति के कई प्रावधान निजीकरण को बढ़ावा दे सकते हैं, जिससे शिक्षा एक सेवा नहीं, व्यापार बनती जा रही है। इससे आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग और अधिक वंचित हो सकते हैं।

नीति का उद्देश्य तो स्पष्ट है, परंतु जिला शिक्षा अधिकारी, खंड शिक्षा अधिकारी और विद्यालय प्रबंध समितियों के बीच समन्वय की कमी के कारण क्रियान्वयन बाधित हो रहा है। सर्वे के दौरान 32% सरकारी शिक्षकों ने बताया कि उन्हें अभी तक NEP पर कोई औपचारिक दिशा-निर्देश नहीं मिले हैं।

सुझाव

नीति की जानकारी के लिए विशेष जन-जागरूकता अभियान चलाए जाएं।
शिक्षकों के लिए नियमित प्रशिक्षण आयोजित किए जाएं।
ग्रामीण विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं में सुधार किया जाए।
नीति के अंतर्गत दिये गए प्रावधानों को सामाजिक न्याय की दिशा में प्रभावी ढंग से लागू किया जाए।

संदर्भ सूची

1. *Sharma, R. (2019). Educational Policies in India. Delhi: National Publication.*
2. *Singh, A. & Chaudhary, M. (2021). "Impact of NEP 2020 on Rural Education." Journal of Indian Education, 45(2), pp. 112–130.*
3. *Gupta, S. (2022). Teachers and Policy Reforms. Meerut: Sunrise Publishers.*
4. *Mittal, R. (2023). "NEP Implementation Challenges in Semi-urban Uttar Pradesh." Sociology Today, 10 (1), pp. 35–45.*
5. *Verma, R. (2018). Shiksha Neeti aur Samajik Parivartan. Lucknow: Bharti Prakashan.*
6. *Mishra, S. (2020). NEP 2020: Ek Samajik Vishleshan. Samajik Vimarsh Patrika, 12(4), 56-68.*
7. *Yadav, K. (2021). Grameen Bharat mein Shiksha aur Niti ka Vyavaharik Prabhav. Allahabad: Ganga Publications.*
8. *Tiwari, N. & Jain, M. (2022). NEP 2020 aur Balika Shiksha. Shodh Samvedna, 9(2), 99-113.*
9. *Kumar, A. (2023). Shiksha Neeti aur Samajik Samanata. Meerut: Navchetna Publication.*
10. *Chauhan, R. (2021). Rashtriya Shiksha Neeti 2020 aur Shikshak Varg. Bhartiya Shiksha Darshan, 11(3), 55–70.*
11. *Mishra, A. (2022). NEP 2020 aur Grameen Yuvaon ki Aakanshaayein. Yuva Manch Patrika, 8(1), 21–36.*
12. *Shukla, R. (2023). NEP 2020 aur Samajik Nyay. Bharatiya Samajshastra Samiksha, 14(2), 89–104.*

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उत्सवों में संचार और वैचारिक प्रसार का विश्लेषणात्मक अध्ययन

पंकज गजानन कलाने
शोधार्थी, जनसंचार विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा

सारांश :
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ देशव्यापी संगठन है जो समाज में देशभक्ति, अनुशासन और निःस्वार्थ सेवा के गुणों को विकसित करता है। इसके उत्सव जैसे विजयादशमी, रक्षा बंधन आदि के माध्यम से यह सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक संदेशों का प्रसार करता है। ये उत्सव समाज में एकता, अनुशासन और राष्ट्रवादी भावनाओं को मजबूत करते हैं। यह शोध पत्र संघ के उत्सवों को सामाजिक संचार उपकरण के रूप में विश्लेषित करता है, जो विचारधारा के निर्माण एवं समाज में उसकी स्वीकृति को समझने में सहायक है। संघ का उद्देश्य एक समृद्ध, एकात्म और आध्यात्मिक रूप से विकसित भारत का निर्माण है।

सूचक शब्द : संघ ,देशव्यापी,विचारधारा, सन्देश,प्रसार उत्सव,संचार,समाज,अनुशासन,सांस्कृतिक

प्रस्तावना :

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एक देशव्यापी सामाजिक, सांस्कृतिक संगठन है। देश भर में सभी राज्यों के सभी जिलों में 83 हजार से अधिक शाखाओं के माध्यम से संघ का कार्य चल रहा है । जो हर समाज में देशभक्त, अनुशासित, चरित्रवान और निःस्वार्थ भाव से काम करने वाले लोगों की आवश्यकता रहती है। संघ ऐसे लोगों को तैयार करने का, उनको संगठित करने का काम करता है । संघ समाज में एक संगठन ना बनकर सम्पूर्ण समाज को ही संगठित करने का प्रयास करता है। राष्ट्रिय स्वयंसेवक संघ की स्थापना १९२५ में विजयादशमी के दिन हुई और संघ आज अपने शताब्दी की और आग्रेसरित है । किसी भी देश की श्रेष्ठता, उसका समाज कैसा है, उस पर निर्भर करती है। समाज अगर आपस में बंटा है, स्वार्थी है, भ्रष्ट है, काम करने वाला नहीं है तो देश कभी आगे नहीं बढ़ेगा। समाज में निःस्वार्थ भाव से काम करने वाले, चरित्रवान, परस्पर स्नेह करने वाले, अनुशासित, उद्यमी लोग रहेंगे तो देश आगे बढ़ेगा। ऐसे समाज को निर्माण करने का काम राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ करता है । व्यक्ति समाज के बारे में संवेदनशील और

राष्ट्र के बारे में जाग्रत और सक्रिय हो, ऐसे व्यक्ति तैयार करने का और उन्हें संगठित करने का कार्य राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ करता है। संघ का उद्देश्य अपने इस भारत को दुनिया का एक सर्वश्रेष्ठ देश बनाना है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में हमारा देश सर्वश्रेष्ठ हो। आर्थिक दृष्टि से वह स्वावलंबी और संपन्न हो। भारत ने कभी किसी पर आक्रमण नहीं किया है, लेकिन अगर भारत पर युद्ध लादा जाए तो युद्ध में भारत हमेशा अजेय हो। इसके साथ-साथ भारत केवल एक देश नहीं है। भारत का जीवन का एक प्राचीन विचार है, एक चिंतन है। भारत की एक जीवन दृष्टि है। यह जीवन दृष्टि एकात्म और सर्वांगीण है। यह जीवन दृष्टि भारत की पहचान है। यह जीवन दृष्टि भारत के राष्ट्र जीवन के हर क्षेत्र में प्रकट हो, ऐसी समाज रचना संघ चाहता हैं। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि आध्यात्मिकता ही भारत की आत्मा है। भारत का प्राण है। यह भारत की आध्यात्मिकता यहाँ के समाज जीवन के प्रत्येक अंग में प्रकट हो, ऐसा एक सर्वांगीण उन्नत समाज का निर्माण राष्ट्रिय स्वयंसेवक संघ करता है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपने अनुशाशन,देशभक्ति,राष्ट्रवाद,सामाजिक,सांस्कृतिक विचारधारा के लिए जाना जाता है। संघ की गतिविधियाँ केवल शाखाओं तक सीमित नहीं हैं, बल्कि यह विविध सांस्कृतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय उत्सवों के आयोजन के माध्यम से समाज में अपनी विचारधारा का प्रसार भी करता है। इन उत्सवों में जैसे वर्षप्रतिपदा ,हिन्दू साम्राज्य दिनोत्सव, गुरुपौर्णिमा,रक्षा बंधन ,विजयादशमी ,मकर संक्रांति,इत्यादी उत्सव मानते है। इन उत्सवों के माध्यम से संघटनात्मक एकता ,और अनुशाशन का निर्माण होता है। इन उत्सवों के माध्यम से समाज में सामाजिक ,वैचारिक ,सांस्कृतिक सन्देश भीं जन जन तक पहुचाया जाता है । यह उत्सव जनसंचार के रूप में महत्वपूर्ण कार्य करते है । संचार एक सामाजिक सांस्कृतिक प्रक्रिया है जो जानकारी प्रदान करती है ।और सामाजिक सोच ,मूल्य , और विचारधाराओं का निर्माण करके उन्हें प्रसारित भी करती है। राष्ट्रिय स्वयंसेवक संघ के उत्सव ,भाषणों ,प्रतीक,घोष,वेशभूषा,और सांस्कृतिक प्रदर्शन में अपनी एक अलग ही विचारधारा संप्रेषित करती है
यह शोध पत्र इस बात का विश्लेषण करता है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ उत्सवों के माध्यम से विचारधारा का प्रसार करता है जो जन-जन तक पहुंचता है और एक संगठित विचारधारा का प्रसार करता है । और शोध पत्र विश्लेषण न केवल संचार प्रक्रिया की समझ को समृद्ध करेगा बल्कि यह भी स्पष्ट करेगा की राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वारा वैचारिक निर्माण कैसे किया जाता है और समाज में उसकी स्वीकृति कैसे प्राप्त की जाती है। इस शोध के उद्देश्य संघ के उत्सव को एक सामाजिक संचार उपकरण के रूप में देखना है जो विचारों को प्रसारित करने के साथ-साथ सामाजिक एकता राष्ट्रवाद और सांस्कृतिक गौरव की भावनाओं को भी मजबूती देता है।

साहित्य की समीक्षा :

वैद्य, मा.गो. (२०१६). द्वारा लिखी गई पुस्तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का परिचय में १९२५ में नागपूर में विजयादशमी के पर्व पर हिंदू समाज का संगठन कर, भारत को विश्व का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र बनाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना हुई। संघ संस्थापक डॉ. हेडगेवारजी ने भारत का हर नागरिक अनुशासित, चरित्रवान और निःस्वार्थ भाव से कार्य कर देश की प्रगती में सम्मिलित हो यह दृष्टी संघ स्वयंसेवकों के सम्मुख रखी थी। संघ कार्य का यही आधार है। संघ समाज में एक और संगठन न बनकर सम्पूर्ण समाज को ही संगठित करने का प्रयास कर रहा है। संघ की प्रतिदिन लगने वाली शाखा के माध्यम से देश के लिए स्वयंप्रेरणा से धर्म, समाज व संस्कृति की सेवा, संरक्षण व संवर्धन करने नि:स्वार्थ बुद्धी से, प्रामाणिकता से तथा तन, मन, धनपूर्वक काम करनेवाली व्यक्ती तयार करना जिसे स्वयंसेवक कहते है यही संघ का प्रमुख कार्य है।

ठाकुर.नरेन्द्र.(२०२३).द्वारा लिखित पुस्तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का दृष्टिकोण आरएसएस ने ऐतिहासिक रूप से हिंदू राष्ट्रवादी आंदोलन में एक प्रमुख भूमिका निभाई है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) ने छह विभागों या स्तंभों के माध्यम से कार्य करता है शारीरिक (भौतिक), संपर्क (आउटरीच), प्रचार (प्रचार), बौद्धिक (बौद्धिक), व्यवस्था (प्रशासनिक) और सेवा (सेवा) है विभागों के अंतर्गत राष्ट्रीय स्तर पर कम से कम 46 अन्य विंग हैं और संघ परिवार' के अंतर्गत आते हैं। साथ ही, हर राज्य का अपना संगठन होता है। कुल मिलाकर, सौ से अधिक राष्ट्रीयआरएसएस निकाय हैं। प्रचार-प्रसार विभाग प्रमुख सुनीलजी अबैंकर कहते है की, "ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जो अछूता रह गया हो। सशस्त्र बलों के लिए, पूर्व सैनिकों के लिए एक संगठन है जिसका नाम पूर्व सैनिक परिषद है, सीमाओं के पास रहने वाले लोगों के कल्याण के लिए सीमा जागरण मंच है, वकीलों के संगठन को अधिवक्ता परिषद के नाम से जाना जाता है," इस पत्रिका में यह बताया गया है. (२०२४) विषय बिंदु ,इस पुस्तक में हमारे समाज जीवन में अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक राष्ट्रीय महत्व के प्रसंग आते है। इन प्रसंगों से हमारा समाज अनुप्राणित होता है। प पू. डॉक्टर जी ने समाज में जिन गुणों की आवश्यकता का अनुभव कीया उन्हीं के अनुरूप उत्सवों की योजना की। प्रत्येक उत्सव किसी विशेष गुण की और इंगित करता है। यथा गुरुपूर्णिमा आत्म निवेदन एवं समर्पण भाव, रक्षाबन्धन के द्वारा समरसता एवं समानता का प्रकटीकरण, विजयादशमी, वर्ष प्रतिपदा एवं हिन्दु साम्राज्य दिवस के द्वारा विजीगीषु वृत्ति, पुरुषार्थ, राष्ट्रभाव एवं आत्म गौरव वृत्ति जागरण, पराभूत मानसिकता में परिवर्तन एवं मकर संक्रानि द्वारा सही दिशा में सम्यक् क्रान्ति एवं संगठन का भाव निर्माण करना। उत्सवों के माध्यम से आत्म केन्द्रित स्वभाव बदलकर सामाजिक बोध का जागरण ।उत्सवों द्वारा-सुप्त स्फूर्ति केन्द्रों का पुनर्जागरण, अखिल भारतीय राष्ट्रीय दृष्टि का निर्माण, समाज द्वारा संघ को निकट से देखने व समझने का अवसर व समाज

में संघ के लिए पोषक वायुमण्डल का निर्माण होता है। नये व्यक्तियों को संगठन से जोड़ने का स्वर्णिम अवसर व कार्यकर्ता प्रशिक्षण में सहयोग भी प्राप्त होता है।

समस्या का विधान :

मौजूदा साहित्य पुनरावलोकन के उपरांत यह विदित होता है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सामाजिक,सांस्कृतिक,कार्य करने वाला देश और दुनिया का सबसे बड़ा स्वयं सेवी संगठन है। इसलिए प्रस्तुत आलेख में संघ का सामाजिक संचार,जनसंचार प्रणाली,संघ की कार्यप्रणाली,संघ के उत्सव ,सामाजिक विचार, वैचारिक सम्प्रेषण इत्यादी कार्यक्षेत्र आदि विषयों पर वर्णन आवश्यक हो जाता है। साहित्य समीक्षा के उपरांत यह अंतराल विदित होता है कि संघ के दृष्टि से उसके स्वरूप एवं कार्यों की अध्ययन दृष्टि भले ही न हो लेकिन अकादमिक दृष्टि मौजूद है। प्रस्तुत शोध पत्र राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उत्सवों में संचार और वैचारिक प्रसार विश्लेषणात्मक अध्ययन संबंधी अंतराल को भरने के दृष्टि से किया गया है।

उद्देश्य :

राष्ट्रिय स्वयंसेवक संघ के उत्सवों के बारे में जानना और उनका अध्ययन करना।

राष्ट्रिय स्वयंसेवक संघ के उत्सवों के माध्यम,संचार,और वैचारिक प्रसार का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि :

प्रस्तुत शोध पत्र में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति अंतर्निहित है। इस अध्ययन में सम्मिलित तथ्य द्वितीयक स्त्रोतों से संकलित किए गए हैं; इसलिए वाचनालय विधि (लाइब्रेरी मैथड) का प्रयोग किया गया है। जिसके अंतर्गत राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से संबंधित पत्र-पत्रिकाओं, शोध- ग्रंथ, शोध पत्र एवं विषय आधारित दस्तावेज और इंटरनेट आदि का प्रयोग किया गया है।

वर्षप्रतिपदा :

समग्र हिन्दू समाज का वर्षारंभ वर्षप्रतिपदा के दिन होता है। वास्तव में देखें तो यह सारे विश्व के नवीन वर्ष का आरम्भ दिवस है। वर्षप्रतिपदा के दिन ही विश्व की सबसे प्राचीन काल गणना प्रारंभ हुई। अभी तक अनेक वैज्ञानिकों को इस दिन का महत्त्व ज्ञात नहीं था, किन्तु अब वैज्ञानिक भारतीय कालगणना के आरम्भ दिवस के महत्त्व को जानने लगे हैं। अपने समाज और राष्ट्र की दृष्टि से तो यह दिवस और भी महत्वपूर्ण है। हिन्दू समाज को संगठित कर हिन्दू राष्ट्र को वैभवशाली बनाने की प्रक्रिया प्रारंभ करने वाले दृष्टा महापुरुष प.पू. डॉ. केशव बलीराम हेडगेवार जी का यह जन्म दिवस है। डॉक्टर जी ने संघ की स्थापना की। वे संघ के प्रथम प्रचारक और प्रथम अर्थात् आद्य सरसंघचालक हैं। उन्हें इस उत्सव में शाखा आरम्भ होने से पहले, ध्वज आरोहण के पूर्व आद्य सरसंघचालक प्रणाम दिया जाता हैं।

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

वर्ष प्रतिपदा का उत्सव संघ के स्वयंसेवक विशेष रूप से एकत्रित होकर मनाते हैं। किसी प्रतिष्ठित, गणमान्य व्यक्ति को अध्यक्षता के लिए आमंत्रित किया जाता है। डॉक्टर जी के जीवन का चिंतन इस उत्सव का प्रमुख भाग होता है। इस उत्सव के अवसर पर डॉक्टर जी का जीवन चरित्र स्वाभाविक रूप से सामने आना चाहिए। बाल स्वयंसेवकों के सामने बोलते समय डॉक्टर जी के जीवन चरित्र के प्रसंग सामने रखना चाहिए। उनके अनेक प्रसंगों का उल्लेख किया जाता है किन्तु प्रत्यक्ष में बोलते समय वक्ताओं को अपनी शैली में विस्तार से इन सभी प्रसंगो को स्वयंसेवको के सामने रखते है। वर्षप्रतिपदा के उत्सव के बौद्धिक में और भी अनेक बिन्दु समाहित किए जाते हैं जिसमें कालगणना का विचार महत्वपूर्ण रहता है।

हिन्दू साम्राज्य दिन :

हिंदू साम्राज्य दिवस उत्सव अपना विशिष्ट उत्सव है। अधिक विचार न करते हुए मात्र इस शब्द का ही अर्थ देखें तो हिंदू साम्राज्य दिवस का स्मरण क्यों करें, ध्यान में आता है। हिंदू समाज में अनेक उत्सव हैं, उनकी तिथियां निश्चित हैं, किंतु इस नाम का कोई उत्सव और व्रत आदि दिखाई नहीं पड़ता। हिंदू समाज का संगठन ही संघ का उद्देश्य है। संघ के स्वयंसेवक जिन उत्सवों को मनाते हैं उनका उद्देश्य भी हिंदू संगठन ही होता है। संघ ने इसके लिए जो कार्य पद्धति अपनाई है, संघ के उत्सव उसी कार्य पद्धति का एक भाग है। हम शाखा और समाज में जो उत्सव मनाते हैं, धार्मिक उत्सव नहीं है। समाज की चेतना को जागृत कर उसे संगठित करने के लिये और, अपने राष्ट्र को बलशाली और वैभव संपन्न बनाने के लिए संघ प्रयत्नशील है। इसलिए हम जो उत्सव मनाते हैं वे महत्वपूर्ण होते है।

हमारा भारतदेश एक ऐसा राष्ट्र है जिसकी संस्कृति, ज्ञान, विज्ञान, वैभव और वीरता की परंपरा हजारों सालो से विश्व को एक नइ दिशा देती आई है। फिर भी इतिहास की त्रासदी यह है कि इतने महान अतीत के बावजूद भी हम बार-बार विदेशी आक्रांताओं के शिकार बने है । यह केवल बाह्य कारणों से नहीं, अपितु हमारे आत्मविस्मरण की स्थिति के कारण ही हुआ। परम पूज्य डॉ.केशव बलिराम हेडगेवार जी ने इसी गहरी पीड़ा और चिंतन से प्रेरित होकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की । डॉ.हेडगेवार जी ने इतिहास का सूक्ष्म विश्लेषण किया । उन्होंने देखा कि अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष केवल सत्ता परिवर्तन की लड़ाई है, लेकिन उससे राष्ट्र का आत्मबोध जागृत नहीं होगा । उन्होंने अनुभव किया कि जब तक समाज अपनी अस्मिता, आत्मबल और सांस्कृतिक पहचान से जुड़कर संगठित नहीं होता, तब तक वह स्थायी रूप से स्वतंत्र और समृद्ध नहीं हो सकता। यह डॉ.हेडगेवार जी ने पहचाना कि हिंदू समाज अपनी आत्मविस्मृति का शिकार हो गया है । वह अपने गौरवशाली अतीत, सामर्थ्य और शक्ति,सामर्थ्यं को भूल चुका है। यही कारण है कि हम बार-बार पराजित हुए, बिखरे और अपना आत्मगौरव खो बैठे । डॉ.हेडगेवार जी ने समझा कि छत्रपति शिवाजी महाराज केवल एक एतिहासिक पुरुष नहीं ,अपितु एक

जिवंत आदर्श है,जिनकी प्रेरणा लेकर एक सशक्त राष्ट्र खड़ा किया जा सकता है। लेकिन वह केवल उनकी जयंती या पुण्यतिथि मनाकर उन्हें पूज्य बनाने तक सीमित नहीं रहे। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि शिवाजी महाराज का स्मरण पूजन के लिए नहीं, कार्य और प्रेरणा के लिए होना चाहिए। संघ शिवराज्याभिषेक दिवस को हिन्दू साम्राज्य दिवस के रूप में स्मरण करता है ।यह दिन केवल इतिहास की एक घटना नहीं है, बल्कि आत्मविस्मृति से उबरते हुए *राष्ट्र-चेतना के जागरण का प्रतीक* है। यह वह दिन है जब एक आत्मगौरवशाली हिंदू समाज ने अपने राज्य की स्थापना की, अपने हाथों से सत्ता संभाली । यह दिवस हमें याद दिलाता है कि हमारा लक्ष्य केवल भूतकाल को पूजना नहीं, बल्कि उस प्रेरणा से वर्तमान और भविष्य को गढ़ना है।

गुरुपौर्णिमा:

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने अपनी कार्य पद्धति में गुरु पूजन के उत्सव को अपनाया है, लेकिन गुरु के विषय में संघ की परिकल्पना परंपरागत गुरु से अलग है। सामान्यतः कोई व्यक्ति गुरु के स्थान पर होते हैं। संघ ने किसी व्यक्ति को गुरु नहीं माना है, व्यक्ति कितना बड़ा क्यों न हो वह पतनशील होता है, उसके हाथों त्रुटियाँ हो सकती हैं। ऐसे व्यक्ति जिन्हें देवताओं के समक्ष स्थान मिला है, उन व्यक्तियों में भी कुछ अपवाद मिलते ही हैं। किसी एक व्यक्ति विशेष को गुरु मानने वाले, व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह हो सकते हैं, किंतु पूरा समाज, सारा राष्ट्र जिसे गुरु माने ऐसा कोई एक व्यक्ति नहीं हो सकता है। हमारे राष्ट्र का भूतकाल हजारों वर्षों का रहा है, भविष्यकालीन जीवन भी अनंत है। ऐसे अनादि और अनंत राष्ट्र का गुरु कोई अल्प आयु प्राप्त एक व्यक्ति विशेष कैसे हो सकता है? राष्ट्र के वैभव, उसकी महानता, कभी उत्थान-कभी पतन की अवस्था, महान ऋषियों-संतों के जीवन, घोर संग्राम, मान-अपमान आदि सारी बातों का साक्षी रहने वाला गुरु कौन हो सकता है? गुरु वह जो अधःपतन के काल में संभालने वाला हो, संकट के काल में धैर्य देने वाला हो, आक्रमण होने पर पराक्रम की प्रेरणा देने वाला हो, वैभव संपन्न राष्ट्र जीवन का लक्ष्य सतत जागृत रखने वाला हो, ऐसा गुरु कौन हो सकता है, संघ निर्माता डॉ. हेडगेवार सही अर्थों में विलक्षण विचारक थे, उन्होंने इसका विचार किया। अपने धर्म, संस्कृति, परंपरा, इतिहास का स्मरण कराने वाले और राष्ट्रीय चेतना को जागृत रखने वाले प्रतीक को उन्होंने अपने दिव्य चक्षुओं से देखा और वह प्रतीक था 'भगवा ध्वज'।

भगवा ध्वज यानी भगवान का ध्वज । संघ कार्य ईश्वरीय कार्य है, हम यह मानते हैं, जानते हैं। संघ की प्रार्थना में मातृभूमि के परम वैभव के लिए सर्वस्व समर्पण करने की भावना है, जो ईश्वर का कार्य है और यह राष्ट्र हमारा देवता है। उसका ऋण हमें चुकाना है, यह अपना कर्तव्य है इसलिए हम प्रार्थना में कहते हैं' त्वदीयाय कार्याय बद्धा कटीयम् 'हे ईश्वर आपका ही कार्य करने के लिए हम कटिबद्ध हुए है। भगवा ध्वज को ब्रह्म ध्वज भी कहा जाता है। गुरु पूर्णिमा की पहचान गुरु पूजन से होती है। हमारे पूर्वजों ने,

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

ऋषियों ने अपने राष्ट्र को, इसकी संस्कृति को गढ़ा। उन सभी प्राचीन ऋषियों का कृतज्ञतापूर्ण स्मरण करने का भी यह दिन है। हजारों वर्षों से पीढ़ी दर पीढ़ी सांस्कृक्तिक परंपरा और सांस्कृतिक जीवन की विरासत उन्हीं के कारण हम तक पहुँची, इसलिए हम उनके प्रति कृतज्ञ है। इस प्राचीन गौरवशाली संस्कृति में हमारा जन्म हुआ, यह राष्ट्रभावना आने वाली पीढ़ी को जस की तस सौपना हमारा कर्तव्य है। इस कर्तव्य का हमें सदैव स्मरण करना चाहिए। सामाजिक जीवन में अपना आदर्श प्रतिस्थापित करने वाले अनेक संत और मुनि हुए हैं। वह आदर्श हमारे सामने बना रहे इसलिए उनका स्मरण हम करते हैं। राष्ट्रीय जीवन में ऐसे अनेक वीर पराक्रमी पुरुष हुए हैं जिन्होंने राष्ट्र का भवितव्य गढ़ा है। उन वीरों को प्रेरणा देने वाले उनके गुरु ही थे। ऐसे महान गुरुओं का स्मरण पूजन करने से समाज में पराक्रम का भाव जागृत होता है। हमें अपने समाज के लिए कुछ करना चाहिए यह भावना जागृत होती है।

रक्षाबंधन:

रक्षा बंधन के सामाजिक महत्व को देखते हुए, संघ ने अपनी कार्य पद्धति में इस उत्सव को स्थान दिया है। 1925 में संघ की स्थापना नागपुर में हुई और 1926 में पहला रक्षा बंधन उत्सव मनाया गया। नागपुर के तुलसी बाग में दोपहर दो बजे हुई बैठक के स्वरूप में पहला उत्सव संपन्न हुआ। वर्तमान में उत्सव के दौरान हम शाखा में, ध्वज को रक्षा सूत्र बांधते हैं। भगवा ध्वज हमारे राष्ट्र का, हिंदू समाज का निर्विवाद प्रतीक है।ध्वज को रक्षा सूत्र बांधते समय हमारे अंतकरण में 'त्वदीयाय कार्याय बद्धा कटियम्' की भावना जागृत होती है। रक्षाबंधन के माध्यम से हमें समाज के प्रति अपने कर्तव्य की पहचान होती है। संगठन का निर्माण समन्वय से होता है, संघर्ष से नहीं। अपनी भारत माता के हम सभी पुत्र हैं, आपस में बंधु हैं, फिर यह भेद कैसा? इस भावना को जागृत करना अपना कार्य है। इसके लिए बस्तियों में जाना, वहां के बंधुओं का विश्वास अर्जित करना, उनके लिए सेवा कार्य करना, उनको अपने साथ में लेना, यह सभी स्वयंसेवकों का काम है। इससे समरसता का निर्माण होगा और इसी समरसता से अपेक्षित क्षमता का भी निर्माण होगा, विषमता दूर होगी। अपनी दृष्टि में रक्षाबंधन उत्सव इसप्रकार की समरसता के कार्यों का साधन है, प्रतीक है। पूरे हिंदू समाज को रक्षा सूत्र के माध्यम से बाँध कर संगठित करना संघ का कार्य है। अपना पूरा समाज एक है, यह भावना निर्बल हो गई है। ऐसी परिस्थिति में, समाज को एक सूत्र में बांधकर रखने वाली शक्ति को जागृत करने का प्रयत्न संघ कर रहा है। हम सभी एक ही समाज के घटक हैं। हमारे आपस में बंधुत्व के संबंध है, हमें आपस में एक दूसरे को समझना हैं। इस प्रकार की भावनाओं का बोध करवाने के लिए एक दूसरे को रक्षासूत्र बाँधकर, बंधुत्व के धागे को मजबूत करना ही रक्षाबंधन का निहितार्थ है।

विजयादशमी :

विजयादशमी का दिन सज्जनशक्ति के विजय का दिवस है। इस दिन प्रभु रामचंद्र जी ने रावण का वध कर अनैतिक राक्षसी राज्य का नाश किया था। माता सीता का अपहरण करने वाले रावण के विरुद्ध राम को भयंकर युद्ध करना पड़ा। सामान्य किन्तु पराक्रमी और एकनिष्ठ वानर जाति को संगठित कर समाज की क्षत्रिय शक्ति को दुष्ट शक्तियों के विरुद्ध खड़ा किया। समाज में इस प्रसंग की स्मृति हमेशा बनी रहे, यही इस उत्सव को मनाने के पीछे का उद्देश्य है। विजयादशमी उत्सव के दिन हम अपनी प्राचीन परंपरा के अनुसार शस्त्र पूजन करते हैं। 1925 को नागपुर में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्य का आरंभ हुआ, संघ के संस्थापक डॉ. केशवराव बलिराम हेडगेवार थे। संघ की कार्यपद्धति में 6 उत्सव मनाए जाते हैं उनमें से यह एक उत्सव है। संघ कार्य इसी दिन प्रारंभ हुआ, इसलिए एक प्रकार से यह संघ का वर्धापन दिवस भी है। इस उत्सव के निमित्त सारे समाज को एकत्रित करते है । इस उत्सव के कार्यक्रम में संघ कार्य, रोज चलने वाली शाखाओं में होने वाली गतिविधियों के साथ कौन से संस्कार स्वयंसेवकों को दिए जाते हैं ऐसे सभी बातों की जानकारी दी जाती है इसलिए यह उत्सव प्रगट रूप में मनाया जाता है। विजया दशमी के उत्सव पर सभी स्वयंसेवक गणवेश में अपेक्षित होते है। गणवेश और प्रात्यक्षिक इस उत्सव की विशेषता है। दण्ड, योगचाप, निःयुद्ध, व्यायामयोग, घोष, सांघिक गीत आदि प्रत्यक्षिक उत्सव का आकर्षण होता है। विजयादशमी के दिन संघ की स्थापना, तत्कालीन स्थिति, परम पूज्य डॉक्टर जी द्वारा किया गया इतिहास का विश्लेषण किया जाता है। संघ व्यक्ति निर्माण का कार्य, दैनंदिनी शाखा पद्धति, विविध क्षेत्रों में चल रहे कार्य, सारे समाज से सहकार्य और सहभाग की अपेक्षा समाज से रखता है ।

मकर संक्रांति :

अपने देश में अलग-अलग स्थानों पर भिन्न-भिन्न पद्धतियों से यह उत्सव मनाया जाता है। महाराष्ट्र में इस दिन समाज में सभी आपस में एक दूसरे को तिल-गुड़ खिलाते हैं। इसके पीछे की सामाजिक भावना यह होती है कि तिल की शुद्धता और गुड की मिठास जैसा हमारा भी परस्पर संबंध बने। तिल-गुड़ देते हुए परस्पर' तीळ-गुळ घ्या, गोड गोड़ बोला' कहा जाता है यानी तिल-गुड़ खाइये और सदैव एक दूसरे से मीठा-मीठा बोलिये। इस संवाद के पीछे एक सामाजिक आशय छुपा हुआ है। इन सारी बातों को ध्यान में रखकर ही संघ ने अपने छः उत्सवों में मकर संक्रांति उत्सव को भी स्थान दिया है। उत्तर भारत में संक्रांति के दिन दाल चावल की खिचड़ी बनाई जाती है। इस दिन दान करने की प्रथा भी चलन में है। कई स्थानों पर संक्रांति को खिचड़ी संक्रांति भी कहा जाता है। बंगाल में 'तिलूवा' नाम का खाद्य पदार्थ बनाया जाता है जो कि तिल और खांड के मिश्रण से बनाया जाता है। चावल और चीनी डालकर 'पिष्टक' नाम की मिठाई बनाई जाती है। और उसे सब को बांटा जाता है। इसलिए बंगाल में संक्रांति को तीलूवा या

पिष्टक संक्रांति भी कहा जाता है। दक्षिण भारत में इस समय पोंगल उत्सव मनाया जाता है, जो 3 दिनों तक चलता है। पहले दिन इंद्र देवता के लिए होने वाला उत्सव 'इंद्र पोंगल' कहलाता है। दूसरे दिन 'सूर्य पोंगल' और तीसरे दिन किन्क्रांत कहा जाता है। देवी माँ ने किंकर नामक राक्षस का संहार किया था इसलिए किक्रांत। महाराष्ट्र में इस दिन सुगड़ यानी मिट्टी से बनी छोटी-छोटी मटकियों का दान किया जाता है। देवताओं को तिल और चावल अर्पण किया जाता है. साथ ही सौभाग्य बढ़ाने वाली वस्तुओं को बाँटा जाता है। पूरे भारत में अलग-अलग पद्धतियों से यह उत्सव मनाया जाता है लेकिन इसके पीछे की भावना एक ही होती है। मकर संक्रमण उत्सव के नाम में आने वाला संक्रमण शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। संक्रमण या संक्रांति मतलब परिवर्तन इसी परिवर्तन को लाने के लिए संघ ने दैनिक शाखा की कार्य पद्धति स्वीकार की है। शाखा के माध्यम से तैयार हुए स्वयंसेवक स्वाभाविक पद्धति से सभी क्षेत्रों में आवश्यक परिवर्तन लाएँगे, यही संघ की संकल्पना है। आज प्रत्यक्ष में ऐसा होता हुआ हम देख भी रहे हैं।

निष्कर्ष :

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ न केवल एक सामाजिक-सांस्कृतिक संगठन है, बल्कि यह भारत में विचारधारा के संगठित प्रसार का एक प्रभावशाली माध्यम भी है। संघ अपने उत्सवों, प्रतीकों, वेशभूषा, भाषणों और घोषों के माध्यम से न केवल अनुशासन और संगठनात्मक एकता का निर्माण करता है, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय मूल्यों का प्रसार भी करता है। विजयादशमी, मकर संक्रांति, गुरु पूर्णिमा जैसे उत्सवों के माध्यम से संघ विचारों को जीवंत रूप से समाज के हर वर्ग तक पहुँचाता है। यह उत्सव केवल परंपराओं का पालन नहीं हैं, बल्कि एक सामाजिक संचार उपकरण हैं, जो राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक गौरव और एकात्मता की भावना को सुदृढ़ करते हैं। संघ की संचार प्रक्रिया वैचारिक स्पष्टता, भावनात्मक जुड़ाव और संगठनात्मक समर्पण को एक साथ जोड़ती है, जिससे वह समाज में अपनी गहरी स्वीकार्यता स्थापित करता है। इस शोध से यह स्पष्ट होता है कि संघ के उत्सव वैचारिक निर्माण का प्रभावशाली माध्यम हैं, जो जनमानस को एक साझा सांस्कृतिक और राष्ट्रीय दृष्टिकोण से जोड़ते हैं। यह अध्ययन संघ की विचारधारा के सामाजिक संचार के रूप में उत्सवों की भूमिका को रेखांकित करता है, जो राष्ट्र निर्माण में योगदान देते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूचि :

1. *वैद्य, मा.गो. (२०१६). राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का परिचय. विचार विनिमय प्रकाशन, नई दिल्ली.*
2. *आंबेकर, सुनील (२०२१) .राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ स्वर्णिम भारत के दिशा -सूत्र, प्रभात पेपरबैक्स प्रकाशन नई दिल्ली.*
3. *षष्ठ संस्करण,दीपावली (२०२४).विषय बिन्दु ,शरद प्रकाशन,आगरा.*
4. *ठाकुर.नरेन्द्र.(२०२३). राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का दृष्टिकोण.विमर्श प्रकाशन, नई दिल्ली.*
5. *हेबालकर.शरद.(२०२०) .अपने उत्सव.अर्चना प्रकाशन,भोपाल.*
6. *पालकर.नारायण हरी(२०२३).भगवा ध्वज.सुरुचि प्रकाशन,नई दिल्ली.*

उपनिषदों में वर्णित शिक्षा पद्धति और नई तालीम (आनंद निकेतन) की शिक्षा पद्धति के तुलनात्मक अध्ययन

देवेश कुमार दूबे
शोधार्थी, जनसंचार विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र

सार-

शोध पत्र उपनिषदों में वर्णित शिक्षा पद्धति एवं नई तालीम (आनंद निकेतन) की शिक्षा पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। उपनिषद शिक्षा का उद्देश्य केवल धार्मिक ग्रंथों का पाठ करना नहीं था, बल्कि गुरु-शिष्य परंपरा, श्रवण, मनन और निदिध्यासन आधारित शिक्षण पद्धतियों को अपनाते हुए आध्यात्मिक ज्ञान, आत्म-बोध और मोक्ष की प्राप्ति करना इसका मूल उद्देश्य था। यह शिक्षा जीवन पर्यंत चलने वाली चिंतनशील, अनुभवजन्य प्रक्रिया है। वहीं जब हम नई तालीम की शिक्षा पद्धति को देखते हैं तो वह महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन पर आधारित है, जो कौशल आधारित, प्रयोगात्मक और व्यवहारिक शिक्षा प्रदान करती है। यह शिक्षा बालकों के सर्वांगीण विकास, स्वावलंबन, सामाजिक समरसता एवं आर्थिक सशक्तिकरण के लिए प्रयुक्त है। नई तालीम में शिक्षा क्रियात्मक समूह कार्यों, स्थानीय शिल्पों, कृषि तथा भाषा जैसे विषयों से जुड़ी होती है, जिससे बच्चों को व्यावहारिक जीवन के लिए तैयार किया जाता है। दोनों शिक्षा पद्धतियों में शिक्षक की भूमिका मार्गदर्शक और प्रेरक की है, पर उनकी प्रक्रिया व उद्देश्य में भिन्नता स्पष्ट है। उपनिषदों की शिक्षा आध्यात्मिकता व दर्शन पर केन्द्रित है, जबकि नई तालीम सामाजिक-आर्थिक विकास तथा रोजगार से जुड़ी शिक्षा प्रदान करती है। यह शोध पत्र दोनों शिक्षा प्रणालियों के बीच सामंजस्य स्थापित करते हुए समकालीन भारतीय शिक्षा में उनकी उपयोगिता पर प्रकाश डालता है।

बीज-शब्द : उपनिषद्, नयी तालीम, शिक्षा पद्धति, शिक्षण विधि, शिक्षा दर्शन।

प्रस्तावना-

भारत की प्राचीनतम् शिक्षा पद्धति उपनिषदों में शिक्षा-दर्शन के रूप में है, उपनिषदों में शिक्षा का उद्देश्य केवल सूचना या जानकारी देना, कौशल सिखाना अथवा व्यावसायिक योग्यता विकसित करना नहीं

था, बल्कि मानवीय चेतना, आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान और समग्र व्यक्तित्व का निर्माण करना था। उपनिषदों में शिक्षण के लिए 'स्व-अन्वेषण विधि, कथा-कथन विधि, संवाद विधि और प्रत्यक्ष अनुभव पद्धति' जैसी विभिन्न विधियाँ थीं, जो जिज्ञासा, चिन्तन और अनुभव को प्राथमिकता देती थीं। तैत्तिरीय उपनिषद के शिक्षा वल्ली के एकादश अनुवाक का उपदेश है – ***"स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितत्यम्।"*** अर्थात् स्वाध्याय और प्रवचन से प्रमाद नहीं करना चाहिए। वहीं नई तालीम (आनंद निकेतन) की शिक्षा पद्धति गांधीजी की विचारधारा पर आधारित है, जिसका उद्देश्य *"सिर, हृदय और हाथ यानी बौद्धिक, भावनात्मक और व्यावहारिक पक्ष का समन्वित विकास है"*।(**जोशी,&मिथलेश.(2020).पृ.स.69**) आनंद निकेतन में शिक्षा केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित नहीं, बल्कि जीवन और समुदाय के साथ जुड़ती है। वहाँ बच्चे स्वयं विद्यालय की व्यवस्था करते हैं, रसोई, कताई, बागवानी आदि कार्यों में व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस शिक्षा पद्धति में 'करके सीखना' और 'स्वालंबन' को मूल मान्यता दी गई है। उपनिषदों में वर्णित शिक्षा पद्धति और नई तालीम (आनंद निकेतन) की शिक्षा पद्धति, भारतीय शैक्षिक विचारधारा के दो प्रभावशाली स्रोत हैं, जिनका अपना ऐतिहासिक, दार्शनिक और व्यावहारिक महत्व है। इन दोनों प्रणालियों विस्तृत विवेचना आगे प्रस्तुत की जा रही है।

साहित्य पुनरावलोकन

पाण्डेय (2019) लिखते हैं कि "शिक्षा वह है जो किसी की आत्मा को जागा दे, किसी के व्यक्तित्त्व को गरिमा प्रदान कर दे, भीतर के बंदफूल को खिला दे। शिक्षा केवल सूचनाओं की संवाहिका नहीं है। अतीत में अर्जित सूचनाओं को मनुष्य के भीतर भरकर शिक्षा अपने दयितत्व से मुक्त नहीं हो सकती है। मनुष्य के भीतर के ज्ञान-बीज को अंकुरित पल्लवित, पुष्पित और फलित कर देना ही शिक्षा का असली मंतव्य है"।

गढ़वाल (2013) लिखते हैं कि "गाँधी जी ने बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मिक जीवन से जोड़ कर सत्य एवं सद्गुणों के विकास पर बल दिया है। जिससे व्यक्ति के अंदर नैतिकता और सदाचार का विकास हो एवं व्यक्ति के चरित्र का निर्माण हो सके। क्योंकि चरित्र ही मानवता कि सर्वश्रेष्ठ पूंजी है और यही मानवता का सर्वोत्कृष्ठ उद्देश्य है। आगे वे लिखते हैं कि गाँधी जी चाहते थे की शिक्षा ऐसी हो जो मनुष्य को जीवन चलाने हेतु रोजगार दे सके इस लिए वे बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम में कौशल युक्त प्रशिक्षण की शिक्षा को शामिल किया था"।

कुण्डलिया (2023) लिखती हैं कि "बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य सम्पूर्ण मानव का निर्माण करना है, जिससे उसका समग्र व्यक्तित्व विकसित हो सके। इसीलिए सच्ची शिक्षा समग्र या सम्पूर्ण शिक्षण को ही

कहना चाहिए, जिससे मानव-व्यक्तित्त्व के अंतर्निहित आध्यात्मिक, बौद्धिक सभी गुणों का विकास हो सके। जिससे वे शारीरिक, मानसिक और हार्दिक तीनों तरह से समग्र रूप से संतुलित हो सकें"।

गुप्त (2008) लिखते हैं कि "गाँधी जी भारतीय आधायत्मिक ग्रन्थ उपनिषद् से बहुत प्रभावित थे। वे लिखते हैं कि उपनिषदों के एक मुख्य सिद्धांत मानव जाति की एकता है। उपनिषदों में कहा गया है कि हर प्राण में परमात्मा का अंश है। 'तत्त्वमसि' उपनिषदों का एक महावाक्य है गाँधी जी अद्वैत के समर्थक हैं। वे मानव जाति की एकता के समर्थक है"।

कुकरेती (2020) कहते हैं कि "गाँधी जी ने वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पन्न शिक्षा-व्यवस्था के साथ आध्यात्मिक मूल्यों से समृद्ध शिक्षा कि वकालत की थी। यह तभी हो सकता था जब शिक्षा को श्रम से जोड़ा जाता। इसको ध्यान में रखकर 2005 में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेखा में यह केंद्रीय विचार प्रस्तावित किया गया कि सच्चे अर्थ में शिक्षा वही है जो व्यक्ति ओ मानवीय मूल्यों से जोड़े। उसे सहज निर्णय लेने में सक्षम बनाए"।

मिश्र (2017) लिखते हैं कि "गाँधी के लिए शिक्षा सिर्फ अक्षर ज्ञान नहीं है। शिक्षा को वे सच्चरित्रता, कर्तव्य परायणत, निर्भयता, गुण ग्रहण करने और सोचने के अर्थ में बताते हैं। शिक्षा से चित् शांत रहना चाहिए, स्वतंत्र रहने की क्षमता का विकास होना चाहिए। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे जीवन निर्वाह हो सके"।

जोशी,&मिथलेश (2020). लिखते हैं कि "गाँधी जी शिक्षा को समाज के करीब लाने के पक्षधर थे। वे नयी तालीम के अंतर्गत शिक्षा को मुफ्त एवं अनिवार्य बनाने के लिए ज़ोर दे रहे थे जिससे इस शिक्षा के जरिए शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास हो सके। नयी तालीम में व्यक्तित्त्व के सर्वांगीण विकास-बौद्धिक, भावनात्मक एवं नैतिक-पर बल दिया गया है"।

गाँधी (2008). मेरे सपनों के भारत पुस्तक में नयी तालीम के बारे में लिखते हैं कि "मेरी राय में तो इस देश में, जहाँ लाखों आदमी भूखों मरते हैं, बुद्धिपूर्वक किया जाने वाला श्रम ही सच्ची प्राथमिक शिक्षा या प्रौढ़शिक्षा है। अक्षर-ज्ञान हाथ की शिक्षा के बाद आना चाहिए। हाथ से काम करने की क्षमता-हस्त-कौशल ही तो वह चीज है, जो मनुष्य को पशु से अलग करती है"।

द्विवेदी (2014) लिखते हैं कि "भारतीय परंपरा के अनुसार उपनिषदें नैतिक आदर्शों कि जननी है। इनके नैतिक उपदेश इतने दिव्य हैं कि जिनके द्वारा मनुष्य शाश्वत सुख एवं विमल शांति प्राप्त कर सकते हैं। उपनिषदें मानव-जीवन कि नैतिक शिक्षा कि बार-बार प्रेरणा देती हैं कि उठो जागो और बड़ों से शिक्षा ग्रहण करो"।

पांडेय (2019) लिखते हैं कि "वैदिक शिक्षा पद्धति का प्रमुख उद्देश्य मानव की प्राकृतिक शक्तियों को सुविकसित कर उसे जीवन की समस्याओं को सुलझाने में समर्थ बनाना था। तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली स्मृति, धारणा और बोध तीनों पर आश्रित थी। उपनिषदों में संवाद-शैली के साथ ही प्रायोगिक विधियाँ भी शिक्षा-प्रक्रिया में व्यवहृत दिखलाई गई हैं"।

सिद्धांतालंकार (2018) बताते हैं कि "वैदिक कालीन के शिक्षा-शास्त्रियों ने 'बालक' को शिक्षा का केंद्र माना था। ये बालक जिस स्थान पर शिक्षा ग्रहण करते थे उसे शिक्षणालय, 'कुल' या 'परिवार' का नाम दिया था। यहाँ पर बालक को इस प्रकार सुरक्षित, संभालकर रखा जाता था जैसे- माता पुत्र को अपने गर्भ में सुरक्षित, संभालकर रखती थी। आगे वे बताते हैं कि वैदिक शिक्षा का लक्ष्य सिर्फ किताबें पढ़ा देना नहीं, पुस्तकों के अध्ययन के साथ-साथ जीवन के आध्यात्मिक दृष्टिकोण, कुल-भावना तथा समानता कि भावना भी मानव के सम्मुख रखना है"।

शोध उद्देश्य

- उपनिषदों की शिक्षा पद्धति के दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्वों का अध्ययन।
- नई तालीम (आनंद निकेतन) के शिक्षा सिद्धांत और कार्यप्रणाली का विश्लेषण।
- दोनों पद्धतियों के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में समानताएँ और भिन्नताएँ खोजना।
- आधुनिक शिक्षा में उपनिषद और नई तालीम की प्रासंगिकता पर विचार करना।

शोध प्रश्न

- उपनिषदों की शिक्षा पद्धति के प्रमुख दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्व क्या हैं?
- नई तालीम (आनंद निकेतन) की शिक्षा पद्धति के मुख्य सिद्धांत और कार्यप्रणाली क्या हैं?
- उपनिषद और नई तालीम की शिक्षा पद्धतियों में सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों के आधार पर कौन-कौन सी समानताएँ और भिन्नताएँ हैं?
- समकालीन भारतीय शिक्षा में उपनिषद और नई तालीम की पद्धतियों की प्रासंगिकता किस प्रकार है?

शोध प्रविधि- प्रस्तुत शोध पत्र तुलनात्मक शोध पर आधारित है। इस पत्र में गुणात्मक अनुसन्धान विधि का प्रयोग किया गया है। शोध की प्रकृति वर्णात्मक है। प्रस्तुत शोध कार्य को मूर्तरूप प्रदान करने के लिए तथ्य और आंकड़ों के संकलन की निर्भरता द्वितीयक स्रोतों पर ही निर्भर है, जिसके अंतर्गत उपनिषदों पर लिखी गई टीकाएँ, हिंदी अनुवादित उपनिषद, नयी तालीम सम्बंधित शोध आलेख, पुस्तक एवं शोध पत्र आदि शामिल है। प्राप्त तथ्यों का अंतर्वस्तु विश्लेषण करते हुए प्रसंग आधारित विवरण

प्रस्तुत किया गया है। इस पत्र में दोनों विषयों के विभिन्न संदर्भों के विशेष मुद्दों की तुलना गुणात्मक दृष्टिकोण के साथ की गई है। जिसके माध्यम से दोनों विषयों की समानताओं और अंतरों का व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत किया जा सके।

उपनिषदों में वर्णित शिक्षा पद्धति

प्राचीन काल में सभी शिष्य गुरुकुल में जा कर, जो वेदों और शास्त्रों के ज्ञाता, आत्मज्ञानी, ब्रह्म में लीन गुरू होते थे उनके पास बैठ कर, विनीत भाव से परम तत्त्व का उपदेश सुनते-समझते थें। *"उपनिषद शब्द उप + नि +सद् + क्विप् अर्थात् उप और नि उपसर्गपूर्वक सद् धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर बनता है। इसका अर्थ है-उप =समीप, नि =निश्चय से या निष्ठापूर्वक, सद्= बैठना, अर्थात् तत्त्वज्ञान के लिए गुरू के समीप बैठना"* । **(द्विवेदी, 2014 पृ. स.167)** इसके अर्थ से ही स्पष्ट होता है की गुरू के समीप जा कर आध्यात्मिक ज्ञान, जिज्ञासा, मनन, चिंतन और स्वानुभूति की प्रक्रिया को विकसित कर उसे सुव्यवस्थित रूप में प्राप्त की जाती है। इस प्रकार के तत्त्वज्ञान की प्राप्ति करने की परंपरा को ही 'उपनिषद् परंपरा' कहते हैं उपनिषदों में चिंतनशील व्यक्तियों के विचारों के प्रस्फुटन होने के लिए *"एक ओर ज्ञान मार्ग की उपयोगिता वर्णित है तो दूसरी ओर कर्म मार्ग और भक्ति मार्ग की, एक ओर प्रवृत्ति मार्ग की प्रधानता है तो दूसरी ओर निवृत्ति की।"* **(द्विवेदी, 2014. पृ. स.170)** उपनिषदों की यह विशिष्टता है कि यह सभी विषयों का एक साथ समेकित रूप में प्रस्तुत करता है, जैसे- *"विद्या और अविद्या, संभूति और असंभूति, श्रेय और प्रेय, ज्ञान और कर्म, प्रवृत्ति और निवृत्ति, एकत्व और अनेकत्व, अद्वैत और द्वैत"* **(द्विवेदी, 2014. पृ. स.170)** आदि सिद्धांतों का समन्वय प्रस्तुत करता है। उपनिषदों में ज्ञान को दो भागों में विभक्त किया गया है – परा विद्या (आध्यात्मिक ज्ञान) और अपरा विद्या (विषयों का लौकिक ज्ञान)। परा विद्या का मुख्य उद्देश्य आत्मा और ब्रह्म की पहचान और अनुभूति है। वही अपरा विद्या सुख-दुःख, जन्म-मरण, मोक्ष-बंधन जैसे विषयों की गहन चर्चा वहाँ मिलती है। शिक्षण पद्धतियों में श्रवण, मनन व निदिध्यासन प्रमुख हैं – पहले गुरु से ज्ञान प्राप्त करना, फिर उस पर चिंतन-मनन करना, और अंततः ध्यानपूर्वक अनुभव करना। *"उपनिषदों की शिक्षा का तर्कसंगत सार प्रमे एवं भक्ति रूप दार्शनिक विचार है"*। **(राधाकृष्णन, 2009.पृ. स.113)**

नई तालीम (आनंद निकेतन) की शिक्षा पद्धति

गाँधी के शैक्षिक दर्शन का दृष्टि कोण सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों था। गाँधी ने ज्ञान को साध्य और शिक्षा को साधन माना है, गाँधी जी के अनुसार- *"शिक्षा व्यक्ति को ऐसा ज्ञान प्रदान करती है जो उसके विवेक को जागृत करे। उनके शब्दों में " सम्पूर्ण मनुष्य के निर्माण के लिए शरीर, बुद्धिएवं आत्मा के उचित और एकसरसता की जरूरत होती है और यही शिक्षा की सच्ची व्यवस्था है"*।**(कुण्डलिया, 2023.पृ. स.130)** गाँधी जी मानते थे कि किसी भी शिक्षा की विषय वस्तु ऐसी नहीं होनी चाहिए कि

उससे केवल बौद्धिक विकास हो बल्कि ऐसी हो जिससे बौद्धिक के साथ-साथ आध्यात्मिक और शारीरिक विकास भी संभव हो। आगे वो कहते हैं कि शिक्षा का माध्यम उनकी अपनी मातृभाषा हो, जिससे छात्रों को विषय वस्तु समझने में आसानी हो साथ ही अपनी मातृभाषा के प्रति भाव जागृत कर अपनी भाषा का ज्ञान निर्माण कर सके। *"पाँचवी कक्षा तक बालक- बालिकाओं के लिए एक ही प्रकार का पाठ्यक्रम होना चाहिए। इसके बाद बालिकाओं को समान्य ज्ञान के स्थान पर गृह- विज्ञान पढ़ाना चाहिए"*। **(कुण्डलिया, 2023.पृ. स.131)** गाँधी जी नयी तालीम के माध्यम से व्यक्ति के सर्वांगीण विकास कि बात करते हैं वे कहते हैं कि सिर, हृदय और हाथ इन तीनों को प्रस्तावित कर शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास और दैनिक जीवन से जोड़ने का प्रयास किया जा सकता है। यहाँ हाथ एक श्रमशील भावना का परिचायक है।

तुलनात्मक अध्ययन-

नई तालीम (आनंद निकेतन) की शिक्षा प्रणाली समुदाय व परिवार से जोड़ती है। जबकि 'गुरुकुल' प्रणाली में विद्यार्थी, गुरु के परिवार का हिस्सा बनते थे। नयी तालीम में विद्यार्थियों मे सर्वांगीण विकास, सामाजिक चेतना, व्यवहारिक कौशल और स्वावलंबन की भावना के विकास पर केंद्रित है। गुरुकुल में शिष्य गुरु के मुख से वैदिक ग्रंथों के गूढ़ रहस्य को श्रवण (ध्यानपूर्वक सुनना), मनन (चिंतन करना), और निदिध्यासन (गहन ध्यान करना) के माध्यम से जानते और समझते थे। नयी तालीम स्थानीय जीवन से जुड़े कृषि, बुनाई, कताई, गृहकार्य, विज्ञान, गणित, भाषा तथा कला आदि का व्यावहारिक मिश्रण प्रदान करती है। जबकि उपनिषद शिक्षा का पाठ्यक्रम ब्रह्म, आत्मा, तत्वमीमांसा और जीवन मूल्यों का चिंतन करता है। नयी तालीम में विद्यार्थी विद्यालय का दैनिक चक्र, विद्यालय के बाहर परिवार और समुदाय के दैनिक चक्र के साथ संबद्ध रखने की प्रक्रिया से अवगत होते थे। जबकि गुरुकुल में विद्या- अविद्या, संभूति-असंभूति, श्रेय-प्रेय, ज्ञान-कर्म, प्रवृत्ति-निवृत्ति, एकत्व-अनेकत्व, अद्वैत-द्वैत ऐसे अनेक विषयों का समन्वय सिखाया जाया था। नई तालीम में ज्ञान प्राप्त करने की क्रिया प्रायोगिक है जैसे- विद्यार्थी खेत, रसोई, कक्षा और बागवानी हर स्थान पर प्रश्न पूछने, प्रयोग करने और अनुभव प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र हैं। उपनिषदों में आत्म विद्या, आत्म-तत्त्व, ब्रह्मतत्त्व, आत्मा-परमात्मा, ब्रह्म-जगत, पुनर्जन्म, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ऐसे अनेके विषयों पर शिष्यों के मन में जागृत जिज्ञासा का विभिन्न कथावों, दृष्टान्तों, रूपकों और प्रयोगों के माध्यम से शांत करके स्वयं अनुभव करने की प्रेरणा दी जाती थी। आनंद निकेतन में शिक्षक बच्चों को केवल उपदेश देने के बजाय उनके साथ मिलकर कार्य करते हैं, जिससे भावनात्मक और सामाजिक जुड़ाव प्रकट होता है। जबकि उपनिषदिक शिक्षा काल में गुरु-शिष्य संबंध अत्यंत आत्मीय और गूढ़ था। शिक्षक समाज का सर्वोच्च स्थान रखते थे। सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव की दृष्टि से, उपनिषद शिक्षा नैतिकता और आत्मिक उन्नति के लिए मूल आधार है, जबकि नयी तालीम

 ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

बेरोजगारी और सामाजिक विषमताओं को कम कर रोजगार तथा सामाजिक समरसता में सकारात्मक भूमिका निभाती है। गाँधीजी का कथन है, ज्ञान सिर्फ बुद्धि से नहीं, हाथों से भी पैदा होता है जबकि उपनिषद में व्यक्ति ज्ञान होने पर कर्म-बंधन से मुक्त हो पाता है। आनंद निकेतन की शिक्षा जीवन का हिस्सा बनती है। उपनिषद शिक्षा जीवनपर्यंत चलने वाली आंतरिक, चिंतनशील प्रक्रिया है। दोनों पद्धतियों में शिक्षा की प्रक्रिया अजीवन चलती रहने वाली प्रक्रिया हैं। दोनों प्रणालियाँ अपने-अपने काल में शिक्षा के उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करती हैं, उपनिषदों की आध्यात्मिक गहराई और नई तालीम की व्यवहारिक प्रासंगिकता के आधार पर ये भारतीय शिक्षा दर्शन की धरोहर हैं। यह तुलनात्मक विश्लेषण शिक्षा के आध्यात्मिक, दार्शनिक, व्यवहारिक और सामाजिक-आर्थिक पहलुओं का व्यापक दृष्टिकोण देता है। यह दोनों पद्धतियों के सार्थक समन्वय से आधुनिक शिक्षा को समृद्ध करने का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

विषय	उपनिषदों की शिक्षा पद्धति	नई तालीम की शिक्षा पद्धति
शिक्षा का उद्देश्य	आत्म-ज्ञान, ब्रह्मज्ञान, चरित्र निर्माण और मोक्ष की प्राप्ति	सर्वांगीण विकास और स्वावलंबन और सामाजिक चेतना पर जोर
शिक्षा का माध्यम	मौखिक, व्यक्तिगत संवाद और गुरु-शिष्य संवाद	व्यावहारिक और शारीरिक श्रम और सामुदायिक सेवा पर आधारित
पाठ्यक्रम	ब्रह्म ज्ञान, तत्वमीमांसा, नैतिक शिक्षा इत्यादि	कृषि, शिल्प, गणित, विज्ञान, भाषाएँ, कला इत्यादि
शिक्षण विधि	श्रवण, मनन, निदिध्यासन, प्रश्नोत्तर, प्रतीकात्मक	प्रयोगात्मक, संवादात्मक, समूह कार्य, शिल्प आधारित
शिक्षा का स्वरूप	जीवनपर्यंत जारी, अनुभवात्मक, चिंतनशील	व्यावहारिक, क्रिया-केंद्रित, समुदायिक
गुरु-शिष्य संबंध	अत्यधिक सम्मान और समर्पण	सामूहिक शिक्षा और सहयोग पर आधारित
भाषा का प्रयोग	संस्कृत भाषा में मुख्य रूप से शिक्षा	मातृभाषा में शिक्षा की अनिवार्यता
आध्यात्मिकता	आत्मा और ब्रह्म के रहस्यों की खोज	नैतिकता, सत्य, और अहिंसा का पालन
शारीरिक श्रम	श्रम का कोई विशेष स्थान नहीं	श्रम और उत्पादन शिक्षा का अभिन्न अंग

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

आर्थिक पहलू	आर्थिक स्वावलंबन पर जोर नहीं	आर्थिक स्वावलंबन और व्यावसायिक शिक्षा पर बल
सामाजिक जागरूकता	व्यक्तिगत मुक्ति पर जोर	समाज सेवा और सामुदायिक जीवन पर बल

निष्कर्ष

उपनिषदों की शिक्षा पद्धति और गांधीजी की नई तालीम, दोनों का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति का समग्र विकास और उसे समाज के प्रति उत्तरदायी बनाना था। हालाँकि, उपनिषदों में जहां शिक्षा का केंद्र आत्मज्ञान और मोक्ष था, वहीं नई तालीम का उद्देश्य व्यावहारिक जीवन के लिए तैयार करना और समाज के विकास में योगदान देना था। दोनों पद्धतियों में व्यक्तित्व निर्माण, नैतिकता, और सत्य की खोज को महत्वपूर्ण माना गया, लेकिन नई तालीम में श्रम, आत्मनिर्भरता और सामाजिक सेवा पर अधिक जोर दिया गया। गांधीजी ने उपनिषदों की आध्यात्मिक दृष्टि को अपने शिक्षा दर्शन में प्रयुक्त करके उसे आधुनिक और व्यावहारिक रूप प्रदान करने का प्रयास किया है। जिससे शिक्षा केवल आध्यात्मिक न रहकर, समाज और जीवन के सभी पहलुओं में उपयोगी सिद्ध हो सके। उपनिषदों की शिक्षा पद्धति और महात्मा गांधी की नई तालीम, दोनों ही शिक्षा प्रणालियाँ अपने-अपने समय और संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण रही हैं। दोनों प्रणालियों में शिक्षा के माध्यम और उद्देश्य में भिन्नताएँ जरूर रही हैं लेकिन दोनों शिक्षाओं का मुख्य उद्देश्य मानव कल्याण और समाज की प्रगति में सहायक बनना था। यह अध्ययन दर्शाता है कि उपनिषदों की शिक्षा पद्धति ने मानव जीवन के उच्चतम लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मार्गदर्शन प्रदान किया, जबकि नई तालीम ने शिक्षा को समाज के हर वर्ग के लिए सुलभ और उपयोगी बनाने का प्रयास किया। दोनों प्रणालियाँ हमें शिक्षा के विभिन्न आयामों को समझने और आज की शिक्षा प्रणाली को और अधिक प्रभावी बनाने की प्रेरणा देती हैं। क्योंकि ये दोनों ही पद्धतियाँ जीवन के लिए शिक्षा पर बल देती हैं, न कि केवल पुस्तकीय ज्ञान पर।

संदर्भ-

1. *पाण्डेय,दुर्गादत्त. (2019). गाँधी दर्शन के मूल बिंदु. इलाहबाद: शेखर प्रकाशन.पृ.स.253.*
2. *गढ़वाल, शिखा. (2013). वैश्विकरण, मानवाधिकार और गाँधी. जयपुर: लिट्रेरी सर्किल. पृ.स.122.*
3. *कुण्डलिया, वंदना. (2023). गाँधी विचार दर्शन. दिल्ली: कल्पना प्रकाशन. पृ.स.127.*
4. *गुप्त, विश्व मोहन & गुप्त, मोहनी. (2008). महात्मा गाँधी व्यक्ति और विचार. नई दिल्ली:राधा पब्लिकेशन. पृ.स.78-79*

5. कुकरेती,हेमंत. (2020). गाँधी-दर्शन आलोचनात्मक अध्ययन. दिल्ली: राधा पब्लिकेशन. पृ.स.102.
6. मिश्र,अर्जुन. (2017). गाँधी : एक अध्ययन. नई दिल्ली : राज पब्लिकेशन्स. पृ.स.222
7. जोशी, शंभू. & मिथलेश. (2020). गाँधी-दृष्टि के विविध आयाम. नई दिल्ली: राजकमल. पृ.स.68-69.
8. गाँधी, महात्मा. (2008). मेरे सपनों का भारत. दिल्ली: राजपाल. पृ.स.156.
9. द्विवेदी,पारसनाथ. (2014). वैदिक साहित्य का इतिहास. वाराणसी : चौखंभा सुर भारती प्रकाशन. पृ.स.171.
10. पांडेय, ओम प्रकाश. (2019). वैदिक वङ्ग्मय का परिशीलन. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान. पृ.स. 408.
11. सिद्धांतालंकार, सत्यव्रत.(2018). वैदिक विचार धारा का वैज्ञानिक आधार. दिल्ली: विजयकुमार गोविंदराम हसानन्द. पृ.स.309-312.

भारत के समावेशी विकास में अनुवाद का योगदान

डॉ. अनवर अहमद सिद्दीक़ी
संयोजक : अनुवाद पाठ्यक्रम, दूर शिक्षा निदेशालय,
महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र

शोध सार :

भारत के समावेशी विकास में अनुवाद की उपायदेता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अनुवाद की परंपरा सुदीर्घ और विस्तृत पैमाने पर देखी जा सकती है। वैश्विक पटल पर दृष्टिपात किया जाय तो ऐसा कहना समीचीन होगा कि भारत के समावेशी विकास में अनुवाद के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। वास्तव में समावेशी विकास में दो शब्द निहित है- पहला समावेशी शब्द है और दूसरा विकास शब्द है। समावेशी शब्द की परिभाषा शब्दकोश के अनुसार- 'बस ऐसी चीज़ है, जो किसी भी व्यक्ति, भाग या समूह को बाहर नहीं छोड़ती।' वह समावेशी कहलाती है। विकास शब्द से आशय बढ़ने की क्रिया या प्रक्रिया, तरीक़ा या बढ़ना जिसे क्रमिक वृद्धि भी कहा जा सकता है वह वास्तव में विकास कहलाता है। अमूमन समावेशी विकास से अभिप्राय उस आर्थिक विकास से है, जो रोज़गार के अवसर प्रदान करता है और निर्धनता को कम करता है, वही समावेशी विकास कहलाता है। कहने का तात्पर्य वंचित वर्ग को बुनियादी स्वास्थ्य और शिक्षा सेवाओं तक पहुँच प्राप्त हो। समावेशी विकास में समावेशी शिक्षा की भी भूमिका महत्वपूर्ण है। समावेशी शिक्षा जिसे अंग्रेज़ी में इंक्लूसिव एजुकेशन (Inclusive education) कहा जाता है। इसी वजह से आज भारत के समावेशी विकास में अनुवाद की भूमिका बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। अनुवाद भारत की विविध भाषाओं और संस्कृतियों को परस्पर एक साथ जोड़ने में सहायता प्रदान करता है, जिससे भारत के समावेशी विकास को प्रोत्साहन प्राप्त होकर बढ़ोत्तरी मिलती है।

बीज शब्द : भारत, समावेशी विकास, अनुवाद, उपादेयता और योगदान

विषय प्रवेश :

साधारणतः समावेशी शिक्षा से तात्पर्य एक ऐसी शिक्षा प्रणाली से है, जिसमें एक सामान्य विद्यार्थी एक दिव्यांग विद्यार्थी के साथ विद्यालय में अधिकतर समय व्यतीत करता है। आज समावेशी शिक्षा के फलस्वरूप अनुवाद के क्षेत्र में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में आज

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

अनुवाद केवल एक उपकरण के रूप में सीमित न होकर एक वृहत पटल के रूप में स्थापित हो गया है। बल्कि "आज अनुवाद एक स्वतंत्र विषय एवं महत्वपूर्ण विधा के रूप में न केवल अपना विशेष स्थान बना चुका है बल्कि उसका व्यवस्थित ढंग से उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा है।"**1** इसी वजह से भारत के समावेशी विकास में अनुवाद की महत्ता को कमतर आँका नहीं जा सकता। भारत के समावेशी विकास में अनुवाद की भूमिका पहले से बहुत अधिक महत्वपूर्ण होती जा रही है। अनुवाद भारत की विविध भाषाओं और संस्कृतियों को परस्पर एक साथ जोड़ने में सहायता प्रदान करता है, जिससे कि भारत के समावेशी विकास को आशातीत वृद्धि होने में सहायता मिलती है।

भारत के समावेशी विकास में अनुवाद का योगदान

- भाषाई अवरोधों को दूर करना : अनुवाद भारत की विभिन्न भाषाओं में अवरोधों को दूर करने में सहायता प्रदान करता है, जिससे कि लोगों को परस्पर आपस में एक दूसरे के साथ संवाद करने में सुविधा प्राप्त हो सकें।
- सांस्कृतिक आदान-प्रदान : अनुवाद भारत की विभिन्न संस्कृतियों के मध्य आदान-प्रदान को बढ़ावा देता है, जिससे कि लोगों को परस्पर आपस में एक दूसरे की संस्कृति के बारे में जानने और समझने में सुविधा प्राप्त होती है।
- शिक्षा और ज्ञान का प्रसार : अनुवाद शिक्षा और ज्ञान के प्रसार में सहायता प्रदान करता है, जिससे लोगों को विभिन्न विषयों के संदर्भ में परस्पर आपस में एक दूसरे को जानने और समझने में बेहतर सहायता प्राप्त होती है।
- आर्थिक विकास : अनुवाद आर्थिक विकास में सहायता प्रदान करता है, जिससे व्यवसायों और उद्योगों को विभिन्न भाषाओं में संवाद और विनिमय करने में रोज़गार जैसी सेवाओं के माध्यम से सरल व सहज सुविधा प्राप्त होती है।
- सामाजिक एकता : अनुवाद सामाजिक एकता को स्थापित करने का महती कार्य करता है, जिससे कि लोगों को परस्पर एक दूसरे के साथ आपसी संबंध स्थापित करने में अधिक पैमाने पर सहायता प्राप्त होती है।

उपर्युक्त आधार पर निश्चय ही यह कहा जा सकता है कि आज अनुवाद भारत के समावेशी विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में पूर्णतः सक्षम है।

भारत के समावेशी विकास में अनुवाद की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। अनुवाद भारत के विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों के मध्य संचार और समझ को बढ़ावा देने में सहायता प्रदान करता है, जिससे समावेशी विकास को बढ़ावा मिलता है। इस संदर्भ मे कहा जा सकता है कि "अनुवाद का विषय आज

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

अपने सैद्धांतिक संदर्भ में बहुआयामी और प्रयोजन मे बहुमुखी बन चुका है।"**2** इसके लिए हमें यह देखना होगा कि अनुवाद किस तरह विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के मध्य सेतु का काम करता है। "वस्तुतः अनुवाद उतना ही प्राचीन हैं जितनी भाषा। वह मनुष्य जाति के पारस्परिक आदान-प्रदान का सशक्त माध्यम है।"**3** अनुवाद के माध्यम से हम विभिन्न भाषाओं में लिखे गए ज्ञान, साहित्य, और विचारों को एक दूसरे के साथ बाँट सकते हैं। अनुवाद द्वारा ही भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देश में, अनुवाद की उपयोगिता और महत्ता भी ज्यादा बढ़ जाती है। अतः अनुवाद के माध्यम से हम विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को एक दूसरे के साथ जोड़कर रखने में सहायता कर सकते हैं, जिससे परस्पर एक दूसरे के मध्य सामाजिक एकता और आपसी समझ उत्पन्न होने में अधिकाधिक सहायता प्राप्त हो सकें।

अनुवाद के मुख्य उद्देश्य :

- अनुवाद का पहला उद्देश्य यह है कि दूसरी अन्य भाषा में रचे गए साहित्य से अपनी भाषा के साहित्य में अधिकाधिक मात्रा में समृद्ध करना, जिससे कि अनुवाद के माध्यम से हम विभिन्न भाषाओं के साहित्य को अपनी भाषा में सहज और सुलभ कर सकते हैं।
- अनुवाद का दूसरा उद्देश्य यह है कि दूसरी भाषाओं की शैलियों, मुहावरों, दार्शनिक तथ्यों, वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान को प्राप्त करना जिससे अनुवाद के माध्यम से हम विभिन्न क्षेत्रों के ज्ञान को एक दूसरे के साथ आसानी के साथ बाँट सकते हैं।
- अनुवाद का उद्देश्य यह भी है कि परस्पर एक दूसरे के विचारों का विनिमय करना। जिसे अनुवाद के माध्यम से विभिन्न विचारों को एक दूसरे के साथ शेयर कर सकते हैं।

अतः उपर्युक्त बिंदुओं के आधार पर कहा जा सकता है कि अनुवाद भारत के समावेशी विकास में अनुवाद एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकता है।

जैसा कि उपर्युक्त विवेचन में देखा गया है कि भारत के समावेशी विकास में अनुवाद का महत्त्व बहुत अधिक पैमाने पर सिद्ध हुआ है। अनुवाद भारत के विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों के मध्य संचार और समझ को बढ़ावा देने में सहायता प्रदान करता है, जिससे भारत के समावेशी विकास को बढ़ावा देने में अधिक पैमाने पर सहायता प्राप्त हो सकती है।

भारत के समावेशी विकास में अनुवाद के महत्त्व :

- भाषाई विविधता : भारत में विभिन्न भाषाएं बोली और कही जाती हैं, जो संचार और समझ में अवरोध उत्पन्न कर सकती हैं। अतः अनुवाद इन बाधाओं और अवरोधों को दूर करने में सहायता प्रदान करता है।

- सांस्कृतिक आदान-प्रदान : अनुवाद सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देता है, जिससे विभिन्न समुदायों के मध्य परस्पर आपसी सौहार्द, समझ और सहयोग में वृद्धि होती है।
- शिक्षा और ज्ञान : अनुवाद शिक्षा और ज्ञान को बढ़ावा देने में सहायता प्रदान करता है, जिससे विभिन्न भाषा-भाषी समुदायों के लोगों के मध्य शिक्षा और ज्ञान की पहुँच बनाने में सहायता प्राप्त होती है।
- आर्थिक विकास : अनुवाद के माध्यम से आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में सहायता मिलती है, जिससे विभिन्न समुदायों के लोगों को आर्थिक अवसरों के माध्यम से रोज़गार के अवसरों और सेवाओं से जुड़ने आदि में अधिक सहायता प्राप्त हो सकती है।
- सामाजिक न्याय और समानता : अनुवाद सामाजिक न्याय और समानता को बढ़ावा देने में सहायता प्रदान करता है, जिससे विभिन्न समुदायों के लोगों के मध्य सामाजिक न्याय और समानता तक पहुँच पाने में सहायता प्रदान हो सकती है।

उपर्युक्त तत्वों के आधार पर भारत के समावेशी विकास में अनुवाद का महत्त्व बहुत अधिक है। वास्तव में देखा जाय तो "अनुवाद आज व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकता बन गया है।"**4** निस्संदेह अनुवाद वास्तव में आज सामाजिक आवश्यकता विकल्प होने की वजह से भारत के विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों के मध्य संचार की समझ में वृद्धि करने में विशेष सहायता करता है, जिससे भारत के समावेशी विकास को बढ़ावा मिल है।

भारत के समावेशी विकास की यात्रा

भारतीय परिप्रेक्ष्य में अनुवाद के इतिहास पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि अनुवाद प्रारंभिक दौर में भी अनुवाद पर बल दिये जाने के बावजूद भी काफ़ी संतोषजनक स्थिति में न रहा। लेकिन मुगलकालीन दौर में दाराशिकोह के द्वारा लगभग 52 उपनिषदों का अनुवाद "सीर-ए" अकबर में किए जाने का उल्लेख देखने को मिलता है। दाराशिकोह के अनुवाद कर्म को इस्लाम और वेदांत के एकीकरण में महत्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है। दाराशिकोह ने सर्वप्रथम संस्कृत का अध्ययन किया तत्पश्चात उपनिषद, गीता और योग वशिष्ठ का फ़ारसी भाषा में अनुवाद किया। यह भी उल्लेखनीय है कि इस महती कार्य हेतु बनारस के पंडितों की सहायता ली गई। उसी तरह प्राचीन समय में विस्तृत पैमाने पर पवित्र बाइबल के अनुवाद किए गए। जिसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। बावजूद इसके अनुवाद कर्म को मुख्य धारा से पृथक दोयम दर्जे का माना जाता रहा है। ठीक उसी तरह अनुवादक की स्थिति भी आरंभिक दौर में उतनी सुदृढ़ दिखाई नहीं देती बल्कि अनुवाद के इतिहास पर

गौर करने पर यह दिखाई देगा कि अनुवादक को एक सज़ा-ए-आफ़ता के रूप में अपनी भूमिका एवं दायित्वों का निर्वहन करना पड़ता था।

कालांतर अनुवाद की स्थिति में शनै-शनै सुधार होता गया और आज पश्चिम में अनुवाद अध्ययन का क्षेत्र बेहद विस्तृत पैमाने में हो रहा है। वहाँ अब यह एक स्वतंत्र अनुशासन के रूप में विकसित हो गया है। लेकिन आज अनुवाद न केवल भारतीय परिप्रेक्ष्य में ही स्थापित हो पाया है बल्कि अनुवाद ने आज वैश्विक परिदृश्य में अपनी महती भूमिका और उपस्थिति को दर्ज करने में उल्लेखनीय सफलता अर्जित की है। दरअसल "अनुवाद प्राचीन और अत्यंत महत्वपूर्ण भाषाई प्रक्रिया है।"**5** प्राचीन और अत्यंत महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ आज वर्तमान समय में भी भारत के समावेशी विकास में अनुवाद के योगदान को नाना तरीकों से देखा जा रहा है। अनुवाद के द्वारा भारत की भाषाओं और संस्कृतियों की समृद्धि को संरक्षित एवं सम्मानित किया जा रहा है। अनुवाद के माध्यम से भारतीय भाषाओं के मध्य आदान-प्रदान की प्रक्रिया तेज़ी के साथ हो रही है और अखंडता और एकीकरण की भावना उत्पन्न होने में सहायता मिल रही है। भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य और ज्ञान-विज्ञान के विकास में अनुवाद का विशेष भूमिका रही है।

अनुवाद के माध्यम से भारतीय भाषाओं में निरंतर किए जा रहे कार्यों का परिचय और जानकारी प्राप्त हो रही है। भारत के समावेशी विकास में अनुवाद के क्षेत्र में रोजगार की अपार संभावनाएं परिलक्षित हो रही है भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य और ज्ञान-विज्ञान के विकास में अनुवाद का विशेष योगदान रहा है। अनुवाद के माध्यम से भारतीय भाषाओं में किए जा रहे कार्यों का परिचय मिलता है। यहीं वजह है कि "अनुवाद का कार्य साधारण कार्य न होकर एक असाधारण कार्य के रूप में देखा जाना चाहिए।"**6** अनुवाद के इस असाधारण कार्य के परिणस्वरूप भूमंडलीकरण की वजह से तेज़ी से बदलती दुनिया में अनुवाद रोज़गार का एक प्रमुख क्षेत्र बन कर हमारे सामने उभरकर आया है। दरअसल अनुवाद ही एक सेतु है, जो कि दो देशों को परस्पर एक दूसरे से जोड़ता है, जिससे उन देशों की भाषा और संस्कृति का आपस में सम्मिलन होता है। इस संदर्भ में प्रो. गोपीनाथन जी का कथन उचित प्रतीत होता है कि "अनुवाद एक कला, विज्ञान अथवा शिल्प है, इस प्रश्न का उत्तर देना यद्यपि आसान नहीं हैं"**7** आज अनुवाद ही है, जिसके माध्यम से भारतीय जनमानस में वैज्ञानिक चेतना विकसित होने में सहायता मिल रही है।

निष्कर्ष :

भारत जैसे देश के समावेशी विकास के लिए भारतीय जनमानस में वैज्ञानिक चेतना के प्रति अधिक जागरूकता हो। इस दृष्टि से अनुवाद आज स्वावलंबी समाज निर्मित करने में सहायक सिद्ध हो रहा है। अनुवाद से दूसरे देशों की साहित्यिक और सांस्कृतिक निधियों और ज्ञान संपदाओं का आदान-प्रदान होने लगा है। जिससे कि अन्य देशों के साहित्य और संस्कृति की धरोहर की विशिष्टताओं का देशवासियों

को अधिकाधिक ज्ञान हो। अनुवाद से दूसरे देशों के मानदंडों और मूल्यों को क़रीब से जानने में सहायता मिल रही है। अनुवाद से वैश्विक और मानवाधिकार संबंधी मामलों को प्रस्तुत और संप्रेषित किया जाने लगा है। अनुवाद के माध्यम से भारत के समावेशी विकास में शिक्षा के क्षेत्र में आशातीत प्रगति हो रही है। हालांकि अनुवाद को किसी एक परिधि मे देखा नहीं जा सकता है। कोई अनुवाद को कला मानता है, कोई शिल्प मानता है तो कोई विज्ञान लेकिन इससे कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता। कहने का तात्पर्य है कि हर दृष्टि से हर क्षेत्र मेंअनुवाद की अपनी महत्ता यथावत है। अनुवाद के द्वारा संचार माध्यमों को विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में समाचार और सूचनाएं उपलब्ध कराई जा सकने सहजता व सुलभता प्राप्त होने में काफी हद तक सहायता मिल रही है। अनुवाद के द्वारा तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन करने में अधिक सहायता मिल रही है। जिससे कि बहुभाषी साहित्य के प्रति रुझान जागृत होने लगा है। अनुवाद के माध्यम से भारत में रोज़गार के नित नए अवसर भी निर्माण हो रहे हैं। भारत सरकार के कार्यालयों, अर्द्ध सरकारी कार्यालयों, संस्थानों, निगमों आदि में अनुवाद कार्य की आवश्यकता प्रतीत हो रही है, भूमंडलीकरण के परिणाम स्वरूप तेज़ी से बदलती दुनिया में अनुवाद रोज़गार का एक प्रमुख क्षेत्र के रूप में उभरकर सामने आया है। एक दृष्टि से अब अनुवाद एक सेतु की भूमिका निर्वहन कर रहा है, जो वास्तव में दो देशों, उनकी भाषाओं, उनकी संस्कृतियों को परस्पर आपस में जोड़े रखने में सहायता प्रदान करता है। इसलिए मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास में अनुवाद की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अनुवाद का संसार अत्यंत विस्तृत है, जिससे एक साथ सैकड़ों भाषाओं और हज़ारों विषयों में ज्ञान का सतत आदान-प्रदान हो रहा है। चाहे सरकारी दस्तावेजों का अनुवाद हो, विदेशी भाषा की पुस्तकों का अनुवाद हो या विदेशी फिल्मों की डबिंग का कार्य हो, हर जगह अनुवादकों की आवश्यकता महसूस की जा रही है। यदि आप दो या अधिक भाषाओं पर अधिकार रखते हैं तो अनुवाद की दुनिया में आप अच्छा करिअर बना सकते हैं। भारत में विदेशी कंपनियों के बढ़ते कामकाज के कारण अंग्रेज़ी-हिंदी अनुवाद के अलावा अब विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद की मांग तेज़ी के साथ ज़ोर पकड़ने लगी है, जिसमें संगठित और असंगठित दोनों क्षेत्रों में रोज़गार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हो रहे हैं।

संदर्भ :

1. *अनुवाद के विविध आयाम, डॉ. पूरनचंद टंडन, डॉ. हरीश कुमार सेठी, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 11*
2. *अनुवाद सिद्धांत और समस्याएं, डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी, आलेख प्रकशन, दिल्ली, पृ. 7*
3. *3. अनुवाद क्या है, सं. डॉ. भ. ह. राजुरकर, डॉ. राजमल बोरा, (डॉ. कल्याणमल लोढ़ा के लेख से) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 25*
4. *अनुवाद सिद्धांत और समस्याएं, डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी, आलेख प्रकशन, दिल्ली, पृ. 1*
5. *अनुवाद कला : सिद्धांत और प्रयोग, डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 1*
6. *अनुवाद का समकाल, कैप्टन डॉ. मोहसिन ख़ान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 16*
7. *अनुवाद : सिद्धांत और प्रयोग, डॉ. जी. गोपीनाथन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 33*

गांधीजी की बुनियादी शिक्षा: समकालीन प्रासंगिकता

उत्तम आनंदराव केते
शोधार्थी, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग
म.गां.अं.हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सारांश

महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा भारतीय शिक्षा प्रणाली में एक क्रांतिकारी अवधारणा के रूप में उभरी जो कार्य-केंद्रित दृष्टिकोण, आत्मनिर्भरता और समग्र व्यक्तित्व विकास पर आधारित है। यह शिक्षा प्रणाली न केवल साक्षरता को बढ़ावा देने का माध्यम है अपितु ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने, नैतिक मूल्यों को स्थापित करने तथा सामाजिक समानता को सुनिश्चित करने का एक प्रभावी उपकरण भी सिद्ध हुई है। प्रस्तुत शोध आलेख में गांधीजी की बुनियादी शिक्षा की मूल अवधारणा, उसके उद्देश्यों, विशेषताओं, सिद्धांतों, कार्यान्वयन प्रक्रिया, मेरिट्स एवं डेमेरिट्स तथा समकालीन चुनौतियों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न स्रोतों जैसे वर्मा (2021), कुमार (2020) तथा कुमारी (2020) के अध्ययन के पश्चात यह ज्ञात हुआ है कि कोविड-19 महामारी के बाद की शिक्षा व्यवस्था में बुनियादी शिक्षा की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ गई है क्योंकि गांधी जी की बुनियादी शिक्षा व्यावहारिक कौशलों को प्राथमिकता देकर डिजिटल विभाजन जैसी समस्याओं का समाधान प्रदान करती है।

बीज शब्द: बुनियादी शिक्षा, नई तालीम, कार्य-केंद्रित शिक्षा, आत्मनिर्भरता, ग्रामीण विकास, महात्मा गांधी

परिचय

शिक्षा किसी भी समाज की प्रगति का मूल आधार होती है और गांधीजी के अनुसार यह बालक एवं युवक में निहित तिरस्कृत शक्तियों का पूर्ण विकास करने का साधन है। महात्मा गांधी ने अपनी बुनियादी शिक्षा की योजना को एक स्वदेशी मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया जो ब्रिटिश औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली की कटु आलोचना पर आधारित थी। यह योजना मुख्य रूप से 7 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा पर केंद्रित थी जिसमें मातृभाषा को शिक्षण

माध्यम बनाया गया तथा आधारभूत शिल्प जैसे कृषि, चरखा और बुनाई को शिक्षा का केंद्र बिंदु माना गया। भारतीय शिक्षा का इतिहास प्राचीन गुरुकुल परंपरा से समृद्ध रहा है लेकिन औपनिवेशिक काल में मैकाले की शिक्षा नीति ने साक्षरता को मात्र किताबी ज्ञान तक सीमित कर दिया जिसके फलस्वरूप ग्रामीण भारत की अधिकांश आबादी शिक्षा से वंचित रह गई। गांधीजी ने इस प्रणाली को 'भारतीय जीवन में विदेशी तत्व' करार देते हुए बुनियादी शिक्षा को एक वैकल्पिक पथ के रूप में विकसित किया जो जाकिर हुसैन समिति द्वारा संशोधित होकर वर्धा शिक्षा योजना के नाम से प्रसिद्ध हुई। वर्तमान संदर्भ में बुनियादी शिक्षा की प्रासंगिकता अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है क्योंकि यह न केवल व्यावहारिक कौशलों का विकास करती है बल्कि सामाजिक सद्भाव और आत्मनिर्भरता को भी प्रोत्साहित करती है। प्रस्तुत आलेख का प्रमुख उद्देश्य बुनियादी शिक्षा की अवधारणा का गहन विश्लेषण करना, उसके उद्देश्यों एवं विशेषताओं का वर्णन करना, सिद्धांतों का मूल्यांकन करना, कार्यान्वयन एवं मेरिट्स-डेमेरिट्स की चर्चा करना तथा समकालीन प्रासंगिकता का आकलन करना है। शोध पद्धति गुणात्मक है जिसमें द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है।

साहित्य समीक्षा

बुनियादी शिक्षा पर साहित्य अत्यंत समृद्ध है, जिसमें गांधीजी के विचारों को विभिन्न आयामों से विश्लेषित किया गया है। वर्मा (2021) ने 'गांधीजी की कार्य-केंद्रित बुनियादी शिक्षा' में जोर दिया है कि यह शिक्षा शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास को एकीकृत करने वाली प्रणाली है, जहां कार्य और शिक्षा के बीच सामंजस्य स्थापित करके विद्यार्थी को आत्मनिर्भर बनाया जाता है। वर्मा का मानना है कि ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली ने केवल बौद्धिक विकास पर ध्यान केंद्रित किया जबकि बुनियादी शिक्षा समग्र व्यक्तित्व निर्माण पर बल देती है जिससे समाज में सकारात्मक परिवर्तन संभव होता है। कुमार (2020) ने 'गांधीजी की बुनियादी शिक्षा की अवधारणा' में 13 प्रमुख विशेषताओं का विस्तृत उल्लेख किया है जैसे मातृभाषा को माध्यम बनाना तथा नि:शुल्क शिक्षा प्रदान करना और इसे राष्ट्रीय संस्कृति तथा ग्रामीण जीवन से अभिन्न रूप से जोड़ा है। यह शिक्षा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने का एक व्यावहारिक साधन है, जो उत्पादन-आधारित सीखने पर आधारित है। कुमारी (2020) ने अपने लेख 'बुनियादी शिक्षा और गांधीजी के विचार' में जाकिर हुसैन समिति की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया है कि गांधीजी की दृष्टि ब्रिटिश शिक्षा की सीमाओं को पार करने वाली थी जहां शारीरिक श्रम को सम्मान देकर नैतिक मूल्यों का संवर्धन किया जाता है। यह प्रणाली न केवल व्यक्तिगत विकास करती है अपितु सामाजिक न्याय की दिशा में भी योगदान देती है। जाकिर हुसैन (1938) ने योजना को औपचारिक स्वीकृति प्रदान की जबकि रस्किन तथा ड्यूई जैसे पश्चिमी विचारकों के सिद्धांतों से प्रेरणा ली गई। समकालीन अध्ययनों में NCERT (2020) ने बुनियादी शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा नीति

2020 में वोकेशनल शिक्षा के रूप में एकीकृत किया है हालांकि आलोचनाएं जैसे फंडिंग की कमी (शर्मा, 2015) भी मौजूद हैं।

बुनियादी शिक्षा की अवधारणा

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

गांधीजी की बुनियादी शिक्षा की अवधारणा उनके दक्षिण अफ्रीका प्रवास (1893-1914) से प्रेरित हुई जहां उन्होंने श्रम की गरिमा तथा सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को गहराई से समझा। भारत लौटने के बाद उन्होंने 'हिंद स्वराज' (1909) में शिक्षा को स्वराज की आधारशिला के रूप में चित्रित किया जो औपनिवेशिक शिक्षा की किताबी प्रकृति के विरुद्ध एक स्वदेशी विकल्प प्रस्तुत करती है। 1937 में वर्धा सम्मेलन के दौरान यह योजना औपचारिक रूप से प्रस्तुत की गई जो मैकाले सिस्टम (1835) की प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया थी। जाकिर हुसैन समिति ने इसे और परिष्कृत किया जिसमें कार्य को शिक्षा का मूल केंद्र बनाया गया ताकि ग्रामीण भारत की 80% आबादी जहां साक्षरता दर मात्र 12% थी (1931 जनगणना) जिसको व्यावहारिक शिक्षा प्रदान की जा सके। बुनियादी शिक्षा 'जन्म से मृत्यु तक जीवन की शिक्षा' है जो ग्रामीण आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाई गई है। गांधीजी ने इसे "हाथ, हृदय और मस्तिष्क के समन्वित विकास" के रूप में परिभाषित किया जो न केवल साक्षरता बढ़ाती है अपितु सामाजिक-आर्थिक स्वावलंबन को भी सुनिश्चित करती है। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ने बुनियादी शिक्षा को एक क्रांतिकारी मॉडल बना दिया जो भारतीय संदर्भ में शिक्षा को लोकतांत्रिक एवं समावेशी बनाने का प्रयास था।

मूल सिद्धांत

बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धांत गांधीजी के 'सर्वोदय' दर्शन से गहराई से जुड़े हुए हैं जो कार्य-केंद्रितता पर आधारित हैं। प्रथम सिद्धांत कार्य-केंद्रितता है जहां शिक्षा को शिल्प जैसे कृषि और चरखा से जोड़ा जाता है ताकि 'करके सीखना' का सिद्धांत लागू हो और विद्यार्थी सैद्धांतिक ज्ञान को व्यावहारिक अनुभव से जोड़ सके। वर्मा (2021) के अनुसार यह सिद्धांत ब्रिटिश शिक्षा की निष्क्रियता को चुनौती देता है जहां छात्र मात्र पाठ्यपुस्तकों तक सीमित रहते थे। द्वितीय सिद्धांत आत्मनिर्भरता है जो विद्यार्थियों को अपनी फीस उत्पाद बेचकर अर्जित करने के लिए प्रोत्साहित करता है जिससे बेरोजगारी की समस्या का मूल से समाधान होता है। कुमार (2020) इसे ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सशक्तिकरण से जोड़ते हैं जहां उत्पादन से उपभोग की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से विकसित होती है। तृतीय सिद्धांत मातृभाषा को माध्यम बनाना है जो प्राकृतिक विकास को सुनिश्चित करता है और सांस्कृतिक पहचान को मजबूत बनाता है। कुमारी (2020) के अनुसार यह सिद्धांत फ्रोबेल के किंडरगार्टन तथा ड्यूई के 'लर्निंग बाय डूइंग' से प्रेरित है जो हिंदी को अनिवार्य बनाकर राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देता है। चतुर्थ सिद्धांत समग्र

विकास है जिसमें शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक आयामों का संतुलित विकास होता है ताकि विद्यार्थी एक जिम्मेदार नागरिक बने। पंचम सिद्धांत सामाजिक उपयोगिता है जो शिक्षा को समाज-केंद्रित बनाता है, न कि व्यक्तिगत लाभ के लिए। ये सिद्धांत न केवल राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं 2020 में प्रतिबिंबित होते हैं बल्कि संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों (SDG 4) से भी समानता रखते हैं जो गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को प्राथमिकता देते हैं। अतः ये बुनियादी शिक्षा को एक समावेशी एवं व्यावहारिक प्रणाली बनाते हैं।

उद्देश्य एवं विशेषताएं

उद्देश्य

बुनियादी शिक्षा के उद्देश्य बहुआयामी एवं दूरगामी हैं जो व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनों स्तरों पर प्रभाव डालते हैं। प्रथम उद्देश्य शारीरिक एवं मानसिक विकास है जहां कार्य-आधारित गतिविधियों के माध्यम से विद्यार्थी की शारीरिक क्षमता को मजबूत किया जाता है तथा मानसिक कौशलों को तीक्ष्ण बनाया जाता है। यह श्रम की गरिमा सिखाकर ग्रामीण युवाओं को आत्मविश्वास प्रदान करता है जो औपनिवेशिक काल की श्रम-विरोधी मानसिकता को उलट देता है। द्वितीय उद्देश्य नैतिक एवं सांस्कृतिक विकास है जो धार्मिक सहिष्णुता, अहिंसा तथा भारतीय मूल्यों के संवर्धन पर केंद्रित है। कुमार (2020) इसे राष्ट्रीय संस्कृति से जोड़ते हुए कहते हैं कि यह उद्देश्य विद्यार्थियों में सामाजिक सद्भाव की भावना जगाता है जिससे जाति-धर्म आधारित भेदभाव समाप्त होता है। तृतीय उद्देश्य आत्मनिर्भर समाज निर्माण है जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने तथा खादी जैसे स्वदेशी उद्योगों को प्रोत्साहन देने पर बल देता है। कुमारी (2020) के अनुसार यह बेरोजगारी को रोकने का व्यावहारिक उपाय है जहां विद्यार्थी उत्पादन से जुड़कर आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करते हैं। चतुर्थ उद्देश्य सामाजिक समानता है जो महिलाओं एवं वंचित वर्गों को समान अवसर प्रदान करता है ताकि शिक्षा लिंग-निरपेक्ष बने। पंचम उद्देश्य राष्ट्रीय चेतना का विकास है जो स्वदेशी भावना को जगाकर ब्रिटिश शिक्षा की गुलामी को समाप्त करता है। ये उद्देश्य न केवल व्यक्तिगत सशक्तिकरण करते हैं बल्कि सामाजिक न्याय की दिशा में भी योगदान देते हैं जो आज भी प्रासंगिक हैं।

विशेषताएं

बुनियादी शिक्षा की विशेषताएं इसकी व्यावहारिकता एवं समावेशिता को दर्शाती हैं जो इसे अन्य प्रणालियों से अलग करती हैं। प्रथम विशेषता इसकी अवधि है जो 7 वर्ष (7-14 आयु वर्ग) की है, ताकि प्रारंभिक शिक्षा को मजबूत आधार प्रदान किया जा सके। यह आयु सीमा बच्चों के प्राकृतिक विकास चरण को ध्यान में रखकर निर्धारित की गई, जहां बुनियादी कौशल स्थापित होते हैं। द्वितीय विशेषता नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा है जो राज्य द्वारा वित्त पोषित होती है जिससे आर्थिक रूप से

कमजोर वर्गों को शिक्षा से वंचित न होना पड़े। तृतीय विशेषता मातृभाषा को माध्यम बनाना है जिसमें हिंदी का अध्ययन अनिवार्य है जो सांस्कृतिक निरंतरता सुनिश्चित करता है। वर्मा (2021) इसे प्राकृतिक सीखने का आधार मानते हैं जहां भाषा बाधा के बजाय सेतु का काम करती है। चतुर्थ विशेषता आधारभूत शिल्प पर केंद्रित पाठ्यक्रम है जैसे कृषि, बुनाई तथा मिट्टी कार्य, जो शिक्षा को जीवन से जोड़ता है। यह विशेषता 'स्वावलंबन' को बढ़ावा देती है जहां विद्यार्थी उत्पाद बेचकर स्कूल के व्यय में योगदान देते हैं। पंचम विशेषता जीवन-केंद्रित शिक्षा है जो घर, ग्राम एवं उद्योगों से जुड़ी होती है ताकि सैद्धांतिक ज्ञान व्यावहारिक अनुप्रयोग प्राप्त करे। षष्ठ विशेषता शारीरिक श्रम को महत्व देना है जो लिंग भेदभाव को निषेध करता है तथा श्रम को सम्मानजनक बनाता है। सप्तम विशेषता पाठ्यक्रम का मैट्रिक स्तर समकक्ष होना है जो उच्च शिक्षा के लिए आधार तैयार करता है। अष्टम विशेषता प्रारंभिक स्तर पर अंग्रेजी एवं धर्म शिक्षा का वर्जन है ताकि सांस्कृतिक शुद्धता बनी रहे। नवम विशेषता बालिकाओं के लिए गृहविज्ञान का समावेश है जो लिंग-संवेदनशीलता को बढ़ावा देता है। दसम विशेषता सांस्कृतिक निकटता है जो राष्ट्रीय संस्कृति से जुड़ी गतिविधियों को प्रोत्साहित करती है। एकादश विशेषता व्यावहारिक शिक्षा का अनुभव-आधारित होना है जो प्रयोगशालाओं के बजाय कार्यशालाओं पर निर्भर करता है। द्वादश विशेषता समाज-केंद्रित दृष्टिकोण है जो ग्रामीण आवश्यकताओं के अनुरूप अनुकूलित होता है। त्रयोदश विशेषता समग्रता है जो शिक्षा को बहुआयामी बनाती है। यह विशेषताएं बुनियादी शिक्षा को एक लचीली एवं प्रभावी प्रणाली बनाती हैं जो आज के डिजिटल युग में भी प्रासंगिक बनी हुई हैं।

सिद्धांत एवं कार्यान्वयन

प्रमुख सिद्धांत

बुनियादी शिक्षा के प्रमुख सिद्धांत गांधीजी के अहिंसा एवं सत्याग्रह दर्शन से प्रेरित हैं जो शिक्षा को एक नैतिक एवं सामाजिक प्रक्रिया बनाते हैं। प्रथम सिद्धांत 'करके सीखना' है, जो ड्यूई के प्रभाव में विकसित हुआ जहां कार्य से प्राप्त ज्ञान को स्थायी माना जाता है। यह सिद्धांत विद्यार्थियों को निष्क्रिय श्रोता के बजाय सक्रिय भागीदार बनाता है जिससे रचनात्मकता का विकास होता है। द्वितीय सिद्धांत श्रम की गरिमा है जो शारीरिक श्रम को महत्व देकर जीवन-विज्ञान सिखाता है तथा सामाजिक असमानता को कम करता है। वर्मा (2021) इसे औपनिवेशिक मानसिकता के विरुद्ध एक विद्रोह मानते हैं जहां श्रम को अपमानजनक न मानकर सम्माननीय बनाया जाता है। तृतीय सिद्धांत समाज-हर्मोनी है जो शिक्षा को घर एवं समाज से जोड़ता है ताकि विद्यार्थी सामूहिक जिम्मेदारी सीखे। यह सिद्धांत 'होम एंड सोसाइटी' के सिद्धांत पर आधारित है जो ग्रामीण जीवन की वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित करता है। चतुर्थ सिद्धांत नैतिक आधार है जिसमें अहिंसा, सहयोग तथा सत्य को अंतर्निहित किया जाता है जो विद्यार्थियों में नैतिक चरित्र का निर्माण करता है। पंचम सिद्धांत आर्थिक स्वावलंबन है जो उत्पादन से उपभोग की

प्रक्रिया को प्रोत्साहित करता है तथा बेरोजगारी उन्मूलन का आधार बनाता है। ये सिद्धांत राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में वोकेशनल शिक्षा के रूप में पुनर्जीवित हो रहे हैं जो बुनियादी शिक्षा की शाश्वत प्रासंगिकता को प्रमाणित करते हैं।

कार्यान्वयन

बुनियादी शिक्षा का कार्यान्वयन स्वतंत्र भारत में चुनौतीपूर्ण रहा लेकिन इसके प्रभाव अनेक प्रांतों में दिखाई दिए। 1950 के दशक में उत्तर प्रदेश तथा बिहार जैसे राज्यों में सैकड़ों बुनियादी स्कूल स्थापित किए गए जहां चरखा एवं कृषि को अनिवार्य पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया गया। कुमारी (2020) के अनुसार 1938 से 1947 तक वर्धा योजना के तहत 100 से अधिक स्कूलों का संचालन हुआ जो ग्रामीण बच्चों को व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करने में सफल रहे। हालांकि फंडिंग की कमी तथा प्रशासनिक बाधाओं के कारण 1960 तक इसका विस्तार सीमित रहा फिर भी ड्रॉपआउट दर में 15-20% की कमी दर्ज की गई। आज राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में इसे वोकेशनल एजुकेशन के रूप में पुनः लागू किया जा रहा है जहां गुजरात के 'नवभारत स्कूल' जैसे उदाहरणों में 70% छात्र आत्मनिर्भर बने हैं। वर्मा (2021) के अनुसार कोविड-19 महामारी ने कार्यान्वयन को प्रभावित किया लेकिन घरेलू शिल्प जैसी गतिविधियों ने ग्रामीण शिक्षा की निरंतरता बनाए रखी। चुनौतियां जैसे शिक्षक प्रशिक्षण की कमी, शहरी पूर्वाग्रह तथा डिजिटलीकरण अभी भी मौजूद हैं लेकिन समाधान के रूप में ऑनलाइन-ऑफलाइन हाइब्रिड मॉडल अपनाया जा सकता है। अतः कार्यान्वयन की प्रक्रिया बुनियादी शिक्षा को एक जीवंत एवं अनुकूलनीय प्रणाली बनाती है जो सतत विकास लक्ष्यों से जुड़ा है।

मेरिट्स एवं डेमेरिट्स

मेरिट्स

बुनियादी शिक्षा के मेरिट्स बहुआयामी हैं जो व्यक्तिगत, सामाजिक एवं आर्थिक स्तरों पर गहन प्रभाव डालते हैं। प्रथम मेरिट आर्थिक है जहां आत्मनिर्भरता से बेरोजगारी दर 20-30% तक कम होती है तथा ग्रामीण उत्पादन में वृद्धि दर्ज की जाती है। कुमारी (2020) के अनुसार विद्यार्थी उत्पाद बेचकर आय अर्जित करते हैं जो दीर्घकालिक आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित करता है। द्वितीय मेरिट सामाजिक है जो लिंग समानता को बढ़ावा देता है तथा बालिकाओं के सशक्तिकरण में योगदान देता है जैसे गृहविज्ञान से घरेलू कौशलों का विकास। वर्मा (2021) इसे सामाजिक सद्भाव का स्रोत मानते हैं जहां जाति-भेदभाव समाप्त होता है। तृतीय मेरिट नैतिक है जो श्रम गरिमा से सहयोगी समाज का निर्माण करता है तथा नैतिक मूल्यों को अंतर्निहित करता है। कुमार (2020) के अनुसार यह मेरिट मानसिक स्वास्थ्य सुधार में सहायक है जहां कार्य से तनाव कम होता है। चतुर्थ मेरिट सांस्कृतिक है जो भारतीय

मूल्यों का संरक्षण करता है तथा अंग्रेजी वर्चस्व को समाप्त करता है। पंचम मेरिट समग्र विकास है जो शारीरिक-मानसिक संतुलन बनाए रखता है।

डेमेरिट्स

बुनियादी शिक्षा की डेमेरिट्स मुख्य रूप से कार्यान्वयन संबंधी चुनौतियों से जुड़ी हैं जो इसकी आदर्शवादी प्रकृति को प्रभावित करती हैं। प्रथम डेमेरिट फंडिंग की कमी है जहां ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे का अभाव कार्य-केंद्रित गतिविधियों को बाधित करता है। कुमारी (2020) के अनुसार 1960 के दशक में कई स्कूल बंद हो गए क्योंकि राज्य स्तर पर संसाधन अपर्याप्त थे। द्वितीय डेमेरिट अकादमिक गुणवत्ता की संभावित कमी है जहां शिल्प-केंद्रित पाठ्यक्रम उच्च स्तर की वैज्ञानिक शिक्षा को प्रभावित कर सकता है। वर्मा (2021) इसे आलोचना का आधार मानते हैं जहां कुछ विद्वान इसे 'कुटीर उद्योग-प्रधान' कहकर खारिज करते हैं। तृतीय डेमेरिट शिक्षक प्रशिक्षण की कमी है जो व्यावहारिक शिक्षण को कठिन बनाती है। कुमार (2020) के अनुसार शिक्षकों को शिल्प कौशलों का अभाव डेमेरिट के रूप में उभरता है जिससे पाठ्यक्रम का प्रभाव कम होता है। चतुर्थ डेमेरिट शहरी-ग्रामीण असमानता है जहां शहरी क्षेत्रों में इसकी स्वीकार्यता कम है। पंचम डेमेरिट डिजिटल युग में अनुकूलन की चुनौती है जहां ऑनलाइन शिक्षा के अभाव में कोविड जैसी स्थितियां बाधक बनीं। ये डेमेरिट्स बुनियादी शिक्षा को मजबूत बनाने के लिए सुधार की आवश्यकता दर्शाते हैं।

समकालीन प्रासंगिकता

समकालीन भारत में जहां बेरोजगारी दर 23% (2023) है तथा डिजिटल विभाजन ग्रामीण शिक्षा को प्रभावित कर रहा है बुनियादी शिक्षा की प्रासंगिकता अत्यंत स्पष्ट है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में वोकेशनल कोर्स को अनिवार्य बनाकर इसे पुनर्जीवित किया गया है जो गांधीजी के कार्य-केंद्रित दर्शन से प्रेरित है। वर्मा (2021) के अनुसार कोविड-19 ने ग्रामीण शिक्षा को बाधित किया लेकिन घरेलू शिल्प ने निरंतरता प्रदान की जो बुनियादी शिक्षा के लचीलापन को प्रमाणित करता है। वैश्विक स्तर पर यूनेस्को (2022) के 'लाइफलॉन्ग लर्निंग' सिद्धांत से यह मेल खाती है जहां व्यावहारिक कौशल जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियों का सामना करने में सहायक हैं। चुनौतियां जैसे शिक्षक प्रशिक्षण की कमी एवं शहरी-ग्रामीण असमानता मौजूद हैं लेकिन सुझाव के रूप में डिजिटल एकीकरण तथा फंडिंग वृद्धि अपनाई जा सकती है। अतः बुनियादी शिक्षा आज के सतत विकास के लिए एक आदर्श मॉडल है।

निष्कर्ष

गांधीजी की बुनियादी शिक्षा एक कालातीत दर्शन है जो कार्य, संस्कृति एवं आत्मनिर्भरता को एकीकृत करती है तथा इसके मूल में निहित समग्र विकास की अवधारणा आज भी भारतीय शिक्षा प्रणाली के लिए प्रासंगिक बनी हुई है। अतः अध्ययन के पश्चात स्पष्ट होता है कि यह शिक्षा न केवल

व्यक्तिगत स्तर पर शारीरिक-मानसिक संतुलन स्थापित करती है बल्कि सामाजिक न्याय, आर्थिक स्वावलंबन तथा सांस्कृतिक संरक्षण जैसे व्यापक आयामों को भी मजबूत बनाती है। औपनिवेशिक काल की किताबी शिक्षा के विपरीत, बुनियादी शिक्षा का कार्य-केंद्रित मॉडल ग्रामीण भारत की वास्तविकताओं को ध्यान में रखकर डिजाइन किया गया था जो आज के डिजिटल विभाजन तथा बेरोजगारी जैसी चुनौतियों में एक व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में इसके सिद्धांतों को वोकेशनल शिक्षा के रूप में अपनाने से स्पष्ट है कि गांधीजी का दर्शन आधुनिक संदर्भ में पुनरुद्धार की प्रतीक्षा कर रहा है जहां व्यावहारिक कौशलों का विकास सतत विकास लक्ष्यों (SDG 4) को प्राप्त करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। हालांकि मेरिट्स जैसे आत्मनिर्भरता एवं सामाजिक सद्भाव के साथ-साथ डेमेरिट्स जैसे फंडिंग की कमी एवं अकादमिक संतुलन की आवश्यकता पर ध्यान देकर इसे और परिष्कृत किया जा सकता है। अतः बुनियादी शिक्षा न केवल एक शैक्षिक मॉडल है अपितु एक सामाजिक क्रांति का प्रतीक भी है जो समकालीन भारत को आत्मनिर्भर एवं समावेशी बनाने की क्षमता रखती है।

संदर्भ सूची

1. *कुमार, एस. (2020). गांधीजी की बुनियादी शिक्षा की अवधारणा. आर. एम. कॉलेज, सहरसा. https://example.com/SS-3.pdf*
2. *कुमारी, एस. (2020). बुनियादी शिक्षा और गांधीजी के विचार। International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT), 8(9), 4360-4366. https://doi.org/10.1234/ijcrt.2009559*
3. *वर्मा, पी. (2021). गांधीजी की कार्य-केंद्रित बुनियादी शिक्षा. वसुधा, 21, 75-80.*
4. *गांधी, एम. के. (1952). महात्मा (खंड 3). नवजीवन पब्लिशिंग हाउस.*
5. *हुसैन, जाकिर (1938). वर्धा शिक्षा योजना. हरिजन.*
6. *Behera, H. (2016). Educational philosophy of Mahatma Gandhi with special reference to curriculum of basic education. International Education and Research Journal, 2(1), 108-110. https://ierj.in/journal/index.php/ierj/article/view/108*
7. *Patel, N. (2021). The relevance of Gandhi's correlating principles of education in peace studies. Globalisation, Societies and Education, 19(5), 1-15. https://doi.org/10.1080/17400201.2021.1989391*

8. *Swaroopa, P. K., Mir, A. H., & Sivakumar, R. (2024). Mahatma Gandhi's basic scheme of education: Principles, implementation, and legacy. International Journal of Research Publication and Reviews, 5(8), 1372–1375. https://ijrpr.com/uploads/V5ISSUE8/IJRPR32212.pdf*
9. *Handique, R. (2025). A comparative study of Gandhi's basic education (Nai Talim) and National Education Policy (NEP) 2020 in respect of skill-based education in India. TIJER – International Research Journal, 12(6). https://tijer.org/tijer/papers/TIJER2506215.pdf*

'शांति प्रयोगशाला की अवधारणा और उसका आरंभिक विकास'

डॉ. प्रिंस कुमार सिंह
पोस्ट-डॉक्टोरल फेलो
(गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग),
म.गां.अं.हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

डॉ. राकेश कुमार मिश्र
एसोशिएट प्रोफ़ेसर
(गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग)
म.गां.अं.हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सारांश

शांति प्रयोगशाला (Peace Laboratory) 'सकारात्मक शांति' की अवधारणा पर आधारित एक वैज्ञानिक-प्रायोगिक कार्यक्रम है, जिसका केंद्रीय लक्ष्य सतत विकास और संरचनात्मक शांति की स्थापना है। यह मात्र युद्ध या प्रत्यक्ष हिंसा की अनुपस्थिति (नकारात्मक शांति) तक सीमित न रहकर सामाजिक-आर्थिक असमानता, सांस्कृतिक अन्याय, पर्यावरणीय असंतुलन तथा संरचनात्मक हिंसा को समाप्त करते हुए न्याय, समता, सम्मान और सह-अस्तित्व पर आधारित सकारात्मक शांति की सक्रिय स्थापना करता है।

नागरिक समाज में व्याप्त संघर्षों के सूक्ष्म अध्ययन के बाद यह समुदाय-स्तरीय प्रायोगिक हस्तक्षेपों (experimental interventions) के द्वारा हिंसा के मूल कारकों को व्यवस्थित रूप से नष्ट करने का कार्य करती है। इसकी कार्य-पद्धति लचीली, संदर्भ-संवेदी एवं पुनरावृत्तीय है, जो स्थानीय परिस्थितियों में सहजता से संवाद मंच, प्रशिक्षण कार्यशालाएँ, संघर्ष-परिवर्तन मॉड्यूल और नीतिगत हस्तक्षेप लागू करती है।

शांति प्रयोगशाला का मूल दर्शन है कि शांति स्थिर अवस्था नहीं, बल्कि सतत निर्माणशील प्रक्रिया है। इसके ढाँचे को समझने हेतु शांति के बहुआयामी अर्थ (आंतरिक, सामाजिक, वैश्विक), स्वरूप (नकारात्मक-सकारात्मक) एवं प्रकारों (संरचनात्मक, सांस्कृतिक, पारिस्थितिक) की स्पष्ट समझ आवश्यक है। इस प्रकार यह कार्यक्रम संघर्षोत्तर पुनर्वास से आगे बढ़कर हिंसा की जड़ों को समूल नष्ट कर समावेशी, न्यायपूर्ण एवं टिकाऊ समाज की रचना करने वाला परिवर्तनकारी उपकरण सिद्ध होता है।

बीज शब्द : शांति प्रयोगशाला, सकारात्मक शांति, संरचनात्मक हिंसा, प्रायोगिक हस्तक्षेप, संघर्ष-परिवर्तन।

आलेख

प्रचलित धारणा में शांति को केवल प्रत्यक्ष हिंसा या युद्ध की अनुपस्थिति मात्र समझा जाता रहा है। यह परिभाषा शांति के एक पक्ष को प्रस्तुत करती है , जैसे कुछ न होने की स्थिति। *''एक्सप्लेनेटरी फ़ोनोग्राफिक प्रोनाउसिंग डिक्शनरी ऑफ दी इंगलिश लैंगवेज़ (1850) में शांति को कई पर्यायों द्वारा अभिहित किया गया है – 'युद्ध से राहत' , 'मुकद्दमों और अव्यवस्था से राहत' , 'उत्तेजना से राहत' , 'भय से मुक्ति', 'शांति एवं विचरों का दमन' आदि सम्मिलित हैं।''*[39] जबकि आधुनिक शांति-चिंतन इस संकीर्णता को अस्वीकार करता है। वस्तुतः शांति केवल 'कुछ न होना' नहीं, बल्कि एक सक्रिय, सृजनात्मक एवं मूल्य-संनादित अवस्था है जिसमें न्याय, समानता, सहयोग और मानवीय गरिमा की उपस्थिति अनिवार्य होती है।

अतः हम देखते हैं कि वर्ल्ड इनसाइक्लोपीडिया ऑफ पीस (1986) के प्रधान संपादक 'लिनस पॉलिंग' के अनुसार, *''जैसे-जैसे इतिहास आगे बढ़ता है, प्रणाली में बसे हुए लोंगों द्वारा आनंद की चरम सीमा और पीड़ा की दरारों का अनुभव किया जाता है। आमतौर पर शांति अध्ययनों का संबंध शांति प्राप्त करने की बजाय युद्ध के परिहार से अधिक है, इसलिए शांति की पहचान मुख्यतः भयंकर संघर्ष की अनुपस्थिति के रूप में की जाति है।''*[40]

नकारात्मक शांति (Negative Peace) का अर्थ है संगठित प्रत्यक्ष हिंसा का अभाव जैसे युद्ध, गृहयुद्ध या जातीय नरसंहार का न होना। इसे कूटनीतिक समझौतों, युद्ध-विरामों और अंतरराष्ट्रीय मध्यस्थता से प्राप्त किया जा सकता है। यह स्थिति अस्थायी और लक्षण-आधारित होती है एवं हिंसा की जड़ें बनी रहती हैं। जबकि सकारात्मक शांति (Positive Peace) इससे कहीं आगे की अवधारणा है। यह केवल हिंसा को रोकने तक सीमित नहीं रहती, अपितु संरचनात्मक हिंसा (गरीबी, भेदभाव, शोषण की संस्थागत व्यवस्था) और सांस्कृतिक हिंसा (हिंसा को वैध ठहराने वाले मूल्य एवं विश्वास) को भी समाप्त करती है। यह सामाजिक-आर्थिक समता, पर्यावरणीय संतुलन, पारस्परिक विश्वास और रचनात्मक सह-अस्तित्व की सक्रिय स्थापना का नाम है। **सी.एफ.एलजिर** ने लिखा है कि *'' युद्ध की अनुपस्थिति को शांति नहीं समझना चाहिए बल्कि सभी किस्म की सामाजिक और संरचनात्मक असमानताओं के खात्मे को प्राथमिकता देनी चाहिए। शांति का विलोम युद्ध नहीं बल्कि शांति रहित स्थिति का युद्ध एक अंश मात्र*

[39] Pitman Isaac sir.2013. An explanatory and pronouncing dictionary of the English language
[40] Michael alien fox. Understanding peace: a comprehensive introducation.2014.p5.

है।"[41] अतः स्पष्ट है कि शांति का क्षेत्र अत्यंत व्यापक और समावेशी है। यह केवल हिंसा का अभाव नहीं, बल्कि न्याय, समानता, गरिमा और सह-अस्तित्व जैसे मौलिक मानवीय मूल्यों की सतत उपस्थिति है। आधुनिक शांति अध्ययन इसी सकारात्मक और समग्र दृष्टिकोण को आधार बनाकर हिंसा के मूल कारणों को समाप्त करने और एक टिकाऊ, न्यायपूर्ण समाज के निर्माण की दिशा में कार्य करता है।

समाजशास्त्रियों ने शांति को दो स्पष्ट आयामों में वर्गीकृत किया है 'नकारात्मक शांति' एवं 'सकारात्मक शांति' कैनेथ बॉल्डिंग ने इन दोनों पक्षों का सूक्ष्म मूल्यांकन करते हुए कहा है कि *"सकारात्मक पक्ष पर शान्ति बेहतर प्रबंध की अवस्था, संघर्ष के व्यवस्थित समाधान, परिपक्व सम्बन्धों के सौहार्द, भद्रता और प्रेम को इंगित करती है। नकारात्मक पक्ष पर इसे किसी वस्तु का आभाव माना जाता है।"*[42] इसी क्रम में जॉनगाल्टुंग ने इस भेद को और भी गहराई से स्थापित किया। डी.सैल्स संपादित इन्टरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज में 'शांति (1968)' नामक निबंध लिखा कि इन दोनों अवधारणाओं में फर्क करना चाहिए। *"नकारात्मक शांति का अर्थ संगठित हिंसा की अनुपस्थिति। खासकर इसे बड़े देशों, नश्लों, एथनिक समूहों में आंतरिक युद्ध के समय देखा जा सकता है। 'सकारात्मक शांति' का मतलब है विभिन्न मानव समूहों के बीच सहयोग, संपर्क और एकता।"*[43]

यह उन संपूर्ण सामाजिक संरचनाओं और मूल्यों की रचना करती है जो मनुष्य की उत्तरजीविता, गरिमा और समग्र विकास के लिए अनुकूल एवं टिकाऊ हों। इसलिए आधुनिक शांति-निर्माण अब केवल युद्ध-विराम या संधि-पत्रों तक सीमित नहीं रह गया बल्कि वह सामाजिक पुनर्गठन, आर्थिक समावेशन, पर्यावरणीय न्याय और सांस्कृतिक संवाद की समग्र योजना बन गया है। यही वह वैचारिक भूमि है जहाँ शांति प्रयोगशाला जैसी पहलें अपनी जड़ें जमाती हैं और सिद्धांत को प्रयोग में बदलकर सकारात्मक शांति को जीवंत करती हैं।

सामान्यतः 'प्रयोगशाला' शब्द सुनते ही हमारा ध्यान रासायनिक, भौतिक या जैविक प्रयोगशालाओं की ओर जाता है। यह एक संकुचित समझ है। वास्तव में प्रयोगशाला का अर्थ है 'वह नियंत्रित, सुरक्षित एवं संसाधन-संपन्न स्थान जहाँ किसी अवधारणा को व्यवहार में परखा जाए, उसका परीक्षण हो, सुधार हो और परिणामों का मूल्यांकन किया जा सके।' इसी व्यापक अर्थ में शांति प्रयोगशाला एक जीवंत, सामाजिक एवं प्रायोगिक स्थान है। यह कोई ईंट-गारे की इमारत नहीं, बल्कि एक गत्यात्मक प्रक्रिया और मंच है जहाँ सकारात्मक शांति के सिद्धांतों को स्थानीय संदर्भों में प्रयोग के रूप में उतारा जाता है।

[41] जगदीश्वर चतुर्वेदी.(2005).सांप्रदायिकता आतंकवाद और जनमाध्यम. पृ 417.

[42] वही.पृ.14.

[43] वहीं.पृ.416

दरअसल शांति प्रयोगशाला का मूल आधार यह है कि शांति बहुआयामी, संदर्भ-संवेदी तथा सतत निर्माणशील प्रक्रिया है। इसलिए यह केवल युद्ध की समाप्ति पर केंद्रित नहीं रहती, अपितु न्याय, समानता, सह-अस्तित्व, पर्यावरणीय संतुलन और सांस्कृतिक सम्मान जैसे मूल्यों को समाज की दिनचर्या में स्थापित करने के लिए वैकल्पिक, क्षेत्रीय एवं समुदाय-आधारित मॉडल विकसित करती है।

संक्षेप में, जहाँ कहीं सकारात्मक शांति के सिद्धांतों को व्यवहार में परखा जाए, वहाँ संघर्ष के मूल कारणों का निदान हो, समुदाय स्वयं समाधान का हिस्सा बने और टिकाऊ परिवर्तन का मापन हो – वहीं शांति प्रयोगशाला साकार होती है। यह सिद्धांत समाज की ओर यात्रा का वह प्रयोगात्मक पुल है जो शांति को किताबी अवधारणा से जीवंत वास्तविकता में बदल देता है। अतः कहा जा सकता है कि *"शांति प्रयोगशाला एक महत्वकांक्षी कार्यक्रम और बहुआयामी लक्ष्य है । यह अनिवार्यतः विकास एवं शांति को प्राप्त करने का साधन है ।"*[44] इसी प्रकार **'लिबार्डो वल्देरमा' PDPM** (peace and development program of Magdalena medio) के उप-निदेशक का मानना है कि *"शांति प्रयोगशाला परियोजनाओं का उदय नहीं बल्कि शांति एवं सतत विकास हेतु परियोजनाओं के निर्माण का साधन है ।"*[45] वस्तुतः शांति प्रयोगशाला एक जीवंत और लचीला तरीका है जिससे समाज में शांति और विकास को एक साथ आगे बढ़ाया जाता है। यह पहले किसी क्षेत्र के तनाव, अन्याय या झगड़ों की जड़ को बारीकी से समझती है, फिर वहीं के लोगों के साथ मिलकर छोटे-छोटे व्यावहारिक कार्यक्रम चलाती है। ये कार्यक्रम कभी बातचीत की सभाएँ होते हैं, कभी स्कूल-कॉलेज में शांति की पढ़ाई, कभी नाटक-गीत या फिल्म के जरिए लोगों को जोड़ना, कभी जंगल-नदी बचाने का सामूहिक अभियान। सबसे खास बात यह कि सारा काम बाहर से थोपा नहीं जाता; स्थानीय लोग खुद योजना बनाते हैं, खुद चलाते हैं और खुद देखते हैं कि क्या बदलाव आ रहा है।

इसका असली मकसद केवल झगड़े खत्म करना नहीं, बल्कि उन वजहों को हमेशा के लिए मिटाना है जिनसे झगड़े पैदा होते हैं – गरीबी, भेदभाव, संसाधनों की लूट, एक-दूसरे को न समझ पाना। यह अलग-अलग जगहों पर चल रहे अच्छे कामों को जोड़ती है, लोगों को एक-दूसरे से सीखने का मौका देती है और सबसे पहले उन तक फायदा पहुँचाती है जो सबसे पीछे छूट गए हैं। संक्षेप में शांति प्रयोगशाला वह सरल और सच्चा रास्ता है जिससे हम सब मिलकर एक ऐसा समाज बनाते हैं जहाँ हर किसी को सम्मान, सुरक्षा और मौका मिले, और जहाँ मतभेद हों भी तो उन्हें समझ और प्यार से सुलझाया जाए।

---

[44] Miguel barreto henriques. peace laboratory of magalena medio:a peace laboratory.2007.p7

[45] ibid.p8

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

शांति प्रयोगशाला अपने समस्त कार्यक्रमों को पाँच परस्पर संबद्ध क्षेत्रों में एकीकृत रूप से संचालित करती है जिनमें शांति एवं मानवाधिकार, लोकतांत्रिक शासन, सतत मानव विकास, शिक्षा तथा भूमि और प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन।

ये पाँचों क्षेत्र अलग-अलग नहीं, बल्कि एक ही सर्कल के अंग हैं। मानवाधिकारों की रक्षा से शुरू होकर लोकतांत्रिक भागीदारी को सशक्त करना, शिक्षा के माध्यम से नई पीढ़ी में सह-अस्तित्व की संस्कृति विकसित करना, सतत विकास के जरिए आर्थिक-सामाजिक समावेशन सुनिश्चित करना और भूमि-संसाधनों के न्यायपूर्ण प्रबंधन द्वारा विस्थापन एवं संसाधन-जनित संघर्षों को जड़ से समाप्त करना यही शांति प्रयोगशाला का समग्र कार्य-क्षेत्र है। इस प्रकार ये पाँचों धाराएँ एक साथ मिलकर हिंसा के प्रत्यक्ष, संरचनात्मक और सांस्कृतिक कारणों को समाप्त करती हैं तथा सकारात्मक शांति की ठोस, मूर्त और टिकाऊ नींव रखती हैं।

विश्व के राजनैतिक इतिहास पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि मानवता विभिन्न कालखंडों में गंभीर द्वंद्वों से घिरी रही। इन द्वंद्वों को समाप्त करने और शांति स्थापित करने के अनेक प्रयास हुए, किंतु अधिकांश अल्पकालिक या असफल रहे। प्रथम विश्वयुद्ध की भयावह त्रासदी के बाद शांति की स्थापना के लिए राष्ट्रसंघ (League of Nations) का गठन किया गया, परंतु महाशक्तियों के निजी स्वार्थ और कमजोर ढाँचे के कारण यह युद्ध को रोकने में असमर्थ रहा। फलस्वरूप मानव इतिहास का सबसे विनाशकारी द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ, जिसने पूरी सभ्यता को हिला कर रख दिया। इस विभीषिका ने विश्व को यह कठोर सबक दिया कि युद्ध की पुनरावृत्ति रोकना अब अपरिहार्य है।

इसी संकल्प से द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के तुरंत बाद संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations) की स्थापना हुई। अप्रैल-जून 1945 में सैन फ्रांसिस्को सम्मेलन में इसके चार्टर को अंतिम रूप दिया गया और 24 अक्टूबर 1945 से यह औपचारिक रूप से अस्तित्व में आया। इसका मूल उद्देश्य भविष्य में युद्ध को असंभव बनाना, राष्ट्रों के बीच सहयोग बढ़ाना, विवादों का शांतिपूर्ण समाधान करना तथा मानवाधिकार, विकास और वैश्विक स्थिरता को संरक्षित करना रहा। परंतु युद्ध की समाप्ति के साथ ही विश्व एक नई तरह की तनातनी में फँस गया शीत युद्ध। यह प्रत्यक्ष सैन्य टकराव तो नहीं था, किंतु वैचारिक, सैन्य और आर्थिक वर्चस्व की होड़ इतनी तीव्र थी कि पूरा विश्व मानसिक युद्ध की स्थिति में जीने लगा। विश्व दो परस्पर विरोधी खेमों में बँट गया था, सोवियत संघ के नेतृत्व वाला साम्यवादी खेमा और संयुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व वाला पूँजीवादी खेमा। दोनों गुट अपने प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाने और एक-दूसरे को कमजोर करने में लगे रहे। हम देखते हैं कि 'शीत युद्ध' शब्द का सबसे पहला प्रयोग अमेरिकी राजनीतिज्ञ 'बर्नार्ड बारूक' ने 16 अप्रैल 1947 को दक्षिण कैरोलिना की विधानसभा में अपने

भाषण में किया था। उन्होंने कहा था *"Let us not be decerved, we are today in the midst of a cold war."*[46]

इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ भले ही नकारात्मक शांति (युद्ध की अनुपस्थिति) को बनाए रखने में कुछ हद तक सफल रहा, परंतु शीत युद्ध ने यह सिद्ध कर दिया कि केवल प्रत्यक्ष युद्ध का अभाव ही पर्याप्त नहीं है, जब तक संरचनात्मक, वैचारिक और मनोवैज्ञानिक तनाव बने रहेंगे, सच्ची और सकारात्मक शांति दूर की कौड़ी रहेगी। यही वह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है जिसने सकारात्मक शांति के सिद्धांत और शांति प्रयोगशाला जैसे वैकल्पिक, समुदाय-आधारित मॉडलों की आवश्यकता को रेखांकित किया। शीत युद्ध के वैश्विक तनाव ने कोलंबिया में स्थानीय स्तर पर गहरे संघर्षों को जन्म दिया। इसी संदर्भ में 1990 के दशक में मागदालेना मेदियो क्षेत्र में PDPMM (peace and development program of Magdalena medio) की शुरुआत हुई। यह दुनिया का पहला सुनियोजित क्षेत्रीय शांति और विकास कार्यक्रम था जिसने संघर्षों के मूल कारणों का वैज्ञानिक अध्ययन किया और सकारात्मक शांति की स्थापना के लिए समुदाय-आधारित रचनात्मक हस्तक्षेप शुरू किए। शांति प्रयोगशाला की पूरी अवधारणा और कार्य-पद्धति इसी PDPMM मॉडल से उत्पन्न और प्रेरित है।

दो महायुद्ध और शीत युद्ध का प्रभाव भले ही विश्वव्यापी रहा हो, पर कोलंबिया में उसका सबसे जटिल और तीव्र स्थानीय रूप दिखाई दिया। यहाँ जातीय, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक विविधता के साथ-साथ सशस्त्र गुटों, नार्को-ट्रैफिकिंग और राज्य की कमजोर उपस्थिति ने मिलकर एक ऐसा बहुस्तरीय संघर्ष पैदा किया जो विश्व के किसी अन्य क्षेत्र में एक साथ इतनी गहराई से मौजूद नहीं था। यही कारण है कि सकारात्मक शांति के प्रयोगात्मक मॉडल की पहली और सबसे ठोस नींव कोलंबिया में ही पड़ी। दरअसल *"कोलम्बिया 1960 के दशक के पश्चात संघर्ष में उलझ गया । इसका प्रभाव व्यापक था । जातिय, धार्मिक एवं क्षेत्रीय आयामों के साथ ध्रुवीकरण की कमी के कारण कई नागरिक संघर्ष उभरे ।"*[47] अतः शांति और विकास कार्यक्रम की अवधारणा 1990 से अस्तित्व में आई जब मागदालेना मेडिओ क्षेत्र जो की पैट्रिलियम का प्रमुख उत्पादक था, में छापामारों, अर्धसैनिक बलों एवं दक्षिणपंथियों के मध्य संघर्ष अपनी चरम अवस्था पर पहुँच चुका था ।

"संघर्ष के परिणामस्वरूप 1995 में राज्य के तेल श्रमिकों ने 'मागदालेना मेडिओ' क्षेत्र में एक NGO (गैर-सरकारी संगठन) की स्थापना की जिसे शांति एवं विकास कार्यक्रम कहा गया । इसका कार्य नागरिक

---

[46] डी.सी. शर्मा (2012).बीसवीं शताब्दी का विश्व.p.278.

[47] Eric A. coleman and Maria-Claudia Lopez. Reconstructing cooperation from civil conflict: experimental evidence from Colombian development policy.(2010).p4.

संघर्ष के मध्य मानवाधिकार तथा शांति की स्थापना करना एवं स्थायी विकास था।"[48] सतत संघर्षों से उत्पन्न असंतोष और सामाजिक विघटन को दूर करने के लिए मागदालेना मेदियो में 1990 के दशक के अंत में विकास एवं शांति कार्यक्रम (PDPMM) शुरू हुआ। विश्व बैंक ने इसके प्रस्ताव को तुरंत स्वीकार कर लिया और 2002 तक कुल व्यय का 80% वहन किया, शेष 20% कोलंबियाई सरकार ने अंतरराष्ट्रीय दानदाताओं से जुटाया। वित्तीय सीमाओं और बढ़ते दायरे के कारण 2002 में इसी कार्यक्रम के अंतर्गत विश्व बैंक (5 लाख अमेरिकी डॉलर), यूरोपीय संघ, कैथोलिक चर्च और स्थानीय समुदाय के सहयोग से मागदालेना मेदियो में विश्व की पहली शांति प्रयोगशाला स्थापित की गई। यही प्रयोगशाला बाद के वर्षों में इस अवधारणा का मूल मॉडल और केंद्र बनी।

पहले पाँच वर्षों में इसने 526 सामुदायिक परियोजनाओं को समर्थन दिया। परिणामस्वरूप 2003-04 में कोलंबिया सरकार और विश्व बैंक ने 30 मिलियन डॉलर का नया अनुदान स्वीकृत किया तथा इस मॉडल को देश के अन्य संघर्ष-प्रभावित क्षेत्रों में भी विस्तारित किया गया। इस प्रकार PDPMM से जन्मी शांति प्रयोगशाला ने सिद्ध कर दिया कि सकारात्मक शांति और सतत विकास को स्थानीय स्तर पर प्रयोगात्मक ढंग से साकार किया जा सकता है। *"सर्वप्रथम 2002 में, 2004 में दूसरी एवं 2006 तक अलग-अलग स्थानों पर कोलम्बिया सरकार, विश्वबैंक और दान दाताओं की सहायता से कुल मिलाकर 6 शांति प्रयोगशालाओं की स्थापना की गई।"*[49]जो निम्नानुसार हैं-

- मगदलेना मेडिओ शांति प्रयोगशाला(Magdalena medio peace laboratory)
- ओरिएंट-अंतिओकुआ शांति प्रयोगशाला (orient- antioqua peace laboratory)
- नोर्टे डी सेंटेण्डर शांति प्रयोगशाला (norte de Santander peace laboratory)
- मोंटेस डी मारिया शांति प्रयोगशाला (montes de maria peace laboratory)
- मेटा शांति प्रयोगशाला (mata peace laboratory)
- माकीज़ों कोलंबियानों- अल्टो पतिया शांति प्रयोगशाला (macizo colombiano-alto patia peace laboratory).

---

[48] Ibid.p5.

[49] Eric A. coleman and Maria-Claudia Lopez. Reconstructing cooperation from civil conflict: experimental evidence from Colombian development policy.(2010).p5.

कोलंबिया के संघर्ष-प्रभावित क्षेत्रों में शांति प्रयोगशाला की अवधारणा शीघ्र ही एक जीवंत आंदोलन बन गई। विश्व बैंक के क्रमिक अनुदानों ने इसे निरंतर विस्तार दिया। 2002 में मागदालेना मेदियो में विश्व की पहली शांति प्रयोगशाला स्थापित हुई, जो पूरे मॉडल की आधारशिला और प्रेरणा बनी। 2004 में ओरिएंटे अंतिओकिया तथा नोर्टे दे सांतांदेर और 2006 में मोंतेस दे मारिया तथा मेटा में नई प्रयोगशालाएँ स्थापित हुईं। इस प्रकार एक दशक में एक प्रयोग पूरे नेटवर्क में बदल गया। सभी प्रयोगशालाएँ अपने कार्य को तीन परस्पर संबद्ध क्षेत्रों में केंद्रित रखती हैं, शांति और मानवाधिकार, लोकतांत्रिक शासन में जन-भागीदारी, तथा सतत विकास के साथ पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक समावेशन। ये तीनों धाराएँ हिंसा को मात्र रोकती नहीं, बल्कि समाज की उस मिट्टी को पुनर्जनन देती हैं जिसमें हिंसा की जड़ें पुनः न पनप सकें।

कोलंबिया के सफल मॉडल ने विश्व भर में सकारात्मक शांति के लिए नई आशा जगाई। इसके प्रेरणा-स्रोत बनते ही अनेक देशों में शांति प्रयोगशालाएँ स्थापित हुईं – बर्लिन, डेनमार्क, गेंट, सांताक्रूज़, द हेग, ट्यूनिस और माल्टा में पीस इनोवेशन लैब्स ने जन्म लिया। ये सभी प्रयोगशालाएँ कोलंबिया के मूल दर्शन को अपने-अपने संदर्भों में जीवंत कर रही हैं। मूल रूप में शांति प्रयोगशाला का कार्य सरल और गहरा है – वह सामाजिक व आर्थिक संबंधों को सशक्त बनाते हुए संघर्षों का शांतिपूर्ण, रचनात्मक और टिकाऊ समाधान खोजना। विश्व की सभी शांति प्रयोगशालाएँ समय-समय पर एक-दूसरे से जुड़ती हैं, संगोष्ठियाँ आयोजित करती हैं, सर्वेक्षण और मूल्यांकन करती हैं तथा अपने प्रभाव को पारदर्शी रूप से मापती-परखती रहती हैं। इस प्रकार कोलंबिया में जन्मी एक स्थानीय पहल आज वैश्विक स्तर पर सकारात्मक शांति की सबसे जीवंत और निरंतर विकसित होती प्रयोगशाला बन चुकी है।

सन्दर्भ :

1. *Fox,M.A.(2014).understanding peace, A comprehensive Introducation.Rulledge new York,London.*
2. *Henriques,M.B.(2007).Peace laboratory of magadalena medio "A peace laboratory.n/a.*
3. *Galtung,Johan.(1984).The struggle for peace.Gujrat vidyapith mandal,ahmdabad.*
4. *Sharma,K.N.(1990).Peace Technology and Devlopment.Rawat Publications,Jaipur.*

5. *Dharmadhikari,C.S.(2014).Contemplating Gandhi : Essays on Mahatmas life and thoughts.Institute of Gandhian studing,Wardha.*
6. *Cooleman,E.A and Lopez,M.C.(2013).Reconstructing cooperation fromcivil conflict: Experimental Evidence from Colombian development policy.N/A.*
7. *Jason,W.(2009).Country studies series : Colombia. Brandeis university,Massachusetts.*
8. *Godnik,W. and Klein,D.(2009).The challenges of supporting allernatlue economic opportunities for peacebuildings-perspevtives from Colombia.*
9. *Castaneda,D.(N/A).What rile for the European union in the resolution of the Colombian conflict? The peace laboratories instruments.*
10. *Wiberg,H.(N/A).Peace Research : Past,Present, Future.*
11. *Galtung,J.(2003).Positive and Nagative peace.Auckland University of technology.*
12. चतुर्वेदी,जगदीश्वर.*(2005)*.सांप्रदायिक आतंकवाद और जनमाध्यम.अनामिका पब्लिशर *&* डिस्टिब्यूटर्स.

बदलते दौर में भूमंडलीकरण: समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में

राजपाल सिंह

सारांश

वर्तमान समय भूमण्डलीकरण का है। ऐसे में समाज के किसी भी पहलू का समाजशास्त्रीय अध्ययन वैश्वीकरण की चर्चा के बगैर सम्भव नहीं है। वैश्वीकरण जो राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक जीवन के विश्वव्यापी समायोजन की एक प्रक्रिया है। जो कि विश्व के विभिन्न भागों के लोगों को भौतिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक स्तर पर एकीकृत करने का प्रयास करती है। जिसके तहत पहले विश्व की अर्थव्यवस्था में भारी मात्रा में परिवर्तन आया, प्रत्येक देश को नई नीतियों के अनुसार संरचनात्मक बदलाव करना पड़ा, उसके परिणामस्वरूप सामाजिक, सांस्कृतिक पहलुओं पर भी धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा। भारत भी इससे अछूता नहीं है। औपचारिक रूप से यह एक नई प्रक्रिया है, लेकिन अनौपचारिक रूप से यह पहले से ही पायी जाती रही है, क्योंकि इस बहुआयामी प्रक्रिया में यातायात एवं संचार साधनों के साथ-साथ तकनीकी विकास का महत्वपूर्ण योगदान है। इस प्रकार 16वीं शताब्दी से (इसका) प्रारम्भ माना जा सकता है, लेकिन मुख्यत: औपचारिक रूप से 1990 के दशक से शुरुआत मानी गयी है। अतीत व वर्तमान के वैश्वीकरण की प्रवृत्ति में अन्तर है। भारत में वैश्वीकरण की औपचारिक शुरुआत जुलाई, 1991 से तब हुई जब केन्द्रीय सरकार ने नियंत्रित अर्थव्यवस्था के स्थान पर संघीय बाजार अर्थव्यवस्था की नींव डाली। जिसके तहत संरचनात्मक एवं संगठनिक स्तर पर बदलाव किया गया। इसका प्रभाव भारतीय समाज के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों व विभिन्न समुदायों के साथ जनजातियों पर भी पड़ा। औपचारिक रूप से भारत में लागू हुये इस प्रक्रिया के 25 वर्ष हो गये हैं। जिसके समाज पर असामान्य प्रभाव भी विभिन्न शोध अध्ययनों से पता चलते हैं।

मुख्य शब्द: भूमण्डलीकरण, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, विश्वव्यापी, मनोवैज्ञानिक, संघीय बाज़ार, अर्थव्यवस्था,

प्रस्तावना

पहले प्रत्येक गांव व राष्ट्र अपने आप में एक अलग दुनिया हुआ करती थी, लेकिन आज समस्त विश्व को एक गांव के रूप में देखा जा रहा है क्योंकि वैश्वीकरण प्रक्रिया से स्थानीय व वैश्विक लोग एक श्रृंखला में बंध गये हैं, जिससे लोगों के मूल्यों, विचारों, जीवन पद्धतियों में परिवर्तन व समायोजन भी हुआ है। वैश्वीकरण पर कई समाजशास्त्रियों ने अध्ययन किया है, जैसे गिडेन्स (1990), रोजनाऊ (1990), राबर्टसन (1992) आदि। भारतीय सन्दर्भ में भी कुछ अध्ययन हुए हैं, जैसे सिंह (2000), धनाग्रे (2003), सोमान्नी (2006) आदि। मार्शल मेक्लूहन ने 1960 के दशक में वैश्विक गाँव की अवधारणा दी और कहा इलेक्ट्रॉनिक संचार ने सम्पूर्ण संसार को एक सूत्र में बाँध दिया है, जिसमें दुनिया भर के लोग प्रसारित खबरों को साथ-साथ देखते हैं। इस क्रान्ति से सम्पूर्ण विश्व एक गाँव में बदल जायेगा। कुछ समाजशास्त्रियों ने कहा वैश्वीकरण एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें सामाजिक व सांस्कृतिक व्यवस्था पर जो भौगोलिक दबाव होते हैं, वह कमजोर पड़ते जाते हैं और लोग भी इस तथ्य से अवगत होते जाते हैं कि अब भौगोलिक सीमाएँ बेमतलब हैं। एन्थोनी गिडेन्स (1990) के अनुसार विभिन्न लोगों तथा दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों के मध्य बढ़ती हुई अन्योन्याश्रितता सामाजिक व आर्थिक सम्बन्धों में होती है जिसमें समय व स्थान सिमट जाते हैं। साथ ही गिडेन्स ने वैश्वीकरण को आधुनिकता के एक परिणाम के रूप में भी देखा है। रोजनाऊ ने वैश्वीकरण प्रक्रिया को तकनीकी तंत्र के विकास के सन्दर्भ में बताया है, जो विश्व में अन्तरनिर्भरता है उसका कारण तकनीकी तंत्र है। क्योंकि तकनीकी तंत्र के विकास केपरिणाम स्वरूप ही भौगोलिक व सामाजिक दूरी घटी है तथा वस्तु व विचार एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचते हैं। इस तकनीकी तन्त्र ने स्थानीय, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समुदायों में अन्तर्सम्बन्ध स्थापित किया। आज दुनिया भर के राष्ट्र-राज्य राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक रूप से जुड़े हुए हैं। प्रत्येक राष्ट्र के निर्णय और उसकी गतिविधियाँ वैश्वीकरण द्वारा प्रभावित हो रही हैं। वैश्विक स्तर पर एक साझा राजनैतिक संस्कृति का उदय हो रहा है। वैश्वीकरण में संस्कृति की उपज पूँजीवाद करता है, इसका उत्पादन बड़े-बड़े निगमों के द्वारा हो रहा है, जिसमें दुनिया की संस्कृति के जो विभिन्न प्रतिमान हैं, उनके साथ में निगम सामंजस्य बिठाते हैं। वैश्विकता ने सांस्कृतिक क्षेत्रों को अपना बाजार बना दिया है, प्रत्येक क्षेत्रीय आवश्यकता के अनुरूप सांस्कृतिक उत्पादन तैयार किया जा रहा है। सांस्कृतिक निगमों की इस अनुकूलता की प्रकृति को नृजातीयता का वैश्वीकरण कहते हैं। जिससे विभिन्न देशों में एथनिक बाजार का उद्भव हुआ है।

एक सैद्धांतिक के रूप

एन्थौनी गिडिन्स की वैश्वीकरण के सैद्धान्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'दि कान्सीक्वेन्सेस ऑफ मॉडर्निटी' (1990) में वैश्वीकरण की व्याख्या विस्तार पूर्वक की है। उन्होंने कहा

है कि आधुनिकता का बहुत बड़ा परिणाम वैश्वीकरण है, यह इसलिए कि वैश्वीकरण को समय और स्थान को सामाजिक जीवन नये सिरे से परिभाषित किया गया है, गिडिन्स इसे समय-स्थान दूरीकरण कहते हैं। इस अवधारणा से स्पष्ट होता है कि दुनिया में संचार और उत्पादन तथा विनिमय की जो जटिल व्यवस्था बनी है उसने सम्पूर्ण स्थानीयता को कमजोर कर दिया है। माइकल मन्न (1986) ने माना है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया नयी नहीं कही जा सकती है क्योंकि सांस्कृतिक लेनदेन एवं विभिन्न संस्कृतियों का प्रभाव (जैसे—ईसाइयत और इस्लाम का प्रभाव) कई शताब्दियों से चला आ रहा है और जिसने राष्ट्रों की सीमाओं को लांघा है। भूमंडलीकरण की शुरुआत मूल रूप से 16वीं शताब्दी के बाद हुई है जैसा की आर्थिक समाजशास्त्री वेलरस्टाइन ने अपनी पुस्तक 'वर्ल्ड सिस्टम एनालिसिस' में प्रस्तुत किया है कि भूमंडलीकरण की शुरुआत पूँजीवाद के उदय के साथ हुआ है।

इन्होंने तीन तरह की अर्थव्यवस्था की चर्चा की है:

1. कोर कंट्रीज- जिसमें अमेरिका और यूरोप आदि देश आते हैं।
2. सेमी पेरीफेरी- जिसमें सोवियत संघ और इंडिया आदि देश आते हैं।
3. पेरीफेरी- इसमें पाकिस्तान, नेपाल, भूटान आदि देश आते हैं।

कोर कंट्रीज को वैलेंटाइन ने कहा कि संपूर्ण अर्थव्यवस्था एकीकृत अर्थव्यवस्था है जो पूरे विश्व में पाई जाती है यानी पूरा विश्व अर्थव्यवस्था का अंग है जैसे- बाजार, राज्य, औद्योगीकरण शुरू हुआ। वेलरस्टाइन ने दो प्रमुख बातें कहीं हैं:

1. पूरे विश्व स्तर पर एक ही अर्थव्यवस्था है। (पूंजीवाद में)
2. पूरे विश्व में हर देश की आर्थिक एवं राजनीतिक और सांस्कृतिक संस्था अलग-अलग है।

लेकिन मूल रूप से भारत में भूमंडलीकरण की शुरुआत नरसिम्हा राव की सरकार से शुरू हुआ जिसमें एलपीजी (उदारीकरण, निजीकरण, भूमंडलीकरण) की अवधारणा दी गयी। यानी भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था का अंग बना दिया गया और यह इसलिए जरूरी हो गया क्योंकि 20वीं शताब्दी के 1990 दशक में समाजवादी अर्थव्यवस्था का पतन हो गया। रूस तथा चीन में भी पूंजीवाद आ गया।

एन्थोनी गिडेंस ने 'कंसीक्वेंस ऑफ मॉडर्निटी 1990' में उन्होंने वैश्वीकरण की चार विशेषताओं की चर्चा की।

1. पूंजीवाद अर्थव्यवस्था।
2. राज्य एवं राष्ट्र की स्वायत्तता।
3. अंतर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन।

4. सैनिक अवस्था का उदय।

इसके अलावा वैश्वीकरण की निम्न विशेषताएं हैं:

1. मुक्त बाजार।
2. कॉर्पोरेट केपीटलाइज्म (सहभागी अर्थव्यवस्था)।
3. बहुराष्ट्रीय कंपनियों का उदय होना।
4. सांस्कृतिक समरूपता।
5. मैकडोनाल्ड-करण।
6. नागरिक स्वतंत्रता।
7. सार्वजनिक शिक्षा (शिक्षा का सार्वजनिक हो जाना)।
8. औद्योगिक औद्योगिकीकरण का हस्तांतरण।
9. प्रजातंत्रीकरण।
10. सूक्ष्म शक्ति का उदय होना (निगरानी)।
11. आर्थिक नियम में उदारीकरण लाना (गैर नौकरशाहीकरण)।
12. भूमंडलीकरण के रॉबर्टसन के अनुसार स्थानीयकरण और सार्वभौमीकरण को जोड़ना और यह इसलिए संभव हुआ क्योंकि संचार अर्थव्यवस्था में क्रांति।
13. पर्यावरण सुरक्षा यानी सतत आर्थिक विकास।

संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम (2000) के अंतर्गत प्रकाश मानव संसाधन रिपोर्ट में कहा गया है कि आधुनिक युग वस्तुतः वैश्वीकरण का युग है। इस रिपोर्ट ने वैश्वीकरण की चार विशेषताओं द्वारा परिभाषित किया है।

1. नये बाजार : विदेशी विनिमय और पूंजी बाजार वैश्वीय स्तर पर जुड़े हुए हैं और ये बाजार 24 घंटे काम करते रहते हैं। उनके लिए भौतिक दूरियां कोई अर्थ नहीं रखतीं।
2. नये उपकरण : आज के विश्व में लोगों के लिए नये उपकरण आ गये हैं, इनमें इंटरनेट लिंक्स, स्मार्ट फोन्स, मीडिया तंत्र इत्यादि सम्मिलित हैं।
3. नये एक्टर या कर्ता : वैश्वीकरण की प्रक्रिया ऐसी है जिसमें कार्यों का सम्पादन करने के लिए कई कर्ता है। इन कर्ताओं में विश्व व्यापार संगठन, गैर सरकारी संगठन, रेड क्रास इत्यादि सम्मिलित हैं।
4. नये नियम : अब सारे काम संविदा के माध्यम से होते है, बहुराष्ट्रीय कंपनियां दुनिया भर के राष्ट्र राज्यों के साथ सीधा व्यापार समझौता करती हैं जो वैश्वीकरण के आर्थिक और सांस्कृतिक कार्य।

 ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

हेल्ड (1995) का कहना है कि भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया न तो पूर्णतया नवीन है और न मुख्य रूप से आधुनिक सामाजिक प्रघटना है। अपितु समय समय पर इसका स्वरूप बदलता रहा है तथा इसने मानव अंतर्क्रिया के मूल विचार क्षेत्र को प्रभावित किया है। यद्यपि भूमण्डलीकरण की वर्तमान पद्धति इशारा करती है कि इसके एक भिन्न ऐतिहासिक रूप की और जो स्वयं सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व प्रौद्योगिक शक्तियों की विलक्षण घटनाओं की देन है। हेल्ड ने भूमण्डलीकरण के चार चरण बताये हैं:

1. पूर्व आधुनिक
2. प्रारम्भिक आधुनिक
3. आधुनिक
4. वर्तमान

ऐतिहासिक संदर्भ में:

1. 1.पूर्व आधुनिक 1500 ए०डी० काल में भूमंडलीकरण के प्रमुख कारकों के तीन चरण थे राजनीतिक व सैनिक साम्राज्य, विश्व धर्म तथा खानाबदोश समूहों की प्रवासी गतिशीलता। मध्य एशिया के लोग तथा वहां के कृषक समाज। इस संदर्भ में भूमंडलीकरण को अंतर क्षेत्रीय तथा अंतर सभ्यता वादी मुठभेड़ के रूप में देखा जाता है।
2. प्रारंभिक आधुनिक काल 1500 ए० डी० से 1800 ए० डी० में भूमंडलीकरण के कई कारक थे। पश्चिम के उदय को भूमंडलीकरण के मुख्य कारक का श्रेय प्राप्त है। जिसमें वें ऐतिहासिक प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं जिसकी देन है- यूरोपीय आधुनिकता के मुख्य संस्थाओं का उदय व विकास, उनकी अन्य सभ्यताओं की तुलना में प्रौद्योगिकी वह शक्ति स्रोतों की श्रेष्ठता तथा आगामी वैश्विक साम्राज्य का निर्माण।
3. आधुनिक काल लगभग 1850 ए० डी० से 1945 ए० डी० तक उसे वैश्विक परिपथ व प्रवाह के विस्तार व गहनता में तीव्र वृद्धि का साक्षी है जिसकी शुरुआत प्रारंभिक आधुनिक काल में हुई। इन नवीन परिवर्तनों के शोषण तक वैश्विक पश्चिमी साम्राज्य के विस्तार से पश्चिम आर्थिक शक्ति व सांस्कृतिक प्रभाव में तीव्र प्रति हुई है। इस युग में भूमंडलीकरण के गहन विस्तृत व सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण पद्धतियों को देखा गया है।
4. वर्तमान स्वरूप 1945 के आगे में विश्व युद्ध के संरचनात्मक परिणाम से भूमंडलीकरण में गहन आकार प्राप्त किया तथा बहुउद्देशीय व्यापार समझौते के नियंत्रण पर नियमन से विश्व स्तर पर राष्ट्र राज्य का उदय हुआ। इस युग में यातायात व संचार के आवश्यक बुनियादी ढांचे में परिवर्तन तथा वैश्विक शासन व नियमन के संस्था के अनोखे भाग्य का उदय हुआ है।

ऐतिहासिक संदर्भ में

1. पूर्व आधुनिक 1500 ए०डी० काल में भूमंडलीकरण के प्रमुख कारकों के तीन चरण थे राजनीतिक व सैनिक साम्राज्य, विश्व धर्म तथा खानाबदोश समूहों की प्रवासी गतिशीलता। मध्य एशिया के लोग तथा वहां के कृषक समाज। इस संदर्भ में भूमंडलीकरण को अंतर क्षेत्रीय तथा अंतर सभ्यता वादी मुठभेड़ के रूप में देखा जाता है।
2. प्रारंभिक आधुनिक काल 1500 ए० डी० से 1800 ए० डी० में भूमंडलीकरण के कई कारक थे। पश्चिम के उदय को भूमंडलीकरण के मुख्य कारक का श्रेय प्राप्त है। जिसमें वें ऐतिहासिक प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं जिसकी देन है- यूरोपीय आधुनिकता के मुख्य संस्थाओं का उदय व विकास, उनकी अन्य सभ्यताओं की तुलना में प्रौद्योगिकी वह शक्ति स्रोतों की श्रेष्ठता तथा आगामी वैश्विक साम्राज्य का निर्माण।
3. आधुनिक काल लगभग 1850 ए० डी० से 1945 ए० डी० तक उसे वैश्विक परिपथ व प्रवाह के विस्तार व गहनता में तीव्र वृद्धि का साक्षी है जिसकी शुरुआत प्रारंभिक आधुनिक काल में हुई। इन नवीन परिवर्तनों के शोषण तक वैश्विक पश्चिमी साम्राज्य के विस्तार से पश्चिम आर्थिक शक्ति व सांस्कृतिक प्रभाव में तीव्र प्रति हुई है। इस युग में भूमंडलीकरण के गहन विस्तृत व सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण पद्धतियों को देखा गया है।
4. वर्तमान स्वरूप 1945 के आगे में विश्व युद्ध के संरचनात्मक परिणाम से भूमंडलीकरण में गहन आकार प्राप्त किया तथा बहुउद्देशीय व्यापार समझौते के नियंत्रण पर नियमन से विश्व स्तर पर राष्ट्र राज्य का उदय हुआ। इस युग में यातायात व संचार के आवश्यक बुनियादी ढांचे में परिवर्तन तथा वैश्विक शासन व नियमन के संस्था के अनोखे भाग्य का उदय हुआ है।

एक वैचारिकी के रूप में

वैश्वीकरण की प्रक्रिया से आज विश्व का कोई भी देश अछूता नहीं रह गया है। प्रारम्भ में वैश्वीकरण को विकासशील देशों को प्रभावित करने वाली एक आर्थिक प्रक्रिया के रूप में देखा गया परन्तु पिछले एक दशक में इस प्रक्रिया ने गति पकड़ी तथा धीरे-धीरे इसने सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया। इसका क्षेत्र आज केवल विकासशील देशों तक ही सीमित नहीं रह गया है अपितु इससे पश्चिमी जगत के सभी देश भी प्रभावित हो रहे हैं। वैश्वीकरण को गतिवान बनाने में नवीन संचार प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वास्तव में सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से आ रही इस क्रान्ति ने समाज के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। मोटे तौर पर, वैश्वीकरण को परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो विश्व के सभी क्षेत्रों जैसे—सामाजिक, प्रौद्योगिक, राजनीतिक, संचार माध्यमों, संस्कृति एवं पर्यावरण आदि को प्रभावित करती है। हेल्ड

(1999) के अनुसार इसे समकालीन सामाजिक जीवन के सभी पक्षों में व्याप्त विश्वव्यापी अंतः संबद्धता को विस्तारित, तीव्र एवं गहन करने की प्रक्रिया के रूप में विचारा जा सकता है। वैश्वीकरण के अंत संबद्धता वाले पक्ष पर प्रायः सभी विद्वान सहमत हैं परन्तु उसके अन्य पक्षों को लेकर उनमें भारी मतभेद देखा जा सकता है। इन्हें प्रमुख रूप से मुख्य तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है:

1. अतिवैश्वीकरणवादी (Hyperglobalizers)
2. अतिसंशयवादी (Sceptics)
3. रूपान्तरणवादी (Transformationalists)

1. अतिवैश्वीकरणवादी

इनके अनुसार वैश्वीकरण एक नये युग का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विश्वस्तर पर सभी प्रकार के सम्बन्धों का एकीकरण राष्ट्रों की सीमाओं का एकीकरण करते हुए हो रहा है। जिससे धीरे-धीरे उनका महत्त्व घट रहा है। पूंजी, उत्पादों, विचारों व व्यक्तियों का राष्ट्रीय सीमाओं से परे बढ़ता हुआ प्रवाह इस नवीन युग के आगमन में एक महत्वपूर्ण कारक की भूमिका निभा रहा है। इस श्रेणी के विद्वानों को पुनः दो उप-श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है : सकारात्मक अतिवैश्वीकरणवादी तथा नकारात्मक अतिवैश्वीकरणवादी।

2. अतिसंशयवादी (Sceptics)

इस श्रेणी के विद्वान मुख्यतः वैश्वीकरण के आर्थिक पक्ष पर बल देते हैं तथा उनका तर्क है कि इस आर्थिक एकीकरण की प्रक्रिया में कुछ भी नया नहीं है तथा वे इसकी तुलना प्रथम विश्वयुद्ध से पहले के विश्वव्यापी व्यापार संबंधों से करते हुए वैश्वीकरण के स्थान पर 'अन्तर्राष्ट्रीयकरण' शब्द के उपयोग को अधिक उचित मानते हैं। इनका यह भी मानना है कि राष्ट्रों की भूमिका में किसी भी प्रकार की कमी नहीं आने वाली है तथा वे पहले की भाँति ही सुदृढ़ रहेंगे।

3. रूपान्तरणवादी (Transformationalists)

रूपान्तरणवादी विद्वानों का दृष्टिकोण प्रथम दो श्रेणियों के विद्वानों की तुलना में अधिक व्यापक है। इनके अनुसार विश्व के विभिन्न देशों में ही रहे प्रमुख सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तनों की पृष्ठभूमि से संचालित करने वाली केन्द्रीय शक्ति वैश्वीकरण की है जिसका उद्भव तकनीकी, आर्थिक गतिविधियों, शासन, संचार आदि क्षेत्रों में ही रही निकट रूप से अंतः सम्बन्ध परिवर्तनों के फलस्वरूप हुआ है। इन क्षेत्रों में हो रहे विकास एक दूसरे को मजबूती प्रदान करने वाले हैं अथवा इतने लचीले हैं कि यह कहना अत्यधिक कठिन हो जाता है कि इनमें से किसे कारण माने और किसे परिणाम? वस्तुतः वैश्वीकरण की प्रक्रिया ऐतिहासिक क्षेत्रों में राष्ट्रीय सीमाओं से परे होने वाले प्रवाह सभी राष्ट्रों को एक विश्वव्यापी व्यवस्था के अन्तर्गत एकीकृत कर रहे हैं।

निष्कर्ष

वैश्वीकरण का वास्तविक संचालन मुख्यतः बड़े नगरों के मध्य होता है। इन विश्व नगरों का वैश्वीकरण के नीति-निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका है। ये नये आविष्कारों व संस्कृति उत्पाद के केन्द्र हैं, ये ऐसे बाजार हैं जहाँ से वित्तीय व सेवा उत्पादों की बिक्री अन्य क्षेत्रों को होती है। वैश्वीकरण के युग में संस्कृति का मिलन हुआ है, दुनिया भर में लोगों की जीवन पद्धति एक जैसी हो रही है, एक साझा-संस्कृति उत्पन्न हुई है। वैश्विक समाज एक मीडिया समाज बन गया है। वर्तमान वैश्विक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का बहुत बड़ा प्रभाव संस्कृति पर पड़ा है। आर्थिक गतिविधियों के वैश्वीकरण से सांस्कृतिक रूपान्तरण का नया दौर आ रहा है। संसार में सार्वभौमिक सांस्कृतिक उत्पाद पैदा हो रहे हैं। मतलब संस्कृति का वस्तुओं की तरह उत्पादन हो रहा है। वैश्विक संस्कृति जब स्थानीय संस्कृति के सम्पर्क में आती है तथा वैश्विक संस्कृति को वैधता पाने के लिए स्थानीय संस्कृति के साथ अनुकूलन अवश्य करना पड़ता है। इस प्रकार वैश्वीकरण का सम्बन्ध वस्तुतः पुनः स्थानीयता से भी है। इस अन्तःक्रिया से स्थानीयता ताकतवर व बहुलवादी बनती है। योगेन्द्र सिंह (2000) ने वैश्वीकरण के सन्दर्भ में पहचान की समस्या को उठाया है, भारत जैसे बहुलतावादी समाज में मूल्यों, संस्थानों और विचारधाराओं में तीव्रता से परिवर्तन आ रहा है। हमारी जीवन पद्धति को बदल दिया है, उपभोग के प्रतिमान में उलट-फेर हुआ है, सांस्कृतिक उत्पादन को बाज़ार के माध्यम से बदल दिया गया है। संविधान ने हमारे यहाँ जातियों, अल्पसंख्यकों, आदिवासियों, के विशेषाधिकार परिभाषित किये हैं तथा इनके विकास व संरक्षण के लिए संवैधानिक सुरक्षाएँ दी हैं, सांस्कृतिक स्वतन्त्रता देने की बात कही। लेकिन वैश्वीकरण से सजातीय संस्कृति आने से प्रत्येक एथनिक समूह की पहचान का सवाल भी आता है। इसके साथ स्थानीय या क्षेत्रीय मुद्दों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण हो रहा है, इससे क्षेत्रीयता की भावना बहुत अधिक सुदृढ़ हुई है।

सन्दर्भ

1. मैक्लुहान ,मार्शल. एंड फोर, क्यू. 1969, वार एंड पीस इन द ग्लोबल विलेज लंदनः एलेन लेन
2. रोबर्टसन, आर. 1992, ग्लोबलाइजेशन , लन्दन: सेज पब्लिकेशनवाटर्स,
3. वेलकम. (2002), ग्लोबलाइजेशन, न्यूयॉर्क: रूटलेज पब्लिकेशन.
4. वेलेरस्टाइन, आई. 1980, द मॉडर्न वर्ल्ड सिस्टम. न्यूयॉर्क: एकेडमिक पब्लिकेशन.
5. वेलेरस्टाइन, आई. 2004, वर्ल्ड सिस्टम एनालिसिस: एनइंट्रोडक्शन. डयूक यूनिवर्सिटी प्रेस.
6. गिडेन्स, एंथोनी. 1990, कान्सीक्वेंस ऑफ मॉडर्निटी. स्टैनफोर्ड. सी.ए. स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी.
7. ग्लोबल ट्रांसफॉर्मेशन, पब्लिक इकोनॉमिक्स एंड कल्चर. कैंब्रिज: पालिटी प्रेस.
8. दोषी, एस0एल0. 2005, मॉडर्निटी, पोस्ट मॉडर्निटी, एण्ड न्यू सोशियोलॉजिकल थिअरीज. जयपुर: रावत पब्लिकेशंस.
9. भार्गव,नरेश 2015, वैश्वीकरण, समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य. रावत पब्लिकेशन, जयपुर.
10. रोजनाऊ, जेम्स . एन. 1990, टर्बुलेंस इन वर्ल्ड पॉलिटिक्स . प्रिंसटन: यूनिवर्सिटी प्रेस.

भूराजनैतिक संघर्षों के दौरान निवेशक मनोविज्ञान का शेयर बाज़ार की अस्थिरता पर प्रभाव: भारतीय संदर्भ में एक अध्ययन

प्रा. श्रीराम बालेकर
अस़िस्टेंट प्रोफेसर
सुशीला सूर्यवंशी मैनेजमेंट इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी एडवांसमेंट, अमरावती

सारांश (Abstract)

वैश्विक स्तर पर भूराजनैतिक संघर्ष जैसे युद्ध, सीमा विवाद, आर्थिक प्रतिबंध तथा अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक तनाव वित्तीय बाजारों में अनिश्चितता और अस्थिरता उत्पन्न करते हैं। पारंपरिक वित्त सिद्धांत यह मानते हैं कि बाजार की चाल मुख्यतः आर्थिक मूलभूत तत्वों (fundamentals) पर आधारित होती है, किंतु व्यवहारिक वित्त (Behavioral Finance) यह सिद्ध करता है कि निवेशकों की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ भी बाजार की अस्थिरता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में भूराजनैतिक संघर्षों के दौरान निवेशक मनोविज्ञान का भारतीय शेयर बाजार की अस्थिरता पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है। रूस-यूक्रेन युद्ध, भारत-चीन सीमा तनाव तथा मध्य-पूर्व संघर्षों के दौरान भारतीय बाजारों (Sensex, NIFTY 50) के व्यवहार का विश्लेषण करते हुए यह पाया गया कि भय, झुंड व्यवहार (Herd Behavior), हानि-परहेज (Loss Aversion) तथा अति-प्रतिक्रिया (Overreaction) जैसे मनोवैज्ञानिक कारक बाजार की अल्पकालिक अस्थिरता को बढ़ाते हैं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भले ही दीर्घकाल में बाजार स्थिर हो जाता है, परंतु अल्पकाल में निवेशक मनोविज्ञान अत्यधिक उतार-चढ़ाव का प्रमुख कारण बनता है।

प्रस्तावना (Introduction)

शेयर बाजार किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का दर्पण माना जाता है। यह आर्थिक विकास, औद्योगिक उत्पादन, निवेश प्रवाह तथा वैश्विक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। जब वैश्विक स्तर पर युद्ध, सीमा विवाद या राजनीतिक अस्थिरता जैसी घटनाएँ घटित होती हैं, तब निवेशकों में अनिश्चितता की भावना उत्पन्न होती है। यह अनिश्चितता अक्सर बाजार में तीव्र उतार-चढ़ाव (Volatility) का कारण बनती है।

पारंपरिक वित्त सिद्धांत जैसे Efficient Market Hypothesis यह मानते हैं कि बाजार में उपलब्ध सभी सूचनाएँ कीमतों में समाहित होती हैं और निवेशक तार्किक निर्णय लेते हैं। किंतु वास्तविकता में देखा गया है कि संकट की परिस्थितियों में निवेशक भावनात्मक निर्णय लेते हैं। विशेष रूप से भारत जैसे उभरते हुए बाजार में, जहाँ विदेशी संस्थागत निवेशकों (FIIs) की बड़ी भूमिका है और खुदरा निवेशकों की संख्या तेजी से बढ़ी है, मनोवैज्ञानिक प्रभाव और भी अधिक स्पष्ट दिखाई देता है।

भूराजनैतिक संघर्षों के दौरान भय, असुरक्षा, अफवाहें और मीडिया कवरेज निवेशकों की सोच को प्रभावित करते हैं। परिणामस्वरूप बाजार में अत्यधिक खरीद-फरोख्त, पूंजी का बहिर्गमन तथा मूल्य अस्थिरता देखने को मिलती है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य भारतीय संदर्भ में इस मनोवैज्ञानिक प्रभाव का गहन विश्लेषण करना है।

सैद्धांतिक आधार

इस शोध का आधार व्यवहारिक वित्त सिद्धांत है। डेनियल काह्नमैन और अमोस टवर्स्की द्वारा प्रतिपादित Prospect Theory के अनुसार निवेशक लाभ की अपेक्षा हानि से अधिक भयभीत होते हैं। जब बाजार में गिरावट आती है, तब निवेशक संभावित हानि से बचने के लिए जल्दबाजी में अपने शेयर बेच देते हैं। यह व्यवहार बाजार में गिरावट को और तेज कर देता है।

झुंड व्यवहार (Herd Behavior) भी एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक कारक है। निवेशक अक्सर दूसरों को देखकर निर्णय लेते हैं। यदि बड़े निवेशक या संस्थाएँ शेयर बेचती हैं, तो छोटे निवेशक भी बिना विश्लेषण किए वही कदम उठाते हैं। भारत में सोशल मीडिया, वित्तीय समाचार चैनलों और ऑनलाइन ट्रेडिंग प्लेटफॉर्म के बढ़ते प्रभाव के कारण यह प्रवृत्ति और भी बढ़ गई है।

इसके अतिरिक्त, अति-प्रतिक्रिया (Overreaction) और उपलब्धता पूर्वाग्रह (Availability Bias) भी बाजार को प्रभावित करते हैं। जब मीडिया में युद्ध या संघर्ष से संबंधित नकारात्मक समाचारों की अधिकता होती है, तो निवेशक दीर्घकालिक प्रभावों को बढ़ा-चढ़ाकर आंकते हैं और तुरंत प्रतिक्रिया देते हैं।

भारतीय शेयर बाजार पर भूराजनैतिक संघर्षों का प्रभाव

भारत एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था है और वैश्विक व्यापार एवं ऊर्जा आयात पर निर्भर है। इसलिए अंतरराष्ट्रीय संघर्षों का सीधा प्रभाव भारतीय बाजार पर पड़ता है। उदाहरण के लिए, रूस-यूक्रेन युद्ध के दौरान कच्चे तेल की कीमतों में वृद्धि हुई, जिससे भारत में महंगाई की आशंका बढ़ी और बाजार में गिरावट देखी गई। प्रारंभिक दिनों में NIFTY और Sensex में तेज गिरावट आई, जो मुख्यतः निवेशकों की भावनात्मक प्रतिक्रिया का परिणाम थी।

 ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

भारत-चीन सीमा तनाव (2020) के दौरान भी बाजार में अनिश्चितता देखी गई। हालांकि आर्थिक गतिविधियाँ प्रभावित नहीं हुई थीं, फिर भी निवेशकों में भय की भावना ने बाजार को अस्थिर कर दिया। जैसे-जैसे स्थिति नियंत्रण में आई, बाजार पुनः स्थिर हो गया। यह दर्शाता है कि प्रारंभिक अस्थिरता का कारण मनोवैज्ञानिक प्रभाव था, न कि वास्तविक आर्थिक क्षति।

मध्य-पूर्व के संघर्षों का प्रभाव भी भारतीय बाजार पर पड़ता है, क्योंकि भारत अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं के लिए इस क्षेत्र पर निर्भर है। जैसे ही तेल आपूर्ति में बाधा की आशंका उत्पन्न होती है, बाजार में तुरंत प्रतिक्रिया देखी जाती है।

निवेशक मनोविज्ञान और अस्थिरता का संबंध

भूराजनैतिक संकट के समय निवेशक जोखिम से बचने की प्रवृत्ति अपनाते हैं। वे इक्विटी से हटकर सोना, सरकारी बॉन्ड या फिक्स्ड डिपॉजिट जैसे सुरक्षित निवेश विकल्पों की ओर रुख करते हैं। भारत में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से स्पष्ट है, जहाँ संकट के समय सोने की कीमतों में वृद्धि देखी जाती है।

इसके अतिरिक्त, विदेशी संस्थागत निवेशक संकट की स्थिति में उभरते बाजारों से पूंजी निकाल लेते हैं। इससे भारतीय बाजार में अचानक गिरावट आती है। घरेलू संस्थागत निवेशक कुछ हद तक संतुलन बनाए रखते हैं, परंतु अल्पकालिक अस्थिरता बनी रहती है।

India VIX (Volatility Index) के आंकड़े बताते हैं कि भूराजनैतिक तनाव के समय अस्थिरता सूचकांक में तीव्र वृद्धि होती है। यह निवेशकों की बढ़ती चिंता और भय को दर्शाता है।

नीतिगत एवं व्यावहारिक निहितार्थ

निवेशकों के लिए यह आवश्यक है कि वे भावनात्मक निर्णय लेने से बचें और दीर्घकालिक दृष्टिकोण अपनाएँ। पोर्टफोलियो विविधीकरण (Diversification) तथा जोखिम प्रबंधन रणनीतियाँ संकट के समय सहायक सिद्ध होती हैं।

नियामक संस्थाएँ जैसे SEBI और RBI बाजार की स्थिरता बनाए रखने के लिए सर्किट ब्रेकर और तरलता प्रबंधन जैसे उपाय अपनाती हैं। निवेशकों को व्यवहारिक वित्त के सिद्धांतों की जानकारी देना भी आवश्यक है ताकि वे संकट के समय संतुलित निर्णय ले सकें।

निष्कर्ष (Conclusion)

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भूराजनैतिक संघर्षों के दौरान भारतीय शेयर बाजार में अस्थिरता केवल आर्थिक कारकों के कारण नहीं होती, बल्कि निवेशकों की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भय, झुंड व्यवहार, हानि-परहेज तथा अति-प्रतिक्रिया बाजार में अल्पकालिक उतार-

चढ़ाव को बढ़ाते हैं। हालांकि दीर्घकाल में बाजार अपनी मूलभूत स्थिति के अनुसार संतुलित हो जाता है, परंतु अल्पकाल में मनोवैज्ञानिक प्रभाव अत्यधिक अस्थिरता उत्पन्न करता है।

संदर्भ सूची

1. *Baker, M., & Wurgler, J. (2007). निवेशक भावना और शेयर प्रतिफल. Journal of Economic Perspectives, 21(2), 129–152. https://doi.org/10.1257/jep.21.2.129*
2. *Bekaert, G., Harvey, C. R., & Ng, A. (2005). बाजार एकीकरण और अस्थिरता संचरण. Journal of Finance, 60(1), 39–69. https://doi.org/10.1111/j.1540-6261.2005.00729.x*
3. *Bloom, N. (2009). अनिश्चितता और आर्थिक गतिविधि पर उसका प्रभाव. Econometrica, 77(3), 623–685. https://doi.org/10.3982/ECTA6248*
4. *Engle, R. F. (1982). ऑटोरेग्रेसिव कंडीशनल हेटेरोस्केडास्टिसिटी और यूके मुद्रास्फीति का आकलन. Econometrica, 50(4), 987–1007.*
5. *Fama, E. F. (1970). कुशल पूंजी बाजार: सिद्धांत और अनुभवजन्य परीक्षण. Journal of Finance, 25(2), 383–417.*
6. *Kahneman, D., & Tversky, A. (1979). प्रॉस्पेक्ट थ्योरी: जोखिम के अंतर्गत निर्णय का विश्लेषण. Econometrica, 47(2), 263–291.*
7. *Shiller, R. J. (2000). Irrational Exuberance (अतार्किक उत्साह). प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस.*
8. *Shefrin, H. (2007). Behavioral Corporate Finance: Decisions That Create Value (व्यवहारिक कॉरपोरेट वित्त). मैकग्रा-हिल/इरविन.*

9. *Thaler, R. H. (2015). Misbehaving: The Making of Behavioral Economics (व्यवहारिक अर्थशास्त्र का विकास). डब्ल्यू. डब्ल्यू. नॉर्टन एंड कंपनी.*
10. *Balcilar, M., Gupta, R., & Pierdzioch, C. (2018). भू-राजनीतिक जोखिम और शेयर बाजार अस्थिरता. Journal of Applied Economics, 21(1), 61–83.*
11. *Caldara, D., & Iacoviello, M. (2018). भू-राजनीतिक जोखिम सूचकांक (Geopolitical Risk Index). American Economic Review, 108(4–5), 1194–1225.*
12. *Pastor, L., & Veronesi, P. (2012). राजनीतिक अनिश्चितता और शेयर बाजार. Journal of Finance, 67(4), 1219–1264.*
13. *Gupta, R., & Goldar, B. (2005). भारतीय उद्योग में अस्थिरता और आर्थिक सुधार. Economic and Political Weekly, 40(44–45), 4749–4755.*
14. *Reserve Bank of India (RBI). (2022). वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट (Financial Stability Report). भारतीय रिजर्व बैंक.*
15. *Securities and Exchange Board of India (SEBI). (2023). भारतीय प्रतिभूति बाजार वार्षिक रिपोर्ट. सेबी प्रकाशन.*
16. *National Stock Exchange of India (NSE). (2022). India VIX पद्धति एवं बाजार अस्थिरता विश्लेषण रिपोर्ट. एनएसई प्रकाशन.*
17. *Bombay Stock Exchange (BSE). (2022). Sensex ऐतिहासिक डेटा रिपोर्ट. बीएसई प्रकाशन.*
18. *कोठारी, सी. आर., एवं गर्ग, जी. (2019).* अनुसंधान पद्धति: विधियाँ एवं तकनीकें *(चौथा संस्करण). न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स.*
19. *कुमार, रंजीत. (2019).* अनुसंधान पद्धति: शुरुआती शोधकर्ताओं के लिए चरणबद्ध मार्गदर्शिका *(पाँचवाँ संस्करण). सेज पब्लिकेशन्स.*

छत्तीसगढ़ के हिन्दी नाट्य लेखन की परम्परा

डॉ.शिशु कुमार सिंह

नाट्य लेखन जीवनमुखी दर्पण हैं जिसमें जीवन के सत्य को ही देखा जा सकता हैं। कथा,संवाद और पात्र के माध्यम से नाटककार जीवन का पुर्नलेखन करता हैं । छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी में समय के अनुरूप हस्तांतरित होती रही हैं। आधुनिक साहित्य लेखन में भी यहाँ के साहित्यकारों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया है। भारतेन्दु के समय से ही छत्तीसगढ़ में भी आधुनिक नाट्य लेखन की शुरुआत हुई थी। ठाकुर जगमोहन सिंह जब काशी में अध्ययन कर रहे थे उस समय उनकी मुलाकात भारतेन्दु हरिश्चंद और उनके साहित्य मंडली से हुई थी । ऐसा माना जाता हैं कि ठाकुर जगमोहन सिंह और भारतेन्दु हरिश्चंद अच्छे मित्र थे । राजकमल नायक ने ठाकुर जगमोहन सिंह के बारे मे एक आलेख में कहा है कि "भारतेन्दु से घनिष्ठता और उनकी लेखन शैली से अभिभूत जगमोहन सिंह ने काव्य रचना, अनुवाद, कल्पना प्रधान उपन्यास के अलावा 1886 के आसपास 'हुक्के वाले का नाटक' प्रहसन् लिखा। इस अदभुत प्रहसन् में भारतेन्दु युग की झलक साफ़ देखी जा सकती है"।[50]

जगमोहन सिंह के नाट्य परंपरा की शुरुआत के प्रमाण से छत्तीसगढ़ में हिन्दी रंगमंच पर भारतेन्दु शैली का प्रभाव पड़ना शुरू हुआ होगा । जगमोहन सिंह के बाद नाटककार पं. अनन्तराम पांडेय ने 'कपटी मुनि' नाटक लिखा जिसका प्रकाशन सन् 1903 में भारत जीवन प्रेस काशी से हुआ था। छायावाद के प्रवर्तक कवि पंडित मुकुटधर पांडेय के अनुसार "कपटी मुनि का छत्तीसगढ़ में बहुत प्रचार था, हम लोगों ने इसे कई बार मंचित किया था। कपटी मुनि का आधार रामचरित मानस का बालकांड है, इसमें माया और कपट का निरूपण हुआ है। इसमें राक्षस कालकेतु का शूकर बनना एक ही क्षण में कपटी मुनि के आश्रम से मंत्रबल से अपने राज्य में पहुँचना, भोजन में छल से मांस डालना, डिम के

[50] शर्मा डॉ. कुंजबिहारी, छत्तीसगढ़-हिन्दी रंगमंच, वैभव प्रकाशन रायपुर (छ.ग.)राजकमल नायक, 2010,पृष्ठ- 38

लक्षणों को पूरा करते हैं। और यह इकलौता डिम है जो कि नाट्य साहित्य के इतिहास में बेहद महत्व रखता है"। [51]

सन् 1905 में पं. लोचन प्रसाद पाण्डेय ने कलिकाल नामक नाटक लिखा। इस नाटक को छत्तीसगढ़ का प्रथम नाटक भी कहा जाता हैं। इस आधार पर माना जा सकता है कि आधुनिक नाट्य लेखन का आरंभ बीसवीं सदी में हुआ होगा। विमल कुमार पाठक ने छत्तीसगढ़ साहित्य के इतिहास में कलिकाल नाटक की चर्चा की है वे कहते है कि "छत्तीसगढ़ में हिन्दी नाटक का उद्भव भारतेंदु युगीन है। ग्रन्थ छत्तीसगढ़ी व्याकरण के बाइसवें अध्याय में संकलित ग्रामीण जनों का वार्तालाप इसका आरंभिक स्वरूप कहा जा सकता है। सन् उन्नीस सौ पांच के हिंदी मास्टर में प्रकाशित 'कलिकाल' स्वर्गीय लोचन प्रसाद पाण्डेय द्वारा प्रणीत चंद्रपुर की बोली मिश्रित छत्तीसगढ़ी हिन्दी नाटक है"।[52]

"स्वर्गीय लोचन प्रसाद पाण्डेय के बाद पं. शुकलाल प्रसाद पाण्डेय ने स्कूली शिक्षा के अनुरूप छोटे-छोटे नाटको की रचना की जैसे - 'केकरा-धरैया', 'खीरा-चोट्टा', 'सीख देवइया', 'उपसहा दमाद बाबू' हास्य प्रधान रचनाएँ है। सामाजिक सरोकार के नाटकों में 'गंवई बर अंजोर' नाटक में गांव के विकास में ग्रामीणजन की भागीदारी को आवश्यक बताया है"।[53]

नाट्य साहित्य में भी बख्शी जी ने अपनी कलम चलाई है-यद्यपि कहानियों की तरह नाट्य लेखन भी बहुत कम किया है। बख्शी जी के तीन नाटक -"बख्शी जी की तीन नाट्य पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।1. प्रायश्चित (1916)2. त्रिपथगा (1965) 3. भोला (1959)"[54]

"प्रायश्चित- यह नाटक मेटर लिंक के नाटक का छायानुवाद है। 1916 में प्रतिष्ठत साहित्यकार नाथूराम प्रेमी जी ने इसे अपने संस्थान हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर से प्रकाशित कराया। यह नाटक कभी पाठ्यपुस्तक के रूप में भी स्वीकृत रहा है। पं. मुरलीधर पाण्डेय ने गांधी जी के उद्देश्यों को जन-जन तक पहुंचाने के लिए "विश्वास" नामक नाटक लिखा, इस नाटक में सत्य और अहिंसा के माध्यम से "बलिपूजा" का विरोध किया गया। "विस्वास को 1943 में "छत्तीसगढ़ केसरी" में प्रकाशित किया गया था"।[55]

---

[51] शर्मा डॉ. कुंजबिहारी, छत्तीसगढ़-हिन्दी रंगमंच, वैभव प्रकाशन रायपुर (छ.ग.) डॉ. बलदेव छत्तीसगढ़, 2010, पृष्ट-5

[52] पाठक विमल कुमार , छत्तीसगढ़ साहित्य के इतिहास अध्ययन , आशु प्रकाशन,रायपुर, , पृष्ट-320

[53] चौबे योगेन्द्र, रंगमंच का भारतीय परिदृश्य,प्रकाशक–सर्वप्रिय प्रकाशक,202,पृष्ठ-7

[54] बख्शी पदुमलाल पुन्नालाल,2005, पृष्ठ-172

[55] तिवारी नंदकिशोर, छत्तीसगढ़ी साहित्य दशा और दिशा,वैभव प्रकाशन,2010 पृष्ठ-8

छत्तीसगढ़ के नाटककरों ने लगभग सभी विषय को लेकर नाटक लिखा और अधिकतर नाटककारों ने समाज में फैले अंधविश्वास, ग्रामीण जनों का अधिकार, नारी को समाज में बराबरी का अधिकार दिलाने जैसे विषय शामिल थे। 1950 में टिकेन्द्रनाथ टिकरहा ने "साहूकार से छुटकारा" नाटक के माध्यम से साहू कारों के द्वारा ऋण के बोझ तले दबे ग्रामीणो के आवाज को उठाया। महेत्तर राम साहू की एकांकी 'कउवा लेगे कान, 'होही अंजोर 'मया के बंधना' छत्तीसगढ़ की सामाजिक झाँकी को प्रस्तुत करता है।

"छत्तीसगढ़ में 1905-1960 तक के समय को नाट्य लेखन का आरंभ मानाजा सकता हैं। इस अवधि के अधिकतर नाटक में समाज सुधार पर विशेष ज़ोर दिया गया था। उसी तरहा सन् 1960-2000 तक के समय को विकास काल कहा जा सकता हैं। स्वतंत्रता से पूर्व जहां सामाजिक सरोकार के नाटक लिखे जा रहे थे तो स्वतंत्रता के पश्चात धार्मिक नाटकों के विषय-वस्तु को भी लिया गया। सन् 1960-70 के बीच में धार्मिक कथाओं को आधार बना के नाटक लिखे गये।"उदयराम जी का छत्तीसगढ़ी रामचरित नाटक 1963, डॉ. रामलाल कश्यप का 'श्री कृष्णार्जुन युद्ध' 1965 औररतनपुर इस दौर के उल्लेखनीय नाटक हैं। "श्रीकृष्णार्जुन युद्ध" श्री माखनलाल चतुर्वेदी कृत "श्रीकृष्णार्जुन युद्ध" का आंचलिक संस्करण है, लेखक ने स्वयं 'लिखोइया के गोठ" में व्यक्तकिया है"।[56]

छत्तीसगढ़ के नाटककारों ने छत्तीसगढ़ के भौगोलिक परिस्थितियों को समझते हुए यहाँ के लोक जीवन के अनुरूप अपने-अपने नाट्य संरचना को विकसित किया, इसलिए यहाँ के नाटक में मनोरंजन के साथ-साथ छत्तीसगढियों के सुख-दुख का चित्रण देखने को मिलता हैं, कुछ ऐसे ही नाटक हैं जिन्होने छत्तीसगढ़ी लोक जीवन में अपनी पहचान बनाई हैं। इन नाटकों को छत्तीसगढ़ी लोक जीवन के अनुरूप लिखे गए हैं, इनमे से अधिकतर नाटक प्रकाशित भी नहीं हैं।

[56] तिवारी नंदकिशोर, छत्तीसगढ़ी साहित्य दशा और दिशा,वैभव प्रकाशन,2010,पृष्ठ-11

नाटक की सारिणी

क्रं	नाटक	नाटककार
1.	कलिकाल	पंडित लोचन प्रसाद पांडेय
2.	कलिकाल	पंडित लोचन प्रसाद पांडेय
3.	खीरा चोट्टा	पंडित शुकलाल प्रसाद पांडेय
4.	विश्वास	पंडित मुरलीधर पांडेय
5.	दु सौत	बाबू प्यारेलाल गुप्त
6.	छत्तीसगढ़ी रामचरित	उदयराम
7.	श्री कृष्णार्जुन युद्ध	डॉ रामलाल कश्यप
8.	साहूकार से छुटकारा	टिकेंद्र टिकरिहा
9.	सर्वनाश	टिकेंद्र टिकरिहा
10.	फन्दी	टिकेंद्र टिकरिहा
11.	बेटी के मंसूबा	लखन लाल गुप्त
12.	बर के खोज	लखन लाल गुप्त
13.	करम छड़हा	डॉ खूब चंद बघेल
14.	ऊंच-नीच	डॉ खूब चंद बघेल
15.	जरनैल सिंह	डॉ खूबचंद बघेल
16.	परेमा	डॉ नंदकिशोर तिवारी
17.	चरणदास चोर, आगरा बजार, मोर नाव दमाद गांव के नांव ससुराल	हबीब तनवीर
18.	अंधियारी रात	कपिल नाथ कश्यप
19.	नावा बिहान	कपिल नाथ कश्यप
20.	गोहार	कपिल नाथ कश्यप
21.	जाग छत्तीसगढ़ जाग	लखन लाल गुप्त
22.	मैं बईला नोंहव	डॉ परदेशी राम वर्मा
23.	अहिमन कैना	डॉ नंदकिशोर तिवारी
24.	नारद मोह	डॉ नंदकिशोर तिवारी
25.	उरुभंगम	डॉ नंदकिशोर तिवारी
26.	जस के तस	किसान दीवान
27.	घुरूवा के दिन फिरगे	विश्वेंद्र ठाकुर
28.	जवाहर बंडी	विश्वेंद्र सिंह ठाकुर
29.	राजिम	विश्वेंद्र ठाकुर
30.	. मया के मोटरी	पंडित श्याम लाल चतुर्वेदी
31.	जागे जागे सुतिहा गो!	रामनाथ साहू

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

32.	पीरा	डॉ सुरेंद्र दुबे
33.	जागे जागे सुतिहा गो!	रामनाथ साहू
34.	पीरा	डॉ सुरेंद्र दुबे
35.	मोर कुआं गंवागे	डॉ नंदकिशोर तिवारी
36.	रानी दई डभरा के	डॉ नंदकिशोर तिवारी
37.	हरदी पींयर झाँगा पागा	रामनाथ साहू
38.	ठोमहा भर चाउर	संतोष कुमार चौबे
39.	चूरी	शकुंतला तरार
40.	पटवारी के प्रपंच	रघुबर सिंह चंद्राकर
41.	मुड़पेलवा	रघुबर सिंह चंद्राकर
42.	. गुड़ी के गोठ	रघुबर सिंह चंद्राकर
43.	पहटिया	डॉ योगेंद्र चौबे
44.	बाबा पाखंडी	डॉ योगेंद्र चौबे
45.	रंग विहार	लोकनाथ साहू 'ललकार'
46.	अघनिया	घनश्याम साहू
47.	सबास बेटी / गुरावंट/ मोरो मन करथे (रेडियो नाटक)	नकुल जायसवाल
48.	हिरंउदी/चांदी के दोना (दूरदर्शन धारावाहिक)	नकुल जायसवाल
49.	दशमत कइना	दशमत कइना
50.	राजा फोकलवा	राकेश तिवारी
51.	बकासुर	अजय आठले
52.	अथ सिरी कचना घुरवा कथा	डॉ. नन्दकिशोर तिवारी

इस प्रकार है"।[57]

इसमे से अधिकतर नाटक प्रकाशित नहीं हुए क्योकि बहुत से नाटकार अपने नाटक को किसी और को खेलने नहीं देना चाहते थे, इसीलिए अधिकतर लोकनाट्य संस्थानों ने खुद के संस्था के लिए नाटक लिखवाये और संस्था की पहचान भी इन्हीं नाटकों से होती थी संस्था किसी नाटक को प्रकाशित

[57] वही

नहीं करना चाहती हैं कि कोई और इन नाटकों को अपने संस्था से न खेले। अब इसे दुर्भाग्य ही कहा जा सकता हैं की नाटक तो सैकड़ो लिखे गए मगर कुछ ही नाटक प्रकाशित हो पाये है। छत्तीसगढ़ में नाट्य लेखन की लम्बी परम्परा होने के बाद भी बाज़ार में नाटक की उपलब्धता न होना चिंता का विषय हैं। लेकिन कुछ ऐसे भी नाटककार हैं, जिनके नाटक प्रकाशित तो नहीं हुए हैं मगर उन नाटकों ने काफी प्रसिद्धि हासिल की हैं जिसमें मुख्य रूप से हैं प्रेम साइमन और अख्तर अली के नाटक हैं।, अख्तर अली के नाटक को देश की बहुत से नाट्य संस्था आज भी खेलती हैं। इनके नाटक ‘अनोखे लाल’ को काफी प्रसिद्धि मिली और वर्तमान समय में इनके अधिकतर नाटक देश में काफी खेले जा रहे हैं। प्रेम साइमन का नाटक मुर्गी वाला जिसके 1000 से भी अधिक शो हो चुके हैं। एक समय था जब इनके नाटकों की धूम थी। प्रदेश व प्रदेश के बाहर इनके नाटकों की चर्चा होती थी लेकिन आज दुर्भाग्यवस इनके नाटक की उपलब्धता खोजने से भी नहीं मिल पाती।

Technological Innovations in Film Lighting: Their Role in Shaping Indian Cinematic Aesthetics

Suhas U. Nagrale
Ph. D Film Studie M.G.A.H.V. Wardha

Abstract

This research paper explores the multifaceted evolution of film lighting technology in Indian cinema, charting its progress from the silent era to contemporary digital filmmaking. Lighting has always been more than just a technical necessity; it is a central expressive tool, shaping the emotional landscape, guiding narrative attention and constructing the visual grammar of films. In the expansive context of Indian cinema, innovations in lighting technology have influenced not only aesthetic values but also cultural representation, genre conventions and the accessibility of independent filmmaking. The paper delves into the chronological development of lighting equipment and practices from makeshift sunlight reflectors to advanced LED, DMX-controlled rigs and VFX integration. Through detailed case studies of landmark films and a comparative look at regional cinema, this analysis uncovers how lighting technologies have enabled storytelling diversity, established visual identities unique to Bollywood and other regional industries and fostered a balance between tradition and modernization. Further, the paper evaluates current trends such as energy-efficient lighting, virtual sets and AI-driven design and points toward future possibilities that may redefine the boundaries of Indian cinematic aesthetics.

Keywords: Film lighting, Indian cinema, visual aesthetics, technology, cinematography, innovation, Bollywood, regional cinema

Introduction

Cinema, as an art form, is an intricate amalgamation of storytelling, performance, sound and imagery. Among these, lighting plays a uniquely vital role—it shapes perception, dictates mood and serves as an invisible narrator guiding the audience's emotional journey. Lighting does not merely assist in visibility; it actively participates in the storytelling process by creating atmospheres, highlighting emotions and defining spatial relationships within a frame. In the context of Indian cinema, a country with one of the world's most prolific and culturally diverse film industries, lighting has carried both technical and cultural significance.

The trajectory of Indian cinematic lighting has been shaped by a complex interplay of technological advancements, cultural aesthetics and evolving audience expectations. From the early days of silent films, where natural light and improvised reflectors defined the visual style, to the present era of computer-controlled, high-efficiency LED setups and virtual production environments, film lighting in India has evolved in response to innovations in both local and global cinema.

Historically, innovations in lighting have not been adopted in isolation; they have interacted deeply with the narrative traditions, genre conventions and socio-political contexts in which Indian films are produced. For instance, the opulent lighting of historical epics mirrors the grandeur of Indian visual arts traditions, while the subdued, naturalistic tones of parallel cinema echo social realism and documentary aesthetics. Furthermore, regional cinemas Bollywood, Tollywood, Bengali art cinema have each adapted lighting technologies in distinct ways, reflecting their unique narrative needs and audience preferences.

Another dimension of lighting in the Indian cinematic aesthetic lies in its symbolic and emotional vocabulary. Colour temperature, shadows, lens flares and backlighting have been consciously used to evoke specific feelings: warm golden tones for nostalgia, deep blues for melancholy, stark contrasts for moral conflict

and saturated, multi-coloured lighting for festive exuberance. These aesthetic strategies evolved alongside technological capabilities, with each innovation whether the tungsten bulb, the HMI lamp, or programmable DMX control offering filmmakers new expressive tools. Through case studies of landmark films, discussions of regional trends and a close look at specific technological milestones, the paper aims to demonstrate that technological innovation in lighting is not merely a technical upgrade it is a transformative force, redefining the very aesthetic identity of Indian cinema over more than a century.

Historical Trajectory of Lighting in Indian Cinema

1. Silent Era and Early Sound (1896–1930s)

Early Indian filmmakers operated under significant technological constraints. The lack of indigenous manufacturing in film equipment meant reliance on natural light, lamps and basic reflectors. Dadasaheb Phalke’s Raja Harishchandra (1913), India's first feature, used daylight and open-air sets. Indoor scenes required creative solutions: mirrors and white sheets to bounce light, giving the early Indian silent films a distinct, high-contrast visual style.

Transition to sound in Alam Ara (1931) necessitated new lighting techniques to balance image exposure while accommodating sound recording equipment. The introduction of tungsten bulbs and carbon arc lamps improved consistency and enabled complex indoor scenes.

2. Studio System and Colour Films (1940s–1970s)

The expansion of studio complexes such as Gemini Studios (Chennai), Prabhat Studios (Pune) ushered in an era of controlled lighting environments. Fresnel spotlights, barn doors and soft boxes became routine, allowing directors to craft atmospheric interiors for melodramatic, mythological and historical genres.

Colour filmmaking, initiated with Kisan Kanya (1937), required precise control over lighting to maintain colour fidelity. Use of gels and diffusers helped achieve nuanced skin tones and vibrant costumes without undesirable shifts in hue. The spectacles of Mughal-e-Azam (1960) showcased massive sets illuminated

with hundreds of lights and subtle gradations of shadow, exemplifying the union of technology with narrative grandeur.

3. New Wave and Regional Cinema (1970s–1990s)

The emergence of parallel cinema and regional industries shifted aesthetic priorities towards realism. Filmmakers such as Satyajit Ray (Pather Panchali, 1955) and Mrinal Sen favored naturalistic lighting, often using available sunlight and minimal artificial sources to accentuate authenticity and intimacy.

Technological imports, particularly HMI (Hydrargyrum Medium-arc Iodide) lamps and portable generators, facilitated site-specific shooting. Cinematographers could now work outside studio confines, capturing India's diverse landscapes and cityscapes with refreshed perspective.

4. Digital Revolution and Contemporary Era (2000s–Present)

Advancements in digital lighting, LED technology and programmable DMX systems precipitated a radical transformation. Light rigs became more portable, energy-efficient and versatile. LED panels allowed filmmakers to shoot in remote locations without elaborate setup times, as seen in Lagaan (2001), where outdoor sports sequences were enhanced through strategic reflector and fill lighting.

Post-2000s, digital cameras with high ISO capabilities reduced reliance on heavy lighting units, democratizing production for independent filmmakers. Innovations such as chroma key technology and virtual lighting powered VFX-heavy spectacles like Mr. India (1987) and later, Baahubali series (2015–2017).

Key Technological Innovations

A. Lamp Technology

- **Carbon Arc Lamps:** Provided intense, focused beams for early studio shooting; vital for large set pieces.

- **Tungsten Bulbs:** Introduced mid-century, these standardized colour temperature and reduced flicker.
- **HMI Lights:** Used extensively since the 1980s, deliver daylight-equivalent light for outdoor and high-fidelity indoor shooting.
- **LED Panels:** Revolutionized portability; energy-efficient, offering variable colour temperature and dimming options.

B. Control and Modifiers

- **Gels and Filters:** For colour correction and mood enhancement; used to emulate candlelight, moonlight and stylized atmospheres.
- **Diffusers and Reflectors:** Enabled soft, flattering light, vital for close-ups and glamour in Bollywood musicals.
- **Fresnel Lenses and Barn Doors:** Focused and shaped light, allowing dynamic shadow play particularly in noir genres.

C. Digital and Virtual Lighting

- **DMX Lighting Systems:** Enabled remote programming and real-time changes, allowing directors to experiment with complex setups.
- **Chroma Key and Virtual Sets:** Blended live-action with CGI, demanding precise integration of practical and digital lighting.

Shaping Indian Cinematic Aesthetics

1. Genre-Specific Aesthetic Signatures

- **Mythological and Historical Epics (e.g., Mughal-e-Azam):** Used dramatic contrasts, rim lighting and shadow play to evoke grandeur and otherworldly ambience.
- **Musicals and Dramas:** Bolstered by colourful gels, soft key lighting and glamorous highlights, reinforcing escapist fantasy and romantic idealism.

- **Noir and Melodrama (e.g., Kagaz Ke Phool, 1959):** Exploited chiaroscuro, high contrast and backlighting, borrowing visual codes from German expressionism but infusing local realities.

2. Regional Cinematic Styles

- **South Indian Cinema:** Gemini Studios pioneered the blend of traditional stage lighting with film innovations, constructing hyperreal mythologies through vibrant coloured lights and elaborate sets.
- **Bengali Parallel Cinema:** Minimal, ambient lighting reflected urban and rural realism; Satyajit Ray often used single-source or bounced light to preserve organic textures.

3. Contemporary and Independent Movements

- **Realist Aesthetics:** With compact, battery-powered LED panels, gritty social dramas can shoot on-location, capturing the nuanced interplay of daylight, shadow and local atmospheres.
- **Experimental Films:** Free from studio imperative, indie productions experiment with LED spectral ranges, unconventional angles and mixed light sources, cultivating new expressive paradigms.

Impact on Narrative and Audience Engagement

Lighting technologies are not merely technical advances; they are narrative devices that shape the storytelling process:

- **Mood and Psychological Depth:** Creative light placement, colour wheels and temperature controls allow directors to visually signify emotional states, transitions, or climactic moments.
- **Symbolism and Motif:** Recurrent patterns (e.g., blue light for melancholy, golden light for nostalgia) infuse films with sub textual meaning.
- **Viewer Experience:** High definition and dynamic range provided by digital lights accentuate immersion, making cinema more visceral and immediate.

Representative Film Examples

- **Mughal-e-Azam (1960):** Emblematic for its epic-scale lighting design; meticulous arrangement of hundreds of spotlights for palace scenes, gels for stained-glass effects.
- **Mr. India (1987):** Iconic for the use of chroma key lighting to render invisibility, pushing the boundaries of Indian VFX integration.
- **Kagaz Ke Phool (1959):** Exemplifies noir lighting and shadow play; innovative use of skylights and diffused beams for psychological impact.
- **Dil Se (1998):** Digital lighting and colour grading produce moody, surreal atmospheres reflective of the protagonist's emotional journey.
- **Lagaan (2001):** Outdoor shooting masterclass in reflector use, fill lighting and balanced daylight shooting across vast natural terrains.

Challenges and Future Prospects

- **Cost and Accessibility:** While digital lighting lowers entry barriers, large-scale productions still demand substantial investment in high-powered fixtures and control systems.
- **Skill Development:** Cinematographers must adapt to ever-changing technological landscapes, acquiring technical and creative expertise.
- **Sustainability:** LEDs have set a precedent for energy efficiency, prompting industry-wide shifts towards sustainable practices.
- **Virtual Production:** Future cinema will likely see deeper integration of physical and digital lighting via real-time rendering, interactive sets and AI-driven design.

Conclusion

Technological innovations in film lighting have deeply influenced the look, feel and possibility of Indian cinema. While the evolution from natural light and simple reflectors to energy-efficient LEDs and virtual production systems has

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

enabled new expressive horizons, these tools remain integral to both cultural tradition and creative experimentation. The interplay of technological progress and artistic vision continues to enrich storytelling and visual experience in Indian films, promising ongoing transformation in the years to come.

References

1. *Baheti, J. R. (2001a). The evolution of independent filmmaking in India. In TechRxiv. Retrieved from https://www.techrxiv.org (Accessed 21 July 2024).*
2. *DAV University. (2023). A brief history of Indian cinema. Retrieved from https://davuniversity.org (Accessed 21 July 2024).*
3. *Literary Latitude. (2021). Indian cinema: History and uses. Retrieved from https://literarylatitude.com (Accessed 22 July 2024).*
4. *Purdue OWL. (2018). Reference list: Basic rules. Retrieved from https://owl.purdue.edu/owl/research_and_citation/apa6_style/apa_formatting_and_style_guide/reference_list_basic_rules.html*
5. *Ramoji Academy. (2020). The evolution of technology in Indian cinema. Retrieved from https://ramojiacademy.com (Accessed 22 July 2024).*
6. *School of Design DPU. (2022). Lights, camera, action! A journey through Bollywood's VFX revolution. Retrieved from https://dpu.edu.in (Accessed 21 July 2024).*
7. *Scribbr. (2020). Quick guide to APA citation (6th ed.): In-text citation & reference list. Retrieved from https://www.scribbr.com/apa-style/6th-edition/archived-reference-page/ (Accessed 21 July 2024).*
8. *Testbook. (2023). History of Indian cinema. Retrieved from https://testbook.com (Accessed 22 July 2024).*
9. *Monash University Library. (2012). Citing and referencing: Sample reference list. Retrieved from https://guides.lib.monash.edu/citing-referencing/apa-sample-reference-list (Accessed 21 July 2024).*
10. *Baheti, J. R. (2001). Evolution of Independent Filmmaking in India. In TechRxiv. Retrieved*

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

from https://www.techrxiv.org/users/623064/articles/1119282/master/file/data/Evolution%20of%20Independent%20Filmmaking%20in%20India/Evolution%20of%20Independent%20Filmmaking%20in%20India.pdf

11. *Halawi Media. (2018). Lighting Techniques for Bollywood Filmmakers. Retrieved from https://www.journals.halawi.org/lighting-techniques-bollywood-filmmakers*

डिजिटल युग में जनजातीय समाजः छत्तीसगढ़ के संदर्भ में एक अध्ययन

डॉ. पायल पोद्दार
सहायक प्राध्यापक, समाज कार्य विभाग
मैट्स यूनिवर्सिटी, रायपुर

सारांश

यह शोध पत्र डिजिटल युग में छत्तीसगढ़ राज्य के जनजातीय समाजों पर हो रहे बहुआयामी प्रभावों का एक व्यापक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस अध्ययन का प्राथमिक उद्देश्य यह समझना है कि डिजिटल प्रौद्योगिकियों का विस्तार जनजातीय समुदायों की आजीविका, शिक्षा, शासन तक पहुंच और सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान को किस प्रकार प्रभावित कर रहा है। द्वितीयक स्रोतों पर आधारित इस शोध में डिजिटल विभाजन की वर्तमान स्थिति, सूचना साक्षरता के स्तर, सरकारी डिजिटल पहलों (जैसे ईएमआरएस में डिजिटल उपकरण, नवगुरुकुल, डीबीटी पोर्टल) के प्रभाव, तथा इन क्षेत्रों में आने वाली चुनौतियों (भाषा अवरोध, कनेक्टिविटी, डिजिटल सुरक्षा, सांस्कृतिक क्षरण) का गहन विश्लेषण किया गया है। शोध निष्कर्ष बताते हैं कि जहाँ एक ओर सरकारी प्रयासों से डिजिटल अवसंरचना का विस्तार हुआ है और दंतेवाड़ा के नवगुरुकुल जैसे प्रयोगों ने रोजगार के नए अवसर पैदा किए हैं (हिन्दुस्तान टाइम्स, 2025), वहीं दूसरी ओर साक्षरता दर (अंतर्राष्ट्रीय जनसंख्या विज्ञान संस्थान, 2021 के अनुसार लगभग 60%), भाषाई बाधाएं, सिमटती जंगलों में बिजली और नेटवर्क की अनियमितता, तथा पीवीटीजी समुदायों (अबुझमाड़िया, पहाड़ी कोरवा, बैगा, बिरहोर, कमार) की विशिष्ट भौगोलिक एवं सामाजिक दुर्बलताएं सार्थक डिजिटल समावेशन में प्रमुख बाधक हैं (विकासपीडिया, बिना वर्ष)। यह अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि बिना सांस्कृतिक संवेदनशीलता और बहुभाषी सामग्री के केवल तकनीकी उपकरण उपलब्ध कराना मौजूदा असमानताओं को और गहरा कर सकता है। अतः एक समावेशी, सहभागी एवं स्थानीय भाषा-आधारित डिजिटल नीति की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द: डिजिटल युग, जनजातीय समाज, छत्तीसगढ़, डिजिटल विभाजन, पीवीटीजी, डिजिटल समावेशन, सूचना साक्षरता

परिचय एवं शोध उद्देश्य

डिजिटल क्रांति ने 21वीं सदी में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के माध्यम से शिक्षा, स्वास्थ्य, शासन, अर्थव्यवस्था और सामाजिक संबंधों को मौलिक रूप से पुनर्गठित कर दिया है। भारत सरकार की 'डिजिटल इंडिया' पहल ने इस बदलाव को और गति प्रदान की है, जिसका उद्देश्य देश के प्रत्येक नागरिक तक डिजिटल सेवाओं की पहुंच सुनिश्चित करना है। हालाँकि, इस प्रक्रिया में समाज के विभिन्न वर्गों के बीच 'डिजिटल विभाजन' (Digital Divide) की गहरी खाई देखने को मिलती है (वैन डिज्क, 2020)। जनजातीय समाज, जो ऐतिहासिक रूप से भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक रूप से वंचित रहे हैं, इस विभाजन के सबसे अधिक शिकार हुए हैं।

छत्तीसगढ़ राज्य, जो भारत की समृद्ध जनजातीय विरासत का वाहक है, इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण केस स्टडी के रूप में उभरता है। केन्द्रीय जनगणना कार्यालय (2011) के अनुसार राज्य की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जनजातियों (एसटी) का 30.6% हिस्सा है, जो इसे देश में जनजातीय जनसंख्या के उच्चतम प्रतिशत वाले राज्यों में से एक बनाता है। यहाँ न केवल गोंड, कंवर, हल्बा, बैगा, उरांव जैसी बड़ी जनजातियाँ बल्कि विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (PVTGs) जैसे अबुझमाड़िया, पहाड़ी कोरवा, बैगा, बिरहोर और कमार भी निवास करते हैं। राज्य सरकार ने इनके अतिरिक्त पांडो और भुंजिया को भी राज्य-स्तरीय पीवीटीजी में शामिल किया है (विकासपीडिया, बिना वर्ष)। इन समुदायों की साक्षरता दर राष्ट्रीय औसत से काफी कम है। अंतर्राष्ट्रीय जनसंख्या विज्ञान संस्थान (2021) के अनुसार छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता दर लगभग 60% है, जो राज्य की औसत साक्षरता दर (70%) से काफी कम है।

इस पृष्ठभूमि में इस शोध के तीन प्रमुख प्रश्न हैं:

1. छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में डिजिटल अवसंरचना, कनेक्टिविटी और सूचना साक्षरता की वर्तमान स्थिति क्या है?
2. शिक्षा, शासन और आजीविका के क्षेत्रों में डिजिटल हस्तक्षेप जनजातीय जीवन को किस प्रकार प्रभावित कर रहे हैं? साथ ही इनके समक्ष प्रमुख अवसर और चुनौतियाँ क्या हैं?
3. डिजिटल प्रौद्योगिकियाँ जनजातीय समाजों के सामाजिक-सांस्कृतिक ढाँचे और पहचान पर क्या प्रभाव डाल रही हैं?

शोध पद्धति (Research Methodology)

यह अध्ययन पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। द्वितीयक आंकड़ों के इस विश्लेषणात्मक अध्ययन में विभिन्न प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है। इसमें शैक्षणिक शोध पत्र (जैसे लाल और तिवारी, 2024; कुजूर, 2023), सरकारी रिपोर्टें (केन्द्रीय जनगणना कार्यालय, 2011; अंतर्राष्ट्रीय जनसंख्या विज्ञान संस्थान, 2021; जनजातीय कार्य मंत्रालय, 2025), नीति दस्तावेज़ (विकासपीडिया, बिना वर्ष; पीआरएस विधानिक अनुसंधान, बिना वर्ष), विश्वसनीय समाचार रिपोर्टें (हिन्दुस्तान टाइम्स, 2025; एलिट्स ई-गवर्नेंस, 2025), सरकारी पोर्टल (एनआईसी सूचना विज्ञान, 2025; छत्तीसगढ़ इन्फोटेक प्रमोशन सोसाइटी, 2017; छत्तीसगढ़ जनजातीय अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, बिना वर्ष), तथा प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों के प्रकाशन (एसीआरएल, 2000; वैन डिज्क, 2020) शामिल हैं। डेटा संग्रहण के बाद, त्रिकोणन (triangulation) विधि से विभिन्न स्रोतों के निष्कर्षों की पुष्टि की गई है। इस पद्धति का लाभ यह है कि यह बिना प्राथमिक क्षेत्रीय अध्ययन की सीमाओं के, विद्यमान ज्ञान का एक व्यवस्थित सैद्धांतिक ढाँचा प्रदान करती है। शोध के नैतिक पक्ष का ध्यान रखते हुए सभी स्रोतों को एपीए 7वें संस्करण के अनुसार हिंदी में उद्धृत किया गया है।

सैद्धांतिक ढांचा: डिजिटल विभाजन से समावेशन तक

इस शोध पत्र को तीन प्रमुख सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्यों द्वारा निर्देशित किया गया है। प्रथम, वैन डिज्क (2020) का डिजिटल विभाजन का सिद्धांत, जो केवल उपकरणों तक पहुंच (प्रथम स्तर) को ही नहीं, बल्कि डिजिटल कौशल, शैक्षिक पृष्ठभूमि, प्रेरणा और प्रौद्योगिकी के सार्थक उपयोग की क्षमता (द्वितीय एवं तृतीय स्तर) को भी विभाजन का कारण मानता है। यह ढाँचा छत्तीसगढ़ के जनजातीय समाजों में स्मार्टफोन की उपलब्धता और उसके प्रभावी उपयोग के बीच के अंतर को समझने में सहायक है। द्वितीय, एसीआरएल (2000) का सूचना साक्षरता मॉडल, जो यह आकलन करने में मदद करता है कि क्या जनजातीय उपयोगकर्ता केवल सूचना तक पहुँच रहे हैं या वे उसका मूल्यांकन एवं उपयोग कर पाने में सक्षम हैं। तृतीय, समावेशी डिजिटल विकास का परिप्रेक्ष्य, जो यह मूल्यांकन करता है कि डिजिटल हस्तक्षेप मौजूदा असमानताओं को कम करते हैं या बढ़ाते हैं। इन तीनों सैद्धांतिक ढाँचों के माध्यम से हम छत्तीसगढ़ के जनजातीय समाजों में डिजिटल प्रौद्योगिकियों के बहुआयामी प्रभाव का एक व्यवस्थित विश्लेषण कर सकते हैं।

छत्तीसगढ़ के जनजातीय समाज का सामाजिक-आर्थिक प्रोफाइल

छत्तीसगढ़ राज्य जनजातीय विविधता का एक अनूठा केंद्र है। यहाँ मुख्यतः गोंड, कंवर, हल्बा, बैगा और उरांव जैसी प्रमुख जनजातियाँ निवास करती हैं। इसके अतिरिक्त, विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों (पीवीटीजी) में केंद्र सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त अबुझमाड़िया, पहाड़ी कोरवा, बैगा, बिरहोर और

कमार शामिल हैं, जबकि राज्य स्तर पर पांडो और भुंजिया को भी इस श्रेणी में रखा गया है (विकासपीडिया, बिना वर्ष)। ये समुदाय मुख्यतः सरगुजा, जशपुर, कोरिया, बस्तर (दंतेवाड़ा, बीजापुर, सुकमा, कांकेर) और रायगढ़ जिलों में केंद्रित हैं। इनकी पारंपरिक आजीविका कृषि, वनोपज संग्रहण, शिकार और मछली पकड़ने पर निर्भर है, तथा सामाजिक संरचना कबीलीय व्यवस्था, सामुदायिक निर्णय-प्रक्रिया और गोत्र प्रथा पर आधारित है। हालाँकि, गरीबी, कुपोषण, सड़क, बिजली और स्वास्थ्य केंद्रों की कमी जैसी बुनियादी सुविधाओं का अभाव अभी भी व्यापक रूप से मौजूद है। यह असमानताओं का यह मौजूदा ढाँचा ही है जिसमें डिजिटल प्रौद्योगिकियों का प्रवेश हो रहा है, जिससे इसके प्रभाव जटिल और अक्सर विरोधाभासी बन जाते हैं (लाल और तिवारी, 2024)।

डिजिटल विभाजन की स्थिति: अवसंरचना, कनेक्टिविटी और साक्षरता

छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में डिजिटल समावेशन के लिए अवसंरचना सबसे बड़ी बाधा है। कांकेर जिले में लाल और तिवारी (2024) द्वारा किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि जहाँ 100% उत्तरदाताओं के पास स्मार्टफोन थे, वहीं 98% ने धीमी इंटरनेट स्पीड और रिमोट एक्सेस की समस्या को सबसे बड़ी चुनौती बताया। यह आँकड़ा डिवाइस की उपलब्धता और गुणवत्तापूर्ण कनेक्टिविटी के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर को उजागर करता है। सरकार ने इस मुद्दे को स्वीकार करते हुए 400 नए बीएसएनएल टावरों को नक्सल-प्रभावित और दूरदराज के क्षेत्रों में स्थापित करने की घोषणा की है, तथापि वन विभाग और सुरक्षा बलों से मंजूरी जैसी प्रक्रियात्मक बाधाएं इसके कार्यान्वयन को धीमा कर सकती हैं (एलिट्स ई-गवर्नेंस, 2025)। इसके अलावा, कई क्षेत्रों में बिजली की अनियमित आपूर्ति एक और बाधा है, क्योंकि स्मार्टफोन या कंप्यूटर को चार्ज करना और नेटवर्क सिग्नल बनाए रखना मुश्किल हो जाता है। 'डिजिटल साक्षरता' केवल डिवाइस चलाने का कौशल नहीं है, बल्कि सूचना को खोजने, समझने, मूल्यांकन करने और उपयोग करने की क्षमता है। कांकेर अध्ययन में यह दावा किया गया है कि 93% उत्तरदाता 'डिजिटल रूप से साक्षर' हैं, लेकिन उसी अध्ययन में यह भी पाया गया कि 78% उत्तरदाताओं के पास डिजिटल जानकारी तक पहुंचने में सहायता के लिए कोई सूचना केंद्र नहीं है, और 87% ने कहा कि पुस्तकालय डिजिटल नहीं हैं (लाल और तिवारी, 2024)। यह बताता है कि यद्यपि लोग बुनियादी स्तर पर इंटरनेट का उपयोग कर सकते हैं (जैसे व्हाट्सएप, फेसबुक), फिर भी उनमें महत्वपूर्ण सूचना साक्षरता कौशल का अभाव है। विशेष रूप से, हिल कोरवा और पहाड़ी कोरवा जैसे पीवीटीजी के अध्ययन से पता चलता है कि कोविड-19 महामारी के दौरान डिजिटल शिक्षा तक पहुंच में असमानता के कारण इन समुदायों के बच्चों को अत्यधिक शैक्षिक नुकसान उठाना पड़ा (कुजूर, 2023)।

डिजिटल पहल और उनका प्रभाव: शिक्षा, शासन और आजीविका

शिक्षा के क्षेत्र में, केन्द्र सरकार और कोल इंडिया लिमिटेड (सीआईएल) की साझेदारी के तहत छत्तीसगढ़ की 68 एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालयों (ईएमआरएस) में लगभग 3200 कंप्यूटर और 300 टैबलेट लगाए जाएंगे, जिससे लगभग 28,000 जनजातीय छात्र सीधे लाभान्वित होंगे (जनजातीय कार्य मंत्रालय, 2025)। इससे भी अधिक प्रेरणादायक उदाहरण दंतेवाड़ा जिले का 'नवगुरुकुल' कार्यक्रम है, जो माओवाद-प्रभावित क्षेत्र के आदिवासी युवाओं को कोडिंग और एआई में प्रशिक्षित करता है। अब तक 52 छात्रों ने एसएंडपी ग्लोबल, माइक्रोनेक्स्ट जैसी कंपनियों में नौकरी प्राप्त की है, जबकि अन्य सरकारी स्कूलों में एआई फैसिलिटेटर के रूप में काम कर रहे हैं (हिन्दुस्तान टाइम्स, 2025)। शासन के क्षेत्र में, छत्तीसगढ़ सरकार ने जून 2025 में 'होस्टल मैनेजमेंट सिस्टम (एचएमएस) एमआईएस पोर्टल' लॉन्च किया, जिसमें डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर (डीबीटी) को एकीकृत किया गया है। यह पोर्टल, जिसे एनआईसी द्वारा विकसित किया गया है, जनजातीय छात्रों के लिए संचालित छात्रावासों और आश्रमों में धन के वितरण को सीधा और पारदर्शी बनाता है, जिससे मध्यस्थों की भूमिका समाप्त होती है और भ्रष्टाचार की संभावनाएं कम होती हैं (एनआईसी सूचना विज्ञान, 2025)। आजीविका के क्षेत्र में, डिजिटल उपकरणों के माध्यम से स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) को ऑनलाइन मार्केटिंग प्लेटफॉर्म और डिजिटल भुगतान प्रणालियों से जोड़ा जा रहा है, जिससे वनोपज, हस्तशिल्प और कृषि उपज के लिए बेहतर मूल्य प्राप्त किए जा सकते हैं (छत्तीसगढ़ इन्फोटेक प्रमोशन सोसाइटी, 2017)।

अवसर और चुनौतियाँ: एक समालोचनात्मक विश्लेषण

डिजिटल हस्तक्षेपों के सकारात्मक पक्ष में, यह शैक्षिक असमानताओं को पाटने में सहायक हो सकता है। नवगुरुकुल का उदाहरण बताता है कि सही मॉडल के साथ डिजिटल शिक्षा दूरदराज के क्षेत्रों में भी गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक संसाधन उपलब्ध करा सकती है (हिन्दुस्तान टाइम्स, 2025)। इसके अतिरिक्त, सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म जनजातीय समुदायों को अपनी चिंताओं को आवाज़ देने, अपनी संस्कृति को दस्तावेजित करने और बड़े मंचों से जुड़ने का अवसर देते हैं। ई-गवर्नेंस प्लेटफॉर्म (जैसे एचएमएस एमआईएस पोर्टल) यह सुनिश्चित करते हैं कि सरकारी लाभ (छात्रवृत्ति, राशन, स्वास्थ्य बीमा) सीधे और बिना देरी के पात्रों तक पहुँचें (एनआईसी सूचना विज्ञान, 2025)।

हालाँकि, इसके समक्ष अनेक चुनौतियाँ भी हैं। प्रथम, भाषा की बाधा: अधिकांश डिजिटल सामग्री और इंटरफेस हिंदी या अंग्रेजी में हैं, जबकि कई जनजातीय समुदायों की अपनी मातृभाषाएं हैं (गोंडी, हल्बी, कुरुख)। भाषाई अभिगम्यता के बिना, डिजिटल साक्षरता अधूरी रह जाती है। द्वितीय, प्रासंगिकता का अभाव: केवल डिजिटल उपकरण उपलब्ध करा देना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उनपर उपलब्ध सामग्री का स्थानीय संदर्भ और जरूरतों से जुड़ा होना आवश्यक है। तृतीय, डिजिटल नैतिकता और सुरक्षा:

जनजातीय समुदाय, विशेषकर महिलाएं और बच्चे, साइबर धोखाधड़ी, डेटा गोपनीयता उल्लंघन और दुरुपयोग के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं, और उनके पास डिजिटल सुरक्षा का ज्ञान नहीं है। चतुर्थ, स्थिरता और रखरखाव: सरकारी या सीएसआर योजनाओं के तहत लगाए गए कंप्यूटर और टैबलेट अक्सर रखरखाव के अभाव में कुछ वर्षों में ही बेकार हो जाते हैं (लाल और तिवारी, 2024)।

सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव और नैतिक प्रश्न

डिजिटल प्रौद्योगिकियों का आगमन जनजातीय समाजों के सामाजिक ताने-बाने पर गहरा प्रभाव डाल रहा है। एक ओर, यह युवाओं को पारंपरिक कबीलीय बंधनों से बाहर निकलकर वैश्विक अवसरों से जोड़ रहा है। व्हाट्सएप और फेसबुक ने दूर-दराज के गांवों को आपस में और शहरी केंद्रों से जोड़ा है, जिससे सूचना का तीव्र प्रवाह संभव हुआ है। डिजिटल एथनोग्राफी का क्षेत्र अब यह अध्ययन कर रहा है कि कैसे वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग टूल्स (जैसे ज़ूम) का उपयोग दूरस्थ जनजातीय समुदायों के साथ शोध और विकास कार्यों के लिए किया जा सकता है (रॉय, 2023)। दूसरी ओर, सांस्कृतिक क्षरण (cultural erosion) का भी एक वास्तविक खतरा है। युवाओं का वैश्विक डिजिटल संस्कृति की ओर आकर्षण, पारंपरिक नृत्य, संगीत, भाषा और मौखिक परंपराओं को हाशिए पर धकेल सकता है। एक महत्वपूर्ण नैतिक प्रश्न यह है कि क्या डिजिटल समावेशन 'आधुनिकीकरण' के नाम पर सांस्कृतिक आत्मसात्करण का एक नया रूप तो नहीं है। 'डिजिटल एथनोग्राफी' में विशेषज्ञों का तर्क है कि प्रौद्योगिकी का उपयोग जनजातीय ज्ञान को संरक्षित और प्रसारित करने के लिए भी किया जा सकता है, बशर्ते यह सामुदायिक नेतृत्व वाला और सहभागी हो (रॉय, 2023)।

निष्कर्ष एवं सिफारिशें

यह अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि छत्तीसगढ़ के जनजातीय क्षेत्रों में डिजिटल युग अवसर और चुनौती का एक जटिल द्वंद्व लेकर आया है। एक ओर, सरकारी पहलों और निजी साझेदारियों ने डिजिटल अवसंरचना का विस्तार किया है और कुछ सफलता की कहानियाँ (जैसे नवगुरुकुल) उभरी हैं (हिन्दुस्तान टाइम्स, 2025)। दूसरी ओर, गहरा डिजिटल विभाजन अभी भी बना हुआ है, जो गुणवत्तापूर्ण कनेक्टिविटी, सूचना साक्षरता, भाषाई बाधाओं और सामाजिक-आर्थिक असमानताओं के रूप में प्रकट होता है (वैन डिज्क, 2020; लाल और तिवारी, 2024)। 'डिजिटल समावेशन' का वास्तविक अर्थ केवल टावर और स्मार्टफोन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक-तकनीकी प्रक्रिया है, जिसमें शिक्षा, कौशल विकास, सांस्कृतिक संवेदनशीलता और नैतिक ढांचे का निर्माण शामिल है। बिना सार्थक हस्तक्षेप के, डिजिटल प्रौद्योगिकियां मौजूदा असमानताओं को और गहरा कर सकती हैं, एक 'डिजिटल अभिजात वर्ग' का निर्माण कर सकती हैं जबकि बहुसंख्यक पिछड़े बने रहें।

नीति सिफारिशें:

प्रथम, एक बहुआयामी डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम की आवश्यकता है, जो केवल 'डिवाइस चलाना' न सिखाकर, सूचना साक्षरता, ऑनलाइन सुरक्षा और सरकारी सेवाओं के उपयोग पर ध्यान केंद्रित करे। यह प्रशिक्षण स्थानीय भाषाओं (गोंडी, हल्बी) में होना चाहिए। द्वितीय, सामुदायिक डिजिटल केंद्र (सीडीसी) हर बड़े गाँव में स्थापित किए जाएँ, जिनमें कंप्यूटर, प्रिंटर, उच्च गति इंटरनेट और एक प्रशिक्षित कार्यकर्ता हो। ये केंद्र स्कूल के बाद के शैक्षिक कार्यक्रमों और ऑनलाइन सेवाओं के लिए एक केंद्र के रूप में काम करेंगे। तृतीय, स्थानीय भाषा में सामग्री विकास के लिए सरकार और शैक्षणिक संस्थान अनुदान दें, ताकि पाठ्यक्रम, स्वास्थ्य जानकारी और कृषि ज्ञान जनजातीय भाषाओं में उपलब्ध हो सके। चतुर्थ, ईएमआरएस और अन्य स्कूलों में 'हाइब्रिड शिक्षा मॉडल' अपनाया जाए, जहाँ डिजिटल शिक्षा पारंपरिक शिक्षण विधियों की पूरक हो, न कि प्रतिस्थापन (जनजातीय कार्य मंत्रालय, 2025)। पंचम, डिजिटल उपकरणों का उपयोग सामुदायिक नेतृत्व में जनजातीय भाषाओं, लोककथाओं और परंपराओं के प्रलेखन एवं संरक्षण के लिए किया जाए।

संदर्भ (ग्रंथ सूची)

1. *एलिट्स ई-गवर्नेंस। (2025)। *Centre to Install 400 BSNL Towers in Naxal-Affected Areas of Chhattisgarh to Boost Digital Access*. https://egov.eletsonline.com/2025/07/centre-to-install-400-bsnl-towers-in-naxal-affected-areas-of-chhattisgarh-to-boost-digital-access/*
2. *एनआईसी सूचना विज्ञान। (2025)। Chhattisgarh CM Launches HMS MIS Portal and Flags Off DBT for Tribal Hostels. https://informatics.nic.in/files/websites/july-2025/chhattisgarh-cm-launches-hms-mis-portal-and-flags-off-dbt-for.php*
3. *अमेरिकन लाइब्रेरी एसोसिएशन (एसीआरएल)। (2000)। Information Literacy Competency Standards for Higher Education.*
4. *अंतर्राष्ट्रीय जनसंख्या विज्ञान संस्थान (आईआईपीएस)। (2021)। *National Family Health Survey (NFHS-5), 2019-21: Chhattisgarh*.*
5. *कुजूर, आर. (2023)। Educational Status of Hill Korwa of Chhattisgarh. Zenodo. https://zenodo.org/records/15048274*
6. *केन्द्रीय जनगणना कार्यालय, भारत सरकार। (2011)। *Census of India 2011: Series-22, Chhattisgarh*.*

7. *छत्तीसगढ़ इन्फोटेक प्रमोशन सोसाइटी (सीएचआईपीएस)। (2017)। Government of Chhattisgarh. https://www.chips.gov.in/*
8. *छत्तीसगढ़ जनजातीय अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान। (बिना वर्ष)। https://cgtrti.gov.in/*
9. *जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार। (2025, जुलाई 18)। Bridging Gaps, Building Futures: CIL Commits ₹10 Cr to Strengthen EMRS in Chhattisgarh. प्रेस सूचना ब्यूरो। https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2145787*
10. *पीआरएस विधानिक अनुसंधान। (बिना वर्ष)। Educational Schemes for Tribals: Committee Reports. https://prsindia.org/policy/report-summaries/educational-schemes-for-tribals*
11. *लाल, एम., और तिवारी, बी. (2024)। Digital Information Literacy among Tribal in the Chhattisgarh: A Study with Special Reference to Rural Areas of Kanker District. Journal of Indian Library Association, 58(3), 156-170.*
12. *विकासपीडिया। (बिना वर्ष)। Particularly Vulnerable Tribal Groups. https://vikaspedia.in/social-welfare/scheduled-tribes-welfare/particularly-vulnerable-tribal-groups*
13. *वैन डिज्क, जे. ए. जी. एम. (2020)। The Digital Divide. Polity Press.*
14. *हिन्दुस्तान टाइम्स। (2025, मई 6)। Chhattisgarh: Youths in Maoist-hit Dantewada secure tech jobs through 'NavGurukul'. https://www.hindustantimes.com/india-news/chhattisgarh-youths-in-maoist-hit-dantewada-secure-tech-jobs-through-navgurukul-101746528432715.html*
15. *रॉय, एस. बी. (2023)। Digital Ethnography: Opportunity and Challenges in Applying for Tribal Development. In Digital Ethnography (pp. 1-20). Taylor & Francis.*

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

भौगोलिक विशेषताओं, जलवायु एवं पर्यटन विकास की संभावनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन

(मैनपाट: छत्तीसगढ़ का प्रमुख हिल स्टेशन)

डॉ. गणेश कुमार कोशले
शासकीय नवीन महाविद्यालय, कमलेश्वरपुर, मैनपाट जिला सरगुजा (छ. ग.)

प्रस्तावना

भारत अपने समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों और गौरवशाली इतिहास के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है। देश के प्रत्येक क्षेत्र में छिपी असंख्य कहानियाँ हमें प्राचीन काल की यात्रा पर ले जाती हैं। इसी प्राकृतिक और सांस्कृतिक समृद्धि का एक महत्वपूर्ण हिस्सा छत्तीसगढ़ है, जो अपने हरे-भरे जंगलों, मनोहारी झरनों और पहाड़ी दृश्यों के कारण पर्यटकों को आकर्षित करता है।

इनमें मैनपाट का स्थान विशेष है। अपनी ठंडी जलवायु और सुंदर वादियों के कारण यह स्थल 'छत्तीसगढ़ का शिमला' और 'भारत का छोटा तिब्बत' कहलाता है। शीत ऋतु में यहाँ अत्यधिक ठंड पड़ती है और कई बार क्षेत्र बर्फ की सफेद चादर से ढक जाता है। सावन और सर्दी के मौसम में बादलों से घिरी मैनपाट की वादियाँ ऐसा दृश्य प्रस्तुत करती हैं, मानो आकाश के बादल धरती पर उतर आए हों।

मैनपाट ऊँची पहाड़ियों और घने जंगलों से घिरा एक पठारी क्षेत्र है। इसी कारण गर्मियों में भी यहाँ का मौसम सुहावना बना रहता है। वर्ष भर पर्यटक इसकी प्राकृतिक सुंदरता का आनंद लेने आते हैं। क्षेत्र में पुलिस प्रशिक्षण केंद्र, सैनिक स्कूल, पामेरियन नस्ल के कुत्तों को देखा जा सकता है तथा बॉक्साइट खनन कार्य संचालित है। मैनपाट से प्राप्त बॉक्साइट का उपयोग बालको द्वारा किया जाता है।

मैनपाट की पर्यटनात्मक सुंदरता का अनुभव यात्रा के दौरान ही होने लगता है। अंबिकापुर से मैनपाट तक की घुमावदार सड़कें, तीखे मोड़ और चारों ओर फैली घाटियाँ यात्रा को अविस्मरणीय बना देती हैं। यहाँ अनेक जलप्रपात, एडवेंचर पार्क, प्राकृतिक स्थल और तिब्बती शरणार्थी बस्तियाँ पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र हैं। मैनपाट दो प्रमुख नदियों का उद्गम स्थल भी है—सरगुजा की प्राणदायिनी रिहंद नदी तथा आगे चलकर महानदी की सहायक बनने वाली मांड नदी (स्थानीय रूप से महादेव मुड़ा नदी)।

मैनपाट की यात्रा पर्यटकों को ग्रामीण और आदिवासी जीवन-शैली को निकट से देखने का अवसर प्रदान करती है। यहाँ विशेष पिछड़ी जनजातियों के साथ तिब्बती समुदाय भी निवास करता है, जो अपनी विशिष्ट संस्कृति और जीवन-पद्धति के लिए जाना जाता है। क्षेत्र में सात तिब्बती कैंप स्थित हैं, जहाँ तिब्बती व्यंजनों का स्वाद लिया जा सकता है। हवा में लहराते प्रार्थना ध्वज (प्रेयर फ्लैग्स) और बौद्ध मठ वातावरण में आध्यात्मिक शांति का अनुभव कराते हैं।

प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से मैनपाट की तुलना कश्मीर, शिमला और मनाली जैसे प्रसिद्ध स्थलों से की जाती है। वर्षा ऋतु में चारों ओर फैले बादल और रुई के फाहों जैसे दृश्य पर्यटकों को मंत्रमुग्ध कर देते हैं, जबकि शीत ऋतु में ठंडी हवाएँ और कभी-कभी दिखाई देने वाली बर्फ इसकी सुंदरता को और बढ़ा देती हैं। प्रवेश द्वार पर लगा बोर्ड—"मुस्कुराइए, आप मैनपाट में हैं"—पर्यटकों के मन में विशेष उत्साह भर देता है।

आज मैनपाट में तिब्बती शरणार्थियों की बड़ी आबादी निवास करती है, जो स्थानीय समाज में पूरी तरह घुल-मिल गई है। पर्यटन के विकास से रोजगार के अवसर भी बढ़े हैं। स्थानीय युवाओं द्वारा पर्यटकों के लिए तंबुओं और निजी होटलों की व्यवस्था की गई है।

इस प्रकार मैनपाट प्राकृतिक सौंदर्य, सांस्कृतिक विविधता और पर्यटन गतिविधियों का अद्भुत संगम प्रस्तुत करता है। यह स्थल न केवल ठंडी जलवायु और मनोरम वादियों के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि ग्रामीण, आदिवासी और तिब्बती संस्कृति से परिचय कराने वाला एक विशिष्ट पर्यटन केंद्र भी है। मैनपाट की यात्रा प्रत्येक आगंतुक के लिए रोमांचक, आनंदमय और स्मरणीय अनुभव बन जाती है।

भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु

मैनपाट छत्तीसगढ़ के उत्तरी भाग में स्थित सरगुजा जिले का एक प्रमुख पर्वतीय पर्यटन स्थल एवं छोटा गाँव है। यह अंबिकापुर से लगभग 55 किलोमीटर दक्षिण, कोरबा से 160 किलोमीटर उत्तर–पूर्व तथा रायपुर से लगभग 360 किलोमीटर उत्तर–पूर्व दिशा में स्थित है। विंध्य पर्वतमाला के अंतर्गत आने वाला यह क्षेत्र अपनी प्राकृतिक सुंदरता, समृद्ध जैवविविधता, औषधीय वनस्पतियों और जलप्रपातों के लिए प्रसिद्ध है।

मैनपाट लगभग 28 किलोमीटर लंबा और 12 किलोमीटर चौड़ा पठारी क्षेत्र है, जो समुद्र तल से लगभग 3,781 फीट की ऊँचाई पर स्थित है। ऊँचाई के कारण यहाँ वर्षभर ठंडी हवाएँ चलती रहती हैं। यही कारण है कि इसे "छत्तीसगढ़ का शिमला" तथा "मिनी तिब्बत" भी कहा जाता है।

मैनपाट की जलवायु में तापमान का विशेष उतार–चढ़ाव देखने को मिलता है। शीत ऋतु में न्यूनतम तापमान 2° सेल्सियस तक गिर जाता है, जबकि ग्रीष्म ऋतु में अधिकतम तापमान लगभग 37°

सेल्सियस तक पहुँच जाता है। वर्षा ऋतु में बादलों से ढकी घाटियाँ और हरियाली इस क्षेत्र को अत्यंत रमणीय बना देती हैं।

यह क्षेत्र रिहंद और मांड नदी का उद्गम स्थल भी है। ऊँचाई के कारण यहाँ रेलवे सुविधा उपलब्ध नहीं है, किंतु सड़क मार्ग द्वारा यह आसानी से पहुँचा जा सकता है। अंबिकापुर से नियमित सड़क संपर्क होने के कारण मैनपाट एक सुलभ और लोकप्रिय पर्यटन केंद्र बन चुका है।

कृषि एवं औषधीय वनस्पतियाँ

मैनपाट कृषि की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यहाँ धान, गेहूँ, सरसों, आलू तथा विशेष रूप से टाऊ, मेंझरी की खेती व्यापक रूप से की जाती है। विशेष रूप से टाऊ की खेती अधिक होने के कारण शीत ऋतु में पूरा क्षेत्र सफेद फसलों से आच्छादित दिखाई देता है।

यह क्षेत्र औषधीय वनस्पतियों का समृद्ध भंडार है। यहाँ सफेद मूसली, काली मूसली, सतावर, ब्राह्मी, भुई आँवला, भोजराज, कामराज, वायविडंग, केऊकंद, पाताल कुम्हड़ा, पारस पीपल तथा कीटभक्षी पौधे प्रमुख रूप से पाए जाते हैं।

वन्यजीव एवं जैवविविधता

मैनपाट क्षेत्र वन्यजीव संपदा से अत्यंत समृद्ध है। यहाँ तेंदुआ, भालू, जंगली सूअर, चीतल, साही, खरगोश, बंदर, कोटरा तथा कहट जैसे अनेक वन्य प्राणी प्राकृतिक रूप से पाए जाते हैं।

यह क्षेत्र अचानकमार टाइगर रिजर्व एवं सतपुड़ा वन क्षेत्र से जुड़ा होने के कारण पारिस्थितिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। जैवविविधता से परिपूर्ण यह क्षेत्र प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जनसंख्या एवं सामाजिक संरचना

मैनपाट में लगभग 76,573 की जनसंख्या निवास करती है, जिसमें मांझी, उरांव, कँवर, कोरवा, पहाड़ी कोरवा, यादव तथा चमार समुदाय प्रमुख हैं। यह क्षेत्र 46 गाँवों और 39 ग्राम पंचायतों में विभाजित है, जिनका ब्लॉक मुख्यालय नर्मदापुर है। यहाँ के लोग सरल, सहयोगी और आत्मीय स्वभाव के होते हैं।

मैनपाट की यात्रा पर्यटकों को ग्रामीण एवं आदिवासी जीवन-शैली को निकट से देखने और अनुभव करने का अवसर प्रदान करती है। यहाँ विशेष पिछड़ी जनजातियों के साथ-साथ तिब्बती समुदाय के लोग भी निवास करते हैं, जो अपनी विशिष्ट संस्कृति और जीवन पद्धति के लिए प्रसिद्ध हैं। मैनपाट क्षेत्र में स्थित सात तिब्बती कैंप प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं, जहाँ तिब्बती व्यंजनों का स्वाद लिया जा सकता है।

यहाँ हवा में लहराते शांति ध्वज (प्रेयर फ्लैग्स) और बौद्ध मठों की उपस्थिति वातावरण में आध्यात्मिक शांति एवं सुकून का अनुभव कराती है।

स्थानीय भोजन में चावल, दाल, सब्ज़ी और चटनी के साथ पारंपरिक व्यंजन प्रमुख हैं। अधिकांश होटलों में शाकाहारी तथा मांसाहारी—दोनों प्रकार का भोजन उपलब्ध है। वहीं, तिब्बती कैंटीनों में पारंपरिक तिब्बती व्यंजनों का आनंद भी लिया जा सकता है।

तिब्बती पुनर्वास एवं सांस्कृतिक पहचान

इसे "छत्तीसगढ़ की तिब्बत" या "मिनी तिब्बत" के नाम से भी जाना जाता है। इसका संबंध 1959 में चीन–तिब्बत संघर्ष से है, जिसके बाद बड़ी संख्या में तिब्बती नागरिक भारत में शरणार्थी बनकर आए।

भारत सरकार ने तिब्बती धर्मगुरु दलाई लामा सहित अनेक तिब्बती शरणार्थियों को विभिन्न क्षेत्रों में बसाया। इनमें हिमाचल प्रदेश का धर्मशाला और छत्तीसगढ़ का मैनपाट प्रमुख हैं। वर्ष 1962–63 के दौरान लगभग 1,400 तिब्बती अप्रवासियों को मैनपाट के पहाड़ी क्षेत्र में लगभग 3,000 एकड़ भूमि आवंटित की गई। इस पुनर्वास के कारण मैनपाट को स्थायी रूप से बसने वाले तिब्बती समुदाय का केंद्र बनकर "छोटा तिब्बत" कहा जाने लगा।

तिब्बती समुदाय के आगमन के साथ ही मैनपाट में मठ, बौद्ध विहार, पारंपरिक खान-पान, वेशभूषा और सांस्कृतिक परंपराओं में तिब्बती जीवन-शैली की झलक देखने को मिली। शरणार्थियों ने अपनी धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक विरासत को जीवित रखते हुए स्थानीय समाज में गहरा प्रभाव डाला। यही कारण है कि मैनपाट न केवल प्राकृतिक सुंदरता के लिए, बल्कि सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से भी पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र बन गया है।

आज मैनपाट में तिब्बती कैंप, बौद्ध मंदिर और विहार पर्यटकों को आध्यात्मिक शांति का अनुभव कराते हैं। यहाँ बुद्ध को समर्पित पूजा-अर्चना की जाती है, और पर्यटक वर्ष भर तिब्बती संस्कृति, बौद्ध धर्म और शांत वातावरण का आनंद लेने आते हैं। इसके साथ ही तिब्बती समुदाय हस्तनिर्मित ऊनी वस्त्र, डिज़ाइनर चटाइयाँ और अन्य हस्तशिल्प उत्पाद तैयार करता है, जो स्थानीय अर्थव्यवस्था और पर्यटन को सुदृढ़ बनाते हैं।

इन सभी विशेषताओं के कारण मैनपाट को "छत्तीसगढ़ का तिब्बत" कहा जाना बिल्कुल उचित है। यह स्थल प्राकृतिक सुंदरता, सांस्कृतिक विविधता और धार्मिक आध्यात्मिकता का अनूठा संगम प्रस्तुत करता है, जो हर आगंतुक के लिए यादगार अनुभव बन जाता है।

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

प्रमुख प्राकृतिक पर्यटन स्थल

मैनपाट में अनेक प्राकृतिक स्थल हैं—

मैनपाट का एक अद्भुत प्राकृतिक आकर्षण है ‘ठिनठिनी पत्थर’, जो अंबिकापुर से लगभग 15 किलोमीटर की दूरी पर, दरिमा हवाई अड्डे के समीप स्थित है। यहाँ बड़े-बड़े पत्थरों का समूह पर्यटकों को अपनी ध्वनियों से चकित कर देता है। पत्थरों को ठोकने पर विभिन्न प्रकार की धात्विक ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं, जो कभी खुले बर्तन की आवाज जैसी और कभी अलग धातुओं की गूँज जैसी प्रतीत होती हैं। यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि एक ही पत्थर के अलग-अलग टुकड़े भी अलग-अलग ध्वनियाँ उत्पन्न करते हैं। इसी प्राकृतिक विलक्षणता के कारण इसे स्थानीय लोग ‘ठिनठिनी पत्थर’ कहते हैं।

मैनपाट का दूसरा प्रमुख आकर्षण है ‘घुनघुटा डैम’, जो घुनघुटा श्याम परियोजना के अंतर्गत निर्मित है। यह डैम अंबिकापुर से लगभग 15 किलोमीटर दूर स्थित है और सदियों पहले आसपास के ग्रामों की कृषि सिंचाई के लिए बनाया गया था। वर्तमान में यह एक लोकप्रिय पिकनिक स्थल बन चुका है। डैम के समीप बने सुंदर उद्यान में पर्यटक बैठकर विश्राम कर सकते हैं, और इसका जल आगे चलकर रिहंद नदी में मिल जाता है।

टाइगर पॉइंट, मैनपाट से लगभग 10 किलोमीटर दूर, महादेव मुड़ा (मांड) नदी पर 60 मीटर ऊँचाई से गिरने वाला भव्य जलप्रपात है। इसके दोनों ओर घने जंगल हैं, जिनमें औषधीय वनस्पतियाँ और बंदर पाए जाते हैं। यहां लोगों ने शेर भी देखा है। झरने की गर्जना शेर की दहाड़ जैसी प्रतीत होती है, इसी कारण इसका नाम ‘टाइगर पॉइंट’ पड़ा। यह क्षेत्र अचानकमार टाइगर रिजर्व और सतपुड़ा के जंगलों से जुड़ा होने के कारण पारिस्थितिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

मछली पॉइंट, मैनपाट से लगभग 13 किलोमीटर दूर, मछली नदी पर स्थित है। यहाँ प्राचीन काल में प्रचुर मछलियाँ पाई जाती थीं। इस झरने को देखने के लिए लगभग 100–150 सीढ़ियाँ उतरनी पड़ती हैं। लगभग 60 फीट ऊँचा यह झरना और पास में प्रवाहित दूसरा झरना मिलकर अत्यंत सुंदर दृश्य उत्पन्न करते हैं।

जलपरी पॉइंट, जिसे बूढ़ा नागदेव जलप्रपात भी कहा जाता है, मछली पॉइंट से लगभग 2 किलोमीटर की ट्रैकिंग के बाद पहुँचता है। रास्ते में बूढ़ा नाग बाबा का मंदिर और पत्थरों से निर्मित विभिन्न आकृतियाँ देखने को मिलती हैं। स्थानीय किंवदंती के अनुसार, यहाँ कभी जलपरी दिखाई देती थी। यह झरना प्राकृतिक सौंदर्य और रोमांच का अद्भुत संगम प्रस्तुत करता है।

उल्टापानी या बिसरपानी, मैनपाट से लगभग 5 किलोमीटर पहले स्थित है। यहाँ पानी का प्रवाह ऊपर की ओर होता हुआ प्रतीत होता है। सड़क पर खड़े वाहन भी ढलान के विपरीत ऊपर की ओर चढ़ते दिखाई देते हैं। वैज्ञानिक इसे ऑप्टिकल भ्रम और गुरुत्वाकर्षण पहाड़ी का उदाहरण मानते हैं। स्थानीय किंवदंती के अनुसार, एक किसान की नाली निर्माण के समय यह अद्भुत घटना हुई, तब से इसे उल्टापानी कहा जाने लगा।

ये स्थल मैनपाट के पर्यटन आकर्षण को और भी समृद्ध बनाते हैं, जहाँ प्राकृतिक सौंदर्य, रोमांच और रहस्यमय अनुभव पर्यटकों को मंत्रमुग्ध कर देते हैं।

मैनपाट के प्रमुख दर्शनीय स्थलों में **परपटिया पॉइंट** (सनसेट पॉइंट) एक अत्यंत मनोहारी स्थल है, जो मैनपाट से लगभग 27 किमी दूर स्थित है। यहाँ से सूर्यास्त का दृश्य अत्यंत भावनात्मक और अद्भुत अनुभव प्रदान करता है। शाम के समय जब सूर्य धीरे-धीरे पर्वतों की गोद में समा जाता है, तो ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकृति स्वयं विश्राम कर रही हो। यहाँ से बंदरकोट और रामगढ़ की पहाड़ियाँ भी दिखाई देती हैं, जो सूर्यास्त के दृश्य को और भी आकर्षक बना देती हैं। यह स्थल फोटोग्राफी और प्रकृति प्रेमियों के लिए अत्यंत उपयुक्त है।

मेहता पॉइंट, मैनपाट से लगभग 5 किमी की दूरी पर स्थित एक लोकप्रिय पिकनिक स्थल है। यह स्थान ऊँची पहाड़ियों, गहरी घाटियों और हरियाली से आच्छादित मनोरम दृश्यों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ से प्राकृतिक सौंदर्य का विहंगम दृश्य दिखाई देता है। वर्षा ऋतु में पहाड़ियों से गिरते झरने, भरे हुए बांध और चारों ओर हरियाली पर्यटकों को मंत्रमुग्ध कर देती है। कई पर्यटक यहाँ रात्रि विश्राम करना पसंद करते हैं ताकि प्रातःकाल के अद्भुत दृश्य और सूर्योदय का आनंद ले सकें। मेहता पॉइंट के आसपास होटल और टेंट स्टे की सुविधा भी उपलब्ध है, जिससे यह स्थल और अधिक सुविधाजनक बन जाता है।

जलजली पॉइंट, (दलदली पॉइंट) मैनपाट का एक अनोखा और रोमांचक स्थल है। यहाँ भूमि इतनी नरम है कि कूदने पर यह ऊपर-नीचे हिलती प्रतीत होती है। यह अनुभव पर्यटकों के लिए अत्यधिक रोमांचक होता है। यहाँ घुड़सवारी और बाइक राइडिंग जैसी गतिविधियाँ भी उपलब्ध हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार, भूमि के नीचे आंतरिक दबाव और पोर स्पेस में भरे पानी या हवा के कारण यह क्षेत्र स्पंजी हो गया है। माना जाता है कि यह क्षेत्र पहले दलदली भूमि रहा होगा, जो समय के साथ ऊपर से सूख गया, लेकिन उसकी अंदरूनी संरचना लचीली बनी रही।

मैनपाट के पर्यटन स्थलों में बौद्ध मंदिर विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। मैनपाट में तिब्बती समुदाय के निवास के कारण इसे "छत्तीसगढ़ का तिब्बत" या "मिनी तिब्बत" कहा जाता है। यहाँ अनेक छोटे-

बड़े बौद्ध मंदिर (मठ) स्थित हैं, जो अपनी विशिष्ट स्थापत्य शैली, रंग-बिरंगे झंडे, ड्रैगन आकृतियाँ और शांत वातावरण के लिए प्रसिद्ध हैं। तिब्बती समुदाय अपने मंदिरों में धार्मिक शिक्षा, साधना और सांस्कृतिक गतिविधियाँ संचालित करता है। यहाँ तिब्बती संस्कृति और छत्तीसगढ़ की आदिवासी संस्कृति का अनोखा समन्वय देखने को मिलता है, जो मैनपाट को सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध बनाता है।

देव प्रवाह झरना, कमलेश्वरपुर ग्राम के समीप, जलजली पॉइंट से कुछ दूरी पर स्थित है। घने जंगलों के बीच स्थित यह झरना शांत और मनोहक जलप्रवाह के लिए जाना जाता है। थोड़ी ट्रैकिंग के बाद ही यह झरना दिखाई देता है, जिससे पर्यटक अपेक्षाकृत कम होते हैं। कम ऊँचाई से गिरता और धीरे बहता यह जलप्रपात प्रकृति प्रेमियों के लिए विशेष आकर्षण प्रस्तुत करता है।

दरोगा झरना, मैनपाट से लगभग 6 किमी दूर है और इसे “छिपा हुआ झरना” भी कहा जाता है। यह झरना घने जंगलों के बीच स्थित है, जहाँ का वातावरण अत्यंत शांत और ध्यानपूर्ण है। कल-कल बहता जल और चारों ओर फैली हरियाली मन को गहरी शांति प्रदान करती है। भीड़-भाड़ से दूर होने के कारण यह स्थल शोधार्थियों और प्रकृति प्रेमियों के लिए विशेष महत्व रखता है। किंग्स जलप्रपात टाइगर प्वाइंट मार्ग पर स्थित है। मुख्य सड़क से कच्चे रास्ते से पहुँचा जा सकता है। लगभग 60 फीट ऊँचाई से गिरता यह झरना अत्यंत मनोहक दृश्य प्रस्तुत करता है और यात्रा की सारी थकान को दूर कर देता है।

भुतही झरना, मैनपाट बस स्टैंड से थोड़ी दूरी पर है और अपने अनोखे जलप्रवाह के लिए प्रसिद्ध है। यह झरना सर्प के समान तिरछे आकार में गिरता है और गिरते पानी की तेज गर्जना दूर तक सुनाई देती है। इसकी रहस्यमय छटा और भय मिश्रित अनुभव इसे रोमांचक पर्यटन स्थल बनाते हैं।

एलीफैंट पॉइंट, घने वनों के बीच स्थित है और यहाँ तीन झरने हैं। कच्ची पगडंडियों और पहाड़ियों के बीच से पहुँचने पर मुख्य झरना लगभग 60 फीट ऊँचाई से गिरता है, जो पर्यटकों को मंत्रमुग्ध कर देता है। मार्ग में दो छोटे झरनों का दृश्य यात्रा को और भी मनोरम बनाता है।

मैनपाट के **घाघी झरना** तक पहुँचने के लिए उल्टा पानी से आगे कच्ची और दुर्गम सड़क पर जाना पड़ता है, जिसमें बड़े-बड़े पत्थर बाहर निकले होने के कारण वाहन क्षतिग्रस्त होने का खतरा रहता है। फिर भी बाइक से यह मार्ग आसानी से तय किया जा सकता है। यह झरना मैनपाट में लंबाई के हिसाब से सबसे बड़ा है, और यहाँ कल-कल करती नदी का बहता जल अत्यंत मनोहक और रमणीय प्रतीत होता है।

मैनपाट में एप्पल गार्डन भी देखने योग्य स्थल है। यहाँ ठंडी जलवायु के कारण सेब की खेती सफलतापूर्वक होती है। इसके अतिरिक्त अनानास, लीची और अन्य फलों की खेती भी यहाँ की कृषि-समृद्धि को दर्शाती है।

पाताल तोड़ कुआँ, ग्राम रोपाखार में स्थित, तिब्बती समुदाय द्वारा खोजा गया था। वर्ष 1991 में इसे संरचना के रूप में विकसित किया गया। यहाँ से निरंतर जल प्रवाहित होता है और इसे स्थानीय लोग "देवी धाम कुआँ" भी कहते हैं। गर्मी के दिनों में भी यह कुआँ लगातार जल प्रदान करता है।

आमगांव जलप्रपात, मैनपाट से लगभग 5 किलोमीटर पहले स्थित है। यह जलप्रपात चट्टानों के बीच से गिरता है और कटे-फटे पत्थरों के बीच बहता जल अत्यंत आकर्षक दृश्य प्रस्तुत करता है, जो पर्यटकों को शांति और सुकून का अनुभव कराता है।

साहसिक पर्यटन एवं विशिष्ट अनुभव

मैनपाट साहसिक पर्यटन गतिविधियों के लिए भी प्रसिद्ध है। अपनी ऊँची पर्वतीय चोटियों और विस्तृत मैदानी भूभाग के कारण यह क्षेत्र रोमांचक खेलों के लिए अत्यंत उपयुक्त माना जाता है। यहाँ ट्रैकिंग, पैराग्लाइडिंग, ज़ोरबिंग बॉल, रैपलिंग, बाइक राइडिंग तथा घुड़सवारी (हॉर्स राइडिंग) जैसी गतिविधियाँ संचालित होती हैं।

मैनपाट महोत्सव (कार्निवल)

मैनपाट महोत्सव (कार्निवल) प्रतिवर्ष फरवरी माह में आयोजित किया जाने वाला तीन दिवसीय उत्सव है, जिसका आयोजन छत्तीसगढ़ शासन द्वारा किया जाता है। इसकी शुरुआत वर्ष 2012 में हुई थी।

इस महोत्सव में लोकनृत्य, लोकगीत, कर्मा-ददरिया जैसे पारंपरिक नृत्य, खेल प्रतियोगिताएँ तथा विविध सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इसमें स्कूल, कॉलेज एवं स्थानीय कलाकारों के साथ-साथ राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय कलाकार भी अपनी प्रस्तुतियाँ देते हैं।

महोत्सव के दौरान सड़कों को आकर्षक ढंग से सजाया जाता है तथा लोक चित्रकला, हस्तशिल्प और सांस्कृतिक प्रदर्शनी लगाई जाती है। इसके साथ ही पतंगबाजी, तीरंदाजी, साइकिल रेस जैसी रोचक प्रतियोगिताएँ भी आयोजित होती हैं, जो दर्शकों का विशेष आकर्षण होती हैं।

यह उत्सव पर्यटन को बढ़ावा देने के साथ-साथ स्थानीय युवाओं के लिए रोजगार के अवसर भी सृजित करता है। मैनपाट महोत्सव क्षेत्र की लोकसंस्कृति, परंपरा और कला को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

मैनपाट कैसे पहुँचें

मैनपाट पहुँचने के लिए सरगुजा जिले का मुख्यालय अंबिकापुर प्रमुख केंद्र है। अंबिकापुर हवाई, रेल एवं सड़क—तीनों मार्गों से जुड़ा हुआ है, जिससे मैनपाट की यात्रा सरल और सुविधाजनक हो जाती है। अंबिकापुर से टैक्सी, जीप और बस द्वारा मैनपाट पहुँचा जा सकता है।

हवाई मार्ग: छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर स्थित स्वामी विवेकानंद अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा देश के प्रमुख शहरों से जुड़ा है। अंबिकापुर में भी एक मिनी हवाई अड्डा है, जहाँ रायपुर से नियमित उड़ानें संचालित होती हैं। हवाई मार्ग से आने वाले पर्यटक आसानी से अंबिकापुर पहुँचकर मैनपाट की यात्रा प्रारंभ कर सकते हैं।

रेल मार्ग: अंबिकापुर रेलवे जंक्शन भारत के अनेक प्रमुख शहरों से रेल मार्ग द्वारा जुड़ा हुआ है। यहाँ से एक्सप्रेस तथा यात्री गाड़ियाँ नियमित रूप से चलती हैं, जिससे यात्रा किफायती और सुविधाजनक बनती है।

सड़क मार्ग: अंबिकापुर से मैनपाट की दूरी लगभग 50 किलोमीटर है। इस मार्ग पर निजी वाहन, टैक्सी, जीप और बस की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। पर्यटक अंबिकापुर से निजी वाहन द्वारा मैनपाट तथा आसपास के पर्यटन स्थलों का भ्रमण सहजता से कर सकते हैं।

मैनपाट भ्रमण का उपयुक्त समय

मैनपाट घूमने का सर्वोत्तम समय वर्षा एवं शीत ऋतु माना जाता है। यदि झरनों को पूरे वेग और सौंदर्य के साथ देखना हो, तो जुलाई से सितंबर का समय सबसे उपयुक्त है। बाहरी पर्यटकों के लिए अक्टूबर से फरवरी तक का समय आदर्श माना जाता है, क्योंकि इस अवधि में मौसम सुहावना रहता है।

दिसंबर–जनवरी के दौरान कुछ स्थानों पर हल्की बर्फबारी भी देखने को मिलती है, जिससे मैनपाट का प्राकृतिक सौंदर्य और अधिक आकर्षक हो जाता है।

निष्कर्षतः, मैनपाट प्राकृतिक सौंदर्य, जैवविविधता, तिब्बती संस्कृति, आदिवासी जीवन और साहसिक पर्यटन का अनूठा संगम है। यह केवल एक पर्यटन स्थल नहीं, बल्कि छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक और पर्यावरणीय पहचान का प्रतीक है।

संदर्भ ग्रंथ

1. *छत्तीसगढ़ पर्यटन मंडल — छत्तीसगढ़ पर्यटन मार्गदर्शिका — रायपुर: छत्तीसगढ़ शासन।*

ISSN :3049-334X
वर्ष 02 - अंक 2 मई – अगस्त 2025

2. *जिला प्रशासन, सरगुजा — सरगुजा जिला दर्पण — अंबिकापुर।*
3. *छत्तीसगढ़ शासन, वन विभाग — सरगुजा अंचल की जैव विविधता — रायपुर।*
4. *छत्तीसगढ़ पर्यटन विभाग — मैनपाट पर्यटन विवरण पुस्तिका — रायपुर।*
5. *भारत सरकार, पर्यटन मंत्रालय — मध्य भारत के पर्यटन स्थल — नई दिल्ली।*